CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1884

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Dr. B.N. Puri

With Compliments

From

Editors and

Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd.

ORIENTAL BOOKSELLERS
PUBLISHERS □ EXPORTERS
POST BOX 5715 • 54 RANI JHANSI ROAD
NEW DELHI 110055 • INDIA
Telegrams LITERATURE
Telephones 513841 513600

B-50/r

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन भारत : राजनीतिक इतिहास

मागध साम्राज्य का उदय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस ग्रन्थ के लेखक

डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय
प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
(भूतपूर्व कुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)

डॉ० देवहूति
रीडर, इतिहास विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ० श्रीराम गोयल
रीडर, इतिहास विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

श्री रामस्वरूप मिश्र
प्राध्यापक, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ० शिवकुमार गुप्त
प्राध्यापक, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

श्री महेशचन्द्र जोशी
प्राध्यापक, इतिहास विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

डॉ० विजय बहादुर राव
प्राध्यापक, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

डॉ० शैलेन्द्रनाथ कपूर
प्राध्यापक, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

With Compliments of
MUNSHIRAM MANOHARLAL
the Publishers

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारतीय इतिहास और संस्कृति ग्रन्थमाला—ग्रन्थ 2

प्राचीन भारत : राजनीतिक इतिहास

मागध साम्राज्य का उदय

(321 ई० पू० तक)

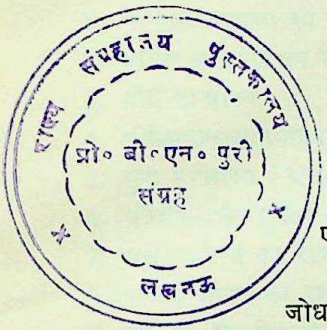

प्रधान सम्पादक

श्रीराम गोयल

एम० ए०, पी-एच० डी०

रीडर, इतिहास विभाग

जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

सह-सम्पादक

शिवकुमार गुप्त

एम० ए०, पी-एच० डी०

प्राध्यापक, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

मुंशीराम मनोहरलाल

पब्लिशर्स प्रा० लि०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम संस्करण 1981

© 1979 गोयल, डॉ० श्रीराम

मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा० लि०, 54 रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-110055 के लिए
युनाइटेड प्रिंटिंग कं०, दिल्ली-110153 द्वारा मुद्रित ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय इतिहास और संस्कृति ग्रन्थमाला

प्रस्तावित ग्रन्थ-सूची

प्राचीन काल

1. भारतीय सभ्यता का जन्म (प्रागैतिहासिक, सैन्धव एवं वैदिक काल)
2. मागध साम्राज्य का उदय
3. मौर्य साम्राज्य
4. शुंग-कुषाण-सातवाहन काल
5. गुप्त साम्राज्य (300-550 ई०)
6. मौखरि-वर्धन युगीन उत्तर भारत (550-750 ई०)
7. उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास (750-1200 ई०)
8. दक्षिण भारत का राजनीतिक इतिहास (250-1300 ई०)
9. प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारधाराएं एवं शासन-पद्धति
10. प्राचीन भारतीय सामाजिक संगठन एवं विचारधाराएं
11. प्राचीन भारतीय आर्थिक जीवन
12. प्राचीन हिन्दू धर्म एवं दर्शन का इतिहास
13. बौद्ध एवं जैन धर्मों का इतिहास
14. प्राचीन भारतीय कलाओं का इतिहास
15. प्राचीन भारतीय शिक्षा एवं साहित्य
16. प्राचीन भारतीय विज्ञान
17. बृहत्तर भारत

मध्य काल

18. सल्तनतकालीन भारत का राजनीतिक इतिहास
19. मुग़ल साम्राज्य का प्रारम्भिक इतिहास (बाबर से अकबर तक)
20. मुग़ल साम्राज्य का परवर्ती इतिहास (अकबर के उपरान्त)
21. मध्यकालीन भारतीय राजनीतिक विचारधाराएं एवं शासन-पद्धति
22. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति 1 : (सामाजिक एवं आर्थिक जीवन)
23. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति 2 : (साहित्य, शिक्षा, धर्म-दर्शन व धार्मिक आन्दोलन)
24. मध्यकालीन भारतीय कला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधुनिक काल

25. भारत में अंग्रेजी प्रभुसत्ता के अभ्युत्थान और प्रसार का इतिहास
26. मराठों का इतिहास
27. सिक्खों का इतिहास
28. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास का इतिहास
29. राजस्थान का इतिहास (1200-1950 ई०)
30. आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण
31. आधुनिक भारतीय संस्कृति
32. स्वतन्त्र भारत का इतिहास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

संकेत-सूची xiii

प्रकाशकीय भूमिका xv

सम्पादकीय भूमिका xvii

अध्याय 1

जनराज्यों से जनपदों तक 1-4

ले० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय

अध्याय 2

जनपदयुगीन इतिहास जानने के स्रोत 5-15

ले० श्रीराम गोयल

प्राङ् मौर्य युग में लेखन-कला का अभाव 5

पुरातात्त्विक सामग्री 8

साहित्यिक साक्ष्य : ब्राह्मण ग्रन्थ 9

बौद्ध और जैन ग्रन्थ 10

नन्द-मौर्य कथा-चक्र 10

'क्लासिकल' साहित्य 14

अध्याय 3

छठी शती ई० पू० : 'ऐतिहासिक युग' का उषः काल 16-23

ले० शिवकुमार गुप्त

'ऐतिहासिक युग' का आरम्भ 16

जनपद सूचियां : ब्राह्मण ग्रन्थों का साक्ष्य 17

बौद्ध व जैन ग्रन्थों की सूचियां 18

छठी शती ई० पू० की राजनीतिक प्रवृत्तियाँ 21

अध्याय 4

मगधेतर राजाधीन जनपद : अवन्ति, कोसल तथा वत्स 24-41

ले० श्रीराम गोयल

अवन्ति जनपद 24

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चण्ड प्रद्योत महासेन 25
कोसल जनपद 27
प्रसेनजित् 29
प्रसेनजित् और बौद्ध धर्म 32
प्रसेनजित् का प्रशासन 34
विडूडभ 35
वंस (वत्स) जनपद : उदयन 36
उदयन की तिथि 40

अध्याय 5

मगधेतर राजाधीन जनपद : अन्य 42-51

ले० शिवकुमार गुप्त

अंग, काशी और चेदि 42
कुरु तथा पञ्चाल 45
शूरसेन, मत्स्य तथा अश्मक 47
गन्धार तथा कम्बोज 48
अन्य लघु जनपद 49

अध्याय 6

संघात्मक राज्य : वज्जि जनपद 52-71

ले० श्रीराम गोयल

(प्रथम अनुभाग रामस्वरूप मिश्र द्वारा)

पृष्ठभूमि 52
वज्जि जनपद 53
वज्जि संघ की सदस्य जातियां : लिच्छवि और वज्जि 55
वज्जि संघ के अन्य सदस्य 60
वज्जि संघ का इतिहास 61
वज्जि संघ व बौद्ध तथा जैन धर्म 63
वज्जि संघ का संविधान व प्रशासन 64
वज्जि संघ की कार्य-विधि 69

अध्याय 7

वज्जीतर संघात्मक जनपद 72-85

ले० रामस्वरूप मिश्र

साक्ष्य की समस्याएं 72
शाक्य जनपद 74

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कोलिय संघ 77
मोरिय संघ 79
मल्ल जनपद 80
बुलि संघ 84
कालाम संघ 84
भग्ग राज्य 85

अध्याय 8
मगध का उदय : बिम्बिसार 86-98
ले० श्रीराम गोयल

मगध जनपद 86
हर्यंक वंश 88
बिम्बिसार : प्रारम्भिक जीवन 88
विवाह-सम्बन्ध नीति 89
अंग-विजय 91
बिम्बिसार और वज्जि संघ 93
प्रशासन व्यवस्था 94
बिम्बिसार का धर्म और धार्मिक नीति 96
बिम्बिसार के अन्तिम दिन 97

अध्याय 9
अजातशत्रु 99-111
ले० श्रीराम गोयल

परिवार 99
अजातशत्रु के शासन का तिथिक्रम 100
कोसल के साथ दो बार युद्ध 102
वज्जि संघ व मल्लों का उन्मूलन 103
अजातशत्रु का धर्म और धार्मिक नीति 109

अध्याय 10
अजातशत्रु के उत्तराधिकारी तथा शिशुनाग-वंश 112-118
ले० श्रीराम गोयल

अजातशत्रु के उत्तराधिकारी 112
शिशुनाग-वंश 114

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अध्याय 11
नन्द वंश 119-140
ले० श्रीराम गोयल
नन्द इतिहास के स्रोत एवं कुछ समस्याएं 119
नन्दों की उत्पत्ति 123
उग्रसेन-महापद्मनन्द द्वारा सत्ता का अपहरण 125
साम्राज्य-स्थापन 128
उग्रसेन-महापद्मनन्द के उत्तराधिकारी तथा उनका तिथिक्रम 133
नन्दों का मूल्यांकन : एक नया दृष्टिकोण 135

परिशिष्ट 1
जनपदयुगीन दक्षिण भारत 141-144
ले० देवहूति

परिशिष्ट 2
मागध साम्राज्यवाद की सफलता के कारण 145-147
ले० शैलेन्द्रनाथ कपूर

अध्याय 12
मागध तिथिक्रम 148-158
ले० श्रीराम गोयल
बुद्ध के परिनिर्वाण की तिथि 148
महावीर की मुक्ति तिथि 152
मागध तिथिक्रम 156

अध्याय 13
साखामनीषी आक्रमण (1) 159-170
ले० शिवकुमार गुप्त
प्राक्-साखामनीषी युग 159
कुरुष महान् और भारत 164

अध्याय 14
साखामनीषी आक्रमण (2) 171-185
ले० शिवकुमार गुप्त
प्रथम दारयवहुष 171
प्रथम दारयवहुष के उपरान्त 177
साखामनीषी आधिपत्य का प्रभाव 182

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 15

साखामनीषियों के उत्तराधिकारी

ले० श्रीराम गोयल

कुनार से रावी तक के राज्य 186
प्रथम वर्ग के राज्य 187
द्वितीय वर्ग के गणाधीन राज्य 191
सिन्धु की दक्षिणी उपत्यका के राज्य 195

अध्याय 16

सिकन्दर का आक्रमण 199-211

ले० श्रीराम गोयल

हिन्दुकुश से सिन्धु नदी तक 199
सिन्धु से व्यास तक 205

अध्याय 17

सिकन्दर का प्रत्यावर्त्तन 212-227

ले० श्रीराम गोयल

प्रत्यावर्त्तन के कारण 212
प्रत्यावर्त्तन 215
भारतीयों की पराजय के कारण 219
सिकन्दर के आक्रमण की राजनीतिक विफलता 221
सिकन्दर के आक्रमण का प्रभाव 226

अध्याय 18

जनपदयुगीन सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था 228-240

ले० विजय बहादुर राव

जनपदयुगीन संस्कृति का स्वरूप 228
आर्थिक जीवन 229
कृषि कर्म 231
नगर-पुनरुत्कर्ष 232
सामाजिक जीवन 236
वर्ण व्यवस्था का स्वरूप 236
आश्रम व्यवस्था का उदय 238
विवाह एवं परिवार 239
स्त्रियों की दशा 239
शिक्षा 240

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अध्याय 19

धार्मिक आन्दोलन 241-247

ले० विजय बहादुर राव

आध्यात्मिक गवेषणा का युग 241
विविध मत एवं सम्प्रदाय 243
जैन धर्म 244
बौद्ध धर्म 245
प्रचलित लोक धर्म 246

अध्याय 20

'क्लासिकल' ग्रन्थों में जनपदयुगीन भारत 248-256

ले० महेशचन्द्र जोशी

महत्त्व और विश्वसनीयता 248
प्राक्-सिकन्दरयुगीन लेखक 250
सिकन्दर के इतिहासकार 255

तिथिक्रम-तालिका 257
सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची 260
नामानुक्रमणिका 271

मानचित्र

भारत : महाजनपदों के युग में : पृष्ठ 1 सामने
भारत : सिकन्दर के आक्रमण के समय : पृष्ठ 199 के सामने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संकेत-सूची

अ०	अनुवर्ती पृष्ठ
अ० हि० इ०	अर्ली हिस्टरी ऑव इण्डिया, ले०, वी० ए० स्मिथ
अ० हि० वै०	एन अर्ली हिस्टरी ऑव वैशाली, ले०, योगेन्द्र मिश्र
आई० ए०	इण्डियन एण्टिक्वेरी
आई० एच० क्यु०	इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली
आई० सी०	इण्डियन कल्चर
आ० म० मू० क०	आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प
आर्क० सर्वे० इ०	आर्क्योलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया
इ० आई०	एपिग्राफिया इण्डिका
इ० हि० इ०	एन इम्पीरियल हिस्टरी ऑव इण्डिया, ले०, का० प्र० जायसवाल
ए० इ० यू०	द एज ऑव इम्पीरियल यूनिटी, बम्बई
ए० बी० ओ० आर० आई०	एनाल्स ऑव भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट
एम० ए० एस० आई०	मेमोआयर्स ऑव आर्क्योलोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया
ए० न० मौ०	एज ऑव नन्दज एण्ड मौर्यज़, सम्पा०, नीलकण्ठ शास्त्री
एन्श्येण्ट ज्यो०	एन्श्येण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, ले०, जनरल कनिंघम
एन० एस०	न्युमिस्मेटिक सप्लीमेण्ट
एस० बी० इ०	सेक्रेड बुक्स ऑव द ईस्ट
ए० एस० आई० ए० आर०	आर्क्योलोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एन्वल रिपोर्ट
कार्मा० लै०	कार्माइकेल लैक्चर्स, ले०, डी० आर० भाण्डारकर
को० (कोम्प्रे०) हि० इ०	कोम्प्रेहेन्सिव हिस्टरी ऑव इण्डिया, भाग 2
कै० हि० इ०	कैम्ब्रिज हिस्टरी ऑव इण्डिया, भाग 1
क्ला० एका०	क्लासिकल एकाउण्ट्स् ऑव इण्डिया, सम्पा०,र०च० मजूमदार
जे० ए०	जर्नल एशियाटीक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जे० बी० आर० एस०	जर्नल ऑव बिहार रिसर्च सोसायटी
जे० बी० बी० आर० ए० एस०	जर्नल ऑव बाम्बे ब्राञ्च ऑव रायल एशियाटिक सोसायटी
च० मौ० का०	चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, ले०, रा० क० मुकर्जी
जे० आर० ए० एस०	जर्नल ऑव रॉयल एशियाटिक सोसायटी
जे० ए० एस० बी०	जर्नल ऑव एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल
जे० एन० एस० आई०	जर्नल ऑव न्युमिस्मेटिक सोसायटी ऑव इण्डिया
जे० ए० ओ० एस०	जर्नल ऑव अमेरिकन ओरियण्टल सोसायटी
डा० क० ए० (डी० के० ए०)	पुराण टैक्स्ट्स ऑव द डायनेस्टीज़ ऑव कलि एज, ले०, एफ० इ० पार्जिटर
डि० पा० प्रो० ने०	डिक्शनरी ऑव पालि प्रोपर नेम्स्, ले०, मललसेकर
न्यु० इण्डि० एण्टि० (एन० इ० ए०)	न्यू इण्डियन एण्टिक्वेरी
न्यु० स० (सप्ली०)	न्यूमिस्मेटिक सप्लीमेण्ट
न्यु० क्रो० (क्रोनो०)	न्युमिस्मेटिक क्रोनीकल
पी० आई० एच० सी०	प्रोसीडिंग्स् ऑव इण्डियन हिस्टरी कांग्रेस
पी० ओ० सी०	प्रोसीडिंग्स् ऑव ओरियण्टल कॉन्फ्रेन्स
पो० हि० ए० इ०	पोलिटिकल हिस्टरी ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया, ले०, हे० च० रायचौधुरी
बी० एस० ओ० ए० एस०	बुलेटिन ऑव द स्कूल ऑव ओरियण्टल एण्ड एफ्रीकन स्टडीज़
बौ० ध० सू०	बौधायन धर्मसूत्र
बु० का० भू०	बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, ले०, भरतसिंह उपाध्याय
स० इ०	सलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स्, ले०, दि० च० सरकार
स्टडीज़	स्टडीज़ इन इण्डियन हिस्टरी एण्ड सिविलिजेशन, ले०, बुद्ध प्रकाश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशकीय भूमिका

विभिन्न भारतीय एवं विदेशी विद्वानों के सहयोग से अंग्रेजी भाषा में सम्पूर्ण भारतीय इतिहास लिखे जाने की कई योजनाएं पिछले कुछ दशकों में न्यूनाधिक सफलता के साथ कार्यान्वित की गई हैं, परन्तु हिन्दी भाषा में ऐसी कोई योजना अभी तक किसी संस्था ने नहीं बनाई है। 'भारतीय इतिहास और संस्कृति ग्रन्थमाला' के रूप में हमारा यह प्रयास भारतीय इतिहास-लेखन की इस कमी की पूर्ति करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रस्तुत योजना में सम्पूर्ण भारतीय इतिहास और सस्कृति पर 32 ग्रन्थ लिखे जायेंगे। जैसा कि प्रस्तुत ग्रन्थ की लेखक-सूची से स्पष्ट है, इनकी रचना में हर प्रदेश के प्रतिष्ठित विद्वानों से सहयोग मांगा जा रहा है। इस वर्ष प्रकाशित होने वाले अन्य ग्रन्थों में विभिन्न विश्वविद्यालयों के अन्य अनेक विद्वानों का सहयोग हमें मिला है। आशा है योजना के आगामी चरणों में हमें देश के अन्य प्रान्तों के विद्वान् इतिहासकारों का सहयोग भी मिलेगा।

अध्यापकों और विद्यार्थियों के लिए इस योजना को अधिक लाभप्रद बनाने के लिए विविध ग्रन्थों का आयोजन इस प्रकार किया गया है कि प्रत्येक ग्रन्थ भारतीय इतिहास के एक युग अथवा पक्ष का निरूपण करे।

प्रत्येक ग्रन्थ का स्तर सन्दर्भ-ग्रन्थ और उच्चस्तरीय पाठ्य-पुस्तक का होगा।

इस योजना के उद्देश्य एवं अन्य विविध पक्षों पर डॉ० श्रीराम गोयल ने, जो इस ग्रन्थ-माला के प्रधान सम्पादक हैं, अपनी सम्पादकीय भूमिका में विस्तार से प्रकाश डाला है। डॉ० गोयल जोधपुर विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के एक वरिष्ठ रीडर और लब्ध-प्रतिष्ठ इतिहासकार हैं। उनको सह-सम्पादक के रूप में सहयोग दे रहे हैं डॉ० शिवकुमार गुप्त, जो राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, के इतिहास विभाग के प्राध्यापक हैं।

आशा है भारतीय इतिहास-जगत् इस योजना का स्वागत करेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्पादकीय भूमिका

'भारतीय इतिहास और संस्कृति ग्रन्थमाला' का उद्देश्य केवल उपयोगी सन्दर्भ-ग्रन्थों एवं उच्चस्तरीय पाठ्य पुस्तकों की रचना ही नहीं है, वरन् भारतीय इतिहास-लेखन में पाई जाने वाली कुछ गम्भीर कमियों की पूर्त्ति करना भी है। अभी तक भारत के समग्र इतिहास को दृष्टिगत रखते हुए जिन ग्रन्थमालाओं का आयोजन किया गया है वे सभी आंग्ल भाषा में है। प्रस्तुत योजना के ग्रन्थ राष्ट्रभाषा हिन्दी में लिखे जा रहे हैं। इन ग्रन्थों का उद्देश्य केवल भूतकाल का विवरण देना मात्र ही नहीं है वरन् भारतीय इतिहास का इस प्रकार अध्ययन करना है जिससे हमें अपनी वर्तमान समस्याओं को समझने और उनका समाधान करने में सहायता मिले। इस योजना के लेखक इतिहास-लेखन में किसी 'वाद' के पूर्वाग्रहों से बंधे हुए नहीं हैं। वे सभी इतिहास के अध्ययन में सत्यान्वेषण के समर्थक और 'वैज्ञानिक' इतिहास लिखने के लिए यत्नशील हैं। दूसरे शब्दों में वे तटस्थरूपेण निष्पक्ष इतिहास लिखने का प्रयास करने वाले हैं।

प्रस्तुत योजना में यह मानकर चला गया है कि भारतीय इतिहास की प्रादेशिक एवं साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों को न तो झुठलाना चाहिए और न उन पर आवश्यकता से अधिक बल देना चाहिए। भारत 'विविधता में एकता' वाला देश है। इसलिए यहां समय समय पर प्रादेशिक एवं सम्प्रदायपरक प्रवृत्तियां उभड़ना स्वाभाविक था। वर्तमान काल में ये प्रवृत्तियां प्रादेशिक व साम्प्रदायिक इतिहास-लेखन के रूप में अभिव्यक्त हो रही हैं। लेकिन इस प्रकार का इतिहास-लेखन राष्ट्रीय हित के विपरीत ही नहीं भारतीय संस्कृति के मूलभूत और समग्र रूप के विरुद्ध भी हैं। भारतीय इतिहास-लेखन में प्रादेशिक इतिहास-लेखन का महत्त्व विस्तृत रूप से शोध करने के लिए उपयोगी विधा के रूप में है, जिससे अर्जित ज्ञान को हम अपने देश की इन्द्रधनुषी संस्कृति के नाना वर्णों का अध्ययन करते समय प्रयुक्त कर सकते हैं। परन्तु इसके बावजूद यह भी सही है कि कभी-कभी किसी प्रदेश या समूह के इतिहास ने सम्पूर्ण अथवा अधिकांश देश को प्रभावित किया है। उन अपवादात्मक उदाहरणों को स्वीकार करके इस योजना में कुछ प्रदेशों और समूहों के इतिहास पर स्वतन्त्र ग्रन्थों का आयोजन भी किया गया है। परन्तु इनकी रचना में इस बात पर ध्यान रखा जाएगा कि इन प्रदेशों का इतिहास पृथक् इकाइयों का इतिहास प्रतीत न हो वरन् एक विशाल देश-शरीर के अंगों का अध्ययन, उस समग्र शरीर को समझने के लिए किया गया प्रयास, प्रतीत हो।

आजकल भारतीय इतिहास को सुविधा की दृष्टि से प्रायः प्राचीन, मध्यकालीन और अर्वाचीन युगों में बांटा जाता है और ऐसी योजनाओं में इन तीनों को लगभग समान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महत्त्व देते हुए इनके तिथिक्रमिक विभाजन के आधार पर विभिन्न ग्रन्थ लिखे जाते हैं। हमने भी इस योजना में सुविधा के हेतु यह युग-विभाजन स्वीकार किया है। परन्तु हम इन तीनों युगों को समान रूप से महत्त्वपूर्ण मानने के पक्ष में नहीं हैं। आखिर प्राचीन भारत का लगभग चार सहस्र वर्ष का इतिहास मध्यकाल की केवल चार-पांच शताब्दियों के बराबर महत्त्वपूर्ण कैसे माना जा सकता है? यह कहना कि मध्यकाल के ऊपर अधिक सामग्री उपलब्ध है इसलिए इस पर अधिक बल दिया जाना चाहिए, निश्चय ही भ्रामक है क्योंकि तब तो ऐसी योजनाओं में आधुनिक काल को सम्भवतः नब्बे प्रतिशत स्थान देना पड़ जाएगा क्योंकि प्राचीन इतिहास पर सामग्री अत्यल्प हैं, मध्यकाल पर उसके कुछ अधिक जबकि आधुनिक इतिहास के स्रोतों पर हमारे अभिलेखागार भरे पड़े हैं। वस्तुतः किसी युग का महत्त्व देश की संस्कृति के विकास में उसके योगदान से निश्चित होता है। इसलिए हमने 32 ग्रन्थों की इस योजना में लगभग आधे ग्रन्थ प्राचीन इतिहास पर रखे हैं (जब भारतीय संस्कृति का निर्माण और आधारभूत विकास हुआ) और शेष मध्यकाल एवं अर्वाचीन काल पर।

ग्रन्थ-विभाजन में इस योजना की एक और विशेषता उल्लेखनीय है। इसमें कुछ ग्रन्थों में किसी युग के राजनीतिक इतिहास का, उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अध्ययन सहित, तिथिक्रमेण विवेचन किया जाना है और शेष में प्रत्येक में सांस्कृतिक जीवन के किसी एक पक्ष का विस्तृत अध्ययन होगा। इस प्रकार इसमें जहां कुछ ग्रन्थों में विभिन्न युगों की राजनीतिक उपलब्धियों का सांगोपांग अध्ययन हो पाएगा वहां अन्य ग्रन्थों में संस्कृति के किसी एक पक्ष के समग्र विकास का—यथा सामाजिक संगठन, प्रशासन, मूर्त्तिकला, धर्म, दर्शन आदि का, जिनमें अधिकांश का लघु युगों में अध्ययन करना दुष्कर है—एक स्थल पर विस्तार से विवेचन करना भी सम्भव हो सकेगा।

जैसा कि अनेक लेखकों के सहयोग पर निर्भर किसी भी योजना में स्वाभाविक है, इस योजना के ग्रन्थों में कहीं-कहीं पुनरुक्ति-दोष तथा वर्तनी-भेद अनिवार्य हो गये हैं। दूसरे, इसके एक ही ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर विभिन्न लेखकों में मतभेद भी मिलेंगे। प्रधान सम्पादक ने पत्र-व्यवहार द्वारा उनको सुलझाने की पूरी चेष्टा की है, परन्तु उसे अनेक बार 'असहमति के लिए सहमति' नीति का अवलम्बन करना पड़ा है। ऐसे स्थलों पर सर्वत्र सम्पादकीय टिप्पणी में स्थिति स्पष्ट कर दी गई है।

प्रस्तुत ग्रन्थ इस ग्रन्थमाला का वस्तुतः दूसरा ग्रन्थ है। प्रथम ग्रन्थ 'भारतीय सभ्यता का जन्म' नामक होगा। प्रस्तुत ग्रन्थ में जनपदयुगीन भारत का लगभग 600 से 321 ई० पू० तक का इतिहास दिया गया है जब भारत में मागध साम्राज्य का शनैः शनैः उदय और प्रसार हुआ। इस प्रकार इस युग के इतिहास की विषय-वस्तु जनपद-व्यवस्था का ह्रास और पतन और मागध साम्राज्य का वर्धमान प्रसार है जिसकी परिणति हमें नन्दों के पतन के बाद चन्द्रगुप्त मौर्य के द्वारा अखिल भारतीय साम्राज्य की स्थापना में मिलती है। इसलिए इस ग्रन्थ का नाम हमने 'मागध साम्राज्य का उदय' रखा है।

प्रथम अध्याय में विषय-प्रवेश के रूप में वैदिक जन राज्यों के स्थान पर भूमि-तत्त्व-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रधान जनपद राज्यों के उदय की प्रक्रिया का विवेचन करने के उपरान्त दूसरे अध्याय में मागध साम्राज्य के उदय काल के इतिहास विषयक स्रोतों का अध्ययन किया गया है। इस युग के अभिलेख अभी तक अनुपलब्ध हैं और इस अध्याय के लेखक का मत है कि प्राङ मौर्य भारत के निवासी लेखन-कला से परिचित ही नहीं थे। इसके उपरान्त तीसरे अध्याय में छठी शती ई० पू० के राजनीतिक इतिहास की मुख्य प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है और अगले चार अध्यायों में मगधेतर जनपदों का विस्तृत इतिहास दिया गया है। इनमें छठे और सातवें अध्यायों में गणाधीन जनपदों का अध्ययन विशेषत: उल्लेखनीय है।

बुद्धकालीन जनपदों में साम्राज्य-स्थापन में सफलता मिली अन्ततोगत्वा मगध को। इसलिए इस जनपद के इतिहास पर अपेक्षया अधिक सूचनाएं उपलब्ध हैं। हमने इसका अध्ययन चार अध्यायों में, जो क्रमश: बिम्बिसार, अजातशत्रु, अजातशत्रु के उत्तराधिकारी और शिशुनाग-वंश, एवं नन्दवंश से सम्बन्धित हैं, किया है। इस युग के दक्षिण भारतीय इतिहास पर अभी तक बहुत कम सामग्री उपलब्ध है। इसलिए इस प्रदेश के विषय में प्राप्त समस्त सूचनाओं को एक परिशिष्ट में विवेचित कर दिया गया है। एक अन्य परिशिष्ट में मागध साम्राज्य की सफलताओं के कारणों का विश्लेषण है। मागध तिथिक्रम, जो इस युग के सम्पूर्ण इतिहास को तिथिक्रमिक आधार प्रदान करता है, बारहवें अध्याय का विषय है। इस प्रसंग में बुद्ध के परिनिर्वाण और महावीर की मुक्ति की तिथियों को भी निर्धारित करने की चेष्टा की गई है।

मागध साम्राज्य के उत्कर्ष काल में उत्तरापथ पर ईरान के साखामनीषी नरेशों ने और तदुपरान्त यूनान-मकदूनिया के सिकन्दर ने आक्रमण किये। उनके ये आक्रमण समग्र भारतीय इतिहास के सन्दर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, परन्तु उनका उल्लेख करने वाले प्रचुर विदेशी आभिलेखिक और साहित्यिक प्रमाण उपलब्ध हैं। क्योंकि भारतीय इतिहास में साक्ष्य की अल्पता सदैव कष्टकर रहती है, इसलिए इस साक्ष्य का भली भांति अध्ययन न करना सर्वथा अनुचित है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम यह ध्यान रखें कि इन आक्रमणों का अपेक्षया विस्तृत ज्ञान होने के कारण हम इनको अनावश्यक रूप से अतिरंजित महत्त्व न दे दें। तेरहवें से सत्रहवें अध्यायों में इनका अध्ययन करते समय हमने चेष्टा की है कि इनका विस्तृत विवरण तो दें परन्तु इनका महत्त्व उतना ही आंकें जितना इन्हें वास्तव में दिया जाना चाहिए।

शेष तीन अध्यायों का विषय है जनपद काल की सामाजिक और आर्थिक अवस्था, धार्मिक आन्दोलन एवं 'क्लासिकल' यूरोपीय ग्रन्थों में जनपदयुगीन भारतीय संस्कृति के विषय में ज्ञात तथ्य। इस प्रकार ये अध्याय एक प्रकार से मागध साम्राज्य के उदय काल में राजनीतिक इतिहास को बोधगम्य बनाने वाली सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के रूप में हैं।

पुस्तक के अन्त में पाठकों की सहायतार्थ पठनीय सन्दर्भ ग्रन्थों और शोध निबन्धों की संक्षिप्त सूची दी गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रस्तुत ग्रन्थमाला के लिए मुझे गुरुवर्य परम श्रद्धेय डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, भूतपूर्व कुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, से दिशा-निर्देशन एवं असीम प्रेरणा प्राप्त हुई है। उन्होंने न केवल इसकी रूपरेखा बनाने एवं उसकी कार्यान्विति में महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये एवं अन्य अनेक प्रकार से सहायता की, वरन् उन्होंने प्रत्येक ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में उसकी मुख्य विषय-वस्तु को स्पष्ट करने का भी (जैसा कि उन्होंने इस ग्रन्थ में किया है) आश्वासन दिया है। अपने इस सौभाग्य के लिए मैं गुरु-गोविन्द दोनों का ऋणी हूँ।

अन्त में, प्रस्तुत ग्रन्थमाला के प्रधान सम्पादक के रूप में मैं मैसर्स मुंशीराम मनोहर-लाल के प्रति आभार प्रकट करता हूं जिन्होंने इस योजना के प्रकाशन का भार सोत्साह स्वीकृत किया है। मैं इस ग्रन्थ के सहयोगी लेखकों एवं अपने सह-सम्पादक डॉ० शिवकुमार गुप्त के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं जिन्होंने इसके लेखन में अपना अमूल्य सहयोग सहर्ष प्रदान कर मुझे अनुगृहीत किया है। वस्तुतः ऐसी महती योजना की सफलता ईश्वरीय अनुकम्पा, गुरु-प्रसाद, सुधी इतिहासकारों के सहयोग एवं प्रकाशक के उत्साह के बिना असम्भव है। आशा है ये सब मुझे भविष्य में भी इसी प्रकार उपलब्ध रहेंगे।

—श्रीराम गोयल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

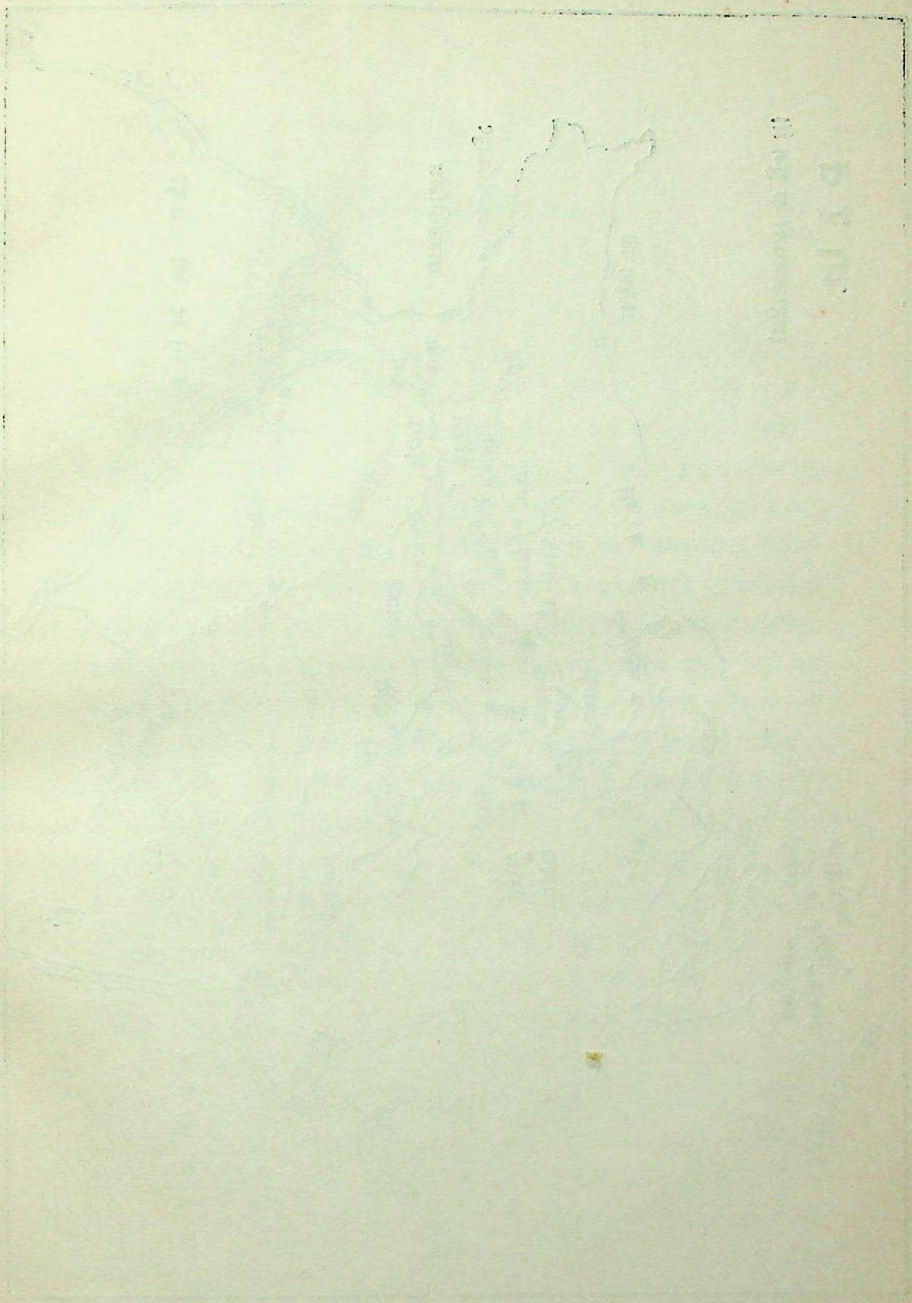

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[पृष्ठ 1 के सामने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 1

जन राज्यों से जनपदों तक

भारत में छठी शती ई० पू० तक जनों के 'संचार व सन्निवेश' (migrations and settlements) का युग बीत चुका था और राज्य के संगठन में साजात्य (tribal affinity) की अपेक्षा देश (land) तत्त्व का प्राधान्य हो गया था। फलतः जनों का स्थान जनपदों ने ले लिया, जिनमें कुछ राजाधीन थे और कुछ गणाधीन। जन राज्यों से जनपदों के विकास की प्रक्रिया परवर्ती वैदिक, बौद्ध तथा जैन साहित्य में संकेतित है। प्रचलित धारणानुसार पूर्व वैदिक काल में आर्यों ने पूर्ववर्तिनी आर्येतर सैन्धव सभ्यता को ध्वस्त कर अपनी विशिष्ट भाषा, समाज व धर्म को भारत में प्रतिष्ठित किया था। लेकिन यह विध्वंस निरन्वय विनाश नहीं था क्योंकि सैन्धव संस्कृति के अनेक तत्त्व परवर्ती आर्य सभ्यता में अंगीकृत हुए। विश्वास किया जाता है कि आर्य और आर्येतर सांस्कृतिक परम्पराओं का समन्वय भारतीय सभ्यता के निर्माण की आधारशिला था। यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि सैन्धव संस्कृति का विविध प्रभाव आर्य सभ्यता के काल में कम था और पीछे क्रमशः अधिक। आर्यों के विविध जनों ने धीरे-धीरे दक्षिण-पूर्व की ओर अपने प्रभाव का विस्तार किया। उनके समाज का प्रारम्भिक संगठन एक ऊर्जस्वी समाज का संगठन था, जिसमें शक्ति और प्रतिष्ठा क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों के हाथ में थी। क्षत्रिय अथवा राजन्य शासक थे और ब्राह्मण उनके पुरोहित। शेष जनता 'विशः' शब्द से सम्बोधित होती थी और कृषि तथा पशुपालन के द्वारा आर्थिक जीवन उन पर आधारित था। आर्यों के राजनीतिक संगठन को क्रमशः विस्तृत होती गई गृह या कुल, ग्राम, विशः तथा जन नामक इकाइयों के रूप में समझा जा सकता है। 'जन' आर्यों की सर्वोच्च राजनीतिक संस्था थे और राजा 'जन का रक्षक' (गोप्ताजनस्य) कहलाता था। 'जन' शब्द कबीले के अर्थ में प्रयुक्त होता था और कई 'विश' मिल कर एक 'जन' बनते थे। यह कहना कठिन है कि जन के सभी सदस्य समान अधिकारों का उपभोग करते थे और एक आदि पूर्वज के वंशज माने जाते थे अथवा उनमें बहुत से वर्गों के विभिन्न प्रतिष्ठा वाले लोग सम्मिलित थे। संभवतः इनमें दूसरा विकल्प सत्य के निकटतर है। 'ऋग्वेद' में अनेक वैदिक जनों का उल्लेख मिलता है, जिनमें पांच जन (पंचजनाः)—अनु, पूरु, द्रुह्यु, यदु तथा तुर्वश—सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थे। विभिन्न जनों का घनिष्ठ सम्बन्ध उनके सम्मिलित उल्लेखों एवं दाशराज्ञ जैसी घटनाओं से स्पष्ट है। वे परस्पर एवं अर्द्धवैदिक (यथा कीकट) अथवा आर्येतर जनों के विरुद्ध संघर्षरत रहते

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थे परन्तु इसके बावजूद समान धर्म के अनुयायी होने एवं मनु अथवा पृथु से सब जनों की उत्पत्ति में विश्वास आदि बन्धनों से परस्पर बंधे हुए भी थे।

मध्य और उत्तर वैदिक काल में वैदिक समाज में गम्भीर सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन हुए। वैदिक आर्य सभ्यता का उत्तर भारत में क्रमशः पूर्वाभिमुख प्रसार होता गया। 'शतपथ ब्राह्मण' से विदित होता है कि अरण्यानी साम्राज्य दग्ध करते हुए अग्नि वैश्वानर ने प्रसार का पथ प्रदर्शित किया और आर्य ग्राम सदानीरा के पार विदेह तक जा पहुंचे। भाषा का परिवर्तन और चातुर्वर्ण्य का विकास आर्य तथा आर्यतर जनता के सम्मिश्रण की ओर संकेत करता है। स्वयं वेद का संकलन और विभाजन महर्षि व्यास का कार्य बताया गया है जिनमें अनार्यरक्त प्रचुर मात्रा में विद्यमान था। 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में श्यामवर्ण, लोहिताक्ष और वेद्वित् पुत्र की प्राप्ति के लिये विधि का निर्देश किया गया है। ये लक्षण आर्यों के सुप्रथित गौरवर्ण और पिंगल केशों से बहुत दूर हैं। पूर्व वैदिक काल की जनता—विशः—अब वैश्यों तथा शूद्रों में विभक्त हो गयी। शुद्र वर्ण में आर्येतर जाति की प्रधानता निर्विवाद है, पर केवल आर्यतर ही शूद्र नहीं थे और, जैसाकि ऊपर कहा गया है, न अन्य वर्णों में आर्येतर रक्त का अभाव था।

उत्तर वैदिक राजनीतिक विचारों और संगठनों में भी तदनुरूप परिवर्तन हुए। इसका प्रधान कारण था, राज्य संगठन में जन तत्त्व के स्थान पर भूमि तत्त्व की महत्ता में क्रमशः वृद्धि तथा वैदिक सभ्यता के भौतिक परिवेश में होने वाले अन्तर। ग्रामीण और आरण्यक वैदिक सभ्यता अब अनेकत्र नगरवासिनी हो गयी। व्यापार के सुदूर विस्तृत स्थल- और जल-पथों पर सार्थवाहों के उद्यम ने इन नगरों को समृद्धि प्रदान की। नागरिक वाणिज्य और व्यवसाय श्रेणियों में संगठित थे और श्रेणियों के प्रधान और श्रेष्ठी समाज और राज्य सभा में प्रतिष्ठा पाते थे। नागरिक जीवन का विविध विकास, जिसका रोचक चित्र उत्तर वैदिक तथा प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य में सुरक्षित है, इस युग के दृश्य को पिछले युग से विभक्त करता है। व्यावसायिक प्रविभाजन से उत्पन्न व्यापार को स्वयं एक विनिमय साधन की अपेक्षा रहती है। द्रव्य (मनी) का आविर्भाव इस अपेक्षा की पूर्ति करता हुआ समाज में एक नयी और रहस्यमयी-सी शक्ति को जन्म देता है। समाज में पहले की अपेक्षा अधिक परिवर्तनशीलता आ जाती है और सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन अमूर्त और पुरुष निरपेक्ष बनने लगता है। स्मरणीय है कि जनपद युग, जब भारतीय संस्कृति सर्वप्रथम द्रव्य के युग में अवतीर्ण हो रही थी, श्रमणों का नहीं श्रेष्ठियों का युग था। अंग के मेण्डक, कोशल के अनाथपिण्डक और कौशाम्बी के घोषक इन धनी श्रेष्ठियों के कुछ ज्वलन्त उदाहरण हैं।

उत्तर वैदिक काल में अथवा उसके कुछ पूर्व कभी भारत ने लौह युग में प्रवेश किया। भूमि तत्त्व प्रधान जनपदों के आविर्भाव, द्रव्य युग के प्रारम्भ, लेखन-कला[1] के विकास एवं नागरिक सभ्यता तथा व्यवसाय-वाणिज्य की प्रगति के परिणामस्वरूप राज्य संगठन में राजा का महत्त्व बढ़ा। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, इन जनपदों में कुछ

1. मतान्तर के लिये देखे, अध्याय 2, पृ० 5-8।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजाधीन थे और कुछ गणाधीन। ये सब परस्पर संघर्षरत थे। उदीच्य भारत का राजनीतिक व सांस्कृतिक चित्र पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में सुरक्षित है, मध्यदेशीय जनपदों का उत्तर वैदिक साहित्य और 'महाभारत' के प्राचीन अंशों में तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा विहार के जनपदों का विशेषत: प्राचीन बौद्ध और जैन साहित्य में। दक्षिणापथ का परिचय इस युग में अत्यल्प था।

राजाधीन जनपदों का पारस्परिक संघर्ष उतना ही तीव्र था, जितना राजाधीन और गणाधीन जनपदों का। जहां उपनिषदों व जातकों में काशी एक बलवान और स्वतन्त्र राज्य के रूप में वर्णित है, बुद्धकाल में वह कोशल के साम्राज्य का अंग बन चुका है। ऐसे ही विम्बिसार के समय में मगध ने अंग को बलपूर्वक आत्मसात कर लिया। विम्बिसार के बाद अजातशत्रु ने लिच्छवियों और मल्लों का विनाश किया और कोशल के राजा विडूडभ ने शाक्य जनपद पर सांघातिक आक्रमण किया। इन घटनाओं में गणराज्यों के ह्रास, राजतन्त्र के उत्कर्ष तथा मागध साम्राज्य के प्रसार को स्पष्ट देखा जा सकता है।

जनपदकाल में शासन की बागडोर क्षत्रियों के हाथ में थी। उत्तरपूर्वी भारत के शाक्य, लिच्छवि आदि गण क्षत्रिय बहुल और राजशब्दोपजीवी थे। लिच्छवियों के 7,707 राजाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। सम्भवत: ये गण के मुख्य क्षत्रिय कुलों के प्रधान थे। शाक्यों में भी राजा अथवा राजशब्दोपजीवी शुद्धोदन का बाद में उल्लेख आता है। कपिलवस्तु में शाक्य गण का संस्थागार था, जहां वृद्ध व युवा एकत्र होते थे तथा परामर्श से गण का शासन चलाते थे। इन गणों की शासन पद्धति कितनी जनतन्त्रात्मक थी और कितनी सामन्ततन्त्रात्मक, कहना कठिन है।

कोशल, मगध आदि जनपदों में भी राजा और उनके सजातीय क्षत्रिय थे, यद्यपि विम्बिसार, अजातशत्रु और विडूडभ जैसे राजाओं की शक्ति उनके अमात्यों की कूटनीति, सेना की शक्ति तथा व्यक्तिगत योग्यता पर अधिक निर्भर थी, उनकी मूर्धाभिषिक्तिता पर कम। धर्म व अर्थ की विभिन्न दृष्टियों से राजकीय आदर्श दो रूप में प्रकट होता है—धर्म की दृष्टि राजा के कर्तव्यों पर जोर देती थी, अर्थ की दृष्टि राजा की शक्ति पर। धर्म विषयक धारणा भी ब्राह्मणों की और थी, बौद्धों तथा जैनों की और।

राजाओं और उनके सहयोगियों के जीवनयापन के लिये अनेक व्यसन थे। बिम्बिसार और प्रसेनजित् जैसे राजा मृगया, आसव, स्त्रियों और युद्धों में समय व्यतीत करते थे, किन्तु अनेक राजा अपने अवकाश में धर्म-दर्शन की नवीन प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देते थे। सच तो यह है कि ब्राह्मणों के समान क्षत्रिय भी इस युग में बौद्धिक जीवन का नेतृत्व करते थे। कुछ विद्वानों ने क्षत्रियों को इस युग के एक ब्राह्मण विरोधी सामाजिक-धार्मिक आन्दोलन का नेता ठहराया है। किन्तु इस संघर्ष की ऐतिहासिकता स्वीकार करने के लिये कोई आधार नहीं मिलता। क्षत्रियों ने नवीन आध्यात्मिक व बौद्धिक आन्दोलनों में महत्त्वपूर्ण भाग लिया, किन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि आर्थिक लाभ, सामाजिक प्रतिष्ठा अथवा राजकीय शक्ति के लिये ब्राह्मणों और क्षत्रियों में जातिशः अथवा वर्गशः संघर्ष था। उपनिषदों में अनेक ज्ञानी राजाओं का वर्णन आता है, जैसे पंचालराज प्रवाहण जैवलि, जिन्होंने श्वेतकेतु के पिता उद्दालक को उपदेश दिया। विदेहराज जनक, केकयराज अश्वपति और काशिराज अजातशत्रु भी ब्राह्मणों को ज्ञान का उपदेश देते पाये जाते हैं। गीता में ज्ञान की एक राजर्षि परम्परा की ओर संकेत किया गया है जिसकी तुलना प्रवाहण जैवलि द्वारा निर्दिष्ट क्षत्रिय-विद्या से होनी चाहिए। बुद्ध और महावीर भी क्षत्रिय उपदेशक थे और जैन परम्परा में तीर्थंकरों का क्षत्रिय होना अनिवार्य है। यह नैष्कर्म्यपरक अध्यात्म-विद्या पौरोहित्य की विरोधिनी थी, पर इसके नेता वास्तव में श्रमण थे जिनकी आध्यात्मिक-सांस्कृतिक परम्परा में इस समय क्षत्रिय व ब्राह्मण दोनों ही थे। बुद्ध व महावीर जन्मना क्षत्रिय थे परन्तु जाति के परित्याग पूर्वक ही वे श्रमण बन सके। दूसरी ओर उपनिषदों व गीता में संकेतित क्षत्रिय-विद्या कर्म का प्रत्याख्यान नहीं करती। फलतः उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि पुरोहितों के कर्मकाण्ड का इस युग में अनेक दिशाओं में विरोध हुआ, जिसका श्रमणों, प्रबुद्ध क्षत्रियों और अध्यात्मवादी ब्राह्मणों ने नेतृत्व किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 2

जनपदयुगीन इतिहास जानने के स्रोत

प्राङ् मौर्य युग में लेखन-कला का अभाव

प्राचीन भारत का इतिहास, विशेषतः राजनीतिक इतिहास जानने के साधन अत्यल्प हैं। प्राचीन काल में हमारे देश में उस प्रकार से राजनीतिक इतिहास लिखने की प्रथा नहीं थी, जैसे आजकल लिखा जाता है। आधुनिक अर्थ में लिखा गया प्रथम भारतीय इतिहास-ग्रन्थ 'राजतरंगिणी' है, जिसकी रचना कश्मीर में कल्हण नाम कवि ने बारहवीं शती ई० में की थी। इसके पूर्व भारत में जो भी इतिहास-ग्रन्थ लिखे गये, उनके लेखकों का न तो दृष्टिकोण 'वैज्ञानिक' था और न उनका उद्देश्य उस प्रकार का राजनीतिक इतिहास लिखना था जैसा कल्हण ने लिखा। वे 'इतिहास' संज्ञा का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में करते थे। आजकल जिसे 'सामाजिक विज्ञान' कहते हैं स्थूलतः वही 'इतिहास' की परिभाषा थी। उदाहरणार्थ, कौटिल्य के अनुसार "पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र ये सभी इतिहास के विषय हैं" (पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं, चेतीतिहासः[1])। इस परिभाषा को मानने वाले देश में आधुनिक युग में 'वैज्ञानिक' कहे जाने वाले इतिहास विज्ञान का विकास हो ही कैसे सकता था?

जहां तक आभिलेखिक सामग्री का प्रश्न है, प्रस्तुत लेखक की दृष्टि से यही मान्यता कि जनपदकालीन एवं प्रारम्भिक मौर्ययुगीन भारतवासी (पश्चिमोत्तर प्रदेश को छोड़कर, जिसके निवासी ईरान के अधिकार में रहने के कारण विविध ईरानी लिपियों से परिचित रहे होंगे) लेखन-कला से परिचित थे, शंकास्पद है। सैन्धव-युग के अन्त (अट्ठारहवीं शती ई० पू०) के उपरान्त भारत में मिले प्राचीनतम अभिलेख अशोक के धर्मलेख (तीसरी शती ई० पू०) हैं। इस बीच में व्यतीत होने वाले लगभग डेढ़ सहस्र वर्षों का कोई अभिलेख अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। यह तथ्य चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में भारत आने वाले यूनानी राजदूत मेगास्थेनिज़ के साक्ष्य से पूर्णतः संगत है। स्ट्रेबो ने एक स्थल पर मेगास्थेनिज़ को इस प्रकार उद्धृत किया है: "मेगास्थेनिज़ कहता है कि जब वह सेण्ड्रोकोट्टोस (चन्द्रगुप्त मौर्य) के दरबार में था, यद्यपि शिविर की जनसंख्या चालीस हज़ार थी, उसने किसी दिन भी दो सौ द्रेख़्म से अधिक मूल्य की वस्तुओं की चोरी की रिपोर्ट नहीं सुनी और वह भी ऐसे लोगों के बीच में जो अलिखित

1. अर्थशास्त्र, 1. 4 (गैरोला का संस्करण), पृ० 19।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कानूनों का प्रयोग करते हैं। क्योंकि, वह (अर्थात् मेगास्थेनिज़) आगे कहता है, उनको लेखन-कला का ज्ञान ही नहीं है और वे अपनी सभी बातों को स्मृति की सहायता से तय करते हैं[1]।" मेगास्थेनिज़ के इस कथन को जब हम अशोक के पूर्व व्यतीत होने वाले डेढ़ सहस्र वर्षों में भारत में लिखित अभिलेखों के सर्वथा अभाव के साथ[2] मिलाते हैं तो निष्कर्ष अनिवार्य हो जाता है कि प्राक्अशोकयुगीन भारतीय जन लेखन-कला से अपरिचित थे। प्रस्तुत लेखक ने अशोकीय ब्राह्मी लिपि का अध्ययन करके भी यह सिद्ध किया है कि यह लिपि तीसरी शती ई० पू० में ही आविष्कृत हुई थी[3]। ब्राह्मी लिपि व संस्कृत व्याकरण के पारम्परिक सम्बन्ध से भी यही प्रमाणित होता है। यह सही है कि पालि त्रिपिटक में यत्र-तत्र ऐसे कथन मिलते हैं, जिनसे लेखन-कला के अस्तित्व का परिचय मिलता है (यथा 'अक्खरिका' नामक खेल एवं पत्रों, लिखित आदेशों, घोषणाओं, लेखनी आदि के उल्लेख से) परन्तु इस साहित्य की रचना बुद्ध के परिनिर्वाण (483 ई० पू०) के उपरान्त प्रारम्भ हुई थी और प्रथम शती ई० पू० में लंका में इसे प्रथम बार लेख बद्ध किए जाने के समय तक की जाती रही थी। अतः यह कहना असंभव है कि त्रिपिटक के वे अंश जिनमें लेखन-कला का उल्लेख है प्राक्अशोकीय ही है—वे अशोकोत्तर युगीन भी हो सकते हैं।

स्वयं पालि त्रिपिटक में भी इस बात के स्पष्ट व सबल संकेत उपलब्ध हैं कि अशोक से पूर्व का भारत लेखन-कला से अपरिचित था। एक, 'विनयपिटक' के अनुसार प्रथम बौद्ध संगीति परिनिर्वाण के तत्काल बाद तथागत के धम्म व विनय से संबन्धित उपदेशों को संगायना या मौखिक रूप से दोहरा कर सुरक्षित करने के लिए बुलाई गई थी। इस संगीति में तत्कालीन युग के उच्चतम वर्गों के सदस्यों ने भाग लिया था। यह आयोजित ही की गयी थी मगध-नरेश अजातशत्रु के तत्त्वावधान में। स्पष्टतः तत्कालीन भारत में लेखन-कला ज्ञात होती तो इस संगीति के अधिकांश सदस्य साक्षर होते और वे निश्चित रूप से तथागत के उपदेशों को लिपिबद्ध करने की बात सोचते। यही बात दूसरी संगीति के बारे में कही जा सकती है जो कालाशोक के तत्त्वावधान में प्रथम संगीत के सौ वर्ष उपरान्त, अर्थात् चौथी शती ई० पू० के प्रारम्भ में आयोजित की गयी। दूसरे, अगर बुद्धकाल में भारत के लोग लिखना जानते होते तो पुस्तकें बौद्ध भिक्षुओं के दैनिक जीवन में निश्चय ही महत्त्वपूर्ण स्थान पातीं; लेकिन विनय के नियमों में, जिनमें भिक्षुओं

1. मजूमदार, कलासिकल एकाण्ट्स ऑव इण्डिया, पृ० 210।

2. बहुत से विद्वान् सोहगौरा (उत्तर प्रदेश) से प्राप्त कांस्य-पत्र अभिलेख (ब्युलर, आई० ए०, अक्टूबर 1896; जायसवाल, इ० आई०, 22, पृ० 1-3) एवं बंगाल से प्राप्त महास्थानगढ़अभिलेख में (सरकार, स० इ०, पृ० 79), को चन्द्रगुप्त मौर्य के काल का अथवा उससे भी पुराना मानते हैं। कुछ विद्वानों ने बड़ली पाषाण अभिलेख (वही, पृ० 89) को प्राङ् मौर्य युग का माना है। परन्तु ये लेख तिथिविहीन हैं और किसी भी राजा का नाम से उल्लेख नहीं करते। अतः ये अशोककालीन अथवा उसके भी बाद के हो सकते हैं।

3. दे०, श्रीराम गोयल, का 'ब्राह्मी स्क्रिप्टः एन इन्वेन्शन ऑव अर्ली मौर्य पीरियड', नामक लेख जो डॉ० एस० पी० गुप्त द्वारा सम्पादित ग्रन्थ 'ओरिजिन ऑव ब्राह्मी' में प्रकाश्य है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए आवश्यक छोटी से छोटी वस्तुएँ—यथा उस्तरा, सुई, नहुन्ना, आदि तक—गिनाई गई हैं, मसिपात्र, लेखनी, पुस्तकों और पाण्डुलिपियों का उल्लेख कहीं नहीं आता। इनका उल्लेख उन वस्तुओं की सूची में भी नहीं मिलता, जो उपासक तो रख सकते थे, भिक्षु नहीं। अगर बुद्धकालीन भारतीय जनता पुस्तकों से परिचित होती तो यह बात असम्भव थी। तीसरे, स्वयं त्रिपिटक से स्पष्ट है कि इसके रचयिताओं के मन में किसी सुत्त को लिपिबद्ध करने का विचार तक नहीं आया। यहां तक कि सामान्य जनों द्वारा भी किसी सुत्त को लिपिबद्ध करने की सम्भावना भी उनके मन में नहीं आई। उदाहरणार्थ, एक नियम के अनुसार भिक्षु लोग वर्षावास के समय नगर में नहीं जा सकते थे, परन्तु कोई मरणासन्न उपासक उनके पास अगर यह समाचार भेजता था कि उसे कोई सुत्त याद है जो अन्य जनों को ज्ञात नहीं है और इसलिए उसके मरने के साथ उसके विस्मृत हो जाने की आशंका है, तब संघ की ओर से कोई भिक्षु उस सुत्त को सीखने के हेतु नगर में वर्षावास काल में भी भेजा जा सकता था। इसी प्रकार एक नियम के अनुसार अगर किसी विहार में कोई ऐसा भिक्षु नहीं होता था जिसे पातिमोक्ख के नियम याद हों, तो संघ की ओर से कोई भिक्षु पड़ोस के किसी विहार में जाकर उन नियमों को याद करके आता था। त्रिपिटक के अन्य कई स्थलों पर इस प्रकार के कथन मिलते हैं जिनसे स्पष्ट है कि यह साहित्य, शब्द-सूचियों और कोशों सहित, सम्पूर्णतः कण्ठस्थ रखा जाता था। उदाहरणार्थ, 'अंगुत्तर' 3.107 में कहा गया है कि अगर भिक्षुगण केवल काव्यात्मक और रोचक सुत्तों को ही याद रखेंगे और गम्भीर अर्थ वाले सुत्तों की ओर ध्यान नहीं देंगे तो सद्धर्म की हानि होगी। इसी प्रकार 'अंगुत्तर' 2.147 में कहा गया है कि जिन भिक्षुओं को बहुत से सुत्त कण्ठस्थ हैं, वे अगर उन्हें दूसरों को स्मरण नहीं कराएंगे तो वे सुत्त उनके साथ विलुप्त हो जाएंगे, जिससे सद्धर्म को हानि पहुंचेगी। 'अंगुत्तर' 5.136 के अनुसार विद्वत्ता का विकास बार-बार दोहराने से होता है। यहां भी पुस्तकों का उल्लेख न किया जाना महत्त्वपूर्ण है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि पालि त्रिपिटक की रचना के समय भारतीय समाज लेखन-कला से विहीन था। अब, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, पालि त्रिपिटक की रचना परिनिर्वाण (483 ई० पू०) से लेकर लंका-नरेश वट्टगामिणी के शासन काल (27 ई० पू०) के बीच में हुई। अशोक का समय (तीसरी शती ई० पू०), जब भारतीय समाज शिक्षित होने लगा, इस दोनों तिथियों के मध्य पड़ता है। अतः निष्कर्ष अनिवार्य है कि त्रिपिटक के जो अंश समाज के निरक्षर होने का संकेत देते हैं वे प्राक्अशोकीय युग के और जो अंश लेखन-कला से परिचय प्रकट करते हैं, वे अशोकोत्तर युग के हैं। स्पष्टतः समाज के साक्षर हो जाने के बाद ऐसी बातें इस साहित्य में नहीं जोड़ी जा सकती थीं, जिनसे लेखन-कला का अनस्तित्व संकेतित होता है।

बहुत से विद्वान् वेदोत्तरकालीन संस्कृत साहित्य के बहुत से ग्रन्थों को—जैसे, पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' तथा गौतम, विष्णु व वशिष्ठ के धर्मसूत्र, जो लेखन-कला से परिचित हैं—अशोक के पूर्व लेखन-कला के अस्तित्व को प्रमाणित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने के लिए प्रस्तुत करते हैं। इनमें पाणिनि (5वीं शती ई०पू०) पश्चिमोत्तर प्रदेश के शलातुर स्थान के निवासी थे जहां उस युग में ईरान के साखामनीषी सम्राटों का प्रभुत्व था। इसलिए वह ईरानी प्रजा रहे होंगे और खरोष्ठी, एरेमाइक एवं ईरानी लिपियों से उनका परिचय रहा होगा। लेकिन उनका लेखन-कला से परिचय यह प्रमाणित नहीं करता कि शेष भारत के लोग भी साक्षर थे, उसी प्रकार जैसे तत्कालीन यूनानियों का साक्षर होना यह प्रमाणित नहीं करता कि उस युग के स्पेनी तथा फ्रांसीसी भी लिखना जानते थे। जहां तक कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' का प्रश्न है, बहुत से विद्वान् जैसे बरुआ, रायचौधुरी, जॉली, कीथ, टी० बरो, भाण्डारकर आदि इसे मौर्योत्तरयुगीन रचना मानते हैं। प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक[1] इसे स्थूलतः उस युग की रचना मानता है जब वात्स्यायन ने अपना 'कामसूत्र' लिखा अर्थात् लगभग 300 ई० के आसपास की। जहां तक धर्मसूत्रों की बात है, इन की तिथियां सर्वथा अनिश्चित हैं। अधिकांश विद्वान् इनकी रचना ईसवी सन् के कुछ ही पूर्व समाप्त हुई मानते हैं। अतः इन ग्रन्थों से प्राक्अशोकीय युग में लेखन-कला का प्रचलन प्रमाणित नहीं होता।

जहां तक वैदिक साहित्य का प्रश्न है, यह बात सभी इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि वैदिक ग्रन्थों में लेखन-कला का उल्लेख प्रत्यक्षतः कहीं भी नहीं हुआ है। जो विद्वान् वैदिक भारत में लेखन-कला का प्रचलन मानते हैं, वे भी केवल यही तर्क देते हैं कि वैदिक साहित्य में विविध प्रकार के छन्दों के प्रयोग, बड़ी-बड़ी संख्याओं के उल्लेख तथा ऐसे ही अन्य तथ्यों से यह संकेत मिलता है कि वैदिक आर्य लिखना जानते थे। परन्तु इन परोक्ष प्रमाणों से इतना महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा, विशेषतः जब हम जानते हैं कि वैदिक काल में और उसके बाद भी आर्यों की शिक्षा-प्रणाली प्रकृत्या मौखिक—गुरु-शिष्य परम्परा पर निर्भर थी। दूसरे, स्वतंत्र भारत में वैदिक-युगीन स्थलों का काफी उत्खनन हुआ है, परन्तु कहीं से भी कोई अभिलेख क्या मिट्टी का ऐसा ठीकरा भी नहीं मिला है जिस पर कोई अक्षर खुदा हो। तीसरे, बौद्ध साहित्य से प्रमाणित है कि बुद्ध के युग में भी विद्या का आदान-प्रदान मौखिक रूप से होता था। बाद में भी 'मुखस्थाविद्या' ही महत्त्वपूर्ण मानी जाती रही, 'बहु-श्रुत' (जिन्होंने बहुत सुना है) लोगों को विद्वान् मानता जाता रहा और जब पुस्तकें लिखी जाने लगीं तो उन्हें 'सरस्वतीमुख' कहा गया। ये सब तथ्य प्राक्अशोकीय भारतीयों को लिपि-विहीन सिद्ध करते हैं।

पुरातात्त्विक सामग्री

जनपदकालीन अभिलेख उपलब्ध न होने के कारण इस युग के इतिहास के लिए हमें पुरातात्त्विक साक्ष्य एवं साहित्य पर निर्भर रहना पड़ता है। इनमें पुरातात्त्विक सामग्री प्रधानतः कौशाम्बी, हस्तिनापुर आदि जनपदयुगीन नगरों के अवशेषों के रूप में हैं।

1. दे०, गोयल, एस० आर०, 'द रिडिल ऑव चाणक्य एण्ड कौटिल्य,' जिज्ञासा, जयपुर, 1, अंक 3-4, पृ० 32-51।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु इससे राजनीतिक इतिहास के पुनर्निर्माण में बिल्कुल सहायता नहीं मिलती। इसकी चर्चा जनपदयुगीन नगर-क्रान्ति के संदर्भ में पुनः की जायेगी (अध्याय 18)। जहाँ तक मुद्राओं अर्थात् सिक्कों का सम्बन्ध है, भारत में प्राङ् मौर्य युग में ही मुद्रा-प्रणाली का विकास हो गया था। सम्भवतः प्राङ् मौर्य और मौर्ययुगीन सुवर्ण मुद्राएं 'निष्क' और 'सुवर्ण' कहलाती थीं, रजत मुद्राएं 'कार्षापण' और 'धरण' या 'पुराण' तथा ताम्रमुद्राएं 'कार्षापण'। इनकी कम या अधिक भार वाली कई प्रकार की इकाइयां प्रचलित थीं। इनमें रजत मुद्राओं की पहिचान लगभग समस्त भारत से प्राप्त आहत मुद्राओं (पंच मार्क्ड क्वायन्स) से की जाती है, जिनमें कुछ को प्राङ् मौर्ययुगीन माना जाता है, कुछ को मौर्ययुगीन तथा शेष को मौर्योत्तर[1]। लेकिन इन मुद्राओं पर लेख अंकित न होने के कारण इनका उपयोग राजनीतिक इतिहास के अध्ययन में करना सम्भव नहीं है। जनपदयुगीन मुद्राओं की चर्चा अध्याय 11 के प्रथम परिशिष्ट में पुनः की गई है।

जनपदयुगीन इतिहास के लिए कुछ विदेशी पुरातात्त्विक एवं आभिलेखिक सामग्री भी उपयोगी है। इनमें सर्वप्रथम ईरानी अभिलेखों का उल्लेख किया जा सकता है। जैसा कि सर्वज्ञात है, छठी शती ई० पू० में ईरान में साखामनीषी वंश ने एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। इसमें भारत के कुछ प्रदेश भी सम्मिलित कर लिए गए। इस तथ्य का रोचक उल्लेख ईरानियों के पर्सिपॉलिस, नाक्श-ए-रुस्तम तथा अन्य अभिलेखों में मिलता है। ईरानियों ने भारत में अपनी मुद्राओं का प्रचलन भी किया, जिनके नमूने पश्चिमोत्तर प्रदेशों से उपलब्ध हुए हैं। ईरानियों की सुवर्ण मुद्राएं 'डेरिक' कहलाती थीं। इनका भार लगभग 130 ग्रेन होता था। चांदी की मुद्राओं को 'सिगलोई' कहा जाता था। इनका अधिकतम भार 85.45 ग्रेन होता था। कुछ सिगलोई पर आहत सिक्कों के चिह्न अंकित मिले हैं।[2] सिकन्दर के काल में भारतवासी यूनानी सिक्कों से भी परिचित और प्रभावित हुए।

साहित्यिक साक्ष्य : ब्राह्मण ग्रन्थ

यद्यपि जनपदयुगीन अभिलेख एवं इस युग का वैज्ञानिक रूप से वर्णन करने वाले इतिहास-ग्रन्थ आजकल उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु ऐसी बहुत-सी साहित्यिक सामग्री प्राप्त है जिसका उपयोग इस युग का इतिहास लिखने में किया जा सकता है। इसको सुविधार्थ ब्राह्मण, बौद्ध, जैन तथा क्लासीकल इन चार भागों में बांटा जा सकता है। ब्राह्मण साहित्य के अन्तर्गत पाणिनि की 'अष्टाध्यायी,' सूत्र ग्रन्थ, 'महाभारत' तथा पुराण आदि ग्रन्थ सम्मिलित हैं। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' एक व्याकरण ग्रन्थ है। वा०श० अग्रवाल के अनुसार इसकी रचना पांचवीं शती ई० पू० के मध्य हुई थी[3]। इसमें पाणिनिकालीन

1. ए० न० मौ०, पृ० 280।
2. कै० हि० इ०, पृ० 307-8।
3. अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारत, अध्याय 8, पृ 463 अ०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनपदों का रोचक वर्णन मिलता है। सूत्र ग्रन्थों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण 'बौधायन धर्म-सूत्र' है, जिसकी रचना 600 से 100 ई० पू० के बीच कभी हुई होगी। इसमें तत्कालीन राजनीतिक भूगोल विषयक महत्त्वपूर्ण सूचनाएं सुरक्षित हैं। 'महाभारत' और पुराणों में भी जनपद सूचियां अनेकत्र मिलती हैं। पुराणों के 'भुवनकोश' नामक अध्याय जनपदों का अध्ययन करने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। परन्तु यह सामग्री प्रायः गुप्त-कालीन राजनीतिक भूगोल का परिचय देती है, प्राङ् मौर्ययुगीन स्थिति का नहीं। इनसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं पुराणों की वंशावलियाँ। परीक्षित से लेकर नन्द वंश तक का मगध, वत्स व कोसल का पुराणों में प्रदत्त इतिहास व तिथिक्रम अत्यन्त उपयोगी है। यह सही है कि यह तिथिक्रम अनेक अशुद्धियों से परिपूर्ण है, परन्तु अब इस बात में सन्देह नहीं किया जा सकता कि पुराणों से जनपदकालीन इतिहास के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं।

बौद्ध और जैन ग्रन्थ

छठी शती ई० पू० और उसके बाद के राजनीतिक इतिहास पर सर्वोत्तम प्रकाश जैन और बौद्ध ग्रन्थों से मिलता है। बौद्ध ग्रन्थ दो प्रकार के हैं—एक, मौलिक और आधारभूत ग्रन्थ, जिनमें पालि त्रिपिटक के ग्रन्थ सम्मिलित हैं तथा दूसरे, सहायक और गौण ग्रन्थ जिनके अन्तर्गत त्रिपिटक की अट्ठकथाएँ आती हैं। राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से पहला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'अंगुत्तर निकाय' है, जिसमें बुद्धकाल के सोलह महाजनपदों की सूची दी गई है। इस सूची को कुछ भेद के साथ 'चुल्लनिद्देस' में दोहराया गया है। 'दीघनिकाय' के 'जनवसभ सुत्त' में दस जनपदों का जोड़ों के रूप में उल्लेख है। इसी प्रकार इस ग्रन्थ के 'महागोविन्द सुत्तन्त' में जनपदों की स्थापना के विषय में एक रोचक कथा मिलती है। 'अंगुत्तर निकाय' की जनपद-सूची को कुछ अन्तर के साथ 'महावस्तु' में भी दोहराया गया है। जैन ग्रन्थ 'भगवती सूत्र' में भी सोलह महाजनपदों की एक सूची मिलती है। इस प्रकार बौद्ध और जैन ग्रन्थों के सम्मिलित साक्ष्य से जनपदयुगीन राजनीतिक स्थिति विस्तृतरूपेण ज्ञात हो जाती है।

बौद्ध व जैन साहित्य मगध, कोसल, वत्स, अवन्ति व अन्य कुछ राज्यों के इतिहास पर विस्तृत सूचनाएं देते हैं—विशेषतः मगध के इतिहास पर। क्योंकि बुद्धोत्तर काल में अन्ततोगत्वा मगध ने ही साम्राज्य-स्थापन में सफलता पाई, इसलिए पुराणों के समान बौद्ध ग्रन्थों में भी मगध का इतिहास विस्तरशः दिया गया है। इनमें इस प्रदेश के विभिन्न राजवंशों का तिथिक्रम भी दिया गया है जो पुराणों के तिथिक्रम से भी अधिक सही है। इस विषय में हमारी सहायता 'दीपवंस,' 'महावंस,' 'दिव्यावदान' आदि बौद्ध ग्रन्थ भी करते हैं। इनकी कुछ और चर्चा आगे की गई है।

नन्द-मौर्य कथा-चक्र

जनपद युग के अन्त में नन्दवंश ने शासन किया। उसका उन्मूलन चाणक्य की सहा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यता से चन्द्रगुप्त मौर्य ने किया था। अब, भारतीय साहित्य में नन्द-मौर्य कथा के कई चक्र मिलते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में इसका सबसे रोचक और प्राचीनतम रूप 'मुद्राराक्षस' नामक नाटक में उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में नन्दों के उन्मूलन सम्बन्धी कुछ बहुमूल्य सामग्री सुरक्षित है। पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह प्रकृत्या एक नाटक है और वह भी नन्दों के कम से कम सात सौ वर्ष बाद लिखा हुआ[1]। दूसरे, इस ग्रन्थ में लिखी हुई बहुत-सी बातें निश्चय ही गलत हैं। उदाहरणार्थ, इसमें चन्द्रगुप्त मौर्य को नन्द वंश से सम्बन्धित बताया गया है, जो निश्चय ही अशुद्ध परम्परा है। इसलिए हमारा विचार है कि 'मुद्राराक्षस' की सामग्री को प्राचीन साक्ष्य के साथ संगत होने पर समर्थक प्रमाण के रूप में ही प्रयुक्त करना श्रेयस्कर होगा, मूल साक्ष्य के रूप में प्रयुक्त करना नहीं।

नन्द-चन्द्रगुप्त विषयक कथा का एक चक्र सोमदेव के ग्रन्थ 'कथासरित्सागर' में मिलता है। यह ग्रन्थ गुणाढ्य की 'बृहत्कथा के आधार पर, जिसकी रचना पैशाच प्राकृत में प्रथम शती ई० पू० में की गई थी, लिखा गया था। गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' आजकल उपलब्ध नहीं है इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि 'कथासरित्सागर' में प्रदत्त नन्द-चन्द्रगुप्त कथा मूल 'बृहत्कथा' में थी या नहीं। हो सकता है इसे 'बृहत्कथा' में, जिसमें गुणाढ्योत्तर युग में बहुत-सी कथाएं जोड़ी गई थीं, गुप्तकाल में या उसके बाद जोड़ दिया गया हो। कम से कम इतना निश्चित है कि सोमदेव ने इस कथा को जिस रूप में लिखा है, वह इसके अत्यन्त विकसित रूप का परिचायक है।

ब्राह्मण साहित्य में नन्द-चन्द्रगुप्त कथा-चक्र का बराबर विकास होता रहा। उदाहरणार्थ, 'मुद्राराक्षस' एवं 'विष्णुपुराण' के ऊपर लिखित टीकाओं में नन्दों और चन्द्रगुप्त मौर्य के विषय में कुछ नवीन सूचनाएं—अधिकतर अशुद्ध—जोड़ दी गई। इस प्रसंग में 'विष्णुपुराण' का टीकाकार रत्नगर्भ (जिसकी तिथि अज्ञात है) और 'मुद्राराक्षस' की 'मुद्राराक्षस व्याख्या' नामक टीका का लेखक 'धुण्ढिराज' (1713–14 ई.) विशेषतः उल्लेखनीय हैं। धुण्ढिराज द्वारा प्रदत्त सूचनाओं का समर्थन महादेव की 'मुद्राराक्षस कथा,' रविनर्तक उर्फ इर्वी चाक्यर की 'चाणक्य कथा' (1615 ई०), तथा अनन्त कवि की 'राक्षसपूर्वकथा' (लगभग 1660 ई०) तथा 'पूर्व पीठिका' (जिसे स्वयं धुण्ढिराज ने उद्धृत किया है), से होता है। लेकिन इन ग्रन्थों में प्रदत्त अनुश्रुतियां प्राचीनतर क्ल[illegible]-सिकल, बौद्ध, जैन एवं स्वयं ब्राह्मण परम्पराओं के विरुद्ध होने के कारण त्याज्य मानी जाती हैं।

नन्दवंश के उन्मूलन और मौर्यवंश की स्थापना से सम्बन्धित बहुत-सी कथाएं बौद्ध और जैन साहित्य में उपलब्ध हैं। बौद्ध ग्रन्थों में इन कथाओं का प्राचीनतम रूप सिंहली ग्रन्थों में मिलता है। अशोक द्वारा सिंहल (लंका) में बौद्ध धर्म का प्रचार किए जाने

1. 'मुद्राराक्षस' की तिथि पर सन्दर्भों के लिए दे०, गोयल 'ए हिस्टरी ऑव द इम्पीरियल गुप्तज,' पृ० 224, टि० 2; बुद्ध प्रकाश, स्टडीज इन इण्डियन हिस्टरी एण्ड सिविलिजेशन, पृ० 135, टि० 1; एस० के० दे, बी० सी० लाहा वॉल्यूम, 1, पृ० 50 अ०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के बाद वहां के नगर अनिरुद्धपुर में 'महाविहार' और 'उत्तर विहार' नाम के दो प्रसिद्ध विहार स्थापित हुए। इनके स्थविरों ने कुछ ऐसे ग्रन्थों की रचना की जिनमें बौद्ध धर्म के लंका प्रवेश और प्रसार का और प्रसंगवशात् मौर्य वंश तक का इतिहास दिया गया था। इनमें प्रथम शती ई० में रचित 'सिंहली अट्ठकथा' और 'उत्तर विहार अट्ठकथा' (अट्ठकथा=अर्थकथा) अधिक महत्त्वपूर्ण थीं। ये ग्रन्थ आजकल अनुपलब्ध हैं, परन्तु विश्वास किया जाता है कि इनकी सामग्री के आधार पर ही 'दीपवंस' और 'महावंस' की रचना हुई थी। 'दीपवंस' के लेखक का नाम अज्ञात है। यह पालि भाषा में लिखित काव्य ग्रन्थ है और इसकी तिथि लगभग चौथी शती ई० मानी जाती है। 'महावंस' की रचना महानाम नामक विद्वान् ने अपेक्षया अधिक परिष्कृत पालि भाषा में पांचवीं-छठी शती ई० में की थी। नन्द-मौर्य वंशों के इतिहास के लिए इन दोनों ग्रन्थों का बड़ा योग है। 'महावंस' में प्रदत्त सामग्री का विस्तृत रूप 'महावंस टीका' नामक ग्रन्थ में मिलता है। इसे 'वंसत्थप्पकासिनी' भी कहा जाता है। इसकी रचना आठवीं-नवीं शती ई० में हुई थी। 'महाबोधिवंस' (नवीं-दसवीं ई० नामक) ग्रन्थ में अनुराधपुर (लंका) में आरोपित बोधिवृक्ष की कथा दी गई है। प्रसंगवशात् इसमें अशोक के पूर्वजों का वर्णन भी किया गया है। इसका लेखक उपतिस्स नामक भिक्षु था। नन्द-चन्द्रगुप्त कथा के लिए एक अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'मोग्गल्लान का महावंस' जो 'कम्बोडियायी महावंस' भी कहलाता है (दसवीं-ग्यारहवीं शती ई०)।

अन्य पालि बौद्ध ग्रन्थों में जो नन्द-मौर्य युग पर प्रकाश देते हैं 'मिलिन्द पञ्हो' उल्लेखनीय है। इसमें द्वितीय शती ई० पू० में शासन करने वाले यवनराज मिनेण्डर और बौद्ध विद्वान् नागसेन का वार्त्तालाप दिया गया है। प्रसंगवशात् इसमें चन्द्रगुप्त और नन्दों से सम्बन्धित कथाएँ भी दे दी गई हैं।

बौद्ध धर्म के संस्कृत ग्रन्थों में, जिनमें नन्द-चन्द्रगुप्त विषयक सामग्री मिलती है, सर्व प्रथम 'दिव्यावदान' उल्लेखनीय है। यह ग्रन्थ नेपाल में मिला था। इसका लेखक, जिसका नाम अज्ञात है, तीसरी ई० के लगभग रखा जा सकता है। साहित्यिक दृष्टि से यह एक उच्च कोटि का ग्रन्थ है। दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प' है। इसमें बौद्ध धर्म का आठवीं शती ई० तक इतिहास दिया गया है। इसमें 1005 श्लोक हैं, जो पौराणिक शैली में लिखे गए हैं। ग्यारहवीं शती ई० में इस ग्रन्थ का अनुवाद कुमारकलश नामक विद्वान् ने तिब्बती भाषा में किया था। आजकल इसके संस्कृत व तिब्बती दोनों संस्करण मिलते हैं। इसमें नन्दों, चन्द्रगुप्त, चाणक्य और बिन्दुसार आदि के विषय में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूचनाएं सुरक्षित हैं।

जहां तक जैन साहित्य का सम्बन्ध है, नन्द-मौर्य युग से सम्बन्धित कथा सामग्री 'उत्तराध्ययन सूत्र,' 'आवश्यकसूत्र,' 'दशवैकालिकसूत्र,' 'निशीथसूत्र' तथा 'बृहत्कल्पसूत्र' —इन पांच सूत्र ग्रन्थों में (जो मूल आगम के अंग रूप हैं) थी। इनमें 'बृहत्कल्पसूत्र' पर भद्रबाहु नामक आचार्य ने (जो सम्भवतः श्रुत केवली भद्रबाहु से भिन्न थे; लगभग आठवीं शती ई०) निज्जूति (निर्युक्ति) लिखी तथा संघदासगणिक्षमाश्रमण ने भाष्य की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रचना की। इन ग्रन्थों में नन्द-मौर्य इतिहास पर सामग्री विशेषतः मिलती है। 'आवस्स्य सुत्त' की, जो श्वेताम्बरों का दूसरा मूलसुत्त है, निज्जूति की चुण्णि (आवस्स्य चुण्णि) में भी चन्द्रगुप्त-चाणक्य कथा विद्यमान थी। उस पर विद्याधर गच्छ के हरिभद्र नामक आचार्य ने आठवीं शती में संस्कृत में 'आवश्यकसूत्रवृत्ति' नामक विस्तृत टीका लिखी, जो नन्द-मौर्य इतिहास के लिए बड़ी उपयोगी है। उनके लगभग तीन शती उपरान्त देवेन्द्रगणि ने श्वेताम्बरों के प्रथम मूलसुत्त 'उत्तरज्झयण सुत्त' अथवा 'उत्तराध्ययन-सूत्र' पर प्राकृत भाषा में 'सुखबोधा' (1083 ई०) नामक टीका लिखी, जो 'आवस्स्य चुण्णि' पर आधारित थी। 'दशवैकालिक सूत्र' और 'निशीथ सूत्र' की निर्युक्तियों, चूर्णियों तथा टीकाओं में भी चन्द्रगुप्त-चाणक्य कथा विषयक कुछ सामग्री मिलती है।

'आवस्स्य चुण्णि' की कथा का ही कुछ भिन्न रूप हमें श्वेताम्बर आचार्य हेमचन्द्रके संस्कृत काव्य 'परिशिष्ट पर्व' में मिलता है। वह गुजरात नरेश जय सिंह सिद्धराज (1094–1143) तथा कुमारपाल (1143–74) के समकालीन और कुमारपाल के गुरु थे। उन्होंने 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' नाम का विशाल ग्रन्थ लिखा था, जिसमें दस पर्व या खण्ड और 34,000 श्लोक थे। इसमें उन्होंने 63 महापुरुषों (24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव, 9 बल्देव तथा 9 प्रतिवासुदेव) का वृत्तान्त लिखा। ये सब महापुरुष महावीर के समय तक हुए। इस ग्रन्थ के परिशिष्ट रूपी पर्व में उन्होंने 276 श्लोकों में महावीरोत्तर महापुरुषों का वर्णन किया। इसे 'परिशिष्टपर्व' या 'स्थविरावलीचरित' कहते हैं। इसमें उन्होंने नन्द वंश से सम्बन्धित चन्द्रगुप्तचाणक्य कथा भी दी है जो उनके काल में प्रचलित कथाओं पर आधारित रही होगी।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अन्य ग्रन्थों में रत्ननन्दि का 'भद्रबाहुचरित' सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। यह सम्भवतः 17वीं शती ई० की रचना है। इसमें चन्द्रगुप्त-भद्रबाहु कथा विस्तृत रूप से मिलती है। मुहम्मद तुग़लक की राजसभा को सुशोभित करने वाले आचार्य जिनप्रभसूरि के 'विविधतीर्थकल्प' के एक भाग 'पाटलिपुत्रनगरकल्प' में भी चाणक्य द्वारा नन्दों के विनाश से लेकर परवर्ती मौर्य राजाओं तक का वर्णन है। मेरुतुंग नामक आचार्य का समय भी 14वीं शती ही है। उनके ग्रन्थ 'विचारश्रेणी' में महावीर के उपरान्त हुए राजाओं और जैनाचार्यों का वर्णन मिलता है।

जैन साहित्य के अन्तर्गत पट्टावलियों का उल्लेख भी आवश्यक है, जो श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में मिलती हैं। इनमें बताया गया है कि किस जैन संघ या गण में किस समय कौन व्यक्ति आचार्य या स्थविर था। प्रसंगवशात् इनमें कहीं-कहीं राजाओं की भी चर्चा कर दी गई। नन्द-मौर्य इतिहास के लिए भी ये पट्टावलियां बड़ी उपयोगी हैं।

दिगम्बर साहित्य के कथा ग्रन्थों में भी नन्दों एवं चन्द्रगुप्त मौर्य के विषय में सामग्री मिलती है। इस वर्ग के ग्रन्थों में हरिषेण का 'बृहत्कथाकोष,' प्रभाचन्द्र का 'आराधनासत्कथा प्रबन्ध,' श्रीचन्द्रकृत 'कथाकोष' और नेमिदत्त का 'आराधनाकथा कोष' उल्लेख्य हैं। हरिषेण का 'बृहत्कथाकोष' (931 ई०) एक संस्कृत काव्य है। इसके 'भद्रबाहु-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कथानकम्' में चन्द्रगुप्त के समय में पड़े द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष और चन्द्रगुप्त के जैन धर्म ग्रहण करने एवं दक्षिण जाकर तप करने का विस्तृत वृत्तान्त दिया गया है। नेमिदत्त का 'आराधनाकोष' सोलहवीं शती का संस्कृत काव्य है और प्रभाचन्द्र व श्रीचन्द्र के ग्रन्थ जो क्रमशः संस्कृत गद्य ग्रन्थ एवं प्राकृत काव्य हैं, दसवीं से सोलहवीं शती ई० के मध्य रखे जाते हैं।[1] इनके अतिरिक्त रामचन्द्र मुमुक्षु के 'पुण्याश्रवकथाकोष' (सोलहवीं शती ई०) में भी नन्द-चन्द्रगुप्त कथाचक्र उपलब्ध है।

उपर्युक्त सब कथाकोषों की रचना मध्यकाल में हुई, परन्तु इनका मूल पर्याप्त प्राचीन माना जाता है। विश्वास किया जाता है कि इनका स्रोत लगभग प्रथम शती ई० में शिवार्य (या शिवकोटि) द्वारा रचित भगवती आराधना (या मूलाराधना) नामक प्राकृत काव्य था, जो स्वयं इससे भी प्राचीन अनुश्रुतियों के आधार पर लिखा गया था। इन अनुश्रुतियों का प्राचीनतम रूप उन पइण्णों या (प्रकीर्णकों) में पाया जाता है जो श्वेताम्बर जैन आगम के परिशिष्ट भाग के रूप में है। 'पइण्ण' संख्या में दस हैं, परन्तु इनमें दो में—'भत्त पइण्णा' तथा 'संथार पइण्णा' में—चाणक्य की कथा बीज रूप में मिलती है। इनमें भी चाणक्य को जैन मुनि कहा गया है। पइण्णों का रचना काल निश्चित नहीं है, पर ये प्रथम शती ई० पू० तक अवश्य ही अस्तित्व में आ चुके थे।[2]

दिगम्बर साहित्य के अन्य ग्रन्थों में जिनका सम्बन्ध नन्द-मौर्य इतिहास से है वृषभाचार्य की 'तिलोय पण्णत्ति' (त्रिलोक प्रज्ञप्ति) उल्लेखनीय है। इसकी रचना तीसरी शती ई० पू० में हुई मानी जाती है। इसमें चन्द्रगुप्त को जैन धर्म स्वीकार करने वाले मुकुटधारी राजाओं में अन्तिम बताया गया है। इनके अतिरिक्त 'हरिवंश पुराण,' 'धवला,' 'जयधवला' (जो आठवीं शती ई० की रचनाएं हैं) तथा 'उत्तरपुराण' तथा 'त्रिलोक सार' (दसवीं शती ई०) में भी थोड़ी-बहुत नन्द-मौर्य युगीन सामग्री मिलती है।

क्लासिकल साहित्य

भारत पर यूनानियों का प्रथम आक्रमण सिकन्दर के काल में हुआ, परन्तु भारत से उनका परिचय उसके पूर्व भी था। यही कारण है कि पाइथेगोरस जैसे यूनानी दार्शनिकों पर उपनिषदीय दर्शन का प्रभाव मिलता है। यूनानियों का भारत से यह सम्पर्क ईरान के माध्यम से हुआ था, जिसके साम्राज्य की सीमाएं पूर्व में सिन्धु प्रदेश तक और पश्चिम में यूनान तक विस्तृत थीं। साखामनीषी सम्राट् दारयवहुप का नौ-सेनाध्यक्ष स्काइलैक्स प्रथम यूनानी था, जिसने न केवल सिन्धु प्रदेश का अन्वेषण किया (509 ई० पू०) वरन् भारत पर एक ग्रन्थ की रचना भी की। 500 ई० पू० के लगभग मिलैटस के हिकेटियस ने संसार के भूगोल पर एक ग्रन्थ लिखा, जिसमें भारत का वर्णन भी किया गया था। ये दोनों ग्रन्थ आजकल अप्राप्य हैं। परन्तु 'इतिहास-पिता' हेरोडोटस (484–425 ई० पू०) का ग्रन्थ 'इतिहास' जिसमें भारत का वर्णन भी है, आज-

1. दे०, विण्टरनिट्ज़, हिस्टरी ऑव इण्डियन लिटरेचर, 2, पृ० 544।
2. चटर्जी, पूर्वो०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कल उपलब्ध है। उसके उपरान्त टीसियस ने, जो साखामनीषी सम्राट् अर्तक्षयार्षा के पास 416 से 398 ई० पू० तक रहा, भारत का वृत्तान्त लिखा, परन्तु उसके ग्रन्थ के कुछ उद्धरण ही अब अवशिष्ट हैं।

चौथी शती ई० पू० में भारत पर सिकन्दर ने आक्रमण किया, उसके साथ आए हुए नियर्कस, एरिस्टोबुलस, क्लिटार्कस तथा ओनेसिक्रिटस नामक सेनापतियों ने इस आक्रमण के विविध पक्षों का वर्णन किया। इन लेखकों के ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु परवर्ती यूनानी व रोमक लेखकों—यथा डायोडोरस, प्लुटार्क, स्ट्रेबो, कर्टियस, एरियन आदि—ने इनके जो अंश उद्धृत किए हैं अथवा उनके आधार पर सिकन्दर के आक्रमण व जीवन का जो वृत्तान्त लिखा है, वे उपलब्ध हैं। इन समस्त यूनानी ग्रन्थों से हम न केवल भारत पर सिकन्दर के आक्रमण का वृत्तान्त जान पाते हैं वरन् जनपदयुगीन संस्कृति के भी बहुत से महत्त्वपूर्ण पक्षों से परिचित होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 3

छठी शती ई० पू०: 'ऐतिहासिक युग' का उषः काल

'ऐतिहासिक युग' का आरम्भ

छठी शती ई० पू० से, जब भारत में बुद्ध और महावीर जैसे महापुरुषों का आविर्भाव हुआ, भारतीय इतिहास का 'ऐतिहासिक युग' प्रारम्भ होता है। इसके पूर्व व्यतीत होने वाली लगभग पन्द्रह शताब्दियों का, जिन्हें सांस्कृतिक, धार्मिक और साहित्यिक दृष्टि से वैदिककाल कहा जाता है, 'राजनीतिक इतिहास' अज्ञात है। 'इतिहास' की चाहे जो परिभाषा की जाए, इतना सभी मानेंगे कि इसकी विषय-वस्तु भूतकाल की वे महत्त्वपूर्ण घटनाएँ होती हैं, जिनका देश और काल निश्चित होता है। इस दृष्टि से वैदिक काल को हम 'ऐतिहासिक युग' नहीं कह सकते, क्योंकि उस युग की राजनीतिक घटनाओं की तिथियां ही नहीं प्रायः स्थान भी अनिश्चित हैं। इनके लिए हमारे पास दो साक्ष्य हैं—वैदिक काल में ही रचित वैदिक साहित्य एवं अपने वर्तमान रूप में गुप्त काल एवं गुप्तोत्तर काल में रचित पुराणों की वंशावलियां। इन दोनों में उल्लिखित अनेक नाम, तथ्य व घटनाएं समान हैं, जिनसे लगता है कि पुराणकारों के पास वैदिक इतिहास से सम्बन्धित कुछ विश्वसनीय सामग्री थी[1]। परन्तु वैदिक साहित्य में राजनीतिक महत्त्व की घटनाएं अत्यल्प, परस्पर असम्बद्ध और बिखरी हुई हैं, जबकि पुराणों के (और एक ही पुराण की विभिन्न पाण्डुलिपियों के) पारस्परिक मतभेदों, पाठान्तरों, पुराणों के अतिरंजित वर्णनों और असावधानी के कारण हुई भूलों के कारण पौराणिक सामग्री अत्यन्त अविश्वसनीय हो गई है। इसलिए ज्ञान की वर्तमान अवस्था में हम वैदिक काल के इतिहास का पुनर्निर्माण नहीं कर सकते और परिणामस्वरूप इस युग को 'ऐतिहासिक युग' नहीं कह सकते।

लेकिन छठी शती ई० पू० से स्थिति में अन्तर हो जाता है क्योंकि अब हमें इस विषय में बौद्ध और जैन ग्रन्थों से भी सहायता मिलने लगती है। अब हम ब्राह्मण, बौद्ध और जैन ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन करके छठी शती ई० पू० से लेकर नन्द वंश के पतन एवं मौर्य वंश की स्थापना तक का इतिहास पुनर्निर्मित कर सकते हैं। इसके बाद तो हम क्लासिकल लेखकों की सहायता से, तथा अशोक के समय से आभिलेखिक साक्ष्य द्वारा, मौर्य युग का विस्तृत इतिहास लिख सकते हैं और इन साक्ष्य की सहायता से मौर्य युग का तिथिक्रम निश्चित हो जाने से ब्राह्मण, बौद्ध और जैन साहित्यों से ज्ञात प्राङ् मौर्य

1. दे०, अल्तेकर, पी०आई०एच०सी०, 1939 अध्यक्षीय भाषण।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युगीन तिथिक्रमिक इतिहास को छठी शती ई०पू० तक ले जा सकते हैं। इसलिए छठी शती ई०पू० को भारत के राजनीतिक इतिहास का उषः काल कहा जा सकता है।

जनपद सूचियां: ब्राह्मण ग्रन्थों का साक्ष्य

ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ में समस्त भारत छोटे-छोटे राज्यों में, जिन्हें जनपद कहते थे, विभाजित था। वैदिक युग में आर्य सभ्यता के प्रतिनिधि नौ राज्यों का वर्णन ब्राह्मणों और उपनिषदों में मिलता है[1]—गन्धार, केकय, मद्र, वश-उशीनर, मत्स्य, कुरु, पञ्चाल, काशी तथा कोसल। इनके परे मगध और अंग जनपद थे जहां वैदिक धर्म का पूरी तरह प्रसार नहीं हुआ था। दक्षिणापथ में अभी तक आर्येतर जनों का प्राधान्य था यथा अन्ध्र, पुलिन्द, मूतिव, शवर, नैषध आदि।

जहां तक ब्राह्मण ग्रन्थों का सम्बन्ध है, जनपदों के विकास की दूसरी कड़ी पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में मिलती है। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार इसकी रचना पाँचवीं शती ई० पू० के मध्य हुई थी।[2] उस समय सारा देश जनपदों में विभाजित था। इनमें बहुत से जनपदों का पाणिनि ने प्रसंगवशात उल्लेख किया है। इनमें कुछ नाम बौद्धों की महाजनपद-सूची में भी मिलते हैं यथा, मगध, काशी, कोसल, वृजि, कुरु अश्मक, अवन्ति, गंधार तथा काम्बोज। इनके अतिरिक्त पाणिनि ने प्रकण्व, सिन्धु, सौवीर, ब्राह्मणक, कच्छ, केकय, मद्र, उशीनर, अम्बष्ठ, त्रिगर्त, कलकूट, भारद्वाज, रंकु, साल्व, साल्वावयव, उदुम्बर, तिलखल, मद्रकार, युगन्धर, भूलिंग, शरदण्ड, प्रत्यग्रथ, अजाद, कलिंग, सूरभस, कुन्ति, भौरिकि का भी उल्लेख किया है। पाणिनि के सूत्रों में उल्लिखित इन नामों के अतिरिक्त गणपाठ में बर्बर, कश्मीर, उरश, दरद्, गब्दिका, किष्किंधा, पटच्चर, यक्रुल्लोम तथा सर्वसेन का भी उल्लेख मिलता है।[3] इनमें अधिकांश जनपद पश्चिमोत्तर भारत के थे और प्रायः बहुत छोटे तथा राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वहीन थे।

पाणिनि के उपरान्त बौधायन का 'धर्मसूत्र' उल्लेख्य ग्रन्थ है। इसकी रचना 600-100 ई० पू० में कभी हुई होगी। इसमें सौवीर, आरट्ट, सुराष्ट्र, अवन्ति, मगध, अंग, पुण्ड्र और वंग का उल्लेख मिलता है और इन्हें आर्यों के लिए प्रतिषिद्ध कहा गया है।[4]

ब्राह्मण साहित्य में जनपदों का सर्वाधिक विस्तृत वर्णन 'महाभारत' तथा पुराणों में मिलता है। इनमें जनपदों की विस्तृत सूचियां भुवनकोश नामक खण्डों में सुरक्षित हैं। 'महाभारत' के 'भीष्म पर्व' (अध्याय 9) में लगभग 250 जनपदों की सूची दी गई है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ के 'कर्ण पर्व' में एक स्थान पर भारत के प्रमुख जनपदों का उल्लेख है और उनके निवासियों की विशेषताएं बताई गई हैं। ये जनपद हैं: कुरु, पंचाल, शाल्व,

1. मुकर्जी, हिन्दू सभ्यता, पृ० 175-76।
2. अग्रवाल, वा० श०, पाणिनिकालीन भारत, पृ० 463 अ०।
3. वही, पृ० 59 अ०।
4. मुकर्जी, पूर्वो०, पृ० 176।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मत्स्य, नैमिष, कोसल, काशी, अंग, कलिंग, मगध, चेदि, मत्स्य, शूरसेन, गन्धार, तथा मद्र ।[1] ये सभी राज्य बुद्धकाल में भी विद्यमान थे, परन्तु 'महाभारत' में यह वर्णन किस युग की स्थिति का द्योतक है, निश्चयत: कहना असम्भव है । वा० श० अग्रवाल के अनुसार यह वर्णन उस युग में लिखा गया होगा जब पंजाब में भारतीय-यूनानी (इण्डो-ग्रीक) राज्य स्थापित हो गए थे ।[2]

पुराणों के भुवनकोशों में प्रदत्त जनपद सूचियां बहुत महत्त्वपूर्ण हैं ।[3] परन्तु इन ग्रन्थों का वर्तमान रूप गुप्त काल या उसके बाद की देन है इसलिए इन को बुद्ध काल पर लागू करना असम्भव है । इनसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं पुराणों की वंशावलियां जिनमें कोसल, वत्स और मगध का परीक्षित के अभिषेक से लेकर महापद्मनन्द तक का वर्णन किया गया है । इसके अतिरिक्त इनमें उन राज्यों का उल्लेख है जिनके क्षत्रिय शासकों का उन्मूलन महापद्मनन्द ने किया था—यथा ऐक्ष्वाक, पञ्चाल, काशी, हैहय, कलिंग, अश्मक, कुरु, मैथिल, शूरसेन तथा वीतिहोत्र ।[4] स्पष्टत: इन जनपदों का स्वतन्त्र या अर्द्ध-स्वतन्त्र इकाइयों के रूप में अस्तित्व नन्दकाल तक था ।

बौद्ध व जैन ग्रन्थों की सूचियां

छठी शती ई०पू० और उसके तत्काल बाद की राजनीतिक स्थिति पर सर्वोत्तम प्रकाश बौद्ध ग्रन्थों से मिलता है । बौद्धग्रन्थ 'अंगुत्तर निकाय' में उन सोलह महाजनपदों (सोलस महाजनपदा) की एक सूची मिलती है जो भगवान् बुद्ध के काल में विद्यमान थे । इनका उल्लेख इस क्रम से किया गया है :—(1) अंग, (2) मगध, (3) कासी (काशी), (4) कोसल (कोशल), (5) वज्जि (वृजि), (6) मल्ल, (7) चेतिया या चेतिय (चेदि), (8) वंस (वत्स), (9) कुरु (10) पंचाल, (11) मच्छ (मत्स्य), (12) सूरसेन (शूरसेन), (13) अस्सक (अश्मक), (14) अवन्ति, (15) गन्धार तथा (16) कंबोज (काम्बोज) । "सो इमेसं सोलसन्नं महाजनपदानं पहूतसत्तरतनानं इस्साधिपच्चं रज्जं कारेय्य, सेय्यथीदं अंगानं, मगधानं, कासीनं, कोसलानं, वज्जीनं, मल्लानं, चेतीनं (चैतियानं), वंसानं, कुरुनं, पंचालानं, मच्छानं, सूरसेनानं, अस्सकानं, अवन्तीनं, गंधारानं, कंबोजानं" ।[5]

'अंगुत्तर निकाय' की इस सूची को 'महावस्तु' में दोहराया गया है परन्तु इसमें गन्धार व काम्बोज के स्थान पर शिवि व दशार्ण का उल्लेख है ।[6] अन्यत्र इसमें सोलह महाजनपदों का उल्लेख किया गया है (जम्बुद्वीपे सोडशहि महाजनपदेहि) परन्तु उनके नाम नहीं

1. महाभारत, 8.40.29; 45. 14-16; 34; 40 ।
2. अग्रवाल, वा०श०, आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेन्स के गौहाटी अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण ।
3. दे०, मार्कण्डेय पु०, अध्याय 57; वायु पु० अध्याय 45; ब्रह्माण्ड पु०, अध्याय 49; मत्स्य पु०, अध्याय 114 ।
4. पार्जिटर, डा० क० ए०, पृ० 69 ।
5. अंगुत्तर निकाय, 1, पृ० 213; 4, पृ० 252, 256, 260 ।
6. महावस्तु, 1, पृ० 34.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिए गए हैं।[1] 'चुल्लनिद्देश' की सूची में कलिंग को अतिरिक्तरूपेण जोड़ दिया गया है और गन्धार की जगह योन (यवन) नाम है।

यहां यह बात ध्यान देने की है कि इन जनपदों का नाम बहुवचन में दिया गया है जैसे अंगानं, मगधानं, कासीनं इत्यादि। बौद्ध साहित्य में अन्यत्र भी इस प्रकार के प्रयोग किए गए हैं; यथा, "एकं समयं भगवा अंगेसु चारिकं चरमानो · · · ·" (एक समय भगवान् अंगों में विहरते थे) आदि। इससे स्पष्ट है कि इस समय तक इन राज्यों की भौगोलिक सीमाएं स्थिर हो जाने के बावजूद उस युग की स्मृति अवशिष्ट थी जब राज्य संस्था में प्रजाति तत्त्व प्रधान था और राज्यों के नाम जातियों के नाम पर चलते थे।

'दीघनिकाय' के 'जनवसभसुत्त' में हमें दस जनपदों का दो-दो के जोड़ों में उल्लेख मिलता है—कासी-कोसल, वाज्जि-मल्ल, चेति-वंस, कुरु-पञ्चाल तथा मच्छ-सूरसेन।[2] 'इन्द्रिय जातक' में इन सात जनपदों का उल्लेख मिलता है—लम्बचूलक, अवन्ति, दक्षिणा-पथ, दण्डक, कुम्भवति, नगर और अरंजरा।[3] 'ललित विस्तर' नामक परवर्ती बौद्ध ग्रन्थ में बौधिसत्त्व के भावी कुल के सम्बन्ध में तुषित लोक के देवता विचार करते हैं और सोलह जनपदों की चर्चा करते हैं (सर्वस्मिन् जम्बुद्वीपे षोडस जानपदेषु)। लेकिन यहां उनमें से केवल आठ के नाम दिए गए हैं। वे हैं—मगध, कोशल, वंश, वैशाली, अवन्ति (प्रद्योतकुल) मथुरा, कुरु (हस्तिनापुर महानगर) और मिथिला।[4] 'महाबोधिवंश' में, जो एक परवर्ती रचना है, सोलह महाजनपदों को 'सोलस महादेसा' या 'सोलस महापदेसा' कहा गया है।[5]

'दीघनिकाय' के 'महागोविन्द सुत्तन्त' में एक अत्यन्त रोचक कथा मिलती है। इसके अनुसार एक अति प्राचीन नरेश रेणु के ब्राह्मण मन्त्री महागोविन्द ने जम्बुद्वीप को सात भागों में बाँट कर प्रत्येक की अलग-अलग राजधानियां स्थापित की थीं।[6] वे भाग थे—

	राज्य	राजधानी
1.	कलिंग	दन्तपुर
2.	अस्सक	पोतन
3.	अवन्ति	माहिस्सति
4.	सोवीर	रोरूक
5.	विदेह	मिथिला
6.	अंग	चम्पा
7.	काशी	वाराणसी

1. महावस्तु, 2, पृ० 2।
2. दीघनिकाय, हिन्दी अनुवाद, पृ० 160।
3. उपाध्याय, बु० का० भू०, पृ० 340।
4. वही।
5. वही।
6. दीघनिकाय, 2, पृ० 235।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैन ग्रन्थ 'भगवतीसूत्र' में सोलह महाजनपदों की जो सूची दी गई है वह 'अंगुत्तर निकाय' की उपर्युक्त सूची से कुछ भिन्न है:[1]

1. अंग
2. बंग (वंग)
3. मगह (मगध)
4. मलय
5. मालवक (अवन्ति?)
6. अच्छ
7. वच्छ (वत्स)
8. कोच्छ (कच्छ?)
9. पाढ़ (पुण्ड्र?)
10. लाढ़ (राढ़)
11. बज्जि (वृज्जि)
12. मोलि (मल्ल ?)
13. कासी (काशी)
14. कोसल (कोशल)
15. अवाह
16. सम्भुत्तर (सुम्होत्तर?)

इस सूची में उल्लिखित अंग, मगध, वत्स, वज्जि, काशी तथा कोसल 'अंगुत्तर निकाय' की सूची में भी मिलते हैं। रायचौधुरी ने मालवक की पहिचान अवन्ति से की है और मोलि की मल्लों से। लेकिन शेष सभी नाम नए हैं। इस सूची में उत्तरापथ के गन्धार और कम्बोज जनपदों के अनुल्लेख के आधार पर इ०जे० टॉमस ने अनुमान प्रकट किया है कि यह सूची किसी जैन लेखक ने दक्षिण भारत में बनाई होगी। परन्तु प्रस्तुत अध्याय के लेखक का अनुमान है कि यह सूची बंगाल में तैयार की गई होगी क्योंकि इसमें बंगाल और निकटवर्ती प्रदेशों के बहुत से जनपद गिनाए गए हैं, यथा वंग, पाढ़ (पुण्ड्र?) लाढ़ (राढ़) तथा सम्भुत्तर (सुम्होत्तर?)। जो भी हो, यह सूची बहुत बाद में तैयार की गई लगती है। अगर उसमें अवन्ति का उल्लेख मालव नाम से है तब तो इसे 8वीं शती ई० के पूर्व रखना कठिन होगा क्योंकि जैसा कि सर्वज्ञात है, अवन्ति के लिए मालव नाम का प्रयोग परमार युग के पूर्व नहीं मिलता। इसलिये हम बौद्ध सूचियों को अधिक विश्वसनीय मानते हैं और बौद्ध सूचियों में भी 'अंगुत्तर निकाय' की सूची को। यह सूची न केवल प्राचीनतम बौद्ध साहित्य में मिलती है वरन् बुद्ध और महावीर के कुछ पहिले की स्थिति की द्योतक प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ, इसमें काशी और अंग को पृथक्तः गिनाया गया है जबकि बुद्ध के जीवन काल तक काशी को कोसल ने हड़प लिया था और अंग को मगध ने। इसी प्रकार वज्जि और मल्ल महाजनपदों का अस्तित्व भी बुद्ध निर्वाण के कुछ वर्ष बाद समाप्त हो गया था। स्पष्टतः अगर यह सूची निर्वाणोपरान्त तैयार की गई होती तो इसमें अंग और काशी का पृथक्तः उल्लेख न हुआ होता।[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बुद्ध और महावीर के आविर्भाव के कुछ पहिले से

1. ए० इ० यू०, पृ० 1 पर उद्धृत।

2. लेकिन यहां यह स्मरणीय है कि अंग और काशी को जीत लेने के बाद भी मगध और कोसल के राजाओं ने वहां 'अंगराज' और 'काशिराज' उपाधिधारी गवर्नर रख छोड़े थे। दूसरे शब्दों में स्वतन्त्रता समाप्ति के बाद भी इन जनपदों का व्यक्तित्व न्यूनाधिकरूपेण बना हुआ था। इसलिए सोलह महाजनपदों का अस्तित्व बुद्धकाल में भी माना जा सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेकर नन्द साम्राज्य की स्थापना तक भारतवर्ष बहुत से जनपदों का अस्तित्व था जिनमें सोलह जनपद विशेषतः महत्त्वपूर्ण होने के कारण महाजनपद कहलाते थे। यहां यह स्मरणीय है कि जनपदों की संख्या वस्तुतः बहुत अधिक थी। स्वयं बौद्ध साहित्य सोलह महाजनपदों के अतिरिक्त अन्य अनेक गणाधीन जनपदों (दे०, अध्याय 6-7) एवं राजाधीन जनपदों (दे०, अध्याय 5) का उल्लेख करता है। पश्चिमोत्तर भारत के तीस से अधिक जनपदों को तो स्वयं सिकन्दर के इतिहासकारों ने उद्धृत किया है (दे०, अध्याय 15)।

ऊपर हमने जो सूचियां दी हैं वे बहुत सी बातों में समान होते हुए भी परस्पर भिन्न हैं। कारण स्पष्ट है—इन सूचियों को विभिन्न युगों में विभिन्न प्रदेशों में विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लिखा गया था। इसलिए इनमें न केवल विभिन्न युगों की बदलती हुई स्थिति की झलक मिलती है वरन् इन पर इनके लेखकों के दृष्टिभेद की छाया भी मिलती है। उदाहरणार्थ पुराणकारों ने वज्जि संघ और मल्लों का उल्लेख नहीं किया है—या तो गणाधीन जनपदों के प्रति उदासीनता के कारण अथवा इन जनपदों में बौद्ध और जैन धर्मों की लोकप्रियता के कारण। इसी प्रकार पाणिनि के ग्रन्थ में अधिकतर पश्चिमोत्तर जनपदों का वर्णन मिलता है और बौद्ध ग्रन्थों में पूर्वी भारत के जनपदों का क्योंकि पाणिनि ने गन्धार में बैठ कर अपना ग्रन्थ रचा था और बौद्धों ने पूर्वी भारत की पृष्ठभूमि में।

छठी शती ई० पू० की राजनीतिक प्रवृत्तियां

आगामी अध्यायों में बुद्धकालीन जनपदों की भौगोलिक स्थिति व इतिहास आदि का विस्तृत वर्णन आरम्भ करने के पूर्व यह समुचित होगा अगर हम छठी शती ई० पू० की राजनीतिक स्थिति का सामान्य विवेचन कर लें।

बुद्धकालीन भारत की स्थिति की पहली विशेषता जो राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है वह है विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति अर्थात् देश में किसी केन्द्रीय या सार्वभौम सत्ता का अभाव जिसका आदेश उपर्युक्त छोटे-बड़े जनपद मानते। उस समय सारा देश छोटी-छोटी इकाइयों में बंटा हुआ था जो किसी प्रकार अपना विस्तार करने अथवा अपना पृथक् अस्तित्व बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील थीं। दूसरे शब्दों में सारे देश में मात्स्य न्याय की स्थिति थी जब हर बड़ी मछली छोटी मछलियों को खा लेने के लिए बेचैन थी। इसलिए हम छठी-पांचवीं शती ई० पू० को 'संघर्ष रत जनपदों का युग' कह सकते हैं। यह स्थिति ठीक उसी युग के चीन की स्थिति से तुलनीय है जिसे उस देश के इतिहास में भी 'संघर्षशील राज्यों का युग' कहा जाता है।[1]

लेकिन विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के बावजूद बुद्धकाल के इतिहास में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के क्रमशः सबलतर होते जाने के भी निश्चित संकेत मिलते हैं। 'अंगुत्तर निकाय' की सूची के सोलह महाजनपदों में चार महाजनपद—कोसल, वत्स, अवन्ति और मगध—बुद्ध काल के चार सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बन चुके थे और उनमें सार्वभौम

1. दे०, गोयल, श्रीराम, विश्व की प्राचीन सभ्यताएं, 1, पृ० 588।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सत्ता के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो चुका था। इसके परिणामस्वरूप जनपदों की संख्या धीरे-धीरे घटती जा रही थी और इन चार राज्यों का विस्तार बढ़ता जा रहा था। बुद्ध के जीवन काल में अथवा उसके कुछ पहिले अंग को मगध ने आत्मसात कर लिया था और काशी को कोसल ने। बुद्ध की मृत्यु के लगभग तत्काल बाद ही कोसल नरेश विडूडभ ने शाक्यों को भी विनष्ट कर दिया। कोसल ने सम्भवतः कुरु-पञ्चाल का भी काफी भाग हड़प कर लिया था। इसी प्रकार बुद्ध के परिनिर्वाण के तत्काल बाद ही मगध नरेश अजातशत्रु ने वज्जि व मल्ल आदि जनपदों को अपने राज्य के प्रान्त बना डाला। पश्चिम में यह युग अवन्ति के उत्कर्ष का था जिसने, जैसा कि हमने इसके इतिहास का विवेचन करते समय दर्शाया है, राजस्थान के मत्स्य तथा उत्तर प्रदेश के सूरसेन जनपदों को अपने प्रभावान्तर्गत कर लिया था। वत्स राज्य के हिस्से में सुंसुमारगिरि का भग्ग जनपद आया। इसके अतिरिक्त इसने चेदि और दक्षिणी पञ्चाल के भी कुछ भाग हड़पे थे। परन्तु जैसा कि हमने अध्याय चार में सिद्ध किया है स्वयं वत्स भगवान् बुद्ध के जीवन काल में ही अवन्ति के अधिकार में चला गया। इस प्रकार छठी-पांचवीं शती में अनेक जनपदों का अस्तित्व ही मिट गया। लघु जनपदों के विलीनीकरण की यह प्रवृत्ति भारत में एक सार्वभौम सत्ता की स्थापना की ओर (जिसमें अन्ततोगत्वा मगध ने सफलता पाई) संकेत कर रही थी।

बुद्धकालीन भारत की राजनीतिक स्थिति का एक अन्य पक्ष देश में संघ या गण राज्यों का अस्तित्व है। इन राज्यों में वज्जि, मल्ल तथा शाक्य प्रमुख थे। उत्तरापथ में इस प्रकार राज्यों का अस्तित्व सिकन्दर के इतिहासकारों ने बताया है। पाणिनि ने इन्हें दो वर्गों में बांटा है—वार्ताशस्त्रोपजीवी तथा राजशब्दोपजीवी। वज्जि व मल्ल आदि राजशब्दोपजीवी वर्ग के गणाधीन राज्य थे।

महाजनपदकालीन भारत की राजनीतिक स्थिति की एक अन्य विशेषता थी पश्चिमोत्तर भारत अर्थात् उत्तरापथ पर ईरान के साखामनीषीवंशीय सम्राटों के आक्रमण जिन्होंने छठी शती ई० पू० के अन्त व पांचवीं शती ई० पू० के प्रारम्भ में उस प्रदेश के कुछ भागों को जीत लिया। इन आक्रमणों का वर्णन भारतीय साहित्य में कहीं नहीं मिलता, लेकिन ईरानी अभिलेख व यूनानी इतिहास-ग्रन्थ इस विषय में हमारी सहायता करते हैं। इस आक्रमण का अध्ययन अध्याय 13-14 में किया गया है।

पश्चिमोत्तर दिशा से होने वाले विदेशी आक्रमणों की कोई गूंज बौद्ध साहित्य में सुनाई नहीं देती। वास्तव में यह बिल्कुल नहीं लगता कि इस आक्रमण से भारतीय नरेश जरा भी चिन्तित हुए थे। अब, यह तो नहीं कहा जा सकता कि पूर्वी भारत व मध्यदेश के लोग उत्तरापथ से परिचित नहीं थे क्योंकि उस युग के कोसलराज प्रसेनजित्, महालि लिच्छवि, जीवक वैद्य तथा बन्धुल मल्ल और अन्यान्य अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को हम शिक्षा पाने के लिए तक्षशिला जाता पाते हैं। बिम्बिसार तथा गन्धार नरेश पुक्कुसाति के मित्रतापूर्ण सम्बन्ध थे और उनमें भेंटों तथा सन्देशों का आदान-प्रदान हुआ था। अवन्ति नरेश प्रद्योत ने तो गन्धार पर आक्रमण भी किया था। परन्तु इन तथ्यों के बावजूद हम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय नरेशों को ईरानी आक्रमण के प्रति पूर्णरूपेण चिन्तारहित पाते हैं। शायद उन की रुचि अपनी स्थानीय राजनीति में ही थी। उत्तरापथ व मध्यदेश एक ही देश के दो प्रदेश हैं—यह भावना उनके मन में शायद नहीं थी।

जहां तक दक्षिण भारत का सम्बन्ध है बुद्ध युग में उत्तर भारतीयों का उसके अधिकांश भाग से घनिष्ठ परिचय नहीं था। 'अंगुत्तर निकाय' में परिगणित सोलह महाजनपदों में केवल अस्सक ही ऐसा है जिसकी स्थिति दक्षिण भारत में थी। वैसे अवन्ति में भी दक्षिणापथ का कुछ भाग सम्मिलित रहा होगा। अस्सक के अतिरिक्त बुद्धकालीन भारतीयों ने दक्षिण के कुछ अन्य जनपदों के नाम सुने थे परन्तु उनके साथ वे पूर्णतः परिचित नहीं थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 4

मगधेतर राजाधीन जनपदः अवन्ति कोसल तथा वत्स

अवन्ति जनपद

बुद्धकाल में पश्चिमी भारत का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जनपद अवन्ति था। बौद्ध व जैन धर्मों के प्रभाव क्षेत्र से दूर होने के कारण इसके विषय में इन धर्मों के साहित्य में कम सामग्री मिलती है, परन्तु प्रस्तुत अध्याय के लेखक की दृष्टि में अवन्ति के इतिहास पर इस समय भी जितनी सामग्री उपलब्ध है उसी से यह प्रमाणित हो जाता है कि बुद्ध काल में अवन्ति जनपद शक्ति और विस्तार की दृष्टि से भारत का प्रबलतम और विशालतम जनपद था। अभाग्यवश इतिहासकारों की दृष्टि अभी तक प्रायः मगधोन्मुखी रही है, इसलिए अवन्ति की महत्ता प्रदर्शित करने वाले तथ्यों की ओर उन्होंने पूरा ध्यान नहीं दिया है।

पालि परम्परानुसार जम्बुद्वीप तीन मण्डलों में विभाजित था। इनमें एक मण्डल अवन्ति था। 'दीघ निकाय' के 'महागोविन्द सुत्त' के अनुसार प्राक्-बुद्ध युग के राजा रेणु के ब्राह्मण मन्त्री महागोविन्द ने जम्बुद्वीप को सात भागों में बाँटा था। अवन्ति राज्य और उसकी राजधानी माहिस्सति उनमें से एक थे। अवन्ति के दो भाग थे—उत्तरी और दक्षिणी। दक्षिणी अवन्ति को "अवन्ति दक्षिणापथ" कहते थे।[1] उत्तरी और दक्षिणी अवन्तियों के मध्य वेत्तवती (वेत्रवती) नदी (आधुनिक बेतवा) बहती थी, ऐसा पालि ग्रन्थों में कहा गया है। आधुनिक विद्वान् पालि साक्ष्य को स्वीकार करते आए हैं।[2] परन्तु वेत्रवती नदी दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है और यमुना में गिरती है। हमारे विचार से पालि ग्रन्थों में मूलतः शायद नर्मदा का उल्लेख रहा होगा जिसके स्थान पर बाद में गलती से वेत्रवती नाम लिख दिया गया होगा। दक्षिणी अवन्ति की राजधानी माहिस्सति (माहिष्मती) नगरी थी और उत्तरी अवन्ति की उज्जैनी (उज्जयिनी)। इस प्रकार अवन्ति जनपद में उत्तर भारत व दक्षिणापथ दोनों के प्रदेश सम्मिलित थे। इसीलिए अवन्ति को पालि साहित्य में मज्झिमदेश (मध्यदेश) में रखा गया है और 'मार्कण्डेय पुराण' में अपरान्त में।[3]

दक्षिणी अवन्ति की राजधानी माहिष्मती की पहिचान के विषय में विद्वानों में मतभेद

1. 'महाभारत' में अवन्ति व माहिष्मती जनपदों को पृथक्-पृथक् माना गया है।
2. दे०, ए० इ० यू०, पृ० 13; उपाध्याय, भ० सि०, बु० का० भू०, पृ० 275।
3. उपाध्याय, भ० सि०, वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। यह उज्जैन से प्रतिष्ठान जाने वाले मार्ग पर थी। कुछ विद्वानों ने इसकी पहिचान महेश्वर (इन्दौर) से की है और कुछ ने मान्धाता से, जो नर्मदा के दक्षिणी किनारे पर था। बुद्धकाल में अवन्ति की राजधानी उज्जैन थी। यह श्रावस्ती से प्रतिष्ठान जाने वाले 'दक्षिणापथ' को जोड़ती थी। उज्जैन से एक सड़क भरुकच्छ और सुप्पारक को भी जाती थी। 'दीपवंस' के अनुसार इसकी स्थापना राजा अच्चुतगामि ने की थी। उज्जैन और माहिस्सति के अतिरिक्त अवन्ति के प्रमुख नगर थे वेदिस (विदिशा), वेदिस के पश्चिम में स्थित गोनद्धपुर, वेदिस और कौशाम्बी के मध्य स्थित वनसव्हव अथवा तुम्बव, कुररघर, तथा सुदर्शनपुर आदि। विदिशा प्रदेश, जो प्राचीनकाल में दशार्ण (=पूर्वी मालवा) कहलाता था, अवन्ति में सम्मिलित था। इस प्रकार अवन्ति के अन्दर स्थूलत: मध्य काल में मालवा नाम से विख्यात समस्त प्रदेश सम्मिलित था।

पुराणों में माहिष्मती के प्रथम राजवंश को हैहय कहा गया है। 'मत्स्य पुराण' के अनुसार हैहयों की पांच शाखाएं थीं—वीतिहोत्र, भोज, अवन्ति, कुण्डीकेर (या तुण्डिकेर) तथा तालजंघ। वीतिहोत्रों और अवन्तियों के पश्चात् पुलिक या पुणिक नामक[1] 'अमात्य' ने अपने स्वामी को मार डाला और 'क्षत्रियों' की आँखों के सम्मुख अपने पुत्र प्रद्योत को राजपद पर अभिषिक्त कर दिया। कुछ विद्वानों ने 'क्षत्रियों की आँखों के सम्मुख' शब्दों का अर्थ यह माना है कि प्रद्योत का वंश हीनजातीय था। लेकिन रायचौधुरी का कहना है कि पुराणकारों का आशय यहां मात्र इतना है कि यह वंश परिवर्तन एक मन्त्री ने किया था (पुष्यमित्र जैसे सेनापति ने नहीं) और उसके इस कार्य का सेना (=क्षत्रियों) ने विरोध नहीं किया था (अथवा समर्थन किया था)। स्मरणीय है कि मेगास्थेनिज़ के समय भारतीय समाज में सैनिकों और अमात्यों के दो अलग-अलग वर्ग थे।

चण्ड प्रद्योत महासेन

पुलिक-पुत्र प्रद्योत अपने युग का एक महान् नरेश प्रमाणित हुआ। पुराणों में उसे 'नयवर्जित' (सद्नीति से विहीन) कहा गया है और बताया गया है कि वह अपने पड़ौसी राजाओं को अपने अधीन करेगा (स वै प्रणत सामन्त:)। 'महावग्ग' में उसे 'क्रूर' या 'क्रोधी' बताया गया है। उसके चरित्र की यह विशेषता उसकी 'चण्ड' उपाधि से भी संकेतित है। उसकी एक अन्य उपाधि 'महासेन' थी जो उसे विशाल सेना का अधिपति होने के कारण मिली थी।

प्रद्योत की यथार्थ राजनीतिक व सामरिक सफलताओं का विवरण कहीं नहीं दिया गया है, परन्तु विविध साक्ष्य से कुछ छिट पुट किन्तु महत्त्वपूर्ण सूचनाएं उपलब्ध हैं:—

(1) 'धम्मपद अट्ठकथा' के 'उदेनवत्थु' तथा भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' के अनुसार प्रद्योत ने वत्सराज उदयन को बन्दी बना लिया था। उसके उपरान्त उदयन प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता को लेकर भाग गया परन्तु कुछ समय उपरान्त वत्स पर अवन्ति का

1. तिब्बती स्रोतों में प्रद्योत के पिता को अनन्तनेमि कहा गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिकार हो गया।[1]

(2) बुद्धकाल में सूरसेन जनपद का राजा माथुर अवन्ति पुत्र था। उसे प्रद्योत का दौहित्र कहा गया है। इससे लगता है कि बुद्धकाल में अवन्ति का सूरसेन जनपद पर कुछ वैसा ही अधिकार था जैसा काशी पर कोसल का, अंग पर मगध का तथा भग्ग पर वत्स का।

(3) मागध नरेश बिम्बिसार के साथ प्रद्योत के सम्बन्ध अच्छे थे। जब प्रद्योत पाण्डु रोग से पीड़ित हुआ था तो बिम्बिसार ने अपने प्रसिद्ध वैद्य जीवक को उसका इलाज करने के लिए भेजा था। परन्तु 'मज्झिम निकाय' (3.7) के अनुसार बिम्बिसार के पुत्र अजातशत्रु ने अपनी राजधानी राजगृह को प्राचीर से सुरक्षित करवाया था क्योंकि उसे अवन्ति के राजा प्रद्योत के आक्रमण की आशंका थी।

(4) एक परम्परानुसार प्रद्योत ने गन्धार नरेश पुक्कुसाति (पुष्करसारी) पर भी आक्रमण किया था परन्तु परास्त हुआ था।[2] क्योंकि उस समय पुक्कुसाति निश्चय ही ईरान के दबाव का अनुभव कर रहा था और अपने पड़ौसी पाण्डवों से आशंकित था, इसलिए इस संघर्ष में आक्रमक पक्ष प्रद्योतका ही रहा होगा। जो भी रहा हो, प्रद्योत पुष्करसारी से परास्त हुआ। परन्तु उसी समय पाण्डवों और गन्धार-नरेश का युद्ध छिड़ गया जिसके कारण प्रद्योत को इस पराजय से विशेष हानि नहीं हुई।

उपर्युक्त तथ्यों से कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। एक, प्रद्योत स्पष्टतः बिम्बिसार और अजातशत्रु दोनों का समकालीन था। वह उस समय भी शासन कर रहा था जब बिम्बिसार को अजातशत्रु ने बन्दी नहीं बनाया था। हमने अन्यत्र बिम्बिसार का बन्दीकरण लगभग 505 ई० पू० में निर्धारित किया है (अध्याय 12)। इसलिए प्रद्योत के शासन के 23 वर्ष (पुराणों में उसके लिए यही अवधि बताई गई है) लगभग 510 ई०पू० के बहुत पहिले प्रारम्भ हुए नहीं माने जा सकते। इसलिए उसका शासन स्थूलतः 510 से 487 ई०पू० के मध्य रखा जा सकता है। हमारा यह अनुमान सत्य होना चाहिए क्योंकि जैन ग्रन्थों के अनुसार उसके पुत्र पालक ने उसी वर्ष शासन करना प्रारम्भ किया जिस वर्ष महावीर की मुक्ति हुई (अर्थात् 486 ई० पू० में)। इसलिए प्रद्योत का शासन 509 से 486 ई० पू० के मध्य रखा जा सकता है। दूसरे, बौद्ध साक्ष्यानुसार अजातशत्रु प्रद्योत के आक्रमण से आशंकित था। लेकिन मगध और अवन्ति के बीच वत्स राज्य था जिस पर अधिकार किए बिना प्रद्योत के मगध तक पहुंचने की आशंका नहीं हो सकती थी। इसलिए 'मज्झिम निकाय' के इस साक्ष्य से परोक्षतः संकेतित है कि उस समय तक वत्स पर अवन्ति का अधिकार हो गया था। जैन ग्रन्थ 'आवश्यक कथानक' तथा भद्रेश्वर की 'कहावली' में प्रद्योत के प्रपौत्र मणिप्रभ को कौशाम्बी पर शासन करते दिखाया गया है। अतः हो सकता है कि वासवदत्ता के अपहरण का बदला लेने के लिए प्रद्योत ने वत्स पर आक्रमण करके कौशाम्बी को अपने अधीन कर लिया हो। हमारे विचार से जिस समय

1. दे०, इसी पाठ में आगे वत्स जनपद का इतिहास।
2. डेविड्स्, आर०, बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० 28; एस्सेज आन गुणाढ्य, पृ० 176।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रद्योत कौशाम्बी जीत रहा था उसी समय अजातशत्रु को उसके आक्रमण की आशंका हुई होगी।[1] ध्यातव्य है कि किसी भी साक्ष्य में उदयन के किसी उत्तराधिकारी की चर्चा नहीं है। इसलिए हमारा यह अनुमान है कि उदयन के काल में ही वत्स राज्य अवन्ति में सम्मिलित कर लिया गया था, सही हो सकता है। यह घटना 495-490 ई० पू० के मध्य कभी घटी होगी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रद्योत ने अपने राज्य की सीमा उत्तर में पंजाब तक, उत्तर-पूर्व में मथुरा तक, तथा पश्चिम में कौशाम्बी तक बढ़ाई थी। यह साम्राज्य बहुत विशाल था। परन्तु उसके उत्तराधिकारी उसके समान योग्य नहीं निकले। पुराणों में उसके चार उत्तराधिकारियों के नाम मिलते हैं—पालक (24 वर्ष), विशाखयूप (50 वर्ष), अजक (21 वर्ष) तथा नन्दिवर्द्धन (20 वर्ष)। इनके शासन के कुल 115 वर्ष होते हैं। इसलिए इस परम्परानुसार प्रद्योत-वंश का अन्त $487 - 115 = 372$ ई० पू० में हुआ। लेकिन इन राजाओं में विशाखयूप का नाम पुराणेतर ग्रन्थों में नहीं मिलता (शायद वह कोई स्थानीय राजा मात्र था) और नन्दिवर्द्धन (या अवन्तिवर्द्धन) को जैन ग्रन्थों में 30 वर्ष का समय दिया गया है। इसलिए अवन्तिवर्द्धन के शासन का अन्त प्रद्योत की मृत्यु के $24 + 21 + 30 = 75$ वर्ष बाद में अर्थात् 411 ई० पू० में हुआ होगा। यही वर्ष शिशुनाग के राज्यारोहण का है जिसे अवन्ति-विजय का श्रेय दिया जाता है। इसलिए उपर्युक्त पौराणिक परम्परा चाहे पूर्णतः सही न हो, सत्य के निकट अवश्य मानी जा सकती है (दे०, अध्याय 10, 12)।

चण्ड प्रद्योत महासेन का शासन काल बौद्ध धर्म के प्रचार की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं था। 'विनयपिटक' में कहा गया है कि अवन्ति—दक्षिणापथ में भिक्षु बहुत कम थे। बुद्ध से उसकी भेंट भी कभी नहीं हुई। वस्तुतः अवन्ति बुद्ध के प्रचार-क्षेत्र से कुछ हट कर पड़ता था। लेकिन 'थेरी गाथा अट्ठकथा' में कहा गया है कि प्रद्योत अपने राजपुरोहित महाकच्छायन (महाकात्यायन) के प्रभाव से बौद्ध धर्म की ओर उन्मुख हुआ था। उसने बुद्ध को अवन्ति लिवा लाने के लिए महाकच्छायन को भेजा था। बुद्ध ने महाकच्छायन को तो उपदेश दे दिया परन्तु वह स्वयं अवन्ति नहीं आए। तब महाकच्छायन ने प्रद्योत को स्वयं बौद्ध धर्म में दीक्षित किया और उत्साह के साथ धर्म का प्रचार किया। महाकच्छायन के अतिरिक्त अभयकुमार, इसिदासी, इसिदत्त, धम्मपाल, सोना आदि उत्साही बुद्ध भक्त अवन्ति के ही निवासी थे।

कोसल जनपद

छठी शती ई० पू० में कोसल उन प्रमुख राजाधीन महाजनपदों में से एक था

1. स्मरणीय है कि अजातशत्रु ने अपने पिता की हत्या 491 ई० पू० में की थी। उसके इस कार्य से रुष्ट होकर कोसल नरेश पसेनदि ने मगध से युद्ध किया था। प्रद्योत भी बिम्बिसार का मित्र रहा था। अतः हो सकता है अजातशत्रु को आशंका हुई हो कि प्रद्योत अपने मित्र बिम्बिसार की हत्या का प्रतिशोध लेने के बहाने से आक्रमण कर देगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक था जिनमें पूर्वी भारत में साम्राज्यिक सत्ता के लिये परस्पर संघर्ष हुआ। यह राज्य उस प्रदेश में था जिसे आजकल अवध कहते हैं। यह उत्तर में नेपाल की पहाड़ियों, दक्षिण में सर्पिका (या स्यन्दिका अथवा सुन्दरिका, आधुनिक सई) नदी, पूर्व में अचिरावती (राप्ती) नदी और पश्चिम में गोमती नदी व पंचाल जनपद से घिरा था। रायचौधुरी ने इसकी पूर्वी सीमा सदानीरा(गण्डक)नदी मानी है, परन्तु राप्ती के पूर्व में स्थित मल्ल व वज्जि संघ कोसल के अधीन नहीं थे। पालि ग्रन्थों में इसका विस्तार मगध के समान 300 योजन और काशी-कोसल के गांवों की संख्या अंग-मगध के गांवों की संख्या के समान 80,000 बताई गई है।[1]

कोसल के दक्षिण-पूर्व में मगध राज्य था, उत्तर-पूर्व में मल्ल और वज्जि गणराज्य, दक्षिण में चेदि और वंस तथा पश्चिम में पंचाल। मगध व वज्जि संघ के साथ कोसल की प्रतिद्वन्द्विता थी। एक बार जब कोसलराज प्रसेनजित् डाकू अंगुलिमाल को पकड़ने के लिये दौड़-धूप कर रहा था तब बुद्ध ने उससे पूछा था: 'राजन्! तुम पर राजा मागध श्रेणिक बिम्बिसार बिगड़ा है या वैशालिक लिच्छवि?'[2] कोसल और मगध के मध्य स्थित काशी राज्य के साथ भी कोसल की पुरानी शत्रुता थी। वस्तुतः प्राक्-बुद्ध युग में काशी का कोसल से कुछ वैसा ही सम्बन्ध था जैसे मगध का अंग से। जिस प्रकार प्राक्-बुद्ध युग में अंग और मगध की प्रतिद्वन्द्विता चली थी और कभी-कभी अंग ने मगध को परास्त भी किया था उसी प्रकार कहा गया है कि पूर्वकाल में काशी जनपद कोसल से अधिक समृद्ध और शक्तिशाली था।[3] जातकों में कोसल और काशी के संघर्ष की अनेक कथाएं मिलती हैं जिनमें काशी को अनेक बार विजयी भी दिखाया गया है।

कोसल का प्राक्-बुद्धयुगीन इतिहास तिमिराच्छन्न है। कहा जाता है कि दाशरथि राम के उपरान्त कोसल राज्य दो भागों में विभाजित हो गया जिनकी राजधानियां श्रावस्ती और कुशावती नगर थे। कुश को कुशावती नगर मिला और लव को श्रावस्ती। कालिदास के अनुसार कुश ने बाद में अयोध्या को अपनी राजधानी बनाया था। बौद्ध साहित्य में कोसल के अन्य प्रमुख नगर सेतव्या, उक्कट्ठा तथा कीटागिरि बताए गए हैं। दो भागों में बंट जाने के कारण कोसल की स्थिति कुछ दुर्बल हो गई और इसे अनेक बार काशी राज्य के आक्रमण का सामना करना पड़ा। अन्त में महाभारत-युद्ध के उपरान्त लेकिन गौतम बुद्ध के पूर्व किसी समय श्रावस्ती के दिवाकर नामक राजा ने कोसल को पुनः संयुक्त किया।[4] उसके समय से कोसल का पुनरुत्थान प्रारम्भ हुआ जिसके परिणामस्वरूप न केवल काशी वरन् पड़ोस की शाक्य, कोलिय और सम्भवतः कालाम,

1. विनय पिटक, हिन्दी अनुवाद, पृ० 14।
2. मज्झिम नि०, 2.4.6 (अंगुलिमाल सुत्त)।
3. विनय पिटक, पृ० 235।
4. पुराणों में श्रावस्ती के राजा दिवाकर को अयोध्या का स्वामी कहा गया है—
   वत्सद्रोहात्प्रतिव्योमस्तस्य पुत्रो दिवाकरः।
   तस्यैव मध्यदेशे तु अयोध्यानगरी शुभा॥ —मत्स्य०, 270 5।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा मोरिय आदि गणाधीन जातियां भी कोसल राज्य में सम्मिलित कर ली गईं। 'हरितमात' और 'वद्धकी सूकर' जातकों के अनुसार बुद्ध के समकालीन कोसल नरेश पसेनदि या प्रसेनजित् के पिता महाकोसल ने जब अपनी पुत्री महाकोसला का विवाह मागध बिम्बिसार से किया तो उसने महाकोसला को दहेज में काशी का एक गांव, जिसकी आय एक लाख मुद्राएं थीं, 'स्नान चूर्ण' द्रव्य रूप में दिया था। इससे स्पष्ट है कि काशी राज्य इस घटना के पूर्व ही कोसल में मिला लिया गया था[1]।

प्रसेनजित्

महाकोसल का पुत्र प्रसेनजित् (पालि साहित्य का पसेनदि) छठी शती ई० पू० का एक महत्त्वपूर्ण नरेश था। 'धम्मपद अट्ठकथा' के अनुसार महाकोसल ने अपने जीवन-काल में ही उसे राजपद पर अभिषिक्त कर दिया था। प्रसेनजित् की आयु ठीक गौतम बुद्ध की आयु के बराबर बताई गई है[2] इसलिये उसका जन्म भी 563 ई०पू० में हुआ माना जा सकता है। उसके प्रारम्भिक जीवन के विषय में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है, सिवाय इसके कि उसने तक्षशिला में शिक्षा पाई थी और बन्धुल मल्ल तथा महालि लिच्छवि उसके सहपाठी रहे थे। भगवान् बुद्ध से पहिली बार भेंट होने पर प्रसेनजित् ने बुद्ध की अपेक्षया कम उम्र और उनके 'हाल ही में' सम्बोधि प्राप्त करने की चर्चा की थी, इसलिये उनका समवयस्क होने के कारण वह स्वयं भी उस समय युवक ही रहा होगा। तिब्बती 'दुल्व' के अनुसार उसकी बुद्ध से भेंट सम्बोधि प्राप्त करने के तीसरे वर्ष अर्थात् गौतम के जीवन के 38वें वर्ष में हुई थी।[3] इसलिये प्रसेनजित् 38 वर्ष की आयु का होने के पूर्व ही राजा बन गया होगा। अतः उसका राज्यारोहण स्थूलतः 530 ई० पू० में हुआ माना जा सकता है और मृत्यु 483 ई० पू० में (जिस वर्ष भगवान् बुद्ध को निर्वाण प्राप्त हुआ; दे० आगे अध्याय 12)। ये तिथियां इस तथ्य से संगत हैं कि प्रसेनजित् मागध बिम्बिसार (जिसने सम्भवतः 543 ई०पू० में शासन करना प्रारम्भ किया) तथा अजातशत्रु (जो भगवान् बुद्ध के निर्वाण के समय शासन कर रहा था) दोनों का समकालीन था।

प्रसेनजित् कोसल का अन्तिम महान् नृपति था। उसके काल में कोसल राज्य का

1. रायचौधुरी का सुझाव है कि काशी को कोसल के कंस नामक राजा ने जीता होगा क्योंकि कुछ जातक कथाओं में उसे 'बारानसीग्गहो' उपाधि दी गई है।

2. 'धम्मचेतियसुत्त' में अपनी मृत्यु के कुछ ही दिन पहिले प्रसेनजित् कहता है कि वह और भगवान् बुद्ध दोनों कोसलवासी थे और उस समय अस्सी वर्ष के थे—

भगवाऽपि कोसलको अहम्पि कोसलको,
भगवाऽपि असीतिको अहम्पि असीतिको।

'दुल्व' में तो दोनों का जन्म एक ही दिन हुआ बताया गया है (राहिल, दि लाइफ आंव दि बुद्ध, पृ० 16)।

3. राहुल सांस्कृत्यायन ने 'अंगुत्तरनिकाय' के एक कथन के आधार पर प्रसेनजित् और बुद्ध की भेंट उनकी आयु के 56वें वर्ष में मानी है (बुद्धचर्या, पृ० 75)। यह मत अशुद्ध लगता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गौरव फिर से बढ़ता प्रतीत हुआ, यद्यपि अन्ततोगत्वा सम्भवतः उसकी अयोग्यता के कारण यह वृद्धि बुझते दीपक की अन्तिम ज्वाला मात्र सिद्ध हुई। वह निश्चित रूप से एक विशाल साम्राज्य का स्वामी था। अपने पिता से उसे उत्तराधिकार में कोसल के अतिरिक्त, जिसकी राजधानी सावत्थी (श्रावस्ती) थी, काशी राज्य भी प्राप्त हुआ था। उसका उल्लेख अनेकत्र काशी-कोसल नरेश के रूप में हुआ है।[1] 'मज्झिम निकाय' के 'पियजातिक सुत्तन्त' में स्वयं प्रसेनजित् कहता है कि उसे काशी और कोसल दोनों के लोग प्रिय हैं क्योंकि वह दोनों के कारण इतना सुख भोग रहा है। काशी प्रदेश पर उसका भाई जिसे 'काशिराज' कहा गया है, गवर्नर के रूप में शासन करता था और सेतव्या में पायासि नाम का व्यक्ति। काशी के अतिरिक्त कपिलवस्तु के शाक्य उसके प्रभुत्व को मानते थे और अभिवादन करके, करबद्ध खड़े होकर तथा उसकी सेवा में उपस्थित होकर उसे प्रसन्न करते थे।[2] 'सुत्तनिपात' के 'पवज्जासुत्त' में शाक्यकुमार के मुख से कहलाया गया है कि वह जन्म से शाक्य (साकिया नाम जातिया) और कोसल देश के निवासी (कोसलेसु निकेतिनी) राजा का पुत्र है। 'दीघनिकाय' के अग्गञ्ञसुत्त' में स्वयं भगवान् बुद्ध कहते हैं 'शाक्य लोग कोसलराज पसेनदिके अधीन हैं।' इसी प्रकार पसेनदि का यह सोचकर प्रसन्न होना कि 'बुद्ध भी कोसलक हैं, मैं भी कोसलक हुँ' यही प्रमाणित करता है। सम्भवतः रामगाम के कोलियों, पिप्फलिवन के मोरियों तथा केसपुत्त के कालामों का भी पसेनदि के साथ वैसा ही सम्बन्ध था एवं कुसीनगर और पावा के मल्ल स्वतन्त्रप्राय होते हुए भी उसके मित्र रहे प्रतीत होते हैं। 'संयुत्तनिकाय' में एक स्थल पर उसे पांच राजाओं से, जो उसके अधीन प्रतीत होते हैं (पंच राजानो पसेनदि पमुखा), एक साथ वार्तालाप करते हुए दिखाया गया है।[3] अपने पड़ौसी राज्यों के साथ उसके सम्बन्ध अच्छे ही थे। उदाहरणार्थ 'मज्झिम निकाय' में लिच्छवि गणाध्यक्ष चेटक के साथ उसके मधुर सम्बन्धों का उल्लेख है।[4]

प्रसेनजित् का मागध बिम्बिसार के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। 'धम्मपदटीका' के अनुसार दोनों ने एक दूसरे की बहिन से विवाह किया था। लेकिन जब अजातशत्रु ने अपने पिता की हत्या कर दी और प्रसेनजित् की बहिन महाकोसला अपने पति की मृत्यु से दुखित होकर स्वर्गवासिनी हो गई तो प्रसेनजित् ने क्रुद्ध होकर काशी के ग्राम की वह आय जो महाकोसला को दहेज में दी गई थी, मगध भेजनी बन्द कर दी। इसके परिणाम-स्वरूप उसका अजातशत्रु से युद्ध हुआ जिसका विस्तार से अध्ययन अजातशत्रु के शासन

1. उदाहरणार्थ 'लोहिच्चसुत' में—
   त किं मञ्ञसि लोहिच्च, ननुराजा पसेनदि—कोसलकासी कोसलं अज्झा वसतीति ?
2. करोन्ति खो सक्या रञ्ञे पसेनदिम्हि कोसलेनिपच्चकारं
   अभिवादनं पच्चुपट्ठानं अंजलिकम्मं सामीचिकम्मं। —दीघनिकाय।
3. इन राजाओं में एक उसका भाई काशिराज होगा, दूसरा सेतव्या का राजन्य पायासि, तीसरा शाक्य गणाध्यक्ष, चौथा कालाम गणाध्यक्ष और पांचवा कोई और राजा।
4. डि० पा० प्रो० नं० 2, पृ० 781।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काल के अन्तर्गत किया गया है। इस युद्ध में पहिले प्रसेनजित् हार गया लेकिन एक दूसरे युद्ध में, जो पहिले युद्ध के करीब 15-20 वर्ष बाद लड़ा गया था, उसने अजातशत्रु को हरा दिया। अन्त में दोनों पक्षों में सन्धि हो गई और प्रसेनजित् ने अपनी पुत्री वजिरा का विवाह अजातशत्रु से करके उसको काशी के ग्राम की विवादग्रस्त आय दहेज रूप में दे दी। इसके बाद अजातशत्रु के साथ उसके सम्बन्ध मधुर रहे प्रतीत होते हैं। रायचौधुरी का यह कथन निराधार है कि प्रसेनजित् ने अजातशत्रु के विरुद्ध लिच्छवियों को सहायता दी थी।[1]

प्रसेनजित् व्यक्तिगत जीवन में 'खाओ पियो और मौज करो' दर्शन का अनुयायी था। वह डटकर भोजन करता था जिससे उसका स्वास्थ्य खराब हो गया। 'संयुत्त निकाय' में बताया गया है कि बुद्ध ने भी उसे अल्पाहार के लाभ बताये थे। कुछ जातक कथाओं में 'मोटा' कहकर उसका मजाक उड़ाया गया है। उसका मन विषय भोग में विशेषतः रमता था। उसके अन्तःपुर में 500 रानियां[2] बताई गई हैं। इनमें कुछ का उल्लेख पालि साहित्य में मिलता है। इनमें एक रानी मागध बिम्बिसार की बहिन थी (धम्मपद टीका)। लेकिन उसकी अग्रमहिषी उसकी मागध रानी नहीं थी वरन् कोसल के प्रधान माली की रूपवती पुत्री मल्लिका थी जिस पर वह उस समय मोहित हो गया था जब उसने अजातशत्रु के विरुद्ध लड़े गए प्रथम युद्ध में मागध नरेश के हाथों पराज़ित होने के बाद उस माली के घर शरण ली थी। मल्लिका से उसे वजिरा नाम की पुत्री उत्पन्न हुई जो बाद में अजातशत्रु की रानी बनी। मल्लिका अत्यन्त चतुर महिला थी और प्रसेनजित् को बौद्ध धर्म के सिद्धान्त समझाती रहती थी। प्रसेनजित् उसके साथ राजकीय समस्याओं पर भी विचार विनिमय किया करता था। उपलगन्ध के एक धनकुबेर के भिक्षु हो जाने पर प्रसेनजित् ने उसकी पत्नी को भी अपनी रानी बना लिया था। उसने भगवान् बुद्ध का निकट सम्बन्धी बनने के लिये किसी शाक्य कुमारी से भी विवाह करना चाहा था। परन्तु 'भद्दसाल जातक' के अनुसार शाक्यों को अपनी रक्तशुद्धता का बड़ा अभिमान था। अतः उन्होंने छल करके उसका विवाह किसी शाक्य कुमारी से न करके शुद्धोदन के उत्तराधिकारी महानाम की नागमुण्डा नामक दासी के गर्भ से उत्पन्न वासभखत्तिया नाम की युवती से कर दिया।[3] इस दासी-पुत्री ने ही विडूडभ नामक राजकुमार को जन्म दिया था। प्रसेनजित् ने वासभखत्तिया और

1. रायचौधुरी, पो० हि० ए० इ०, पृ० 212-13।

2. इस संख्या को सही नहीं माना जा सकता। इससे मात्र इतना बोध होता है कि प्रसेनजित् ने अनेक विवाह किये थे। ध्यातव्य है कि ठीक यही संख्या बिम्बिसार की रानियों की भी बताई गई है।

3. वासभुखत्तिया से प्रसेनजित् का विवाह प्रसेनजित् की मृत्यु (483 ई० पू०) के कम से कम करीब 25 वर्ष पूर्व हुआ होगा क्योंकि उसकी मृत्यु के समय विडूडभ वयस्क हो चुका था और कुछ समय सेनापति रह चुका था। दूसरी तरफ यह विवाह प्रसेनजित् और बुद्ध की प्रथम भेंट (लगभग 525 ई० पू०) के उपरान्त रखा जाएगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विडूडभ दोनों को अपना हार्दिक प्रेम दिया तथा विडूडभ को अपना युवराज और सेनापति बनाया। लेकिन जब उसे यह ज्ञात हुआ कि वासभखत्तिया दासी-पुत्री है तो उसने दोनों को अपने प्रेम और उनके सम्मानपूर्ण पदों से वंचित कर दिया। बाद में बुद्ध के अनुरोध करने पर उन्हें उनके पूर्वपद मिले। उसकी अन्य रानियों में सुकुला और सोमा का (जो परस्पर बहिनें थीं) उल्लेख मिलता है।[1]

प्रसेनजित् और बौद्धधर्म

प्रसेनजित् न केवल भगवान् बुद्ध का समवयस्क था वरन् उनके प्रति श्रद्धाभाव भी रखता था। परन्तु यह कहना कठिन है कि उसने अपने परिवार के परम्परागत वैदिक धर्म को छोड़कर बौद्ध धर्म स्वीकृत किया था या नहीं। 'संयुत्तनिकाय' के 'दहरसुत्त' में एक स्थल पर उसके द्वारा त्रिरत्न (बुद्ध, धम्म और संघ) में निष्ठा प्रदर्शन और उपासकत्व स्वीकार का उल्लेख है जिसके आधार पर वी० सी० लाहा, मललसेकर तथा राक्हिल इत्यादि विद्वान् यह मानते हैं कि उसने बौद्ध धर्म में दीक्षा ले ली थी। लेकिन स्वयं बौद्ध साहित्य से ही ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे लगता है कि कम से कम प्रारम्भ में बुद्ध के प्रति आदर और संघ के प्रति उदारता का व्यवहार करने के बावजूद उसने व्यक्तिगत रूप से बौद्ध धर्म को स्वीकार नहीं किया था। अनाथपिण्डक के जेतवन का निर्माण पूर्ण हो जाने पर जब बुद्ध प्रथम बार श्रावस्ती आए तो प्रसेनजित् ने उनका स्वागत किया और इस बात पर हर्ष प्रकट किया कि उसके राज्य की भूमि बुद्ध जैसे महात्मा के चरणों से पवित्र हुई। लेकिन उसके मन पर बुद्ध के उपदेशों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। उल्टे उसने बुद्ध से प्रश्न किया था कि वह अवस्था में कम और बहुत तपोवृद्ध न होने पर भी अपने को सम्यक् बुद्ध क्यों कहते थे जबकि पूरणकस्सप और मंखलि गोसाल जैसे ज्येष्ठ और ज्ञान वृद्ध आचार्य वैसा नहीं करते थे। एक अन्य अवसर पर जब वह मिगारमातु प्रासाद में बुद्ध के पास बैठा था सात जटिल, सात निगंठ, सात अचेल, सात एकसाटक और सात परिव्वाजक वहां से गुजरे। प्रसेनजित् ने खड़े होकर बड़ी भक्ति से उनको प्रणाम किया और बुद्ध से उनकी आध्यात्मिक सिद्धियों की प्रशंसा की। एक अन्य अवसर पर जब बुद्ध स्वयं श्रावस्ती में ठहरे हुए थे प्रसेनजित् ने एक विशाल यज्ञ आयोजित करके 500 बैलों, 500 बछड़ों, 500 बछेड़ियों, 500 बकरियों और 500 भेड़ों की बलि दी थी। उसकी यज्ञधर्म और वैदिक शास्त्र में श्रद्धा का ज्ञान उसके द्वारा उक्कट्ठा के पोक्खरसादि, सालवती के लोहिच्च तथा ओपसादि के चंकी नामक ब्राह्मणों और सेतव्या के राजन्य पायासि को अनेक ग्राम दान दिए जाने से भी चलता है। ये दान सम्भवतः गुरुकुलों का व्यय वहन करने के लिये दिये गये थे। एक बार उसने अपनी रानी मल्लिका की इस बात पर आलोचना की थी कि वह बुद्ध के प्रत्येक वचन में बिना उनकी सत्यता की जांच किए विश्वास कर लेती है। 'मज्झिम निकाय' में एक

1. एक मतानुसार वे प्रसेनजित् की बहिनें थीं (उत्तर प्रदेश में बौद्ध का विकास, पृ० 109)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थल पर ओपसादि का चंकी नामक उपर्युक्त ब्राह्मण, जिसे प्रसेनजित् ने अनुदान दे रखा था, बुद्ध से मिलने जाता है। उस समय वह बुद्ध में श्रद्धा रखने वाले प्रमुख जनों को गिनाते हुए मागध विम्बिसार और उक्कट्ठा के पोक्खरसादि इत्यादि का तो उल्लेख करता है परन्तु प्रसेनजित् का नाम नहीं लेता। अगर प्रसेनजित् बौद्ध होता तो चंकी उसका नाम भी अवश्य लेता।

लेकिन बौद्ध धर्म में पूर्णतः आस्था न रखते हुए भी प्रसेनजित् ने बुद्ध को उचित सम्मान और बौद्ध संघ को मुक्त हृदय से आर्थिक सहायता दी तथा धम्म के प्रचार में कोई बाधा नहीं डाली। वह भगवान् बुद्ध से उनके प्रथम बार श्रावस्ती पधारते ही मिला और बाद में बराबर भेंट करता रहा। उसने 500 भिक्षुओं को नित्य भोजन देने के लिये एक सत्र खोल दिया था और संघ को अप्रतिम (असदिस) दान दिए थे। बौद्धों की दृष्टि में ऊंचा उठने के लिये उसने एक शाक्य कुमारी को अपनी रानी बनाने का प्रयास भी किया। अपनी रानी मल्लिका के कहने पर, जो बुद्ध के वचन को वेद-वाक्य समान मानती थी, उसने मल्लिकाराम नामक विहार बनवाया था। उसकी अन्य रानियां भी बुद्ध वचन सुनने की अभिलाषिणी रहती थीं। उनकी धर्मलाभ इच्छा पूरी करने के लिये उसने बुद्ध से अनुरोध किया था कि वह किसी विद्वान् भिक्षु को अन्तःपुर में प्रतिदिन प्रवचन करने के लिये भेजें। बुद्ध ने यह कार्य आनन्द को सौंपा। बुद्धद्वेषी पण्डितों ने इस अवसर का लाभ उठाकर आनन्द और प्रसेनजित् की रानियों को बदनाम करने की चेष्टा की थी। भगवान् बुद्ध के पास प्रसेनजित् को बहुत शान्ति मिलती थी। अपनी रानी मल्लिका और वृद्धा दादी की मृत्यूपरान्त वह सान्त्वना के लिये बुद्ध के पास ही गया था। 'कोसल संयुत्त' में ऐसे अनेक प्रवचन हैं जो विशेषतः उसी के लिये किये गये थे। वह बुद्ध से राजनीतिक और प्रशासकीय समस्याओं पर भी विचार-विनिमय किया करता था। अन्य धर्मावलम्बियों की तुलना में बौद्धों की सभाओं में मिलने वाले अनुशासन एवं शान्तिपूर्ण वातावरण तथा बौद्ध भिक्षुओं के उदात्त चरित्र से वह बहुत प्रभावित हुआ था। 'मज्झिम निकाय' में एक स्थल पर वह अपने पूरण और इसिदत्त नामक पदाधिकारियों की चर्चा करता है जो उससे भी अधिक बुद्ध का आदर करते थे। अपनी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व ही उसने भगवान् बुद्ध से मेदलुंप नामक स्थल पर भेंट की थी जो उसके जीवन की अन्तिम महत्त्वपूर्ण घटना सिद्ध हुई।

बुद्ध और बौद्ध धर्म के प्रति प्रसेनजित् का दृष्टिकोण राजकाराम विहार के निर्माण से सम्बद्ध घटना से स्पष्ट होता है। यह विहार उसने जेतवन के पास बनवाया था। कहा जाता है कि उसने यह स्थान बौद्धेतर धर्मावलम्बियों को एक विहार बनवाने के लिये दिया था। परन्तु उसके इस दान का बौद्धों ने विरोध किया। प्रसेनजित् ने पहिले तो बुद्ध के द्वारा भेजे गए उनके सभी प्रधान शिष्यों का अनुरोध ठुकरा दिया, लेकिन जब स्वयं बुद्ध इस विषय में उनसे बातें करने आए तो उसने उक्त विहार को अन्यत्र बनवाना स्वीकार कर लिया और उस विवादग्रस्त भूमि पर बौद्ध भिक्षुणियों के लिये राजकाराम विहार निर्मित करवाया। इन भिक्षुणियों में उसकी बहिन सुमना भी थी।

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बौद्ध साहित्य में कहा गया है कि प्रसेनजित् को बौद्धों के विरोधियों ने रिश्वत देकर जेतवन के समीप अपना विहार बनवाने की स्वीकृति ली थी। परन्तु यह कथन स्पष्टतः अनर्गल और पक्षपातपूर्ण है।

प्रसेनजित् के शासनकाल में श्रावस्ती में राजकाराम विहार के अतिरिक्त अन्य कई विहार बनवाए गये थे। इनमें एक जेतवन में था जिसे अनाथपिण्डक नामक धनपति ने राजकुमार जेत से भूमि पर काहापण बिछाकर खरीदा था। दूसरा था मिगारमातु प्रासाद जिसे विशाखा ने बनवाया था। वह अनाथपिण्डक से कम सम्पन्न नहीं थी। रानी मल्लिका द्वारा निर्मित मल्लिकाराम की चर्चा ऊपर की ही जा चुकी है।

प्रसेनजित् का प्रशासन

प्रसेनजित् के प्रशासन के विषय में कुछ छिट-पुट सूचनाएं विभिन्न बौद्ध ग्रन्थों में मिलती हैं। उदाहरणार्थ, इनमें उसके सिरिवड्ढ, आरोहन्त, उग्ग, मृगधर, काल, जुन्ह, सन्तति तथा दत्त नामक महामात्यों और मन्त्रियों का उल्लेख मिलता है। दत्त या मन्तिदत्त बाद में बौद्ध भिक्षु हो गया था। इन मन्त्रियों में सिरिवड्ढ, मृगधर, आरोहन्त तथा उग्ग की प्रतिष्ठा अन्य से श्रेष्ठतर थी। प्रसेनजित् के विभिन्न मन्त्रियों की सलाह कभी-कभी एक दूसरे से मेल नहीं खाती थी। जिसकी सलाह प्रसेनजित् को पसन्द नहीं आती थी उसे दण्ड भी भोगना पड़ता था। उदाहरणार्थ, जब प्रसेनजित् ने बौद्ध संघ को अत्यधिक धन दान दिया (असदिस दान) तो जुन्ह ने इसका समर्थन किया और काल ने विरोध।[1] प्राचीनकाल में मन्त्रियों से आशा की जाती थी कि वे राजा के हाथों होने वाले अनुचित व्यय को रोकेंगे। अशोक के मंत्रियों द्वारा राजकोष का धन दान में दिए जाने का विरोध तथा शक नरेश प्रथम रुद्रदामा के मन्त्रियों द्वारा सुदर्शन झील पर होने वाले व्यय पर रोक लगा दिया जाना इस प्रसंग में उदाहरणीय हैं।[2] स्पष्ट है अत्यधिक दान को अनुचित समझकर उसका विरोध करते समय काल ने अपने कर्त्तव्य का ही पालन किया था। परन्तु इससे गौतम बुद्ध बहुत अप्रसन्न हो गये और प्रसेनजित् ने सम्भवतः तथागत को प्रसन्न करने के हेतु काल को पदच्युत कर दिया। यह घटना तत्कालीन राज्यों पर बौद्ध धर्म के प्रभाव तथा प्रसेनजित् की एक प्रशासक के रूप में दुर्बलता, दोनों का प्रमाण है।

प्रसेनजित् के राज्य में एक अन्य प्रमुख पद महासेनापति का था। इस पर उसने अपने सहपाठी बन्धुल मल्ल को नियुक्त किया। इससे कोसल के स्थानीय पदाधिकारियों को बहुत ईर्ष्या हुई और उन्होंने बन्धुल के विरुद्ध प्रसेनजित् के कान भरने शुरू कर दिये। प्रसेनजित् इस मामले में कच्चे कान वाला व्यक्ति सिद्ध हुआ और बन्धुल के शत्रुओं के कहने में आकर उसने उसे एक काल्पनिक सीमान्त युद्ध का दमन करने के लिए भेजकर

1. दे०, डि० पा० प्रो० ने०।
2. जायसवाल, हिन्दू पोलिटी, पृ० 291।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार्ग में ही मरवा डाला। बाद में उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ और उसने बन्धुल के भाञ्जे दीघकारायण (=दीर्घचारायण) को महासेनापति बना दिया। यह घटना उसकी अदूरदर्शिता और अपने साथियों को ठीक से समझने में उसकी असमर्थता का प्रमाण है। वह स्पष्टतः न तो बन्धुल को ठीक से समझ पाया और न दीघकारायण को, क्योंकि उस के मन में पश्चात्ताप होने का अर्थ यह नहीं था कि दीघकारायण भी अपने मामा की अकारण हत्या को भूल गया था। दीघकारायण ने इसका प्रतिशोध कैसे लिया, यह हम आगे देखेंगे।

प्रसेनजित् के राजगुरु गग्ग तथा कुछ अन्य पदाधिकारियों—कोषाध्यक्ष मेघ, पुरोहित अग्गिदत्त, अग्गासनिय (मूल्य निर्धारक) अजितमानव आदि का उल्लेख पालि ग्रन्थों में हुआ है। इन ग्रन्थों से यह भी स्पष्ट है कि उसकी राजसभा में अनुशासनहीनता तथा न्यायालयों में झूठी गवाहियों का बोलबाला था। एक बार तो प्रसेनजित् ने स्वयं बुद्ध के सम्मुख अपनी राजसभा की इस निराशाजनक स्थिति को स्वीकार किया था (धम्मचेतिय सुत्तन्त)[1] और आकांक्षा व्यक्त की थी कि काश ! उसकी राजसभा में वैसा ही अनुशासन होता जैसा बौद्ध संघ में था। यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि बौद्ध साहित्य में चर्चित डाकू अंगुलिमाल प्रसेनजित् के राज्य में ही रहता था और उसके राजगुरु गग्ग का पुत्र था।

विडूडभ

प्रसेनजित् का अन्त बड़ा दुखद रहा। बन्धुल मल्ल की हत्या करवाकर और फिर उसी के भाञ्जे दीघकारायण (=दीर्घचारायण)[2] को अपना प्रधान सेनापति बनाकर उसने अपनी सेना मानो एक शत्रु को सौंप दी। इसी प्रकार उसने विडूडभ को भी अपमानित करने के बाद पुनः युवराज और सेनापति बना दिया।[3] इस स्थिति में दीघकारायण और विडूडभ का उसके विरुद्ध मिल जाना स्वाभाविक था। राज्य के अन्य पदाधिकारी भी प्रसेनजित् से बहुत प्रसन्न थे, ऐसा नहीं लगता। अपनी आयु के 80वें वर्ष वह बहुत खिन्नावस्था में गौतम बुद्ध से जो शाक्य प्रदेश में मेदलुंप स्थल पर ठहरे हुए थे, मिलने गया। बुद्ध के कक्ष में प्रविष्ट होने के पूर्व उसने अपने राजचिह्न—छत्र, खड्ग, मुकुट आदि—दीघकारायण को सौंप दिये। दीघकारायण उन्हें और सेना को लेकर (श्रावस्ती) चला गया और उसने वहां विडूडभ को राजा घोषित कर दिया। जब प्रसेनजित् को इसकी सूचना मिली तो वह अजातशत्रु से सहायता लेने राजगृह गया। लेकिन उसके वहां पहुंचने के पूर्व ही रात हो जाने के कारण नगर-द्वार बन्द हो गया। उसे नगर-द्वार के बाहर रुकना पड़ा जहां थकान और बिमारी के कारण उसकी मृत्यु हो गई। प्रातः होने पर अजातशत्रु को उसके आगमन एवं मृत्यु का पता चला और

1. दे० पाठक, वि०, पृ० 225-6।

2. कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' तथा कुछ अभिलेखों में दीर्घचारायण का अर्थशास्त्र के आचार्य के रूप में उल्लेख है।

3. जेत राजकुमार का नाम जेतवन विहार के अतिरिक्त अन्य किसी प्रसंग में नहीं आता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने अपने फूफा-श्वसुर-मामा का राजोचित संस्कार किया। क्योंकि बुद्ध से अन्तिम बार मिलते समय प्रसेनजित् ने अपनी और बुद्ध दोनों की उम्र 80 वर्ष बताई थी और क्योंकि बुद्ध का निर्वाण 80 वर्ष की ही आयु में 483 ई० पू० में हुआ था, इसलिये प्रसेनजित् की मृत्यु भी 483 ई० पू० में हुई मानी जा सकती है। कहा जाता है कि अजातशत्रु ने प्रसेनजित् की मृत्यु का बदला लेने के लिये विडूडभ पर आक्रमण करना चाहा था परन्तु अपने मन्त्रियों के समझाने पर रुक गया।

अपने पिता के अतिरिक्त विडूडभ शाक्यों पर भी अतिशय क्रुद्ध था क्योंकि एक बार कपिलवस्तु की यात्रा करने पर शाक्यों ने उसकी माता के दासी-पुत्री होने के कारण उस स्थान को, जहां वह बैठा था, दूध से धोकर पवित्र किया था। उस समय विडूडभ ने प्रतिज्ञा की थी वह राजा बनने पर शाक्यों का खून बहाकर उस स्थान को शुद्ध करेगा। और उसने ऐसा ही किया। उसके भीषण आक्रमण के परिणामस्वरूप शाक्य जन लगभग पूर्णतः विनष्ट हो गये।

विडूडभ के शासन का इसके बाद शीघ्र अन्त हो गया प्रतीत होता है। बौद्ध परम्परानुसार जब वह कपिलवस्तु पर सफल आक्रमण के बाद लौट रहा था, तब अचिरावती में आई भीषण बाढ़ में वह और उसकी सेना दोनों खत्म हो गए। जैन ग्रन्थों में भी इस बाढ़ का उल्लेख मिलता है जबकि "दुल्व" और शुआन-च्वांग के साक्ष्यानुसार विडूडभ की मृत्यु अग्नि में जलने से हुई थी।

विडूडभ के उपरान्त कोसल में इक्ष्वाकु वंश का अस्तित्व सम्भवतः कुछ समय तक और बना रहा। पुराणों में प्रसेनजित् के उपरान्त क्षुद्रक (अथवा शूद्रक=पालि साहित्य का विडूडभ?)[1] रणक (कुण्डक या कुलक), सुरथ (या विदूरथ) और सुमित्र—ये चार राजा गिनाये गये हैं। सुमित्र के साथ कोसल के स्वतन्त्र राजवंश का अन्त हो गया[2] और इस राज्य को शैशुनाग अथवा नन्द राजाओं ने मागध साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

वंस (वत्स) जनपद : उदयन

वंस राज्य जिसे 'महाभारत' आदि संस्कृति ग्रन्थों में वत्स तथा जैन ग्रन्थों में वच्छ कहा गया है, मगध और अवन्ति के मध्य स्थित था। इसके उत्तर में कोसल राज्य था (सीमा गंगा नदी), दक्षिण में चेति या चेदि राज्य (सीमा यमुना नदी), उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में क्रमशः सूरसेन, पंचाल और अवन्ति तथा पूर्व में काशी और उसके परे मगध। इसकी राजधानी कोसम्बि (=कौशाम्बी) नगर था जिसकी गणना 'दीघ निकाय' के, 'महापरिनिब्बानसुत्त' तथा 'महासुदस्सन सुत्त' में बुद्धयुगीन भारत

1. लेकिन विडूडभ का संस्कृत रूप वस्तुतः विदूरथ है। ध्यान देने की बात है कि पुराणों में प्रसेनजित् के प्रपौत्र का नाम सुरथ के स्थान पर विदूरथ भी दिया गया है। ऐसा लगता है कि उपर्युक्त सूची पूर्णतः सही नहीं है (पार्जिटर, डा० क० ए०, पृ० 12, टि० 63)।

2. इक्ष्वाकुणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के छः महानगरों में की गई है। कौशाम्बी की पहिचान कनिंघम ने इलाहाबाद से तीस मील से कुछ अधिक दक्षिण-पश्चिम की ओर यमुना के किनारे स्थित कोसम ग्राम से सुझाई थी। प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जी० आर० शर्मा के तत्त्वाधान में हुए उत्खनन में कोसम से घोषिताराम विहार के (जहां पालि ग्रन्थों के अनुसार भगवान् बुद्ध कौशाम्बी प्रवास के समय ठहरा करते थे) अवशेष मिल जाने से यह पहिचान असंदिग्ध हो गई है। कौशाम्बी एक काफी विशाल नगर रहा होगा। आजकल पभोसा ग्राम कोसम से ढाई मील दूर है, परन्तु एक जैन अभिलेख में पभोसा की पहाड़ी को कौशाम्बी के ठीक बाहर बताया गया है। कौशाम्बी नगर श्रावस्ती से विदिशा, उज्जैन और प्रतिष्ठान जाने वाले मार्ग पर पड़ता था। इसके अतिरिक्त यह सड़क-मार्ग द्वारा राजगृह से तथा नदी मार्ग द्वारा वाराणसी, पाटलिपुत्र व ताम्रलिप्ति से जुड़ा था।

भगवान् बुद्ध के काल में वत्स का शासक शतानीक परन्तप का पुत्र उदयन (पालि ग्रन्थों का उदेन) था। वह कुरु या भरत वंशोत्पन्न था। कुरु वंश महाभारत-युद्ध के उपरान्त, निचक्षु के काल में, बाढ़ आ जाने के कारण हस्तिनापुर छोड़कर कौशाम्बी प्रदेश पर शासन करने लगा था। शतानीक परन्तप ने, जो अर्जुन पाण्डव के बाद 21वीं या 22वीं पीढ़ी में हुआ, वत्स राज्य की महत्ता बढ़ाई थी। उसने अंग नरेश दधिवाहन को परास्त किया था और जैन साक्ष्यानुसार वज्जिसंघ के अध्यक्ष चेटक की पुत्री मृगावती से विवाह किया था। सम्भवतः उसी का पुत्र होने के कारण उदयन को 'स्वप्नवासवदत्ता' में 'वैदेहीपुत्र' कहा गया है।[1]

साम्राज्य-स्थापन के लिये हुए संघर्ष में भौगोलिक दृष्टि से उदयन की स्थिति दुर्बलतम थी क्योंकि वह चारों ओर से शक्तिशाली राज्यों—कोसल, मगध तथा अवन्ति—द्वारा घिरा था। स्वभाव से भी उदयन विशेष युद्धप्रिय नहीं लगता। अपनी स्थिति सुरक्षित करने के लिये उसने विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने की नीति का आश्रय लिया जो उसके रसिक स्वभाव के अनुकूल थी। अपने विवाह और प्रेम सम्बन्धों के कारण वह अनेक प्राचीन कथाओं में नायक के रूप में प्रसिद्ध है[2]। उसे अप्रतिम वीणावादक कहा गया है। उसके प्रेम प्रसंगों पर प्राचीन काल में अनेक नाटकों की रचना की गई। अवन्ति नरेश पज्जोत (प्रद्योत) की पुत्री वासुलदत्ता (वासवदत्ता) के साथ उसके विवाह की कथा 'धम्मपद अट्ठकथा' की 'उदेनवत्थु' में विस्तार से वर्णित है। बाद में इस कथा के आधार पर भास ने अपना सुप्रसिद्ध नाटक 'स्वप्नवासवदत्ता' लिखा। कहा जाता है कि अवन्ति-नरेश प्रद्योत ने, जो उदयन के प्रताप के कारण उससे ईर्ष्या तो करता था परन्तु वत्स पर आक्रमण करने की हिम्मत नहीं रखता था, उदयन को पकड़ने के लिये एक योजना बनाई। वह जानता था कि उदयन को हाथी पकड़ने का शौक था, इसलिए उसने लकड़ी का एक सुन्दर हाथी बनवाया और उसमें साठ सैनिक छिपाकर उसे दोनों

1. मिश्र, योगेन्द्र, एन अर्ली हिस्टरी ऑव वैशाली, पृ० 142।
2. संदर्भों के लिए दे०, पो० हि० ए० इ०, पृ० 202-3।

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राज्यों की सीमा पर रखवा दिया। उदयन धोखे में आ गया और पकड़ा गया। अब प्रद्योत ने उदयन के सम्मुख प्रस्ताव रखा कि अगर वह उसे हाथी पकड़ने की विद्या सिखा देगा तो मुक्ति पा जाएगा। उदयन ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया लेकिन शर्त रखी कि प्रद्योत उसे अपना गुरु मानकर शिष्यवत् प्रणाम करेगा। प्रद्योत पराजित शत्रु के सम्मुख झुकना नहीं चाहता था इसलिए उसने उदयन को इस बात के लिए सहमत कर लिया कि वह उस विद्या को इसी शर्त पर किसी अन्य व्यक्ति को सिखा देगा। लेकिन वह यह भी नहीं चाहता था कि कोई बाहरी व्यक्ति इस विद्या को सीख ले। इसलिए उसने इसके लिए अपनी कन्या वासवदत्ता को भेजा और उदयन को समझा दिया कि एक कुबड़ी स्त्री पर्दे के पीछे यह विद्या सीखेगी। लेकिन अन्ततोगत्वा वही हुआ जिसे प्रद्योत नहीं चाहता था—उदयन राजकुमारी वासवदत्ता को भगा कर कौशाम्बी ले गया और उसे अपनी रानी बनाया। 'धम्मपद अट्ठकथा' के अनुसार पज्जोत ने उदयन को अपनी पुत्री वासुलदत्ता को वीणावादन सिखाने के लिए नियुक्त किया था।

उदयन की कई अन्य रानियों के नाम साहित्य में उल्लिखित हैं। 'स्वप्नवासवदत्ता' में उसकी रानी पद्मावती का नाम मिलता है जिसे मगध नरेश दर्शक की बहिन बताया गया है। हर्ष के नाटक 'प्रियदर्शिका' में उसका विवाह अंग-नरेश दृढ़वर्मा की पुत्री आरण्यका से हुआ बताया गया है। हर्ष की कृति 'रत्नावली' में कहा गया है कि उसने अपनी रानी वासवदत्ता की दासी सागरिका से, जो वस्तुतः सिंहल की राजकुमारी थी, विवाह किया था। 'धम्मपद अट्टकथा' के अनुसार उदयन ने वासुलदत्ता के अतिरिक्त कुरुदेश के एक ब्राह्मण की पुत्री मागन्दिया तथा अपने कोषाध्यक्ष घोषक सेट्ठि के मित्र भद्दवतीय नामक अर्थपति की पुत्री सामावती से, जिसे घोषक ने पाला था, घोषक की इच्छा के विरुद्ध विवाह किया था। 'मिलिन्द पञ्हो' में कहा गया कि उदयन ने एक कृषक कन्या को अपनी रानी बनाया था। बाद में वह अपने पुत्र के नाम पर गोपालमाता नाम से विख्यात हुई।[1] कालिदास के 'मेघदूत' से ज्ञात होता है कि कालिदास के युग में अवन्ति देश में उदयन से सम्बन्धित अनेक कथाएं प्रचलित थीं—प्राप्यावन्तीनुदयनकथा कोविद ग्रामवृद्धान्।

उदयन के जीवन का राजनीतिक पक्ष कम ज्ञात है। उस के पास सम्भवतः हाथियों की एक शक्तिशाली सेना थी। इसी से उसकी ख्याति हस्तिचालक के रूप में हुई होगी। 'कथासरित्सागर' में उसकी दिग्विजय का वृत्तान्त दिया गया है। 'प्रियदर्शिका' के अनुसार उसने कलिंग देश जीता था और अपने श्वसुर दृढ़वर्मा को अंग राज्य वापिस दिलाया था। यह दृढ़वर्मा सम्भवतः वह अंग नरेश दधिवाहन है जिसे उदयन के पिता ने परास्त किया था।[2] लेकिन इन कथाओं में सत्यांश निर्धारित करना कठिन है।

1. एक अन्य परम्परानुसार गोपालमाता प्रद्योत की रानी थी (उपाध्याय, भ० सिं०, पूर्वो०, पृ० 298-9)।

2. वैदिक एज, पृ० 321, 327।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारे विचार से हर्ष की 'प्रियदर्शिका' में उदयन द्वारा कलिंग-विजय का उल्लेख स्वयं हर्ष की कलिंग-विजय की प्रतिध्वनि हो सकता है। अंग नरेश को उसका राज्य लौटाने की कथा हर्ष ने उदयन के पिता द्वारा अंग-विजय की कथा से प्रभावित होकर गढ़ ली होगी।

बुद्ध और बौद्ध धर्म के प्रति उदयन का प्रारम्भ में सद्भाव नहीं था। लेकिन उसकी रानी सामावती बुद्ध-वचन में श्रद्धा रखती थी। कहा जाता है कि जब बुद्ध कौशाम्बी के तीन सेट्ठियों की प्रार्थना पर वहां गए तो सामावती की दासी खुज्जुत्तरा बुद्ध का उपदेश सुनने जाने लगी। धीरे-धीरे वह त्रिपिटक के ज्ञान में प्रवीण हो गई। वह बुद्ध वचन का अनुवचन कर सकती थी। उन्हें उसने सामावती और उसकी सखियों को सुनाया। इससे सामावती को भी बुद्ध के धर्म में श्रद्धा हो गई। जब कभी बुद्ध राज-प्रासाद के निकट से गुजरते तो सामावती उन्हें गवाक्ष से देखा करती थी। मागन्दिया ने, जो बुद्ध से द्वेष रखती थी, इसकी सूचना राजा को दे दी। उसने आनन्द आदि कुछ भिक्षुओं को अपमानित करने के लिए भी कुछ व्यक्तियों को नियुक्त किया। आनन्द ने बुद्ध से इसकी शिकायत की परन्तु बुद्ध ने आनन्द को सहनशीलता का उपदेश किया। उधर उदयन ने सामावती से अप्रसन्न होकर उसका वध कराने का प्रयत्न किया परन्तु किसी अदृष्ट शक्ति के प्रभाव से रानी बच गई। पीछे राजा को पश्चात्ताप हुआ और उसने राजप्रासाद में भिक्षुओं को भोजन कराने की सामावती की प्रार्थना स्वीकार कर ली। वह राजप्रासाद की स्त्रियों द्वारा भिक्षुओं को वस्त्रदान देने का भी विरोधी था, परंन्तु आनन्द के समझाने पर उसके विचार बदल गए। उसकी बुद्ध से कभी भेंट हुई हो, ऐसा नहीं लगता। उल्टे "मातंग जातक" के अनुसार उसने सुरा के नशे में उन्मत्त होकर पिण्डोल भारद्वाज नामक प्रसिद्ध भिक्षु को उसके शरीर पर लाल चीटियों का छत्ता बंधवा कर पीड़ित किया था। लेकिन बाद में पिण्डोल की सहनशीलता और क्षमा भावना से उसके हृदय में बड़ा पश्चात्ताप हुआ। यही कथा "संयुत्तनिकाय" की "अट्ठ-कथा" में भी मिलती है और पिण्डोल भारद्वाज द्वारा उसे दिया गया एक उपदेश "संयुत्तनिकाय" के "भारद्वाज सुत्त" में दिया गया है। इसके अनुसार पिण्डोल ने घोषिता-राम विहार में उदेन को यह बात समझाई थी कि युवकगण भिक्षु होकर संघ में सम्मि-लित क्यों हो जाते हैं। इस उपदेश से प्रभावित होकर राजा ने त्रिरत्न में अपनी श्रद्धा प्रकट की। इस परम्परा का समर्थन, कि उदयन ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था, एक चीनी अनुश्रुति से होता है। इसके अनुसार उदयन ने अपने हाथ से बुद्ध की एक सुवर्ण प्रतिमा बनाई थी जिसकी चन्दन की एक अनुकृति शुआन-च्वांग अपने साथ चीन ले गया था।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उदयन एक शक्तिशाली नरेश था और उसने कुछ विजयें भी प्राप्त की थीं। उसका कोई उत्तराधिकारी ज्ञात नहीं है। उसकी पटरानी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र बोधि की रुचि बौद्ध धर्म में थी। जातक कथा 353 के अनुसार

1. बील, रिकार्डस् ग्रॉव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, 1, भू०, पृ० 20।

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसने भग्गदेश में सुंसुमारगिरि पर बने अपने कोकनद नाम प्रासाद में गृह प्रवेश के अवसर पर बुद्ध को निमन्त्रित किया था। उस समय बुद्ध ने उसे जो उपदेश दिया उससे वह उनका श्रद्धालु उपासक बन गया (मज्झिम निकाय, बोधिराजकुमार सुत्तन्त)।[1] उसने अपने पिता के उपरान्त शासन किया या नहीं, यह अज्ञात है। ऐसा प्रतीत होता है उदयन के जीवनकाल में या उसके कुछ समय उपरान्त ही इस राज्य पर अवन्ति का अधिकार हो गया। जैन ग्रन्थ 'आवश्यक कथानक' में प्रदत्त मणिप्रभ की कथा के अनुसार, जिसे भद्रेश्वर ने अपनी "कहावली" में भी उद्धृत किया है, अवन्ति-नरेश प्रद्योत का एक प्रपौत्र मणिप्रभ कौशाम्बी पर शासन करता था और दूसरा, जिसका नाम अवन्तिसेन था, उज्जैन पर।[2] उसके उपरान्त लेकिन नन्दों के पहिले किसी समय वत्स देश मागध साम्राज्य का अंग बन गया।

उदयन की तिथि

उदयन की तिथि पर अभी किसी विद्वान् ने गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया है। प्राचीन परम्पराओं में भी इस विषय में निश्चित सूचनाएं नहीं मिलतीं। बाद में बौद्ध धर्म में उदयन की गणना उन सात व्यक्तियों में की गई जिनको बुद्ध का सहजात (उसी दिन उत्पन्न जिस दिन बुद्ध जन्मे थे) बताया गया है।[3] परन्तु यह सर्वथा असम्भव है। हमारे विचार से उदयन का काल केवल सापेक्ष रूप से निर्धारित किया जा सकता है। इस विषय में हम निम्नलिखित तथ्यों की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे :—

(1) जैन साक्ष्यानुसार उदयन की माता मृगावती लिच्छवि गणाध्यक्ष चेटक की सात पुत्रियों में से एक थी।[4] भास ने अपने नाटक "स्वप्नवासवदत्ता" में शतानीक-पुत्र उदयन को 'वैदेही पुत्र' कह कर इसका परोक्षतः समर्थन किया है। क्योंकि मृगावती विदेह प्रदेश की रहने वाली थी इसलिए उसका पुत्र "वैदेही पुत्र" कहला सकता था। अब, चेटक का अन्त लगभग 480 ई० पू० में वज्जि संघ पर अजातशत्रु के आक्रमण के कारण हुआ। इसलिए चेटक का दौहित्र होने के कारण उदयन सापेक्ष रूप से चेटक से पर्याप्त कम उम्र का और इसलिए 480 ई०पू० में एक युवक अथवा अधेड़ रहा होगा।

(2) उदयन के समान अजातशत्रु भी चेटक की एक पुत्री का पुत्र अर्थात् चेटक का दौहित्र था। इसलिए उदयन स्थूलतः अजातशत्रु की (जिसने लगभग 505 ई०पू० में अपने पिता को बन्दी बनाया तथा जिसका अभिषेक 491 ई०पू० में हुआ) पीढ़ी का

1. इस घटना का उल्लेख 'धोनसाख जातक', 'चुल्लवग्ग' व 'अंगुत्तर नि०' में भी मिलता है (उपाध्याय, भ० सि०, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० 267)।
2. पो० हि० ए० इ०, 204, टि० 1।
3. कैं० हि० इ०, 1, पृ० 167।
4. मिश्र, योगेन्द्र, अ० हि० बै०, पृ० 142।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा होना चाहिए।

(3) उदयन और प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता परस्पर प्रेम करते थे और वासवदत्ता उदयन के साथ अवन्ति से कौशाम्बी भाग आई थी। अतः उदयन प्रद्योत से, जिसकी तिथि हमने 510-487 ई० पू० निर्धारित् की है, कुछ कम उम्र का ही रहा होगा।

(4) उदयन का कोई भी उत्तराधिकारी ज्ञात नहीं है। उल्टे, जैन साक्ष्यानुसार, वत्स पर इस राज्य को प्रद्योत या उसके किसी निकट उत्तराधिकारी ने अपने अधिकार में कर लिया था। बौद्ध परम्परानुसार एक बार अजातशत्रु ने प्रद्योत के आक्रमण की आशंका से अपनी राजधानी राजगृह को प्राचीर से रक्षित करवाया था। हमारा विचार है कि अजातशत्रु को प्रद्योत के आक्रमण की आशंका वत्स राज्य के (जो अवन्ति और मगध के मध्य स्थित था) पतन के पूर्व नहीं हो सकती थी। इसलिये वत्स का पतन प्रद्योत की मृत्यु (लगभग 489 ई०पू०) के पूर्व, परन्तु अजातशत्रु के शासन काल में रखा जाना चाहिए।

हमारा सुझाव है कि उदयन के शासन का अन्त और वत्स राज्य का पतन 495-490 ई० पू० में कभी हुआ मानने से हमारे सभी साक्ष्य परस्पर संगत हो जाते हैं। परन्तु उदयन का जन्म 563 ई० पू० में भगवान बुद्ध के साथ नहीं हुआ होगा क्योंकि उस अवस्था में वत्स के पतन के समय उदयन की आयु करीब सत्तर वर्ष की होती जबकि हमारे सभी साक्ष्य बताते हैं कि वह उस समय एक युवक और स्थूलतः अजातशत्रु की आयु का था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 5

मगधेतर राजाधीन जनपद : अन्य

अंग, काशी और चेदि

बुद्धकाल के प्रारम्भ में **अंग** पूर्वी भारत का एक महत्त्वपूर्ण जनपद था। बुद्धकाल में यह बिम्बिसार द्वारा जीता गया और मगध में मिला लिया। पालि साहित्य में 'अंग-मगध' द्वन्द्व समास का प्रायः प्रयोग किया गया है। प्राक्-बुद्धयुग में भी अंग और मगध के घनिष्ठ सम्बन्धों का संकेत 'गोपथ ब्राह्मण' में 'अंग मगध' के सम्मिलित उल्लेख तथा 'अथर्ववेद' के इस कथन से मिलता है कि मागधों के समान अंगवासी भी व्रात्य अर्थात् वैदिक संस्कृति के बहिर्भूत थे।[1] उरुवेला अंग और मगध की सीमा पर था क्योंकि 'विनय पिटक' में कहा गया है कि जटिल संन्यासी उरुवेल कस्सप ने उरुवेला में जो महायज्ञ किया था उसमें मगध और अंग के लोग, जो पास में रहते थे, भोज्य पदार्थ लेकर आए थे। अंग और मगध के बीच में चम्पा नदी (आधुनिक चांदन) बहती थी। अंग की पूर्वी सीमा सम्भवतः राजमहल की पहाड़ियां थीं। उत्तरी सीमा गंगा नदी[2] और दक्षिणी सीमा समुद्र[3]। कनिंघम का यह मत कि अंग राज्य का विस्तार स्थूलतः बिहार के भागलपुर व मुंगेर जिलों में (पार्जिटर के अनुसार पूर्णिया जिले के पश्चिमी भाग में भी) था, सामान्यतः माना जाता है।[4]

अंग जनपद के चार प्रमुख नगरों का वर्णन पालि त्रिपिटक में मिलता है। उनके नाम हैं चम्पा, भद्दिय, अस्सपुर और आपण। चम्पा अंग की राजधानी थी। यह चम्पा तथा गंगा नदियों के संगम पर बसी थी। इसका पुराना नाम मालिनी ('महाभारत') था। इसे बुद्धकाल के छः महानगरों में गिना जाता था। यह अपनी गग्गरा नामक पुष्करिणी के कारण भी बड़ी प्रसिद्ध थी। 'महागोविन्द सुत्तन्त' के अनुसार चक्रवर्ती राजा रेणु के मन्त्री महागोविन्द ने इसकी स्थापना की थी। कनिंघम ने इसकी पहिचान भागलपुर से 24 मील पूर्व में स्थित चम्पापुर और चम्पानगर नामक गांवों से की है। उनका यह मत प्रायः स्वीकृत किया जाता है। 'महाजनक जातक' में चम्पा

1. दे०, उपाध्याय, भ० सि०, बु० का० भू०, पृ० 343-4।
2. पार्जिटर व उपाध्याय के अनुसार अंग राज्य उत्तर में कोसी नदी तक विस्तृत था। राय-चौधुरी इससे असहमत है (पो० हि० ए० इ०, पृ० 106 टि० 2)।
3. 'कथासरित्सागर' में अंग के एक नगर विटंकपुर को समुद्र तट पर स्थित बताया गया है।
4. उपाध्याय, पूर्वो०, पृ० 344-45।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को मिथिला से साठ योजन दूर बताया गया है।

चम्पा का प्राचीन इतिहास तिमिराच्छन्न है। 'महाभारत' के अनुसार दुर्योधन ने कर्ण को अंग का राजा बनाया था। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में अंग वैरोचन को मूर्द्धाभिषिक्त नरेशों में गिनाया गया है। जैन साक्ष्य में दधिवाहन नामक अंगराज की पुत्री चन्द्रबाला या चन्दना को महावीर का धर्म स्वीकार करने वाली प्रथम स्त्री बताया गया है। दधिवाहन को वत्स नरेश शतानीक ने परास्त किया था जिसके कारण फैली अव्यवस्था में चन्दना डाकुओं के हाथ में पड़ गई थी। उस समय सम्भवतः मगध अंग में सम्मिलित था। 'विधुर पण्डित जातक' में राजगृह को अंग राज्य में स्थित बताया गया है। लेकिन इसके बाद शीघ्र ही मगध में बिम्बिसार का उदय हुआ जिसने अंग को जीतकर मागध साम्राज्य का प्रान्त बना डाला।

काशी (कासि रटठं) जनपद प्राक्-बुद्ध युग का सम्भवतः सबलतम राष्ट्र था। लेकिन बुद्ध के आविर्भाव के पूर्व ही यह कोसल राज्य में मिला लिया गया था। इसके पूर्व में मगध था, पश्चिम में वंस (वत्स), उत्तर में कोसल और दक्षिण में सोन नदी। कुछ जातक कथाओं में इसका विस्तार 300 योजन बताया गया है। 'भद्दसाल' तथा 'धोणसख' जातकों में काशिराज को सब राजाओं में अग्रणी बनने का प्रयास करता दिखाया गया है (सब्बराजानं अग्गराजा)। जैन ग्रन्थों में काशी नरेश अश्वसेन को तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का पिता कहा गया है। 'महावग्ग' में एक स्थान पर बुद्ध काशी के प्राचीन गौरव का स्मरण इन शब्दों में करते हैं : "भिक्षुओं ! भूतकाल में ब्रह्मदत्त नाम का काशिराज था जो आढ्य, महाधनवान, महाभोग सम्पन्न, महाबली, महान् वाहनों वाला, महान् विजित (राष्ट्र) वाला था। उसके कोष और कोष्ठागार भरे हुए थे।" प्राक्-बुद्ध युग में मध्य देश में सर्वोच्च सत्ता के लिए काशी और कोसल में लम्बा संघर्ष चला जिसकी विविध अवस्थाओं की गूञ्ज जातक कथाओं में सुरक्षित है। कुछ जातक कथाओं में काशी को कोसल पर विजय पाते दिखाया गया है[1] और कुछ में कोसल को काशी पर।[2] विशुद्धानन्द पाठक ने इनको व्यवस्थित करके इस संघर्ष का क्रमबद्ध इतिहास निश्चित करने का रोचक प्रयास किया है।[3] काशी के राजाओं का उल्लेख जातक कथाओं में प्रायः ब्रह्मदत्त नाम से किया गया है। भरतसिंह उपाध्याय के अनुसार यह उनका कुल नाम रहा होगा। 'महाभारत' में सौ ब्रह्मदत्तों (शतं वै ब्रह्मदत्तानाम्) के उल्लेख से भी यही संकेतित है।

काशी जनपद की राजधानी वाराणसी नगर था जो वरुणा और असि नदियों से घिरा होने के कारण इस नाम से विख्यात हुआ। यह प्रयाग से 80 मील पूर्व की

1. यथा 'कोसम्बी जातक', 'कुणाल जातक,' 'ब्रह्मदत्त जातक'। 'सोणनन्द जातक' में काशी नरेश मनोज कोसल के साथ अंग-मगध को भी जीतता है।

2. यथा 'महासीलव जातक', 'घटजातक', 'एकराज जातक', 'सेय्य जातक' 'तेसकुन जातक' आदि।

3. पाठक, वि०, हिस्टरी ऑव कोसल, पृ० 206-215।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओर गंगा के उत्तरी तट पर स्थित है। 'गुत्तिल जातक' में इसे जम्बुद्वीप का सर्वश्रेष्ठ नगर बताया गया है। 'तण्डुलनालि' व 'सम्भव' जातकों में इसका परकोटा 12 योजन का कहा गया है जबकि मिथिला और इन्दपत्त का केवल सात-सात योजन का था। यह नगर अनेक नामों से विख्यात था। यह अपने वाराणसेय्यक तथा कासिक नाम से विख्यात बहुमूल्य वस्त्रों तथा चन्दन के लिए प्रसिद्ध था एवं व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र था। यह स्थल मार्ग द्वारा राजगृह, श्रावस्ती व कौशाम्बी आदि से जुड़ा था। इसके समीप स्थित मृगदाव या सारनाथ स्थल बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र बना।

बुद्ध के आविर्भाव के पूर्व ही काशी राज्य पर कोसल ने अधिकार कर लिया। 'हरितमात' व 'वड्ढकीसूकर' जातकों के अनुसार कोसलराज प्रसेनजित के पिता महाकोसल ने अपनी पुत्री कोसलादेवी का विवाह जब मगध-नरेश बिम्बिसार से किया तो कोसलादेवी को काशी ग्राम की एक लाख आय स्नान चूर्ण (उवटन)[1] के व्यय के लिए दहेज में दी गई थी। इससे कोसल का काशी पर आधिपत्य निश्चितरूपेण प्रमाणित होता है।

चेदि या चेतिय जनपद वत्स जनपद के दक्षिण, काशी के पश्चिम, अवन्ति के पूर्व, एवं सूरसेन तथा मत्स्य के दक्षिण-पूर्व में था। मललसेकर ने चेदि जनपद को यमुना के पूर्व में बताया है, परन्तु यह गलत है। यह प्रदेश निश्चित रूप से यमुना के दक्षिण में था और यह नदी इसे वत्स से पृथक् करती थी।[2] इस प्रकार चेदि जनपद का विस्तार आधुनिक बुन्देलखण्ड और निकटवर्ती प्रदेशों में रहा होगा। मध्यकाल में चेदि राज्य की सीमा नर्मदा तक विस्तृत हुई। उस समय इसकी राजधानी त्रिपुरी नगरी थी। 'चेतिय जातक' में अन्तिम चेदि नरेश उपचर के पांच पुत्रों को हत्थिपुर (हस्तिनापुर), अस्सपुर (अंग देश में), सीहपुर (लाल प्रदेश में), अहिच्छत्रा (उत्तर पञ्चाल) तथा दद्दरपुर (हिमवन्त प्रदेश में)—इन पांच नगरों के बसाने का श्रेय दिया गया है। इसी जातक में चेतिय जनपद की राजधानी सोत्थिवती बताई गई है जिसकी पहिचान नन्दलाल दे ने 'महाभारत' में उल्लिखित शुक्तिमती या शुक्तिसाह्वय से की है। पार्जिटर और रायचौधुरी ने उसको बांदा के समीप स्थित माना है परन्तु भ० सि० उपाध्याय का कहना है कि शुक्तिमती हस्तिनापुर के पश्चिम में रही होगी।[3] सहजाति चेतिय राज्य का दूसरा प्रसिद्ध नगर था। इसकी पहिचान

1. तु०, मध्यकालीन बेगमों का खर्च-ए-पानदान।

2. 'वेस्सन्तर जातक' में कहा गया है कि कुमार वेस्सन्तर सिवि राष्ट्र के जेतुत्तर नगर से चल कर हिमालय गये थे और मार्ग में चेत रट्ठ के मातुल नगर से गुजरे थे जो जेतुत्तर से 30 योजन दूर था। रीज डेविड्स ने इस आधार चेतरट्ठ की पहिचान नेपाल से की है (बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० 19)। बी० सी० लाहा उनसे सहमत हैं (ए० इ० यू०, पृ० 9)। परन्तु अब जेतुत्तर की पहिचान चित्तौड़ के समीपस्थ नगरी से की जाती है। नेपाल की स्थिति उससे 30 योजन दूर कैसे हो सकती है? भरतसिंह उपाध्याय का कहना है कि हस्तिनापुर के पश्चिम में एक अन्य परवर्ती चेदि राष्ट्र था जिसकी राजधानी शुक्तिमती रही होगी (बु० का० भू०, पृ० 434)।

3. उपाध्याय, पृ० 428; अन्य सन्दर्भों के लिए दे०, रायचौधुरी, पृ० 128-30।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इलाहाबाद से 8-9 मील दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित भीटा के साथ इस स्थान से प्राप्त एक मुहर से प्रमाणित है जिस पर 'सहजातिये निगमस' लेख लिखा है। कौशाम्बी के समीपस्थ भद्दवती कस्बा भी चेतियरट्ठ में था।

चेदि जन भारत की एक अत्यन्त प्रसिद्ध और प्राचीन जाति थे। बाद में चेदि वंश की एक शाखा कलिंग में बसी जिसमें सुप्रसिद्ध नरेश खारवेल उत्पन्न हुआ था। चेदि राजाओं का उल्लेख 'ऋग्वेद', 'महाभारत' और जातक कथाओं में मिलता है। 'चेतिय जातक' में चेदि राजाओं के आदि पूर्वजों में महासम्मत और मन्धाता (मान्धाता) को गिनाया गया है। बुद्धकाल में चेदि राज्य का घनिष्ठ सम्बन्ध वंस या वत्स राज्य से था। सम्भवतः इसीलिए 'जन वसभसुत्त' में इन दोनों का द्वन्द्व समास के रूप में साथ-साथ उल्लेख है। पालि त्रिपिटक व उसकी अट्ठकथाओं से प्रमाणित है कि भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों ने न केवल चेदि राज्य की यात्रा की थी वरन् उनके जीवन काल में इस प्रदेश के सहजाति, भद्दवती तथा अन्य स्थल बौद्ध धर्म का अच्छा खासा केन्द्र हो गए थे।[1]

कुरु तथा पञ्चाल

बुद्धकाल में कुरु जनपद सूरसेन और मच्छ जनपदों के उत्तर में तथा पंचाल के पश्चिम में था। 'जनवसभसुत्त' में उसका उल्लेख पंचाल के साथ हुआ है (कुरु पंचालेसु)। इस जनपद के उत्तर तथा पश्चिम में उत्तरापथ था। यह आधुनिक उत्तर प्रदेश के मेरठ, मुजफ्फरनगर, बुलन्दशहर, सहारनपुर जिलों, दिल्ली राज्य तथा हरियाणा के कुरुक्षेत्र-थानेसर प्रदेश में विस्तृत था। 'महासुतसोम जातक' में इसका विस्तार 300 योजन बताया गया है (तियोजनसते कुररटटे)। 'मज्झिम निकाय' के 'रट्ठपालसुत्तन्त' में कुरुदेश की समृद्धि का वर्णन है। 'सुमंगलविलासिनी' में कुरुदेश की सुन्दर ऋतुओं और उसके निवासियों के उत्तम स्वास्थ्य की प्रशंसा है।[2] 'धूमिकारि जातक' और 'दस ब्राह्मण जातक' में यहां के राजाओं की युधिट्ठिल गोत्र में उत्पन्न अर्थात् युधिष्ठिर पाण्डव का वंशज बताया गया है। इसकी राजधानी इन्दपट्ट इन्दपत्त या इन्दपत्तन (=इन्द्रप्रस्थ, देहली के निकट) थी। इसका विस्तार सात योजन बनाया गया है। कुरुदेश का एक अन्य प्रसिद्ध नगर हत्थिपुर या हत्थिनीपुर (=हस्तिनापुर) था। इसके अन्य उल्लेखनीय कस्बे और ग्राम थे थुल्लकोट्ठित, कम्मासदम्म, कुण्डी, वारणावत आदि। निचक्षु के शासन काल में पाण्डव वंश की मुख्य शाखा हस्तिनापुर में बाढ़ आ जाने के कारण कौशाम्बी चली गई थी। प्राक्-बुद्ध युग में यहां पाण्डवों के शाखा वंश के राजाओं ने ही शासन किया होगा। जातकों में कुरु-देश के राजाओं में धनञ्जय (जो अर्जुन पाण्डव का भी एक नाम था), कोरव्य तथा सुतसोम के नाम मिलते हैं। जैन 'उत्तराध्ययन सूत्र' में कुरु देश के इषुकार नगर पर

1. सन्दर्भों के लिए दे०, उपाध्याय, पूर्वो०, पृ० 435।
2. सन्दर्भों के लिए दे०, वही, पृ० 404 अ०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शासन करने वाले इषुकार नामक राजा का उल्लेख मिलता है।[1] बुद्ध के काल में कुरु देश के राजा कोरव्य का उल्लेख मिलता है जो थुल्लकोट्ठित में निवास करता था। वह अपने राज्य के सेट्ठिपुत्र रट्ठपाल के बौद्ध धर्म में दीक्षित होने पर उससे मिला था। उस समय उसकी आयु अस्सी वर्ष की थी। 'पपंचसूदिनी' में कहा गया है कि बुद्ध के काल में कुरुदेश में कोई बौद्ध विहार नहीं था, अतः यहां की यात्रा करने पर भगवान् बुद्ध कम्मासदम्म के समीपस्थ वन में निवास किया करते थे।

पंचाल जनपद, जो रोहिलखण्ड और दोआब के मध्यवर्ती भाग में था, कुरु, सूरसेन और कोसल जनपदों के मध्य स्थित था। 'महाभारत' 'दिव्यावदान' तथा जातक कथाओं में इसे उत्तर पञ्चाल व दक्षिण पञ्चाल इन दो भागों में बांटा गया है। भागीरथी (गंगा) नदी इनकी मध्यवर्ती सीमा थी। 'महाभारत' के अनुसार उत्तर पञ्चाल की राजधानी अहिच्छत्रा या छत्रावती (आधुनिक रामनगर जो उत्तर प्रदेश के बरेली जिले में है) थी और दक्षिणी पञ्चाल की, जो गंगा से चम्बल तक विस्तृत था, काम्पिल्य नामक नगर (फर्रुखाबाद जिले में फतहगढ़ से 28 मील दूर)। जातकों में कम्पिल्य नाम राष्ट्र व नगर दोनों अर्थों में प्रयुक्त है। पालि ग्रन्थों की रचना के समय पञ्चाल में बदायूं, एटा, मैनपुरी व फर्रुखाबाद जिले तथा निकटवर्ती प्रदेश सम्मिलित प्रतीत होते हैं। पञ्चाल के अन्य प्रसिद्ध नगर संकिस्स (या संकस्स, संस्कृत संकाश्य), आलवी, कण्णकुज्ज (काञ्यकुब्ज) तथा सोरेय्य (सोरों) थे।

जातक कथाओं से प्रतीत होता है कि उत्तर पञ्चाल के लिए दक्षिणी पञ्चाल और कुरुक्षेत्र में संघर्ष चलता रहता था जिसमें कभी एक पक्ष जीतता था कभी दूसरा।[2] जातक कथाओं, जैन 'उत्तराध्ययन सूत्र,' 'स्वप्नवासवदत्ता' तथा 'रामायण' आदि में पञ्चाल के कई प्राक्-बुद्धयुगीन राजाओं के नाम मिलते हैं जिनमें दुर्मख (दुम्मुख), चूलनि ब्रह्मदत्त तथा सञ्जय उल्लेखनीय हैं। जैन ग्रन्थों के अनुसार सञ्जय नामक इस नरेश ने जिन धर्म को स्वीकार किया था। बौद्धों के अनुसार बुद्ध के प्रसिद्ध शिष्य स्थविर विसाख पंचालसुत पंचालवासी ही थे।

रायचौधुरी का अनुमान है कि बुद्ध-काल में या इसके बाद कुरु तथा पञ्चाल जनपद गणतन्त्रात्मक हो गए थे।[3] उनके इस अनुमान का आधार कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' है जिसमें कुरुओं और पंचालों का उल्लेख 'राजशब्दोपजीवी' संघों के अन्तर्गत हुआ है। परन्तु 'अर्थशास्त्र' के आधार पर इस प्रकार के निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है। बहुत से विद्वानों के अनुसार यह ग्रन्थ एक परवर्ती रचना है जिस में बहुत सी बातों का यथार्थ स्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं है।[4]

1. रायचौधुरी, पूर्वो०, पृ० 134।
2. उपाध्याय, पृ० 412।
3. पो० हि० ए० इ०, पृ० 134, 137।
4. दे० गोयल, एस० आर०, 'दि रिडिल ऑव चाणक्य एण्ड कौटिल्य', जिज्ञासा, जयपुर, 1974, पृ० 32-51।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सूरसेन, मत्स्य तथा अश्मक

सूरसेन या शूरसेन जनपद कुरु के दक्षिण, मच्छ या मत्स्य के पूर्व[1] तथा दक्षिणी पंचाल के पश्चिम में था। इसकी पहिचान आधुनिक ब्रजमण्डल से की जा सकती है जिसमें मथुरा के चारों ओर का चौरासी कोस का प्रदेश शामिल माना जाता है। 'दीघनिकाय' के 'जनवसभसुत्त' में सूरसेनों का उल्लेख मच्छ लोगों के साथ किया गया है। पुराणों के अनुसार इस प्रदेश का यह नाम शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन के नाम पर पड़ा था। 'महाभारत' में मथुरा के शासकों को यदुवंशी कहा गया है। सर्वास्तिवादी परम्परा में इसके आदिराज का नाम महासम्मत बताया गया है। यूनानी लेखकों ने इस जनपद का नाम सोरसोनोय लिखा है और इसकी राजधानी का मेथोरा अर्थात् मथुरा। मथुरा नगर प्राचीन भारत का एक विख्यात नगर तथा बौद्ध धर्म, जैन धर्म, कृष्ण सम्प्रदाय और मूर्तिकाल का एक प्रधान केन्द्र था। इसका मूल नाम मधुरा था। संकिस्स से मथुरा की दूरी चार योजन बताई गई है। दक्षिण भारत के मदुरा नगर पृथक्त्व दिखाने के लिए इसे उत्तर मथुरा कहते थे। भगवान् बुद्ध ने अपनी मथुरा यात्रा में इस नगर के पांच दोष बताए थे—मार्गों की विषमता, धूल का आधिक्य, भयंकर कुत्ते, अज्ञानी यक्ष तथा भिक्षा का कठिनाई से मिलना। महाकात्यायन ने मथुरा में बौद्ध धर्म का प्रचार किया था।

'मज्झिम निकाय' के 'माधुरिय सुत्तन्त' के अनुसार बुद्धकाल में सूरसेन का राजा माथुर अवन्तिपुत्र था। इसी निकाय की 'अट्ठकथा' के अनुसार वह पज्जोत (प्रद्योत) का दौहित्र था। इससे लगता है कि वह सम्भवतः अवन्ति के अधीन था। महाकात्यायन ने बुद्धके निर्वाण के उपरान्त अवन्तिपुत्र को जातिवाद पर एक लम्बा उपदेश दिया था जो उपर्युक्त सुत्तन्त में दिया गया है।[2]

मच्छ (संस्कृत मत्स्य) जनपद कुरु जनपद के दक्षिण में और सूरसेन के पश्चिम में था। दक्षिण में इसका विस्तार सम्भवतः चम्बल नदी तक था और पश्चिम में सरस्वती नदी तक। इसमें आधुनिक अलवर प्रदेश व धौलपुर, करौली, जयपुर तथा भरतपुर के कुछ भाग सम्मिलित थे। इसकी राजधानी विराट नगर (आधुनिक बैराट) थी। 'महाभारत' के अनुसार पाँचों पाण्डवों ने अपने अज्ञातवास का समय यहीं बिताया था। इसके समीप उपप्लव्य नामका कस्बा था। पालि ग्रन्थों से ऐसा नहीं लगता कि बुद्धकाल में मत्स्यों का विशेष महत्त्व था। उनका उल्लेख प्रायः सूरसेनों के साथ हुआ है, यथा 'जनवसभसुत्त' में।

अस्सक (संस्कृत अश्मक) दक्षिण भारतीय जनपद था। 'महागोविन्दसुत्त' में अस्सक को प्राक्-बुद्धयुगीन भारत के सात खण्डों में से एक बताया गया है। 'सुत्तनिपात' की 'अट्ठकथा' के अनुसार अस्सक जनपद गोदावरी के दक्षिण में था और अलक (इस

1. भरतसिंह उपाध्याय (पृ० 437) ने असावधानीवश सूरसेन जनपद को मच्छ के दक्षिण-पश्चिम में बता दिया है।

2. वही, पृ० 440-41.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ग्रन्थ की बर्मी प्रति के अनुसार मूलक) जनपद इसके उत्तर में। इस ग्रन्थ के अनुसार ये दोनों जनपद अन्धक (आन्ध्र) जनपद में सम्मिलित थे। अस्सक की राजधानी पोतन थी—अस्सकानां च पोतनं। 'महाभारत' में इसे ही पोदन या पौदन्य कहा गया है। 'चुल्लकलिंग जातक' में एक अस्सक नरेश द्वारा कलिंग पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख है। 'सोणनन्द जातक' में अस्सकों को अवन्ति से लगा बताया गया है।[1] नन्द-लाल दे ने पोतलिया पोदन की पहिचान प्रतिष्ठान से की है। यह मत आजकल नहीं माना जाता। रायचौधुरी का यह सुझाव कि यह हैदराबाद राज्य का बोधन स्थान था[2] आजकल अधिक सही माना जाता है।

अश्मकों का आदि निवास स्थान सम्भवतः पश्चिमोत्तर भारत में था। पाणिनि ने अपने एक सूत्र (4.1.173) में अश्मकों का उल्लेख साल्व आदि के साथ किया है। सिकन्दर के इतिहासकारों ने भी उस प्रदेश में स्थित अश्मक राज्य का उल्लेख किया है। हो सकता है उन्हीं अश्मकों की कोई शाखा प्राचीन काल में गोदावरी प्रदेश में जाकर बस गई हो।

गन्धार तथा कम्बोज

बुद्धकाल के सोलह महाजनपदों में अन्तिम दो—गन्धार तथा कम्बोज—पश्चिमोत्तर दिशा में, उत्तरापथ में, थे।' मज्झिम निकाय' की अट्ठकथा (पपंचसूदनी) में **गंधार** को 'पच्चन्तिम (सीमान्त) जनपद बताया गया है और इसका विस्तार सौ योजन। 'मिलिंदपञ्हो' में इसका कस्मीर (कश्मीर) के साथ उल्लेख है—कासिकोसले पि कस्मीरे गंधारे पि।[3] अतः गंधार को स्वात नदी से झेलम तक विस्तृत प्रदेश माना जा सकता है। इसकी राजधानी तक्षशिला (रावलपिण्डी के समीपस्थ शाहजी की ढेरी नामक स्थान) थी जो विद्या का बड़ा जबरदस्त केन्द्र थी। कोसल नरेश प्रसेनजित्, महालि लिच्छवि, बन्धुल मल्ल, जीवक वैद्य आदि के अतिरिक्त कण्हदिन्न, यसदत्त और धम्मपाल आदि भिक्षुओं ने तक्षशिला में ही शिक्षा प्राप्त की थी। जातक कथाओं में अनेक व्यक्तियों को हम शिक्षा पाने के हेतु तक्षशिला जाते देखते हैं।[4] पालि ग्रन्थों में तक्ष-शिला को श्रावस्ती से, जिससे वह एक महापथ द्वारा जुड़ा था, 192 योजन दूर बताया गया है। गन्धार का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण नगर पोक्खरवती (पुष्कलावती, पेशावर से 17 मील दूर स्थित चारसद्दा) था। तक्षशिला नगर व्यापार का भी भारी केन्द्र था।

'कुम्भकार जातक' में गन्धार के राजा नग्गजि ('शतपथ ब्राह्मण का गन्धार-नरेश नग्नजित ?) और पुक्कुसाति का उल्लेख मिलता है। जैनों के अनुसार नग्गजि ने जैन धर्म स्वीकार किया था।[5] मूल सर्वास्तिवादी विनय में पुक्कुसाति को पुष्करसारी कहा

1. उस समय अस्सक राज्य में मूलक भी सम्मिलित रहा होगा जिससे इसकी उत्तरी सीमा अवन्ति को छूती होगी (रायचौधुरी, पूर्वो०, पृ० 143)।
2. रायचौधुरी, पृ० 143।
3. मिलेटस के हैकाटेयस ने कैस्पाइरोस (=कश्यपपुर=कश्मीर) को गन्धार में बताया है।
4. सन्दर्भों के लिए दे०, उपाध्याय, पृ० 453-54।
5. रायचौधुरी, पृ० 147।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गया है। पुक्कुसाति बिम्बिसार का समकालीन और मित्र था। बिम्बिसार व पुक्कुसाति में भेंटों का आदान-प्रदान हुआ था। बिम्बिसार ने उसके पास एक सन्देश भी भेजा था जिसमें भगवान् बुद्ध के उपदेशों का जिक्र था। बिम्बिसार के सन्देश का पुक्कुसाति पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह साधु होकर पैदल ही मगध चला गया।[1] इसके पूर्व उसने अवन्ति के प्रद्योत को परास्त किया था जिसकी चर्चा हम अवन्ति का अध्ययन करते समय कर चुके हैं। अवन्ति के उपरान्त उसे पाण्डवों के आक्रमण का भी सामना करना पड़ा (दे०, पीछे)। सम्भवतः पुक्कुसाति के उपरान्त गन्धार को साखामनीषी आक्रमण का सामना करना पड़ा जिसका विस्तृत विवेचन अन्यत्र किया गया है।

कम्बोज जनपद (संस्कृत काम्बोज) उत्तारापथ में गन्धार के पड़ोस में था। इसकी सही स्थिति कुछ विवादग्रस्त है। रा० कु० मुकर्जी ने उसे काबुल नदी का तटवर्ती प्रदेश बताया है, लाहा ने राजौरी (प्राचीन राजपुर) और हजारा जिले वाला प्रदेश, जयचन्द्र विद्यालंकार तथा मोतीचन्द्र ने पामीर प्रदेश तथा भरतसिंह उपाध्याय ने बिलोचिस्तान से लगा ईरान वाला प्रदेश। इनमें लाहा का मत, जिसका समर्थन रायचौधुरी ने किया है, सही लगता है क्योंकि 'महाभारत' में काम्बोजों का सम्बन्ध राजपुर से जोड़ा गया है (कर्ण राजपुरंगत्वा काम्बोजा निर्जितास्त्वया) तथा शुआन-च्वांग ने राजपुर को पूंछ के दक्षिण-पूर्व में स्थित बताया है। रीज डेविड्स् ने 'पेतवत्थु' की टीका के आधार पर इसकी राजधानी का नाम द्वारका बताया है, परन्तु आजकल यह मत स्वीकार नहीं किया जाता।[2] 'अस्सलायन सुत्तन्त' में योनों और कम्बोजों का एक साथ उल्लेख है (योन कम्बोजेसु) तथा अशोक के अभिलेखों में योनों, कम्बोजों और गन्धारों का (योन कम्बोज गंधालेसु)। कम्बोज जनपद अपने शानदार घोड़ों के लिए प्रसिद्ध था।

अन्य लघु जनपद

ऊपर हमने बौद्ध ग्रन्थों में उल्लिखित सोलह महाजनपदों में से दस का अध्ययन किया है। वाज्जि व मल्ल गणराज्यों का अध्ययन अलग से छठे व सातवें अध्यायों में किया गया है, अवन्ति, कोसल व वत्स का अध्याय चार में और मगध का, उसके साम्राज्यिक शक्ति के रूप में उद्भूत होने के कारण, विस्तार से अध्याय आठ से अध्याय ग्यारह तक। इन महाजनपदों के अतिरिक्त बुद्धकाल में कुछ अन्य लघु जनपद भी थे जिनकी चर्चा बौद्ध ग्रन्थों तथा अन्य रचनाओं में यत्र-तत्र हुई है। पालि ग्रन्थों में प्रदत्त एतद्विषयक सामग्री का विश्लेषण करके भरतसिंह उपाध्याय ने ऐसे जिन जनपदों को गिनाया है उनमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण हैं[3]—

(1) दसण्ण (दशार्ण) या पूर्वी मालवा। यह दशार्ण (आधुनिक धसोन) नदी द्वारा

1. उपाध्याय, पूर्वो, पृ० 451।
2. द्वारका कम्बोज से स्थल मार्ग द्वारा जुड़ी थी, उसकी राजधानी नहीं थी।
3. इनके विस्तृत अध्ययन के लिए दे०, उपाध्याय, बु० का० भू०, पृ० 461-98

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिंचित प्रदेश था। इसका उल्लेख दो जातक कथाओं में हुआ है। एरकच्छ (राहुल सांकृत्यायन के अनुसार आधुनिक एरच) इसका एक प्रसिद्ध नगर था। 'महावस्तु' की सूची में यह सिवि जनपद के साथ गन्धार कम्बोज की जगह परिगणित है। (2) कोटुम्बुर रट्ठ। यह क्षौम वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था। शीलुस्की ने इसकी पहिचान औदुम्बर विषय से की है जिसका उल्लेख 'चुल्लवग्ग' में हुआ है। (3) वंग (पूर्वी बंगाल) का उल्लेख 'अंगुत्तर निकाय' व सिंहली इतिहास ग्रन्थों में मिलता है। (4) सुह्म या सुम्भ जनपद वंग और उत्कल के मध्य स्थित था। तामलित्ति (=ताम्रलिप्ति) बन्दरगाह सुह्म जनपद में ही स्थित था। इसकी पहिचान आधुनिक तामुलक से की जाती है। (5) मद्द रटठ या मद्र राष्ट्र (रावी और चिनाब के मध्य सियालकोट के आसपास का प्रदेश)। इसका उल्लेख वैदिक साहित्य में भी मिलता है। बिम्बिसार ने मद्र देश की राजकुमारी खेमा से विवाह किया था। इसकी ख्याति सुन्दर स्त्रियों के लिए थी। जातक कथाओं में अन्य अनेक राजाओं द्वारा मद्र देश की राजकुमारियों से विवाह करने का उल्लेख है। (6) योन जनपद का उल्लेख 'अस्सलायन सुत्त' में मिलता है। यह स्पष्टतः यूनानियों का उपनिवेश था। वहां दो ही वर्ण होते थे—आर्य और दास (अय्यो हुत्वा दासो होति, दासो हुत्वा अय्यो होति)। यह जनपद गन्धार के समीप काबुल के आसपास स्थित रहा होगा। (7) सिवि जनपद से आशय 'ऋग्वेद' के शिवि जनों से है। यूनानियों ने उनको शिबोई कहा है। 'महावस्तु' की महाजनपद-सूची में गन्धार और कम्बोज की जगह शिवि और दशार्ण नाम मिलने से इसका महत्त्व स्पष्ट है। प्रद्योत ने जीवक वैद्य को सिवि देश में निर्मित दुशाला भेंट में दिया था। जातक कथाओं में सिवि देश के राजाओं तथा अरिट्ठपुर एवं जेतुत्तर (=चित्तौड़ के समीपस्थ नगरी नामक स्थान) नगरों का उल्लेख है। हो सकता है जेतुत्तर नाम ही बिगड़कर चित्तौड़ बना हो। अरिट्ठपुर की पहिचान पतंजलि द्वारा उल्लिखित शिवपुर से की जाती है और शिवपुर की झंग प्रदेश में स्थित शरकोट से। उस अवस्था में शिवि लोगों के दो उपनिवेश मानने होंगे। एक पंजाब में और दूसरा राजस्थान में। (8) वाहिय या वाहिक राष्ट्र सम्भवतः वाहीक जनपद से अभिन्न था। 'महाभारत' में पंजाववासी वाहीकों का उल्लेख मिलता है। पाणिनि ने भी वाहीकों का उल्लेख किया है। (9) केक (केकक) या केकय जनपद व्यास और सतलुज नदियों के मध्य स्थित था। केकयों की एक शाखा बाद में दक्षिण के महिंसक मण्डल में भी बस गई थी। (10) उद्दियान (संस्कृत उद्यान) स्वात की घाटी से सिन्धु तक विस्तृत था। सम्भवतः इसी का दूसरा नाम अश्वक था। बाद में ओडियान की ख्याति तान्त्रिक सिद्धपीठ के रूप में हुई। (11-12) सिन्धु और सौवीर, जो सिन्धु की निचली उपत्यका में थे, विशेषतः व्यापार की दृष्टि से प्रसिद्ध थे। सौवीर की राजधानी रोरुक एक प्रसिद्ध नगर थी। (13) सुरट्ठ (आधुनिक सुराष्ट्र-काठियावाड़) का नाम अब केवल सूरत नगर के नाम में बचा है। इसका एक प्रसिद्ध बन्दरगाह भरुकच्छ था। इसका नगर द्वारका जातकों में अनेकत्र उल्लिखित है। (14) सूनापरान्त बुद्धकाल का एक सुविदित जनपद था। यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परवर्ती अपरान्त का एक भाग था। इसकी राजधानी सुप्पारक (आधुनिक सोपारा, बम्बई से 37 मील दूर) थी। (15) महारट्ठ की पहिचान महाराष्ट्र से की जा सकती है। (16) महिंसक राष्ट्र का उल्लेख अनेक जातक कथाओं में है। कण्ण वेण्णा (कृष्ण-वेणा) नदी इस प्रदेश में होकर बहती थी। (17-18) कलिंग और उक्कल (उत्कल) ओड्र या आधुनिक उड़ीसा के दक्षिणी और उत्तरी भाग थे। कलिंग की राजधानी दन्तपुर एक विख्यात नगर थी। 'दीघनिकाय' के 'महागोविन्दसुत्त' में इसका उल्लेख मिलता है। दन्तपुर की पहिचान जगन्नाथपुरी से प्रायः की जाती है। (19) मूलक (पाठान्तर अलक) दक्षिणापथ का एक मुख्य जनपद था। इसकी राजधानी पतिट्ठान (प्रतिष्ठान) भारत का एक प्रसिद्ध नगर थी। (20) आन्ध्र जनपद कलिंग के दक्षिण में था।

उपर्युक्त जनपदों के अतिरिक्त प्राचीन बौद्ध साहित्य थुलू (पाठान्तर खुलू या बुमू), पानियत्थ (पाठान्तर पादियत्थ) भेण्णाकट, वंकहार (पाठान्तर वंगहार), कुक्कुट, कोक-नद तथा वनवास आदि जनपदों का उल्लेख करता है। लेकिन इनका विशेष महत्त्व नहीं था। परवर्ती युगों में भी इनमें अधिकांश अनुल्लेखनीय ही रहे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 6

संघात्मक राज्यः वज्जि जनपद

पृष्ठभूमि[1]

संघात्मक जनपदों का अस्तित्व बुद्धकालीन भारतीय राजनीतिक अवस्था की एक प्रमुख विशेषता है। वासुदेवशरण अग्रवाल[2] ने संघ शब्द के तीन अर्थ बताये हैं—(1) समूह यथा 'ग्राम्य-पशु-संघ'; (2) निकाय (संघे चानौत्तराधर्ये, 3.3.42) अर्थात् धार्मिक-संघ जिसमें ऊंच-नीच का भेद नहीं होता और (3) गणवाची (संघोद्यौगण प्रशंसयोः, 3.3.86) अर्थात् राजनीतिक संघ। इस प्रकार 'संघ' और 'गण' समानार्थी शब्द हैं। जनपदों की शासन पद्धति के संदर्भ में पाणिनि ने 'राजाधीन' और 'गणाधीन' की चर्चा की है।[3] वस्तुतः यही गणाधीन जनपद ही 'संघ' थे। गण या संघ धार्मिक निकायों (यथा बौद्ध-संघ, जैन-संघ या अन्य धार्मिक संघ) से केवल इस बात में भिन्न थे कि उनमें किसी बाहरी व्यक्ति का प्रवेश संभव नहीं था। संघ में प्रतिनिधित्व का आधार कुल था। हर कुल से एक व्यक्ति गण या संघ में प्रतिनिधि रूप में लिया जाता था। ये प्रतिनिधि 'राजा' कहलाते थे। 'महाभारत' (सभापर्व, 14.2) में 'गृहे गृहे हि राजानः' और बौद्ध ग्रन्थों में लिच्छवियों के 7707 कुलों और 7707 'राजानो' (राजा) का उल्लेख इस बात की पुष्टि करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संघ या गण आधुनिक प्रजातन्त्र के समकक्ष राज्य थे जिनमें प्रतिनिधि शासन प्रणाली प्रचलित थी। परन्तु यह तुलना पूर्णतः सही नहीं है, मात्र समानान्तर दृष्टान्त है। यह कहना अधिक सही होगा कि संघ की शासन प्रणाली एकाधीन (नृपतन्त्रात्मक या राजतन्त्रात्मक) शासन प्रणाली के विरुद्ध और उससे भिन्न थी।

संघ या गण केवल एक 'शासन पद्धति' ही नहीं थी। इसका सम्बन्ध भूमि अथवा राज्य से भी था। अतः संघ एक विशिष्ट शासन पद्धति वाले 'राज्य' थे। इन संघों का उदय कब और कैसे हुआ यह विवाद का विषय है। सामान्यतः विद्वानों का विचार है कि संघों का उदय वेदोत्तर काल में हुआ। नृपतंत्र में राजाओं की निरंकुशता से मुक्ति प्राप्ति का प्रयास, सामाजिक चेतना की अभिवृद्धि होने पर अपना शासन अपने प्रतिनिधियों

1. इस अध्याय की पृष्ठभूमि को श्री रामस्वरूप मिश्र ने लिखा है।
2. पाणिनिकालीन भारतवर्ष (अष्टाध्यायी का सांस्कृतिक अध्ययन), प्रथम संस्करण, वाराणसी, 2012 विक्रमी, पृ० 430-31।
3. वही, पृ० 431।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्वारा कराने का निर्णय अथवा राजा के अल्पवयस्क होने या शासन में रुचि न लेने के परिणामस्वरूप कुछ अन्य व्यक्तियों का शासन अपने हाथ में ले लेना आदि अनेक परिकल्पनायें की जा सकती हैं जिनके कारण 'संघ' उत्पन्न हुए। संघों की अवस्थिति राजतंत्र के समानान्तर है। महाभारत-काल में जहां एक ओर बड़े-बड़े साम्राज्य स्थापित करने की होड़ थी वहीं पर अंधक-वृष्णि संघ (महाभारत, शांति पर्व, अध्याय 81) अपनी प्रजातांत्रिक शासन-प्रणाली के साथ विद्यमान था। महाजनपद-युग के ठीक पहले भारत-युद्ध के रूप में राजतंत्रात्मक राज्यों का भीषण टकराव हुआ था। इस युद्ध की प्रतिक्रियास्वरूप अथवा शक्तिशाली 'केन्द्र' के अभाव में संघ शासन का आदर्श सम्पूर्ण उत्तर-भारत में तीव्र गति से अपनाया गया। भारतीय इतिहास में संघ आदर्श की स्वीकृति एक अद्भुत प्रशासनिक प्रयोग था जिसकी तुलना इतिहासकारों ने यूनान के नगर-राज्यों से की है।[1]

संघों के विकास की भी एक लम्बी कथा है। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में इन संघों का संविधान अति तरल अवस्था में दिखाई देता है। कुछ संघ अत्यन्त समुन्नत थे जिनमें सभा, परिषद्, संघमुख्य, वर्ग, अंक, लक्षण आदि विद्यमान थे। इसके विपरीत कुछ 'संघ' मात्र लूटमार पर आश्रित थे (उत्सेधजीविनः)। आयुधजीवी संघ शस्त्र से जीविका निर्वाह करते थे।[2] इस ग्रन्थ में हम केवल उन संघों का विवेचन करेंगे जो उन्नत थे और जिनके संगठन का आधार कुल था। राजनीतिक इतिहास के संदर्भ में इन समुन्नत संघों को हम दो श्रेणियों में रख सकते हैं। इनमें प्रथम वर्ग में वे संघ राज्य थे जो मगध की साम्राज्यिक शक्ति के विरुद्ध एक जुट हो गये थे यानी वृज्जि अथवा वज्जिसंघ और उसके मल्ल आदि मित्र राज्य और दूसरे वर्ग में वे संघ राज्य थे जो मागध साम्राज्य की विस्तारवादी नीति के विरुद्ध संगठित नहीं हुए। प्रस्तुत अध्याय में केवल वज्जि संघ का अध्ययन किया गया है।

वज्जि जनपद

वज्जि (संस्कृत वृज्जि) संघ छठी शती ई० पू० का एक प्रतिष्ठित जनपद था। मगध के साथ इसकी प्रतिद्वन्द्विता बुद्धकालीन इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना थी। यह तत्कालीन युग का प्रधानतम व सबलतम गणराज्य था। वज्जि प्रदेश गंगा के उत्तर में था और नेपाल की तराई तक विस्तृत था।[3] राहुल सांकृत्यायन के अनुसार इसमें आधुनिक बिहार राज्य के मुजफ्फरपुर व चम्पारन जिले तथा दरभंगा व सारन जिलों

1. रायचौधरी, हेमचन्द्र, पो० हि० ए० इ०, पृ० 121; वासुदेवशरण अग्रवाल, पूर्वो०, पृ० 435।

2. अग्रवाल, वा० श०, पूर्वो०, पृ० 439।

3. योगेन्द्र मिश्र (अ० हि० वै०, पृ० 125) का विचार है कि वज्जि संघ में नेपाल भी सम्मिलित था। परन्तु यह उनका तर्कविहीन अनुमान मात्र है। बौद्ध ग्रन्थ यह जरा भी संकेत नहीं देते कि वैशाली के लिच्छवि नेपाल के भी स्वामी थे।

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के कुछ भाग सम्मिलित थे। इसकी पूर्वी सीमा सम्भवतः बाहुमती (बागमती) थी[1] तथा पश्चिमी सीमा मही या सदानीरा (गण्डक) नदी। यह कोसल तथा मल्ल राज्यों के पूर्व या पूर्व-दक्षिण में था और मगध के उत्तर में। गंगा नदी मगध व वज्जि संघ की मध्यवर्ती सीमा थी। वज्जियों की राजधानी वैशाली (मुजफ्फरपुर जिले में बसाढ़ नामक आधुनिक स्थल) थी—"वेसालि नाम नगरत्थि वज्जीनं" (पेतवत्थु)। यह विशाला भी कहलाती थी। 'महावग्ग' के अनुसार 'उस समय वैशाली ऋद्ध, स्फीत, बहुत जनों से आकीर्ण, अन्नपान सम्पन्न थी। उसमें 7707 प्रासाद, 7707 कूटागार, 7707 आराम और 7707 पुष्करियां थीं।' 'समन्तपासादिका' में चर्चा आई है कि वैशाली की जनसंख्या उत्तरोत्तर बढ़ती रहने के कारण उसकी प्राचीर तीन बार विशालतर की गई थी। इसी से उसका नाम वैशाली पड़ा। यही बात 'उदानट्ठकथा', 'पपंचसूदनी' तथा 'मनोरथपूरणी' में कही गई है। 'सुत्तनिपात' की 'अट्ठकथा' के अनुसार वैशाली की प्रत्येक प्राचीर एक-दूसरे से एक-एक गावुत की दूरी पर (गावुतन्तरेन) थी। 'एकपण्ण जातक' में भी यही बात कही गई है और बताया गया है कि इन प्राचीरों पर शिखर सुशोभित थे (वेसालिनगरं गावुतगावुतन्तरे तीहि पाकारेहि परिक्खित्तं)। 'तिब्बती दुल्व' के अनुसार वैशाली तीन भागों में विभाजित थी—पहले में 7,000 घर थे जिनके शिखर सोने के थे। दूसरे में 14,000 घर थे जिनके शिखर चांदी के थे। तीसरे में 21,000 घर थे जिनके शिखर तांबे के थे। ये भाग क्रमशः उच्च, मध्यम व निम्नवर्गीय जनों के थे। 'महावग्ग' में वैशाली की कुल जनसंख्या 1,68,000 बताई गई है। 'ललित विस्तर' में इसे सुप्रकाशित अमरपुरी के सदृश (अमरभवनपुरप्राकाश्या) कहा गया है। इन परम्पराओं में वैशाली की समृद्धि व विशालता संकेतित है।[2]

वज्जि संघ में आठ गणतन्त्र सम्मिलित माने जाते थे जो 'अटठकुलिक' कहलाते थे। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वज्जि, लिच्छवि[3] व विदेह थे। चौथा गणराज्य ज्ञातृक या ज्ञातिक था। शेष चार कुलों के सम्बन्ध में पालि ग्रन्थों में कुछ नहीं कहा गया है। रायचौधुरी का अनुमान है कि वे सम्भवतः उग्र (वैशाली या हत्थिगाम के), भोग (भोग-

1. रायचौधुरी ने इसकी पूर्वी सीमा कोसी व महानन्दा नदियां मानी हैं।

2. सन्दर्भों के लिए दे०, मिश्र, यो०, पूर्वा०, पृ० 126-134; उपाध्याय, बु० का० भू०, पृ० 384-88।

3. प्राचीन अभिलेखों एवं साहित्य में लिच्छवि शब्द के 'लेच्छई', 'लिच्छवि', 'लेच्छवि', 'लिच्छिवि' तथा 'निच्छिवि' आदि अनेक रूप मिलते हैं। इनमें 'लिच्छवि' रूप 'दिव्यावदान', कुछ अन्य ग्रन्थों, नेपाली अभिलेखों एवं एकाध उपवाद को छोड़कर गुप्त अभिलेखों में मिलता है और आजकल सामान्यतः स्वीकृत किया जाता है। बौद्ध विद्वान् बुद्धघोष (पांचवीं शती ई०) ने इसकी व्युत्पत्ति बताते समय जो कथा दी है उसकी चर्चा हमने आगे की है। ए० एल० बैशम का अनुगमन करते हुए जे० पी० शर्मा (रिपब्लिक्स इन एन्श्येण्ट इण्डिया, पृ० 87-88) का विचार है कि 'लिच्छवि' नाम संस्कृत शब्द 'ऋक्षवी' का प्राकृत रूप है। शर्मा के विचार से लिच्छवि जन बिहार में पर्वतीय प्रदेश से, जहाँ ऋक्ष अथवा रीछ बहुतायत से मिलते हैं, आने के कारण 'ऋक्षवी' कहलाये होंगे। लेकिन 'लिच्छवि नाम का यह रूप प्राचीनतम साहित्य में अनुपलब्ध है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नगर के) कौरव (कुरु देश के ब्राह्मण जो विदेह में बस गए थे) और ऐक्ष्वाक (वैशाली के) थे। उनके इस अनुमान का आधार 'सूत्रकृतांग' नामक जैन ग्रन्थ है जिसमें इन जातियों को ज्ञात्रियों (ज्ञातृकों) व लिच्छवियों के साथ एक ही संघ राज्य की प्रजा व उसी सभा की सदस्या बताया गया है। जायसवाल और उनका अनुसरण करते हुए योगेन्द्र मिश्र को इस साक्ष्य का यह अर्थ स्वीकार नहीं है।[1] वह अष्टकुल को भी किसी आठ जातियों की समिति के अर्थ में न लेकर मात्र एक न्याय समिति का नाम मानते हैं। इसके स्थान पर मिश्र महोदय विजयेन्द्र सूरि के इस मत को मानते हैं कि वज्जि-संघ में छः सदस्य जातियां थीं—भोग, राजन्य, ऐक्ष्वाकु, ज्ञात्रि तथा कौरव। यह मत श्री सूरि ने 'प्रज्ञापना सूत्र' व 'स्थानांग सूत्र' नामक जैन ग्रन्थों के आधार पर व्यक्त किया है जिनमें उपर्युक्त छः आर्य जातियों को छः आर्यकुल बताया गया है। परन्तु इस सूची में न तो वज्जियों का नाम है और न लिच्छवियों का। योगेन्द्र मिश्र का कहना है कि राजन्यों की पहिचान लिच्छवियों से की जा सकती है। इसके विपरीत श्री सूरि ने इस सूची के ज्ञात्रियों को लिच्छवि माना है। परन्तु ये सब अनुमान मात्र हैं।

वज्जि संघ की सदस्य जातियाँ : लिच्छवि और वज्जि

वज्जि संघ में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान वज्जियों और लिच्छवियों का था। वस्तुतः वज्जियों व लिच्छवियों में भेद करना अत्यन्त दुष्कर है क्योंकि एक ओर वज्जि इस संघ की एक पृथक् जाति थी तो दूसरी ओर लिच्छवि आदि जातियों को मिलाकर इस संघ का सामान्य अभिधान भी वज्जि ही था। एक पृथक् जाति के रूप में वज्जियों का उल्लेख पाणिनि ने किया है और कौटिलीय 'अर्थशास्त्र' में उन्हें लिच्छवियों से भिन्न बताया गया है। शुआन-च्वांग ने भी वज्जि देश (फु-लि-चिह्) व वैशाली (फी-शे-ली) में भेद किया है। परन्तु पालि ग्रन्थों में वज्जि व लिच्छवि नामों को पर्यायवाची-सा माना गया है। एक स्थल पर महानाम लिच्छवि युवा लिच्छवियों के समूह को देखकर कहता है "वे वज्जि बनेंगे, वे वज्जि बनेंगे" अर्थात् वे सच्चे वज्जि सिद्ध होंगे। 'महा-परिनिब्वान सुत्त' में बुद्ध ने कहा है कि जब तक 'वज्जि' लोग सात अपरिहारणीय धर्मों का पालन करते रहेंगे उनका पतन नहीं होगा, परन्तु 'कलिंगर सुत्त' में वह कहते हैं कि 'जब तक 'लिच्छवि' लोग लकड़ी के तख्तों पर सोएंगे और उद्योगी बने रहेंगे अजात-शत्रु उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।' स्पष्ट है कि बुद्ध 'वज्जि' व 'लिच्छवि' नामों को पर्यायवाची-सा मानते थे। इसी प्रकार 'विनय पिटक' में एक स्थल पर वज्जि प्रदेश में दुर्भिक्ष पड़ने की बात कही गई है और वहीं आगे एक पुत्रहीन व्यक्ति को चिन्ता करते दिखाया गया है कि कहीं लिच्छवि उसके धन को न ले लें। स्पष्टतः बुद्धकाल में लिच्छवि कुल वज्जि संघ के अष्टकुलों में इतना महत्त्वपूर्ण था कि प्रायः सम्पूर्ण वज्जि संघ को लिच्छवि नाम से भी अभिहित कर दिया जाता था।

लिच्छवि जाति की उत्पत्ति का प्रश्न अत्यन्त विवादग्रस्त है। सेमुएल बील ने उनको

1. मिश्र, योगेन्द्र, अ० हि० वै०, पृ० 104-5; जायसवाल, हिन्दू राज्यतन्त्र, 1, पृ० 71।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युए: ची जाति का सदस्य बताया है।[1] लेकिन यह सुझाव रखते समय वह यह बिल्कुल भूल गये कि युए: ची जाति भारत में प्रथम शती ई० में आयी जबकि लिच्छवि यहाँ छठी शती ई० पू० में भी विद्यमान थे। इसी प्रकार सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने लिच्छवियों को ईरानी सिद्ध करने की कोशिश की है। इस मत के समर्थन में उन्होंने ध्यान दिलाया है कि लिच्छवियों का मनु द्वारा प्रदत्त निच्छवि नाम ईरान के निसिविस नगर का स्मरण दिलाता है।[2] लेकिन यह अत्यन्त दुर्बल तर्क है। ईरानी इतिहास में लिच्छविसम जनों का कोई उल्लेख नहीं मिलता और लिच्छवि जाति में ईरानी संस्कृति के विशिष्ट तत्त्व अज्ञात हैं। उदाहरणार्थ, लिच्छवि जनों को दिलचस्पी ईरानी धर्म में नहीं भगवान् बुद्ध और महावीर के उपदेशों में थी।

लिच्छवियों की उत्पत्ति की समस्या के समाधान में उनके सांस्कृतिक और सामाजिक वातावरण का अध्ययन बहुत सहायक हो सकता है। इस प्रसंग में सबसे पहिले स्मिथ के इस सुझाव की चर्चा की जा सकती है कि लिच्छवियों का तिब्बती जनों से घनिष्ठ सम्पर्क था।[3] उन्होंने ध्यान दिलाया है कि चीनी साहित्य में प्रदत्त एक अनुश्रुति के अनुसार लिच्छवि समाज में शवों को जलाने और भूमि में गाड़ने के अतिरिक्त पशु-पक्षियों द्वारा खाये जाने के लिये खुली वायु में छोड़ देने या पेड़ पर लटका देने की प्रथा भी प्रचलित थी।[4] स्मिथ के अनुसार प्राचीन तिब्बत में भी ऐसा ही रिवाज प्रचलित था और मृतकों को पशु-पक्षियों द्वारा खाये जाने के लिये छोड़ दिया जाता था। दूसरे, स्मिथ का विश्वास था कि बौद्ध ग्रन्थ 'अट्ठकथा' में लिच्छवियों की न्याय-व्यवस्था का जो रूप उपलब्ध है, उससे मिलता-जुलता रूप तिब्बत में भी प्रचलित था। इन प्रमाणों के उत्तर में लाहा और रायचौधुरी आदि का कहना है कि तिब्बती न्याय-व्यवस्था, जिसमें तीन न्यायालय होते थे, सात न्यायालय वाली लिच्छवि न्याय-व्यवस्था से भिन्न और बाद की है।[5] यह भी हो सकता है कि इस विषय में तिब्बतियों को, जिन्होंने भारत की बौद्ध संस्कृति को स्वेच्छया अपनाया था, स्वयं 'अट्ठकथा' से प्रेरणा मिली हो। जहाँ तक मृतक-संस्कार सम्बन्धी सादृश्यता का प्रश्न है, यह अन्य प्रकार से भी व्याख्येय है। यह प्रथा केवल तिब्बती और लिच्छवि समाजों तक सीमित नहीं थी, प्राचीन ईरान और तक्ष-

1. बुद्धिस्ट रिकार्ड्स ग्रॉव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, 2, 1884, पृ० 66 अ०। होग्सन ने भी लिच्छवियों को स्कीथियन बताया था (योगेन्द्र मिश्र द्वारा 'हिस्टरी ग्रॉव वैशाली' के पृ० 108 पर टि० 1 में उद्धृत)।

2. जे० एस० बी०, 80, भाग 1, टि० 2; आई० ए०, 1908, पृ० 78-90। स्पूनर का सुझाव भी इसी मत की ओर था (ए० एस० आई, ए० आर०, 1913-14, पृ० 118-20।

3. स्मिथ, आई० ए०, 1903, पृ० 233।

4. बील, एस०, रोमाण्टिक लीजेण्ड ग्रॉव शाक्य बुद्ध, आई० एच० क्यु०, 9, पृ० 438 पर उद्धृत।

5. स्मिथ के अनुसार उनके इस तर्क का आधार टर्नर और शरतचन्द्र दास द्वारा तिब्बती न्याय-व्यवस्था का वर्णन है। परन्तु जे० पी० शर्मा का कहना है कि (रिपब्लिक्स इन एन्श्येण्ट इण्डिया, पृ० 88-89) इनमें कम से कम श० च० दास ने इस विषय पर कोई लेख नहीं लिखा था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शिला में भी प्रचलित थी। रायचौधुरी आदि के ये तर्क विचारपूर्ण हैं और इनसे निश्चित होता है कि स्मिथ द्वारा प्रदत्त प्रमाणों की व्याख्या अन्य प्रकार से भी की जा सकती है।

वी० सी० लाहा, जायसवाल एवं अन्य अधिकांश भारतीय विद्वानों ने लिच्छवियों को वैदिक क्षत्रियों की सन्तान माना है।[1] उनका कहना है कि प्राचीन भारतीय साहित्य लिच्छवियों को एकमत से क्षत्रिय बताता है। 'महापरिनिब्बानसुत्तन्त' में कहा गया है कि भगवान् बुद्ध के निर्वाण प्राप्त करने पर उनके भस्मावशेषों का एक अंश लिच्छवियों ने यह तर्क देते हुए मांगा था कि क्योंकि भगवान् बुद्ध क्षत्रिय थे और वे भी क्षत्रिय हैं, इसलिए उनके अवशेषों का एक अंश उन्हें भी मिलना चाहिए[2] (भगवा पि खत्तियो। मयम्पि खत्तिया। मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं)। 'खुद्दकपाठ' पर बुद्धघोष द्वारा लिखित 'परमत्थजोतिका'[3] नामक टीका में भी लिच्छवियों की उत्पत्ति बनारस की एक रानी के गर्भ से हुई बताई गई है (दे०, आगे)। बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों में लिच्छवियों को वशिष्ठ गोत्र का क्षत्रिय बताया गया है (महावस्तु)। बौद्धों के समान जैन ग्रन्थों में भी अनेकत्र विभिन्न लिच्छवि जनों को क्षत्रिय वर्ण के अन्तर्गत गिनाया गया है। उदाहरणार्थ, 'कल्पसूत्र' नामक जैन ग्रन्थ में वैशाली के लिच्छवि सरदार चेटक की बहिन को 'क्षत्रियाणी' कहा गया है।[4] नेपाल के लिच्छवियों को नेपाली 'वंशावलियों' में सूर्यवंशी कहा गया है, प्रथम मानदेव के चांगुनारायण-लेख[5] तथा द्वितीय जयदेव की पशुपतिनाथ-प्रशस्ति (8वीं शती ई०) में मनु, इक्ष्वाकु आदि सूर्यवंशी राजाओं का वंशज[6] और शुआन-च्वांग की भारत-यात्रा के विवरण में क्षत्रिय।[7]

लेकिन हमारे विचार से उपर्युक्त लेखों एवं ग्रन्थों में लिच्छवियों को क्षत्रिय बताया जाना यह सिद्ध नहीं करता कि वे वैदिक क्षत्रियों के वंशज थे। 'परमत्थजोतिका' के साक्ष्य से तो, जैसा कि हम अभी देखेंगे, लिच्छवियों का वैदिक क्षत्रियों से भिन्न होना सिद्ध होता है, अभिन्न होना नहीं। इस प्रसंग में यह ध्यान रखना चाहिए कि क्योंकि लिच्छवि-जन प्रायः बौद्ध और जैन धर्मों के समर्थक थे, इसलिए उपर्युक्त ग्रन्थों के रचयिताओं की उनके साथ स्वाभाविक सहानुभूति थी। दूसरे, जैसा कि फिक ने कहा है पालि ग्रन्थों में खत्तिय (=क्षत्रिय) शब्द वर्णसूचक नहीं राजसत्ता के प्रतिनिधि का सूचक है।[8] इसलिए

1. लाहा, वी० सी०, सम क्षत्रिय ट्राइब्स ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया, पृ० 26 अ०; जायसवाल, हिन्दू पोलिटी, पृ० 174-77; द्र० रायचौधुरी, पॉलिटिकल हिस्टरी ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया, पृ० 122-24।
2. डायलोग्स ऑव दि बुद्ध, 2, पृ० 187।
3. लाहा, वही, पृ० 17-21।
4. सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, 12, पृ० 227।
5. गोयल, श्रीराम, प्राचीन नेपाल का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 27।
6. वही।
7. वाटर्स, ट्रेवेल्स्, 2, पृ० 84।
8. फिक, सोशल ऑर्गनाइजेशन इन नॉर्थ-ईस्ट इण्डिया इन बुद्धज टाइम, पृ० 8।

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन ग्रन्थों के साक्ष्य से केवल इतना निश्चित होता है कि लिच्छवि अपने को क्षत्रिय मानते थे। लेकिन असली प्रश्न तो यह है कि वैदिक समाज उन्हें क्षत्रिय वर्ण के अन्तर्गत स्वीकृत करता था अथवा नहीं। इस समस्या का समाधान शुआन-च्वांग के साक्ष्य से नहीं हो सकता क्योंकि उसने नेपाल के लिच्छवि राजाओं की जाति के विषय में वही लिखा है जो उसे उसकी नेपाल-यात्रा के दौरान (अगर वह नेपाल गया था) अथवा स्वयं भारत में बताया गया था। लेकिन इसमें किसी को कोई शंका नहीं है कि सातवीं-आठवीं शती ई० में नेपाली लिच्छवि अपने को सूर्यवंशी नरेशों का वंशज मानते थे। द्वितीय जयदेव की पशुपतिनाथ-प्रशस्ति (आठवीं शती ई०) और मध्यकालीन नेपाली 'वंशावलियों' में यह स्पष्टरूपेण कहा ही गया है। परन्तु उनका यह दावा उत्तर भारत के तत्कालीन राजपूत राजाओं के इस दावे के सदृश है कि वे सूर्य और चन्द्रवंशी क्षत्रियों की सन्तान थे। लेकिन जिस तरह राजपूत राजाओं के इस दावे को किसी विश्वसनीय प्रमाण की कसौटी पर कसे जाने के बाद ही माना जा सकता है उसी तरह लिच्छवियों के दावे को सत्य मानने के लिए भी समर्थक प्रमाण अपेक्षित माने जाने चाहिएं।[1]

लिच्छवियों की सामाजिक प्रतिष्ठा के विषय में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य 'मनुस्मृति' का है। इस ग्रन्थ का महत्त्व इसलिए विशेष रूप से है क्योंकि यह लिच्छवियों के प्रति शुद्ध ब्राह्मण दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इसमें मनु ने लिच्छवियों को 'व्रात्य क्षत्रिय' बताया है।[2] व्रात्य शब्द का निश्चित अर्थ विवादास्पद है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि व्रात्य क्षत्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा शुद्ध क्षत्रियों से हीनतर थी। लाहा तथा जायसवाल आदि के अनुसार मनु द्वारा लिच्छवियों के लिए इस विशेषण के प्रयोग का कारण उनके द्वारा बौद्ध और जैन धर्मों का स्वीकार था। यह सर्वथा संभव है। परन्तु यह तथ्य कि मनु ने उनकी गणना आर्येतर खसों और द्रविड़ों के साथ की है, इस बात का संकेत है कि उसके द्वारा उल्लिखित व्रात्यों को आर्येतर भी माना जा सकता है। वस्तुतः धर्मशास्त्रों के अनुसार जिस प्रकार व्रात्य लिच्छवियों को 'व्रात्यस्तोम' नामक एक विशेष संस्कार द्वारा शुद्ध करके क्षत्रिय बनाया जा सकता था, उसी प्रकार किरातों, चीनों, द्रविड़ों और खसों को भी क्षत्रिय वर्ण में सम्मिलित किया जा सकता था। और

1. जे० पी० शर्मा (रिपब्लिक्स् इन एन्श्येण्ट इण्डिया, पृ० 89-92) का कहना है कि लिच्छवि इण्डो-आर्य परिवार की एक ऐसी शाखा थे जो मूलतः किसी अन्य नाम से पुकारी जाती थी। उनके अनुसार यह ब्राह्मण काल में 'पंजाब अथवा पश्चिमोत्तर प्रदेश' से हिमालय की तराई वाले मार्ग द्वारा कोसल और शाक्य जनपद होते हुए वैशाली में आकर बसी। नेपाली तराई में रहते समय यह लिच्छवि नाम से विख्यात हुई होगी। लेकिन यह मान्यता कि पंजाब से आकर बिहार में बसने वाली कोई जाति पर्वतीय मार्ग से होकर आई थी, बड़ी विचित्र है। पश्चिमोत्तर प्रदेश से आने वाली आक्रामक जातियों ने यह मार्ग शायद कभी नहीं अपनाया। स्वयं शर्मा भी अपने इस मत में विशेष श्रद्धावान् नहीं लगते क्योंकि एक जगह वह लिच्छवियों को 'मध्यदेश' के ब्राह्मण (आर्य) जनों की एक शाखा बताते हैं (वही, पृ० 92)।

2. झल्लमल्लश्च राजन्याद् व्रात्यान्निच्छिविरेव च।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च॥ —मनुस्मृति, 10.22

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अगर ऐसा है तो मनु के साक्ष्य से यह कहाँ सिद्ध हुआ कि लिच्छवि मूलतः वैदिक क्षत्रिय ही थे ? हो सकता है कि वे द्रविड़ों और किरातों के समान किसी आर्येतर जाति अथवा आर्यों की किसी वैदिकेतर शाखा के सदस्य रहे हों।

प्राचीन ब्राह्मण तथा ब्राह्मणेतर ग्रन्थों में लिच्छवि संस्कृति का जो चित्र उपलब्ध है, उससे यह सर्वथा स्पष्ट है कि यह जाति पूर्वी भारत की उन जातियों में से एक थी जिनकी परम्पराएं वैदिक परम्पराओं से भिन्न थीं। उदाहरणार्थ, तराई प्रदेश की कोलिय जाति के सदृश उसमें भी कभी भाई-बहन के विवाह की प्रथा प्रचलित रही थी। एक बौद्ध ग्रन्थ के अनुसार एक बार कोलियों और शाक्यों में झगड़ा होने पर कोलियों ने शाक्यों पर आरोप लगाया था कि शाक्यों में भाई-बहिन के विवाह का रिवाज है।[1] स्वयं लिच्छवियों में भी यह प्रथा कभी प्रचलित रही थी, इसका संकेत 'खुद्दकपाठ' पर बुद्धघोष की 'परमत्थजोतिका' नामक टीका से मिलता है। इसमें लिच्छवियों की उत्पत्ति की कथा बताते हुए कहा गया है कि एक बार बनारस के एक राजा की अग्रमहिषी के गर्भ से बजाय किसी बच्चे के एक मांसपिण्ड निकला। उसने राजा के भय से उसे एक पेटिका में बन्द कर गंगा में बहा दिया। जब वह पेटिका एक ऋषि को मिली तो इसने उस मांसपिण्ड की बहुत देखभाल की। बाद में उस पिण्ड से दो शिशु—एक लड़का और एक लड़की—उत्पन्न हुए जिन्हें उनकी पतली अथवा पारदर्शक खाल के कारण 'निच्छवि' या 'लिच्छवि' नाम दिया गया। वयस्क होने पर उन दोनों ने परस्पर विवाह कर लिया। कालान्तर में उनकी सन्तति ही 'लिच्छवि' नाम से विख्यात हुई।[2] इस आख्यान से स्पष्ट है कि शाक्यों के समान कभी लिच्छवियों में भी भाई-बहिन के विवाह की प्रथा रही होगी। इस सम्भावना के प्रकाश में लिच्छवियों द्वारा बनाया गया यह नियम कि कोई लिच्छवि कन्या वैशाली के बाहर विवाह नहीं कर सकती,[3] महत्त्वपूर्ण हो उठता है। स्पष्टतः यह नियम लिच्छवि समाज में प्राचीनतर युग में मान्य भाई-बहिन के विवाह की प्रथा का सुधारा हुआ रूप था।

प्राक्-बुद्ध युग में प्रचलित भाई-बहिन के विवाह की प्रथा के अतिरिक्त (जिसे लिच्छवि समाज बुद्ध के युग तक छोड़ चुका था) ऐसी बहुत-सी प्रथाएं हैं, जो वैदिक समाज में अज्ञात थीं परन्तु लिच्छवि समाज में पहले से चली आई थीं और बुद्ध के युग में भी विद्यमान थीं। उदाहरणार्थ, 'भिक्खुनीविभंगसंघादिदेश' के अनुसार जब कोई लिच्छवि युवक विवाह करना चाहता था तो वह लिच्छवि संघ से प्रार्थना करता था कि वह उसके लिये कोई उपयुक्त कन्या चुन दे। इतना ही नहीं, इस ग्रन्थ के अनुसार लिच्छवि समाज में कोई भी पति संघ की अनुमति से अपनी दुराचारिणी पत्नी का वध कर सकता था।[4] लिच्छवि

1. लाहा, पूर्वोद्धृत।
2. जे० बी० बी० आर० ए० एस०, 27, पृ० 277।
3. राक्हिल, लाइफ ऑव दि बुद्ध, पृ० 62।
4. मिश्र, योगेन्द्र, एन अर्ली हिस्टरी ऑव वैशाली, पृ० 251।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समाज में सुन्दरी कन्याओं की नगरशोभिणी के रूप में नियुक्ति की प्रथा[1] भी, जिसका अनुसरण बाद में पाटलिपुत्रकों ने किया, प्रकृत्या अवैदिक थी। यहाँ चीनी साहित्य में प्रदत्त उस अनुश्रुति की ओर पुनः ध्यान दिलाया जा सकता है, जिसके अनुसार लिच्छवि समाज में शवों को जलाने और भूमि में गाड़ने के अतिरिक्त पशु-पक्षियों द्वारा खाए जाने के लिये खुली वायु में छोड़ देने या पेड़ पर लटका देने की प्रथा प्रचलित थी। धार्मिक दृष्टि से भी लिच्छवि जन बौद्ध धर्म के उदय के पूर्व वैदिक धर्म के अनुयायी नहीं, मुख्यतः यक्षों और चैत्यों के उपासक थे। 'महावस्तु' के अनुसार बुद्ध ने वज्जि संघ की राजधानी को हिमालय प्रदेश के यक्षों के दुष्प्रभाव से बचाया था।[2] इस ग्रन्थ से यह भी स्पष्टरूपेण ज्ञात होता है कि लिच्छवि जन भगवान् बुद्ध के द्वारा प्रभावित होने के पूर्व भी चैत्यों की उपासना किया करते थे।[3] कहने की आवश्यकता नहीं है कि इन धार्मिक विचारों और परम्पराओं का वैदिक धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं था। वस्तुतः बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित लिच्छवि समाज की ये सब प्रथाएं और विचारधाराएं मूलतः प्राक्-बुद्धयुगीन थीं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक क्षत्रियों और लिच्छवियों में वह अन्तर, जिसके कारण मनु लिच्छवियों को 'व्रात्य' कहने के लिए बाध्य हुए, लिच्छवियों पर बौद्ध और जैन धर्मों का प्रभाव नहीं, उनकी अवैदिक संस्कृति थी।

वज्जि संघ के अन्य सदस्य

वज्जि संघ की एक महत्त्वपूर्ण सदस्या **विदेह** जाति थी। गुप्तकाल में विदेह प्रदेश तीरभुक्ति (तिरहुत) नाम से विख्यात हुआ। इसकी राजधानी मिथिला थी जिसकी पहिचान जनकपुर से, जो नेपाल तराई में स्थित है, सामान्यतः की जाती है। किसी समय विदेह राज्य में वैशाली प्रदेश भी सम्मिलित था और इसलिए सम्पूर्ण वैशाली-विदेह प्रदेश को विदेह भी कह देते थे। इसी अर्थ में कुण्डगाम जो वैशाली के निकट स्थित था, विदेह में माना जाता था और महावीर की माता त्रिशला (वैशाली के 'राजा' चेटक की बहिन) व अजातशत्रु की मां चेल्लना (चेटक की पुत्री) वैदेही कहलाती थीं। जातकों के अनुसार मिथिला का विस्तार 7 योजन व विदेह का 300 योजन था। उसमें 16,000 ग्राम थे।

योगेन्द्र मिश्र का विचार है कि विदेह लोग वज्जि संघ के सदस्य नहीं थे और मिथिला प्रदेश बुद्ध काल में एक स्वतन्त्र राज्य था।[4] परन्तु बौद्ध ग्रन्थों में विदेह का स्वतन्त्र राजाधीन राज्य के रूप में कहीं उल्लेख नहीं है। यह बात असम्भव थी अगर बुद्धकाल में विदेह एक स्वतन्त्र राज्य होता। दूसरे पतञ्जलि (4. 1. 168) ने विदेह के गणराज्य का उल्लेख किया है। यह स्थिति बुद्धकालीन ही हो सकती थी।

1. मिश्र, योगेन्द्र, एन अर्ली हिस्टरी ऑव वैशाली, पृ० 251।
2. आई० एच० क्यु०, 9, पृ० 444।
3. वही।
4. मिश्र, अ० हि० वै०, पृ० 117-121।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ज्ञातृक (प्राकृत नाट या ञात) एक काश्यपगोत्रीय क्षत्रिय जाति थे। 24वें तीर्थंकर महावीर इस जाति में उत्पन्न हुए थे और उनकी माँ त्रिशला लिच्छवि 'राजा' चेटक की बहिन थी। महावीर को 'वेसालिए' (वैशालिक) कहा गया है। ज्ञातृकों के मुख्य स्थल नादिक तथा कुण्डगाम या कुण्डपुर आदि थे। जायसवाल व राहुल सांकृत्यायन के अनुसार वैशाली प्रदेश के आधुनिक जेथरिया ब्राह्मण (जो भूमिहार ब्राह्मणों का अंग हैं) प्राचीन ज्ञातृकों (=ज्ञातर=जतर=जाथर=जेथरिया) के वंशज हैं। परन्तु योगेन्द्र मिश्र का कहना है कि जेथरिया ब्राह्मण इस प्रदेश में मुस्लिम काल में आकर बसे थे।

जैन ग्रन्थों के अनुसार **उग्र** और भोग क्षत्रिय थे और प्रथम जैन तीर्थंकर ने उन्हें नगर-मुख्य नियुक्त करके सम्मानित किया था। उग्रों का मुख्य स्थल हत्थिगाम था। 'अंगुत्तर निकाय' में उनका सम्बन्ध वैशाली से बताया गया है। मनु ने उन्हें क्षत्रिय पिता व शूद्रा माता की सन्तान माना है।

जैन ग्रन्थों में उग्रों की तरह **भोगों** को भी क्षत्रिय बताया गया है। 'महापरिनिब्बान सुत्तन्त' में भोगनगर का उल्लेख है जो वैशाली से पावा के मार्ग में पड़ता था। 'महाभारत' में वैशाली के भोगी नागों की चर्चा आई है।

ऐक्ष्वाकुओं की पहिचान अनिश्चित है। वे वैशाली के प्राचीन राजाओं (जो इक्ष्वाकु के भाई नाभानेदिष्ट के वंशज थे) या विदेह के राजवंश (जिसकी स्थापना इक्ष्वाकु के पुत्र निमि ने की थी) से सम्बन्धित अथवा अयोध्या से आकर वज्जि प्रदेश में बसने वाले इक्ष्वाकु रहे होंगे।

इसी प्रकार वज्जि प्रदेश में **कौरवों** का अस्तित्व भी रोचक है। महाभारत-काल में पाण्डवों ने विदेह को जीता था। हो सकता है उस समय कुछ पाण्डव (जो कौरववंशीय थे) वहां बसे हों। यह भी हो सकता है जब निचक्षु ने हस्तिनापुर छोड़कर कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया उस समय कुछ कौरव वैशाली की तरफ बढ़ आए हों।

वज्जि संघ का इतिहास

वैशाली प्रदेश वैदिक काल में एक राजाधीन राज्य था। पुराणों में वैशालक राजाओं की जो सूची दी गई है उसमें अन्तिम नाम सुमति का है। वह दशरथ का समकालीन था। उसके बाद यह राज्य कुछ शती तक सम्भवतः विदेह के अधीन रहा। बुद्धकाल के कुछ पूर्व यहां गणराज्य की स्थापना हुई। रायचौधुरी के अनुसार वज्जि गणराज्य छठी शती ई० पू० के प्रारम्भ में अस्तित्व में आया,[1] उपेन्द्र ठाकुर के अनुसार लगभग 750 ई० पू० में[2] तथा योगेन्द्र मिश्र के अनुसार लगभग 725 ई० पू०।[3] ये सभी तिथियां विदेह के राजा कराल जनक की आनुमानित तिथि पर आधारित हैं जो विदेह का अन्तिम ज्ञात जनक था और जो 'निमि जातक' कौटिलीय 'अर्थशास्त्र' तथा अश्वघोष के 'बुद्धचरित'

1. रायचौधुरी, पो० हि० ए० इ०, पृ० 82-3।
2. ठाकुर, उ०, हिस्टरी ऑव मिथिला, पृ० 64।
3. मिश्र, यो०, अ० हि० बै०, पृ० 98 अ०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के अनुसार एक ब्राह्मण युवती का अपहरण करने के कारण अपने वंश व राज्य के विनाश का कारण बना।[1] उसके बाद विदेह प्रदेश में (जिसमें वैशाली भी सम्मिलित था) संघ या गणराज्य की स्थापना हुई। 'परमत्थजोतिका' के अनुसार जनक वंश के बाद लिच्छवि ही इस प्रदेश में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभड़े थे। हो सकता है विदेह के जनकवंश के पतन में काशी राजवंश का कुछ हाथ रहा हो। काशी के राजा विदेह के जनकों के यश को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते थे और उनसे प्रायः संघर्षरत रहते थे।[2] ऐसी स्थिति में 'परमत्थजोतिका' का यह कथन कि लिच्छवि जन काशी की एक रानी की सन्तान थे, महत्त्वपूर्ण लगने लगता है।

जो भी हो, बुद्ध के एक या दो शती पूर्व किसी समय विदेह-वज्जि प्रदेश में क्रूर राजाओं का अन्त करके गणराज्य की स्थापना की गई। रायचौधुरी के अनुसार यह घटना रोम से तारक्विनों के निष्कासन एवं वहां गणराज्य की स्थापना का स्मरण दिलाती है।[3] यूनान में भी वीरकाल के राजवंशों के स्थान पर कुलीनतन्त्रों की स्थापना इसी प्रकार से की गई थी। ब्युरी ने 'हिस्टरी ऑव ग्रीस' में उस देश में कुलीन तन्त्रों की स्थापना के कारण बताते हुए कहा है कि कहीं तो राजाओं के बहुत अत्याचारी हो जाने पर सामन्तों ने उसके हाथ से सत्ता छीन ली और कहीं राजाओं के अधिक सत्ता प्राप्त करने की प्रवृत्ति दिखाने पर उन पर अंकुश लगाये जाने लगे जो बढ़ते-बढ़ते इतने अधिक हो गए कि राजपद नाम मात्र का रह गया। बहुत से राज्यों में किसी शिशु या अत्यन्त दुर्बल व्यक्ति के राजा बन जाने पर सामन्तों ने उसे पदच्युत करके कुलीनतन्त्र की स्थापना कर दी। भारत में वज्जि व मल्ल जैसे गणराज्य की स्थापना कुछ ऐसी ही प्रवृत्तियों का परिणाम रही होगी।

वज्जि संघ का केवल बुद्धकालीन इतिहास ही ज्ञात है जो इसके अस्तित्व के अन्तिम युग का है। इस युग में वज्जि संघ का गणाध्यक्ष चेटक था। उसने अनेक विवाह सम्बन्धों द्वारा अपनी स्थिति सुदृढ़ की थी। उसकी बहिन विदेहदत्ता का, जो त्रिशला और प्रिय-कारिणी भी कही गई है, विवाह ज्ञातृक सरदार सिद्धार्थ के साथ हुआ था। चेटक की सात लड़कियां थीं जिनमें कुछ का विवाह उसने तत्कालीन युग के महत्त्वपूर्ण राजाओं से किया था। इनमें एक—चेल्लना देवी—मगध-नरेश बिम्बिसार को ब्याही थी। दूसरी का विवाह, जिसका नाम मृगावती था, जैन ग्रन्थों के अनुसार वत्स के राजा शतानीक से किया गया था। 'स्वप्नवासवदत्ता' में भी भास ने शतानीक के पुत्र उदयन को वैदेहीपुत्र कहा है। एक तिब्बती परम्परानुसार बुद्ध के पिता शुद्धोदन की रानियां माया और महा-माया भी वृज्जि राजकुमारियां थीं।[4]

मगध को छोड़कर अन्य पड़ोसी राज्यों के साथ लिच्छवियों के अच्छे सम्बन्ध थे।

1. दे०, रायचौधुरी, पूर्वो०।
2. वही।
3. वही।
4. हिन्दू सभ्यता, पृ० 196।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनकी पश्चिमी पड़ोसी जाति मल्ल उन्हीं के समान वशिष्ठगोत्रीय क्षत्रिय जाति थी और उसकी शासन व्यवस्था भी संघात्मक थी। लिच्छवियों के समान वह भी बौद्ध और जैन धर्मों में रुचि रखती थी। शायद इसीलिए मनु ने इन दोनों जातियों को व्रात्य क्षत्रिय कहा है (10.22)। जब अजातशत्रु ने वज्जिसंघ पर आक्रमण किया तो मल्लों ने वज्जियों के साथ मिलकर एक संघ बनाया और अजातशत्रु की साम्राज्यवादी नीति का प्रतिरोध किया। लिच्छवियों का मल्लों से कटु सम्बन्ध केवल मल्ल सेनापति बन्धुल की कथा से संकेतित है। इसके अनुसार एक बार बन्धुल मल्ल अपनी स्त्री मल्लिका के साथ वैशाली गया। वहां उसके द्वारा लिच्छवि पुष्करिणी में स्नान कर लिये जाने से बड़ा झगड़ा हो गया और 500 लिच्छवि युवक मल्ल सेनापति का पीछा करते हुए मारे गए (धम्मपद अट्ठकथा)।

अजातशत्रु के विरुद्ध लिच्छवियों को सहायता देने वाले राज्यों में काशी-कोसल के 18 गणराजा भी थे। रायचौधुरी के अनुसार इनमें काशी-कोसल प्रदेश में रहने वाले शाक्य, कालाम आदि गणप्रमुख सम्मिलित थे। वी० एम० बरुआ ने 'नवलिच्छवियों' व 'नवमल्लों' को काशी-कोसल पर शासन करने वाले 18 गणराजाओं से अभिन्न माना है और उन्हें चेटक का 'सामन्त' कहा है।[1] परन्तु यह मत, जिसके अनुसार चेटक काशी, कोसल, मल्ल व वज्जिसंघ का स्वामी हो जाता है, समस्त ज्ञात इतिहास के विरुद्ध है।

लिच्छवियों के कोसल के साथ भी मधुर सम्बन्ध थे। महालि नाम का एक प्रतिष्ठित लिच्छवि तथा कोसलाधीश प्रसेनजित् तक्षशिला में सहपाठी रहे थे। तब से दोनों में गहरी मित्रता थी। जब प्रसेनजित् अंगुलिमाल को पकड़ने गया था तो उसने बुद्ध को बताया था कि मगध का राजा बिम्बिसार तथा वैशाली के लिच्छवि दोनों उसके मित्र हैं। एक बार जब बुद्ध वैशाली के महावन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने वैशाली में मगध व कोसल के ब्राह्मण राजदूतों को निवास करते पाया था।

लेकिन मगध के साथ वज्जि संघ के सम्बन्ध बिम्बिसार और अजातशत्रु दोनों के ही समय में अच्छे नहीं रहे। बिम्बिसार का विवाह चेटक की पुत्री के साथ हो जाने के बावजूद दोनों राज्यों में स्वयं बिम्बिसार के ही काल में युद्ध हुआ था (दे०, अध्याय 8)। बिम्बिसार का प्रेम-सम्बन्ध वैशाली की गणिका आम्रपाली के साथ भी था और वज्जियों का अनुकरण करके उसने राजगृह में सालवती नामक सुन्दरी को नगरशोभिणी बनाया था। अजातशत्रु के काल में वज्जि संघ के मगध से सम्बन्ध और अधिक बिगड़े जिसके परिणामस्वरूप वज्जि संघ का उन्मूलन हुआ। वज्जि इतिहास के इस पक्ष पर विस्तृत विचार नवें अध्याय में किया गया है।

वज्जि संघ व बौद्ध तथा जैन धर्म

वज्जि संघ में प्रारम्भ से ही वैदिकेतर मतों का प्राबल्य था। 'महावग्ग' के अनुसार वैशाली में अनेक चैत्य और विहार थे। उनमें आठ प्रसिद्ध चैत्य ये थे—उदेन, गोतमक,

1. इण्डियन कल्चर, 2, पृ० 810।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सत्तम्ब (सप्ताम्र), वहुपुत्र, चापाल, कपिनह्य, सारदन्द तथा मर्कटहृद। बुद्धघोष की व्याख्या के अनुसार ये यक्षपूजा के अथवा बुद्ध धर्म से पूर्वकाल के धर्म के पूजास्थान थे। लिच्छवियों ने इन सबका दान बुद्ध के लिए कर दिया। इनके अतिरिक्त वैशाली की गणिका आम्रपाली ने विशाल आम्रवन तथा बालिका ने बालिकाराम भी बुद्ध को दिये थे (विनय, महावस्तु)। लिच्छवियों ने बुद्ध के लिए महावन में कूटागारशाला का निर्माण भी करवाया।[1] बुद्ध ने अपने कई वर्षावास वैशाली में व्यतीत किए थे। लिच्छविजन सुन्दर वेश धारण करके बड़े ठाट-वाट से उनका स्वागत करने आया करते थे। 'अंगुत्तर निकाय' में वर्णन आता है कि 500 लिच्छवि युवकों को शान्ति से बुद्ध का उपदेश सुनते देखकर महानाम लिच्छवि ने आश्चर्य प्रकट किया था: "जीवन में उद्धत वे बुद्ध के सामने इतने भले व मृदु स्वभाव के कैसे हो गए?" एक दुष्ट लिच्छवि राजकुमार, जिससे उसके माता-पिता तंग रहते थे, बुद्ध के उपदेश से बिल्कुल बदल गया। इससे बुद्ध की बड़ी प्रशंसा हुई (एकपण्ण जातक)। जिन प्रसिद्ध लिच्छवियों ने बौद्ध धर्म स्वीकृत किया उनकी सूची लम्बी है। उनमें कुछ के नाम इस प्रकार हैं: भद्दिय, साल्ह, अभय, नन्दक (एक महामात्र), अञ्जन वनिय (एक लिच्छवि राजा का पुत्र), सीह या सिंह (लिच्छवि सेनापति), सच्चक, सीहा (सीह की बहिन, जो अर्हत् पद पर पहुंची), अम्बपाली या आम्रपाली (वैशाली की विख्यात गणिका), दुम्मुख (एक लिच्छवि सरदार), अजित (एक सेनाध्यक्ष), महालि (एक प्रतिष्ठित लिच्छवि सरदार), विमल कोडञ्ञ (बिम्बिसार का आम्रपाली के गर्भ से उत्पन्न पुत्र) आदि।[2]

लिच्छवियों ने महावीर को भी बहुत सम्मान और श्रद्धा प्रदान की। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि महावीर स्वयं 'वेसालिए' (वैशालिक) थे और उनकी मां चेटक की बहिन थी। दूसरे, जैन धर्म महावीर के पूर्व ही वैशाली में जड़ें जमा चुका था। स्वयं महावीर के माता-पिता तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। सीह सेनापति पहिले निगण्ठ नातपुत का अनुयायी ही था। इसी प्रकार सच्चक, अभय तथा पण्डितकुमार भी महावीर के अनुयायी रहे थे। महावीर ने अपने 12 वर्षावास वैशाली-वाणिज्यग्राम में बिताए थे। जब महावीर की मुक्ति हुई तो लिच्छवियों का अजातशत्रु के साथ संघर्ष चल रहा था। उस समय उन्होंने युद्ध रोककर उस महान् ज्योति के अवसान को एक प्रकाश-पर्व के रूप में मनाया था।

वैशाली में आजीविक सम्प्रदाय का भी कुछ प्रभाव था। ब्राह्मण जनों का वैशाली में निवास इस नगर के दक्षिण भाग को दक्षिण ब्राह्मण कुण्डपुर कहे जाने एवं बहुत से वैशालिक ब्राह्मणों के बौद्ध बनने से प्रमाणित है।

वज्जि संघ का संविधान और प्रशासन

वज्जि राज्य एक संघ या गणाधीन जनपद था। सम्भवतः इसे एक संघात्मक कुलीन-

1. इन बौद्ध स्थानों के परिचय के लिए दे०, मिश्र, योगेन्द्र, पूर्वो०, पृ० 172-83।
2. इन लिच्छवियों के संक्षिप्त परिचय के लिए दे०, मिश्र, योगेन्द्र, पूर्वो०, पृ० 159-72।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तन्त्र (ऐसा राज्य जो कई गणजातियों के कुलीन वर्गों का संघ था) कहना अधिक सही होगा। अजातशत्रु के विरुद्ध संघर्ष करते समय वज्जियों और मल्लों ने काशी-कोसल के गणराज्यों के साथ मिलकर एक विशालतर संघ समूह भी बनाया था जिसमें जैन 'कल्प-सूत्र' के अनुसार 9 लिच्छवि, 9 मल्ल तथा काशी-कोसल के 18 गणराजा सम्मिलित थे। लेकिन इस संघ के सदस्य राज्य स्वतन्त्र थे क्योंकि स्वयं जैन ग्रन्थों के अनुसार बाद में अन्य 'राजा' संघ की सदस्यता छोड़कर चले गए थे, लिच्छवि गणाध्यक्ष चेटक अकेला ही युद्ध करता रह गया था।

बुद्धघोष की 'अट्ठकथा' के अनुसार वज्जिसंघ का शासन चलाने के लिए 7707 राजा थे जो वैशाली की 'द्विगुणित 84,000' अर्थात् 1,68,000 जनसंख्या में से चुने जाते थे। उनके साथ उतने ही उपराजा तथा सेनापति होते थे। वे वैशाली में स्थायी रूप से निवास करते थे। 'चुल्लकलिंग जातक' व 'एकपण्ण जातक' के अनुसार इन राजाओं, उपराजाओं तथा सेनापतियों के साथ इतने ही भाण्डागारिक भी थे।[1] संघ के सदस्य होने के कारण वे सदैव तर्क-वितर्क में रत रहते थे (ते सब्बेपि पटिपुच्छावितक्का अहेसुं)।

राजाओं की यह सभा पाणिनि (6.2.34) के साक्ष्य के अनुकूल है जिसके अनुसार संघ राज्यों की गणसभा में वे समस्त क्षत्रिय सदस्य होते थे जो शासन के लिए अभिषिक्त किए जाते थे और राजन्य कहलाते थे। कौटिल्य ने भी उन संघों का उल्लेख किया है जिनमें 'राजा' उपाधि (राजशब्द) संगठन का मूल आधार थी।[2] लिच्छवि गण के बहुसंख्यक राजाओं की व्यंगात्मक रूप से चर्चा करते हुए 'ललितविस्तर' में कहा गया है कि कोई लिच्छवि राजा अपने को किसी दूसरे से छोटा नहीं मानता था। सब 'मैं राजा हूं, मैं राजा हूं' ऐसा कहते थे।[3] वे हरे, पीले, नीले, मंजीठी, सफेद अथवा लाल रंग के वस्त्र धारण करके सभा भवन या उत्सवों में आते थे। उनके आभूषण, घोड़े, रथ, उष्णीश, छत्र, जूते, चाबुक, छड़ी सभी एक रंग के होते थे। कुछ विद्वानों ने कल्पना की है कि उनके विविध रंगों के वस्त्राभूषण उनके आन्तरिक श्रेणी-भेद के सूचक थे।

वज्जि संघ के '7707 राजा' कौन थे, इस विषय में बड़े अनुमान किए गए हैं। बहुत से विद्वान् इस संख्या को अत्यधिक और अतएव असम्भव मानते हैं। परन्तु प्राचीन कुलीन-तन्त्रात्मक गणों में संसद के सदस्यों की संख्या प्रायः बहुत बड़ी हुआ करती थी, यूनानी लेखकों ने चौथी शती ई० पू० के एक भारतीय गणराज्य की शासक सभा के सदस्यों की

1. तत्थ निच्चकालं रज्जं कारेत्वा वसंतानं येव राजूनं।
सत्त सहस्सानि सत्त सतानि सत्त च राजानो होति। तत्तका ये व उपराजानो तत्तका सेनापतिनो तत्तका, तत्तका भंडागारिका। —जातक, 1, 504

2. लिच्छिविक वृज्जिक कुकुर कुरु पञ्चालादयो राजशब्दोपजीविनः संघाः।
—अर्थशास्त्र, 11, 1

3. नोच्च मध्य वृद्ध ज्येष्ठानुपालिता। एकैक एव मन्यते अहं राजा अहं राजेति। न च कस्यचित् शिष्यत्वमुपगच्छति। —ललित विस्तर 3, 23

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संख्या 5,000 बताई है।[1] यूनान में एथेन्स की साधारण सभा के सदस्यों की संख्या तो 42,000 थी। इनमें प्रत्येक सदस्य को मतदान का अधिकार था, लेकिन व्यवहार में कुल 7 या 8 प्रतिशत सदस्य सभा की कार्यवाही में भाग लेते थे।[2] यही बात पूर्वी भारत में रही होगी। फिर भी इतना माना जा सकता है कि 7707 संख्या एक आदर्शभूत संख्या है। वास्तविक संख्या हो सकता है इससे कुछ कम रही हो। अल्तेकर का कहना है कि 7707 राजा वास्तव में वज्जिसंघ के क्षत्रियजातीय जमींदार रहे होंगे जो स्वयं वैशाली में रहते होंगे और अपनी जमींदारी का कार्य भाण्डागारिकों से कराते होंगे। उनके पुत्र 'उपराजा' कहलाते होंगे। क्योंकि उन्हें आवश्यकता पड़ने पर राज्य को सैनिक सहायता भी देनी होती होगी, इसलिए उनमें प्रत्येक के पास एक सेनापति भी होता होगा।[3]

वज्जि संघ की सभा का यह संगठन एथेन्स के लिए क्लेस्थेनिज़ द्वारा निर्मित संविधान का स्मरण दिलाने वाला है। सम्भवतः क्लेस्थेनिज़ की तरह वज्जि लोगों ने भी अपने राज्य को प्रादेशिक इकाइयों में बांटा हुआ था। मजूमदार के अनुसार यह परिवर्तन राज्य के कबीले की प्रधानता के सिद्धान्त के विरुद्ध था।[4] परन्तु विभिन्न इकाइयों में अगर लिच्छविजातीय जन ही राजा होते थे तो कबीले की प्रधानता के सिद्धान्त को बहुत क्षति नहीं पहुंची होगी।

वज्जि संघ में सिद्धान्ततः सभी राजाओं के अधिकार समान थे, परन्तु व्यवहार में बुजुर्गों (महल्लकों) का अधिक आदर किया जाता था। राजाओं का विधिवत् अभिषेक होता था। इसके लिए वैशाली में एक पुष्करिणी थी[5] जिसकी विशेषतः रक्षा की जाती थी और कोई अन्य व्यक्ति इसमें स्नान नहीं कर सकता था।

लिच्छवि सभा का अधिवेशन जिस भवन में होता था वह संथागार (संस्कृत संस्थागार) कहलाता था। 'अट्ठकथा' के अनुसार अधिवेशन प्रारम्भ होने के समय घड़ियाल बजाया जाता था।

लिच्छवि राजाओं की सभा, जो 'संस्था' कहलाती थी, गणराज्य की सर्वोच्च सभा थी। इसमें विदेशी मामले ही नहीं धार्मिक, व्यापारिक तथा कृषि सम्बन्धी मामले भी रखे जाते थे। लिच्छवियों के विवाह आदि के मामले भी संघ में ही तय किए जाते थे। तिब्बती साक्ष्य के अनुसार तो किसी नागरिक के लिए पत्नी का चुनाव भी संघ ही करता था।[6] सामान्यतः किसी व्यक्ति को अपने मौहल्ले के बाहर विवाह करने की अनुमति नहीं दी जाती थी।[7] 'महावस्तु' में एक दूत को वैशाली के लिच्छवियों की ओर से (वैशाल-

1. मैक्रिण्डल, एन्श्येन्ट इण्डिया एज डेस्क्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर, पृ० 45।
2. अल्तेकर, स्टेट एण्ड गवर्नमेण्ट इन एन्श्येण्ट इण्डिया, पृ० 115।
3. होमेज टु वैशाली, पृ० 69।
4. ए० इ० यू०, पृ० 332।
5. वेसालि नगरे गणराजकुलानां अभिसेक पोक्खरणाम्—जातक 4. 148।
6. मिश्र, योगेन्द्र, अ० हि० वै०, पृ० 251।
7. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कानां लिच्छविनां वचनेन) संदेश पहुंचाने का काम सौंपा गया था। इसका तात्पर्य है कि संस्था में निर्णय जनता के नाम पर किए जाते थे।

वैशाली की गण संस्था कार्यकारिणी की नियुक्ति भी करती थी। इस कार्यकारिणी को हम महासमिति कह सकते हैं। उसके सदस्यों की तुलना यूरोप के 'आर्कनों' या 'कोन्सलों' से की गई है। यह महासमिति सम्भवतः वही है जिसे जैन ग्रन्थों में 'नवलेच्छई' कह कर सम्बोधित किया गया है और जिसके सदस्य नवमल्लिकों तथा काशी-कोसल के अट्ठारह राजाओं के साथ अजातशत्रु के विरुद्ध बने महासंघ में सम्मिलित थे। सम्भवतः यह महा-समिति वैदेशिक व आन्तरिक मामलों की देखभाल करती थी। चेटक इसी का अध्यक्ष रहा होगा।

उपर्युक्त सभा के अतिरिक्त 'अष्टकुल' नाम की एक संस्था भी थी जिसमें सम्भवतः वज्जि संघ की सभी आठ सदस्य जातियों का प्रतिनिधित्व था। यह उनकी न्याय महा-समिति थी। वज्जियों की न्याय-व्यवस्था पर कुछ रोचक प्रकाश बुद्धघोष की 'अट्ठकथा' से मिलता है। इसके अनुसार वज्जि संघ में प्रत्येक अभियुक्त के अपराध की जांच-पड़ताल कई विशेषज्ञ पदाधिकारी और संस्थाएं करती थीं। ये इस प्रकार थीं। सर्वप्रथम अभि-युक्त को विनिच्च महामत्त (विनिश्चय महामात्र) के पास लाया जाता था। वह मामले के तथ्यों का संग्रह व निश्चय करता था। वह अभियुक्त को दोषी न पाने पर छोड़ सकता था, परन्तु दोषी पाने पर दण्डित नहीं कर सकता था। अगर अभियुक्त दोषी प्रतीत होता था तो मामला वोहारिक (व्यावहारिक) के पास जाता था। वह एक प्रकार का विधिवेत्ता या वकील-न्यायाधीश होता था। वह भी अभियुक्त को छोड़ सकता था परन्तु उसे दोषी पाने पर स्वयं दण्डित नहीं कर सकता था। तदुपरान्त मामला सुत्तधर (सूत्रधर) के पास जाता था। वह व्यवहार-शास्त्र का आचार्य होता था। वह धर्म तथा रीति रिवाजों को समझ कर उनके परिवर्तनशील रूप के आवरण में छिपे मूल भाव की व्याख्या करता था। वहां भी अगर अभियुक्त दोषी प्रमाणित होता था तो उसका मामला अट्ठ-कुलिकों के पास जाता था जिसमें सम्भवतः आठ जातियों के आठ प्रतिनिधि न्यायाधीश होते थे। वहां भी अगर अभियुक्त दण्डनीय सिद्ध होता था तो उसका मामला क्रमशः सेनापति, उपराजा व राजा सुनते थे। अन्तिम निर्णय राजा देता था और वही 'पवेणी पोत्थक' (पिछले मामलों की मिसलें) नामक दण्ड संहिता अनुसार दण्ड निर्धारित करता था। इस प्रकार राजा सर्वोच्च न्यायाधिकारी भी होता था। इस प्रसंग में विशेष बात ध्यान देने की यह है कि इन सात न्यायालयों में प्रत्येक को अभियुक्त को निरपराधी मान-कर छोड़ देने का अधिकार था परन्तु दण्ड देने का काम केवल राजा का था और वह भी 'पवेणी पोत्थक' के अनुसार। इस प्रकार अगर यह परम्परा सही है तो वज्जिसंघ में व्यक्ति की स्वतंत्रता की पूर्णरूपेण रक्षा की जाती थी। बहुत से विद्वान् बुद्धघोष के एक परवर्ती लेखक होने एवं इस व्यवस्था के अत्यधिक आदर्शभूत होने के कारण इसको विश्वस-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीय नहीं मानते।[1] प्रस्तुत अध्याय के लेखक को भी इसकी ऐतिहासिकता में सन्देह है। बुद्धघोष के साक्ष्य से अधिक से अधिक यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि वज्जिसंघ में अभियुक्त की सुनवाई क्रमशः कई न्यायालयों में की जाती थी।

'अंगुत्तर निकाय' में एक स्थल पर बुद्ध ने लिच्छवि युवकों को सम्बोधित करते हुए कुछ पदों के नाम लिए हैं जिन्हें वे प्राप्त कर सकते थे। वे हैं—राष्ट्रिक, पेत्तणिक, सेनापति, गामगामणिक (गांवों का मुखिया), तथा पूगगामणिक (औद्योगिक संस्थाओं का मुखिया)।[2] इनमें अन्तिम दो का सम्बन्ध गाम व नगर प्रशासन से था।

वज्जिसंघ की सफलता उसके संविधान पर उतनी निर्भर नहीं थी जितनी वज्जियों के जातीय चरित्र पर। इस विषय में स्वयं भगवान् बुद्ध का प्रमाण-पत्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। उनके शब्दों में वज्जि लोग "विलास व आलस्य से रहित थे, महीन वस्त्रों के गद्दों पर न सोकर लकड़ी के तकिए लगाते थे और धनुर्विद्या में उत्साह से भाग लेते थे। वे कोमल सुकुमार तथा निर्बल हाथ पैर वाले नहीं थे" (संयुक्त निकाय)। वे क्रीड़ाओं में दिलचस्पी रखते थे और हस्ति-शिक्षा आदि के शौकीन थे (थेरीगाथा)। उनके युवक अल्हड़ होते हुए भी बुद्ध के सामने अपने नटखटपन से बाज आते थे। कुछ कथाओं के अनुसार अनेक लिच्छवि जनों ने अपनी भूल स्वीकार करने का नैतिक साहस दिखाया था। उनके मन में अपनी जातीय संस्थाओं के प्रति अभिमान था। शिक्षा के प्रति उनके मन में उत्साह था। एक कथा के अनुसार महालि लिच्छवि ने अध्ययन के बाद तक्षशिला से लौटने पर 500 लिच्छवि कुमारों को शिक्षित बनाया जिन्होंने स्वयं शिक्षित होकर सारे देश में शिक्षा फैला दी थी (धम्मपद अट्ठकथा)।

भगवान् बुद्ध वज्जिसंघ के भविष्य के सम्बन्ध में बड़े आशावान थे। उनका विचार था कि जब तक वज्जि लोग सात 'अपरिहानिय धम्मों' का पालन करते रहेंगे, वे अजेय रहेंगे। अपरिहानिय धम्म ये थे: "(1) नियत समय पर सदस्यों की पूर्ण उपस्थिति के साथ संघ सभा के अधिवेशन करना (अभिण्हं सन्निपाता सन्निपातबहुला भविस्संति)। (2) एकमत या समग्र भाव से संघ में उपस्थित होना, एक मत या समग्र भाव से अधिवेशन समाप्त करना और एक मत या समग्र भाव से संघ के कर्त्तव्य करना (समग्गा सन्निपतिस्संति समग्गा वुट्ठ हिस्संति समग्गा संघ करणीयानि करिस्संति)। (3) जो स्वीकृत नहीं हुआ है उसे स्वीकार नहीं करना, जो स्वीकृत हो चुका है उसका समुच्छेद नहीं करना और वज्जिसंघ के यथा स्वीकृत पूर्व निश्चयों को लेकर उनके अनुसार कार्य करना (अप्पञ्ञतं न पञ्ञापेस्संति, पञ्ञातं न समुच्छिन्दिस्संति, यथा पञ्ञत्तेसु सिक्खापदेसु समादाय वत्तिस्संति)। (4) वज्जिसंघ के जो संघपितर या वृद्ध हैं और जो संघपरिणायक या नेता है, उनका सत्कार करना, उनके प्रति गौरव का भाव रखना, उनका सम्मान करना और पूजा करना और उनके वचन सुनकर उन्हें मानना (ये ते संघपितरो संघपरिणायका ते सक्करिस्संति

1. दे०, शर्मा, आर० एस०, आस्पेक्टस ऑव पोलिटिकल आइडियाज़ एण्ड इन्स्टिट्यूशंस् इन एन्श्येण्ट इण्डिया, पृ० 282।
2. मिश्र, योगेन्द्र, पूर्वो०, पृ० 150।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गरु करिस्संति मानेस्संति पूजेस्संति तेसञ्च सोत्तब्बं मञ्ञिस्संति। (5) वज्जिसंघ में भीतर और बाहर जो चैत्य हैं उनकी पूजा बनाए रखना और पूर्वकाल से नियत बलि एवं धार्मिक कृत्यों को जारी रखना (वज्जि चेतियानि अब्भंतरानि चेव बाहिरानि च तानि सक्करिस्संति गरु करिस्संति, मानेस्संति, पूजेस्संति तेसञ्च दिन्न पुब्बं कतपुब्बं धम्मिकं बलिं नो परिहास्संति नो परिहापेस्संति)। (6) वज्जिसंघ में जो धार्मिक अरहन्त हैं उनका सम्मान करना (वज्जीनं अरहंतेसु धम्मिका रक्खावरण गुत्ति सुसंविहिता भविस्संति)। (7) वज्जिसंघ के महल्लकों अर्थात् वृद्धों का सत्कार करना, उनके प्रति गौरव का भाव रखना, उनका सम्मान करना और पूजा करना, कुल स्त्रियों और कुलकुमारियों का अपहरण न करना और उनके साथ वलपूर्वक व्यवहार न करना(ये ते वज्जीनं वज्जिमहल्लका ते सक्करिस्संति गरु करिस्संति, मानेस्संति पूजेस्संति· ·या ता कुलित्थियों, कुलकुमारियो ता न आक्कस्स पसह्य वासेन्ति)।"[1]

वज्जि संघ की कार्य विधि

वज्जि संघ अथवा किसी भी अन्य बुद्धकालीन गणाधीन राज्य की संघीय कार्य विधि का विवरण कहीं नहीं मिलता, लेकिन पालि विनय में बौद्ध संघ की, जो प्रजातान्त्रिक रूपेण संगठित किया गया था, कार्य-प्रणाली व अनुशासन से सम्बन्धित विस्तृत नियम मिलते हैं। जायसवाल प्रभृति अनेक विद्वानों का मत है कि भगवान् बुद्ध ने ये नियम तत्कालीन संघ राज्यों की कार्य पद्धति के आधार पर ही बनाए होंगे।[2] मजूमदार के अनुसार यद्यपि यह मान्यता न्याय संगत है तथापि इसे सतर्क प्रमाणित नहीं किया जा सकता।[3] हमारे विचार से बौद्ध संघ की कार्य विधि से सम्बन्धित किसी नियम विशेष के विषय में यह कहना तो सम्भव नहीं है कि यह तत्कालीन संघ राज्यों में यथावत् प्रचलित रहा होगा, परन्तु बौद्ध संघ की कार्य-प्रणाली का जो स्थूल चित्र हमें ज्ञात है उससे संघ राज्यों की कार्य-प्रणाली बहुत भिन्न भी नहीं रही होगी। उदाहरणार्थ, भगवान् बुद्ध ने वज्जि संघ के अजेय रहने के लिए जो सात अपरिहानिय सूत्र बताए थे (दे०, ऊपर) वे उन्होंने अपने संघ पर भी आवश्यक संशोधनों के साथ लागू किए। 'महापरिनिब्बान सुत्त' में कहा गया है कि जब अजातशत्रु का मन्त्री वस्सकार (जिसे सुनाने के लिए बुद्ध ने आनन्द से ये सात सूत्र बताए थे) चला गया तो बुद्ध ने उन समस्त भिक्षुओं को, जो राजगृह के पास विचरण कर रहे थे, बुलवाया और उनके सम्मुख बौद्ध संघ की वृद्धि के लिए सात अपरिहानिय नियम बताए। इनमें प्रथम चार तो वही थे जो उन्होंने वज्जिसंघ के लिए

1. महापरिनिब्बान सुत्तन्त (हिन्दू सभ्यता, पृ० 199-200 पर दिया गया अवतरण कुछ संशोधित अनुवाद सहित)।

2. जायसवाल, हिन्दू पोलिटी, अध्याय 11; दे०, दत्त, एस०, अर्ली बुद्धिस्ट मोनेकिज्म; सरकार, वी० के०, पोलिटिकल थ्योरीज एण्ड इन्स्टिट्यूशन्स् ऑव हिन्दूज, मुकर्जी आर० के०, हिन्दू सभ्यता, पृ० 202-6।

3. ए० इ० यू०, पृ० 332।

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, New Delhi. Chandigarh

बताए थे (भिक्षुओं का पूर्ण उपस्थिति के साथ संघ की सभाएं करना, एकमत या समग्र भाव से कार्य करना, स्वीकृत का उल्लंघन न करना तथा वृद्ध भिक्षुओं का सम्मान करना) और शेष तीन को बौद्ध संघ की आवश्यकताओं के प्रकाश में संशोधित कर दिया था (पुनः पुनः उत्पन्न होने वाली तृष्णाओं को वश में रखना, मात्र वन की कुटियों में वास करने की इच्छा रखना, संघ में प्रविष्ट ब्रह्मचारियों के सुख का प्रयत्न करना)। बुद्ध ने संघ की कार्य विधि के हेतु नियम बनाते समय भी राजनीतिक संघों के नियमों को इसी प्रकार आवश्यक संशोधनों सहित स्वीकृत किया होगा। अतः अच्छा होगा हम बौद्ध संघ की कार्य-प्रणाली का संक्षिप्त परिचय दे दें जिससे यह अनुमान किया जा सके कि राजनीतिक संघों की कार्य प्रणाली स्थूलतः कैसी रही होगी।

बौद्ध संघ के अधिवेशन उद्यानों या आरामों (संस्थागारों) में होते थे। आसन पञ्ञापक (आसन प्रज्ञापक) नाम का अधिकारी ज्येष्ठानुपूर्वी क्रम से आसन लगाता था। आसन चटाई के या बिना किनारीदार होते थे। अधिवेशन के लिए गणपूर्ति (कोरम) का विधान था। गणपूर्ति के लिए दस (सीमान्त प्रदेशों में पांच) भिक्षुओं की उपस्थिति आवश्यक थी। वस्तुतः विविध कार्यों के लिए संघ की नियतोपस्थिति अलग-अलग (5, 10, 20, 20 से अधिक) बताई गई है। गणपूरक नाम का अधिकारी 'कोरम' पूरा कराने का प्रयास करता था। उसे आज की भाषा में 'ह्विप' कह सकते हैं। संघ का अध्यक्ष विनयधर कहलाता था। पूरक संख्या में उसकी गिनती नहीं होती थी। भिक्खुनियां, सामनेर, दूसरे धर्मवाले, जनपदों के व्यक्ति तथा अन्य अनेक प्रकार के लोग कार्यवाही में भाग नहीं ले सकते थे। संघपूर्ति के अभाव में संघ वग्ग या 'व्यग्र' कहलाता था और संघपूर्ति वाला संघ 'समग्र'। व्यग्र संघ के निर्णय अनियमित होते थे—अनुपस्थित भिक्षुओं की अनुमति से भी उनको नियमित नहीं किया जा सकता था।

अधिवेशन में प्रस्ताव के बिना कोई विषय नहीं उठाया जा सकता था। प्रस्ताव (ज्ञप्ति, नति) को ज्ञापक (प्रस्तोता) द्वारा औपचारिक रूप से उपस्थित करना (स्थापन) आवश्यक था। उस समय प्रस्ताव को 'प्रतिज्ञा' कहते थे। उसके बाद उसकी तीन बार पुनरावृति (अनुस्सावन) होती थी जिससे उसे सब ठीक तरह से सुन लें। इसके बाद संघ से प्रश्न पूछा जाता था कि क्या वह ज्ञप्ति से सहमत है। प्रायः ज्ञप्तियों के ऊपर बहुत वाद-विवाद होता था। वादविवाद केवल उसी प्रस्ताव या ज्ञप्ति तक सीमित रखा जाता था। ज्ञप्ति प्रस्तुत होने पर किसी सदस्य का मौन रह जाना उसकी सहमति समझी जाती थी। संघ द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव 'संघ कर्म' कहलाते थे। प्रस्ताव की मूल शब्दावली का नाम 'कर्मवाचा' था। निर्णीत विषय को पुनः नहीं उठाया जा सकता था। ऐसा करने वाले सदस्य को दण्डित किया जाता था।

संघ में अत्यधिक मतभेद होने पर सबको एक निर्णय तक लाने के लिए कई युक्तियां काम में लाई जाती थीं। एक युक्ति थी पड़ौस के किसी बड़े संघ से निर्णय करने की प्रार्थना करना। दूसरी थी विवादग्रस्त प्रश्न को उब्बाहिक समिति ('स्लेक्ट कमेटी') को सौंप देना जिसमें चुने हुए व्यक्ति सदस्य बनाए जाते थे। वह समिति किसी अन्य स्थान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर बैठकर विचार विमर्श कर सकती थी। उसका निर्णय सबको मान्य होता था। अतः यह एक प्रकार की पंच समिति होती थी।

जब एक मत होने के सब रास्ते बन्द हो जाते थे तो मतदान से निर्णय किया जाता था। इस क्रिया को 'येब्भुय्यास्सिकेन' कहते थे। शाक्य जनपद में इस प्रश्न का निर्णय भी कि शाक्य लोग नगर-द्वार खोलकर विडूडभ का प्रभुत्व स्वीकृत कर लें या नहीं, बहुमत द्वारा ही किया गया था। मतदान लेने वाला व्यक्ति 'शलाका ग्राहक' कहलाता था। उसकी नियुक्ति के लिए विशेष अर्हताएं व नियम दिए गए हैं। मत या वोट को छन्द (स्वतंत्रता) कहते थे। मतदान शलाका-ग्रहण से होता था। शलाकाएं, जो लकड़ी की होती थीं, सदस्यों को बांट दी जाती थीं और उससे कहा जाता था वे उस रंग की शलाका को चुनें जो उनके मत के अनुरूप हो। उन्हें निर्देश होता था कि वे अपनी शलाका किसी को न दिखाएं। इसके बाद शलाका एकत्र करने वाला अधिकारी (शलाका ग्राहापक) उन्हें एकत्र करता था। शलाका ग्रहण खुले रूप से भी हो सकता था, गुप्तरूपेण भी। तुच्छ विवाद के लिए, भलीभांति विचार न किए गए प्रस्ताव पर, या ऐसे प्रस्ताव पर जिससे संघ भेद या धम्म-नाश की आशंका हो, मतदान कराना वर्जित था। कभी-कभी समग्र संघ एक साथ मतदान करता था। उसे आज की भाषा में 'रेफ्रेण्डम' कह सकते हैं।[1]

1. विस्तृत अध्ययन के लिए दे०, जायसवाल, हिन्दू पोलिटी, अध्याय 11।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 7

वज्जीतर संघात्मक जनपद

साक्ष्य की समस्याएं

वज्जीतर संघों के विषय में सूचना देने वाले मुख्य स्रोत बौद्ध एवं जैन साहित्य हैं। वैदिकोत्तर ब्राह्मण साहित्य एवं व्याकरण ग्रंथों में इनका छिटपुट उल्लेख हुआ है। बौद्ध एवं जैन साहित्य की सूचनायें राजनीतिक इतिहास के पुनर्निर्माण में विशेष उपयोगी नहीं हैं, परन्तु प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से इन में प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक भूगोल की दृष्टि से भी ये साहित्य अति उपयोगी हैं। संघों के अनेक नगरों और ग्रामों का सजीव वर्णन बौद्ध एवं जैन साहित्य में है। इन नगरों के वासियों द्वारा बौद्ध और जैन धर्म के प्रवर्तकों, आचार्यों और अनुयायी भिक्षुओं का स्वागत-सत्कार आदि के विषय में हमें पर्याप्त ज्ञान है। दूसरी बात बौद्ध-संघ की कार्य-प्रणाली का तत्कालीन राजनीतिक संघों की शासन प्रणाली से अद्भुत साम्य होना है जिसके कारण बौद्ध-साहित्य का उपयोग संघों के प्रशासनिक इतिहास-लेखन में किया जाता है (दे०, पृ० 69)। साहित्यिक साक्ष्यों में दूसरी कोटि विदेशी पर्यटकों के विवरण हैं, विशेषकर चीनी यात्रियों के। यद्यपि चीनी यात्री इन संघों के पतन के बहुत बाद में भारत आये परन्तु अपने भ्रमण के दौरान उन्होंने इन संघों के प्राचीन नगरों की यात्रा की और प्रसंगवशात् उनका पूर्ववर्ती विवरण भी लिखा।

बौद्ध ग्रन्थ 'महापरिनिब्बान सुत्त' से हमें निम्नलिखित वज्जीतर संघों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है:

1. कपिलवस्तु के शाक्य (सक्या कापिलवत्थवा)
2. रामग्राम के कोलिय (कोलिया रामगामका)
3. पिप्फलिवन के मोरिय (मोरिया पिप्फलिवनिया)
4. कुशीनारा के मल्ल (मल्ला कोसिनारका)
5. पावा के मल्ल (मल्ला पावेय्यका)
6. अल्लकप्प के बुलि (बुलयो अल्लकप्पका)

अन्य बौद्ध ग्रन्थों में कुछ और वज्जीतर संघों का उल्लेख है :

7. केसपुत के कालाम
8. सुंसुमारगिरि के भग्ग

इन संघों के स्वरूप और स्थिति के विषय में इतिहासकारों में न्यूनाधिक मतभेद हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उदाहरणार्थ देवदत्त रामकृष्ण भाण्डारकर[1] शाक्य राज्य को नृपतंत्रात्मक मानते हैं, शायद इसलिये कि वहां के शासक 'राजा' की उपाधि धारण करते थे जबकि बौद्ध-साहित्य उसे स्पष्टतः गणतंत्र सिद्ध करता है। इसी प्रकार बुलि प्रदेश की पहिचान कुछ ने बलिया[2] (उत्तर प्रदेश) से की है, कुछ ने बेतिया (चम्पारन जिला, बिहार) से और कुछ ने शाहाबाद (आरा) तथा मुजफ्फरपुर से। कालाम के विषय में विशेष जानकारी नहीं मिलती। इन संघों के स्वरूप के विषय में पारिस्थितिक साक्ष्य केवल यह संकेत करते हैं कि वे समकालीन सशक्त नृपतंत्रों के अधीन थे यथा शाक्य, कोलिय, मल्ल (दोनों शाखायें), मोरिय और सम्भवतः कालाम कोसल राज्य के अधीन थे। भग्गों का सम्बन्ध वत्स राज्य से था और अनुमानतः वे उसके अधीन थे। मगध के विरुद्ध संघर्ष करने वाले संघों में वज्जिसंघ के अलावा अन्य सभी कोसल या वत्स के अधीन थे। ऐसा कहा जा सकता है तत्कालीन नृपतंत्रों में सामन्तवादी प्रथा थी[3] और उनके अधीन रहकर संघ राज्य अपनी आन्तरिक स्वतंत्रता कायम रख सकते थे। कोसल और वत्स नृपतंत्रों के पतन के बाद ये संघ शनैः शनैः मागध साम्राज्य के उदर में समा गये।

वज्जीतर संघों के विषय में कतिपय जानकारी पुरातात्त्विक परिमार्गण, सर्वेक्षण और उत्खननों से भी होती है, विशेषकर उनकी भौतिक संस्कृति के विषय में। इस सम्बन्ध में सबसे बड़ी कठिनाई साहित्यिक उल्लेखों और पुरातात्त्विक अवशेषों की संगति की है। गत पीढ़ी के पुराविदों में अलेक्जेण्डर कनिंघम[4] और फ्युरर[5] ने इस दृष्टि से श्लाघनीय प्रयास किये हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग तथा अनेक विश्वविद्यालयों ने ग्राम-ग्रामान्तर व्यापक परिमार्गण कर अनेक पुरातात्त्विक स्थलों की खोज की है जो कालक्रम की दृष्टि से इन संघों के समसामयिक हैं। परन्तु दुर्भाग्य से इन स्थलों की पहिचान साहित्यिक विवरणों से करने का कोई प्रयास नई पीढ़ी ने नहीं किया है। उत्खनन की दृष्टि से अब तक केवल कपिलवस्तु (तिलौराकोट, नेपाल-तराई) और कुशीनारा[6] (कसिया, देवरिया जिला, उत्तर प्रदेश) के ही भाग्य जग सके हैं। उत्खनित अवशेषों में मुख्यतः बौद्ध-विहार और स्तूप हैं। वसति-क्षेत्रों की प्राप्ति, जिससे इन संघों की भौतिक संस्कृति यथा नगर-योजना, जीवन-स्तर आदि पर प्रकाश डाला जा सकता था, इन उत्खननों में नगण्य हैं।

1. कारमाइकेल लेक्चर्स, 1, पृ० 161-62।
2. धर्मदूत, अप्रैल 1955, पृ० 278-80।
3. पाठक, विशुद्धानन्द, हिस्टरी ऑव कोसल (अपटू द राइज ऑव द मौर्यज), पृ० 238 (वाराणसी, 1963)।
4. आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया रिपोर्ट, कतिपय जिल्दों में।
5. द मान्यूमेण्टल एण्टिक्विटीज एण्ड इन्स्क्रिप्सन्श इन नॉर्थ-वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध।
6. ए० एस० आई०, ए० आर०, 1904-5, पृ० 43 अ०; वही, 1905-6, पृ० 61-85; वही, 1906-7, पृ० 44-67 (जे० पी-एच० फोगेल का प्रतिवेदन)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शाक्य जनपद

शाक्यों की उत्पत्ति पौराणिक इक्ष्वाकु वंश से मानी जाती है। बौद्ध ग्रंथ 'दीघनिकाय' (2.165) से ज्ञात होता है कि ओक्काक (इक्ष्वाकु) राजा ने अपनी प्रिया रानी से उत्पन्न छोटे राजकुमार को राजगद्दी देने के लिये ज्येष्ठ कुमारों—ओक्कामुख, करकण्ड, हट्ठिनिक और सिनिपुर—को राज्य से निर्वासित कर दिया। निर्वासित राजकुमारों ने हिमालय की तलहटी में कमल सागर के किनारे शाक-वन में रहते हुए रक्त-दूषण के भय से अपनी बहिनों से सहवास करना शुरू किया। जब राजा इक्ष्वाकु को मन्त्री से इसका पता चला तो उन्होंने कहा—"अहो ! कुमार शाक्य (समर्थ) हैं, महाशाक्य हैं रे कुमार !" तब से ये कुमार और उनके वंशज शाक्य कहलाये।[1] शक्य का अर्थ 'समर्थ' है। राजबली पाण्डेय के मत में ये बहिनें उनकी सगी बहिनें नहीं थीं बल्कि पद में बहिन के समान थीं।[2] शाक्यों की उत्पत्ति की यह कथा बुद्धघोष ने 'दीघनिकाय' की टीका में किंचित् परिवर्तन के साथ दुहराई है। टीका के अनुसार निर्वासित राजकुमारों के साथ मंत्री, चतुरंगिणी सेना और उनकी बहिनें भी थीं जिनसे बाद में उन्होंने विवाह कर लिया। बड़ी बहिन को माता के समकक्ष मान कर शेष बहिनों और भाइयों में ही विवाह सम्बन्ध हुये। जंगल में प्रवेश करने पर इक्ष्वाकु कुमारों की भेंट कपिल नामक ब्राह्मण से हुई जिसने कुमारों को वहां एक नगर बसाने और उसका नाम कपिलवस्तु रखने का निर्देश किया। बुद्धघोष के अनुसार इन शाक्य कुमारों की एक बहिन को चर्मरोग हो गया था जिसे वे जंगलों में छोड़ आये। यहाँ पर एक बाघ से उसकी रक्षा काशी के राजा राम ने की जो स्वयं कुष्ठ से पीड़ित हो अपना राज्य बेटे को देकर इन जंगलों में रह रहा था। जंगली जड़ी बूटियों से उसका कुष्ठरोग समाप्त हो गया था। वही औषधि उसने शाक्य कुमारी को भी दी। रोगमुक्त होने पर उसने इस कुमारी से विवाह कर लिया जिससे 16 बार में 32 पुत्र उत्पन्न हुये। बाद में राम को उसके एक नगरवासी ने पहिचाना और काशी का राजा अपने बाप को वापस लेने आया। परन्तु राम ने वापस जाने से इन्कार कर दिया तथा जंगल साफ कर अपने लिये एक नगर बसाने की इच्छा व्यक्त की। यह नगर केवल वृक्षों को काटकर बसाया गया था तथा व्याघ्र-पथ पर था, अस्तु नगर के दो नाम 'व्यग्घपज्जा' और 'कोलनगर' पड़ गये। राम ने अपने 32 कुमारों को शाक्य कन्या चुनने का निर्देश किया। उसने कहा कि शाक्य तुम्हारे मामा हैं, उनकी कन्यायें जब स्नान करने आवें तो तुम उन्हें ग्रहण करो। राजकुमारों ने वैसा ही किया और शाक्य यह विचार कर कि 'ये हमारे सजातीय हैं,' चुप रह गये। बुद्धघोष की शाक्यों और कोलियों की उत्पत्ति विषयक इस कथा से कतिपय सामाजिक महत्त्व के तथ्य उजागर होते हैं, यथा शाक्यों

1. दे०, पाण्डेय, राजबली, गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृ० 60-61 (गोरखपुर, 2003 विक्रमी); विशुद्धानन्द पाठक, पूर्वोक्त, पृ० 247-48; भरतसिंह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० 284 (प्रयाग, 2018 वि०)।

2. पूर्वोक्त, पृ० 50, पाद टिप्पण 2।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में सगोत्र विवाह की प्रथा, कोलिय और शाक्यों में मामा की कन्या से विवाह करने का प्रचलन, आदि।

शाक्य इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय थे, इसका उल्लेख बौद्ध-साहित्य में अनेक स्थानों पर हुआ है। 'थेर गाथा' में शाक्यों को 'भगीरथ' कहा गया है (समयोमहावीर भगीरसान, गाथा, 527)। 'सुमंगल विलासिनी' और 'महावंस' में शाक्यों की वंशावली दी गई है जो पुराणों में वर्णित इक्ष्वाकु वंशावली से मेल खाती है। 'विष्णु पुराण' में वृद्धबल से बुद्ध तक की वंशावली दी गई है। 'बुद्धचरित' में अश्वघोष ने शाक्यों के पूर्वजों को 'इक्ष्वाकवो,' शुद्धोदन को 'इक्ष्वाकुवंशप्रभवस्य राज्ञः' और बुद्ध को 'इक्ष्वाकुकुलप्रदीप' और 'इक्ष्वाकु-कुलचन्द्रमाः' कहा है। इ० जे० टामस[1] और विन्सेण्ट स्मिथ ने क्रमशः भाई-बहिन विवाह और प्रजातिक समानता के आधार पर शाक्यों को अनार्य और मंगोल उत्पत्ति का सिद्ध करने का प्रयास किया है। यह मत आज कोई इतिहासकार स्वीकार नहीं करता।

शाक्य जनपद उत्तर में हिमालय के पार्श्व (हिमवन्त पस्से) में था। पूर्व या दक्षिण पूर्व में राप्ती की सहायक नदी रोहिणी उसकी सीमा थी और इसके पश्चिम की ओर थी कोसल राज्य की श्रावस्ती नगरी। इस प्रकार शाक्यों का राज्य नेपाल की सीमा तथा वर्तमान बहराइच और गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) जिलों के मध्य था। शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु (कपिलवस्तु या कपिलवास्तु) थी। अश्वघोष ने 'सौन्दरानन्द' (प्रथम सर्ग) काव्य में कपिलवस्तु का वर्णन किया है। उसके अनुसार कपिल के आश्रम पर बसाये जाने के कारण ही इस नगर का नाम कपिलवस्तु पड़ा।[2] बौद्ध संस्कृत साहित्य में इस नगर से अन्य नाम कपिलपुर, कपिलाह्वपुर भी मिलते हैं। कपिलवस्तु की पहिचान आधुनिक तिलौराकोट से की जाती है। यहां से दक्षिण-पूर्व दिशा में प्रायः 14 मील पर रुम्मिनदेई नामक ग्राम से अशोक का एक स्तम्भ लेख मिला है जिसमें इस स्थान को बुद्ध का जन्म स्थल बताया गया है। रुम्मिनदेई प्राचीन लुम्बिनी है। बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि कपिलवस्तु बुद्ध के समय एक जन-संकुल नगर था। जातकों में इसे अट्ठारह हाथ ऊंची प्राचीर (अट्ठावसहट्ठुब्भेदं पाकारं) और 'महावस्तु' में सात प्राकारों (सप्तहि पाकारहि) से घिरा हुआ बताया गया है। चीनी यात्री फाहियान बुद्ध के जन्म स्थल से एक 'यु-येन' (योजन) पूर्व चलकर किया-वी-लो-वी (=कपिलवस्तु) पहुंचने की बात लिखता है।[3] ह्वेनत्सांग ने भी कपिलवस्तु की यात्रा की थी परन्तु उसे उजाड़ पाया था। उसने सम्पूर्ण (शाक्य प्रदेश) में दस नगरों के अवशेष देखे थे।

1. द लाइफ ऑव द बुद्ध, तृतीय संस्करण, 1952, पृ० 23।
2. कपिलस्य च तस्यर्षेस्तस्मिन्नाश्रमवास्तुनि।
   यस्मात्तत्पुरं चक्रुस्तस्मात् कपिलवस्तु तत्। —सौन्दरानन्द, 1.57
   इस ग्रन्थ में अन्यत्र (1.43) कपिलवस्तु को 'कुक्षि हिमगिरेरिव' (हिमालय की कोख) कहा गया है।
3. गाइल्स, एच० ए०, फाहियेन्स् रिकार्ड्स ऑव द बुद्धिस्टिक किंग्डम्स्, वाराणसी, 1972, पृ० 40।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाक्य जनपद के अन्य नगर चातुमा, सामगाम, खोमदुस्स, सिलावती, मेदलुंप, नगरक, उलुंप, देवदह और सक्कर के थे।[1] यह कहना कठिन है कि ये वास्तव में नगर ही थे या बड़े ग्राम। इनका स्वरूप बड़े कस्बे सा रहा होगा। बुद्ध के जन्म क्षेत्र लुम्बिनी को पालि साहित्य में जनपद (जनपदे लुम्बिनेय्ये—नालक-सुत्त) कहा गया है जबकि अशोक के अभिलेख में केवल ग्राम (लुम्मिनिग्रामे)। देवदह एक अन्य नगर था जहां बुद्ध की मां महामाया तथा मौसी महाप्रजापति गौतमी पैदा हुई थीं। देवदह लुम्बिनी के समीप (अविदूरे) था। शाक्य जनपद के अनेक स्थानों की चर्चा बुद्ध के भ्रमण, उनके स्वागत आदि के प्रसंग में की गई है। इन स्थानों में बौद्ध विहारों, पुष्करिणी, आराम आदि होने का उल्लेख है जो शाक्यों की समृद्धि का परिचायक है। शाक्य जनपद में अस्सी हज़ार कुल थे और इसकी जनसंख्या लगभग पांच लाख थी।

'अंगुत्तर निकाय' की षोडश महाजनपदों की सूची में कपिलवस्तु के शाक्यों का नाम नहीं है। उस समय बुद्ध के पिता शुद्धोदन इसके 'राजा' थे। शुद्धोदन के बाद भद्दिय शाक्य गण का 'राजा' हुआ। सम्पूर्ण पालि साहित्य में शाक्यों के राजनीतिक इतिहास के विषय में कोई उल्लेखनीय तथ्य ज्ञात नहीं होता। परवर्ती जातकों से शाक्यों के अन्त के विषय में अवश्य जानकारी होती है। 'भद्दसाल जातक' के अनुसार बौद्धों से मित्रता गांठने की दृष्टि से कोसल के राजा प्रसेनजित् ने शाक्यों से वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ना चाहा और तदर्थ उनसे एक शाक्य राजकुमारी मांगी। प्रसेनजित् की इस मांग पर शाक्यों ने परस्पर परामर्श किया कि "हम ऐसे स्थान पर बसते हैं जो कोसलराज प्रसेनजित् के प्रभुत्व में है। कन्या देने से इन्कार करने पर वह नाराज होगा और देने से हमारी वंश परम्परा टूटती है।" इस पर महानाम शाक्य ने नागमुण्डा दासी से उत्पन्न अपनी कन्या वासभखत्तिया को प्रसेनजित् से ब्याहने का प्रस्ताव किया जो अनिंद्य सुन्दरी, षोडशी और शुभ लक्षणों से युक्त थी। शाक्य इस प्रस्ताव से सहमत हो गए और वासमखत्तिया प्रसेनजित् की पटरानी बन गई। उसके गर्भ से विडूडभ उत्पन्न हुआ। सोलह वर्ष का होने पर विडूडभ काफी ज़िद करके ननिहाल गया। वहां पर उसने सब को प्रणाम किया परन्तु उसे प्रणाम करने वाला कोई नहीं था। वृद्धों ने बहाना किया कि अल्पवय कुमार गांव की ओर गए हैं। अंततः विडूडभ को पता चल गया कि वह दासी-कन्या से उत्पन्न पुत्र है। उसने प्रण किया कि वह शाक्यों के रक्त से अपना आसन धुलवायेगा। मंत्री दीघकारायण के षड्यन्त्र से प्रसेनजित् को अपदस्थ करके कोसल का राजा बनते ही वह शाक्यों से प्रतिशोध के लिए तुल गया (दे०, अध्याय 4)। बड़ी सेना के साथ उसने प्रयाण किया। मार्ग में बुद्ध एक वृक्ष के नीचे विश्राम करते मिले। अभ्यर्थना के बाद विडूडभ ने प्रश्न किया कि आप सघन वृक्ष के नीचे क्यों नहीं जाते? बुद्ध का उत्तर था "जाति भाइयों की छाया शीतल होती है।" बुद्ध अपने जाति-भाइयों (शाक्यों) की रक्षार्थ आये हैं, यह सोचकर विडूडभ लौट गया। जातकों से ज्ञात होता है कि बुद्ध

1. मुकर्जी, राधाकुमुद, हिन्दू सभ्यता, पृ० 191।

CC-0. Agamnigam Digitized by eGangotri Foundation, Chandigarh

ने तीन बार विडूडभ को वापिस किया पर चौथी बार जब बुद्ध वहां नहीं थे विडूडभ ने शाक्यों पर आक्रमण कर उनका विनाश कर दिया। उसने 77,000 शाक्यों का वध किया।[1] रात्रि में विडूडभ ने अचिरावती (आधुनिक राप्ती) नदी के तट पर पड़ाव डाला। उसी समय बादल छाए, भयंकर वृष्टि हुई और नदी की प्रबल बाढ़ में विडूडभ ससैन्य समुद्र में पहुंच गया। राजबली पाण्डेय इस विवरण की इस प्रकार प्रतीकात्मक व्याख्या करते हैं कि विडूडभ मगध रूपी समुद्र में विलीन हो गया।

विडूडभ के आक्रमण के बाद भी शाक्य एक दम समाप्त नहीं हो गए। महानाम (विडूडभ का नाना) और क्षमायाचना करने वाले बहुत से शाक्य बच रहे। बुद्ध निर्वाण के समय भी शाक्य संघ जीवित था और उन्होंने बुद्ध के अवशेषों की मांग की थी।

शाक्य संघ की 'सभा' में 500 सदस्य थे जिसे 'महावस्तु' में शाक्य-परिषद कहा गया है। सभा की बैठक के निमित्त स्तंभयुक्त संस्थागार था। शाक्य 'सभा' का प्रधान 'राजा' कहलाता था। बुद्ध के पिता शुद्धोदन और उनके चचेरे भाई भद्दिय 'राजा' कहे गए हैं। बुद्ध ने शाक्यों के नये संस्थागार का उद्घाटन 'सेख-सुत्त' (मज्झिम-निकाय) और 'अवस्सुत-सुत्त' (संयुक्त-निकाय) के उपदेश से किया था। 'महावस्तु' के अनुसार शाक्य-परिषद् में कोलियों और शाक्यों के विवाद भी सुलझाये जाते थे। विडूडभ के आक्रमण के समय भी शाक्य अपने संस्थागार में एकत्र हो 'नगर का द्वार खोलें अथवा न खोलें,' इस प्रश्न पर विवाद कर बहुमत जानने का प्रयास कर रहे थे। इन उल्लेखों से शाक्य संघ की प्रजातांत्रिक कार्य प्रणाली पर प्रकाश मिलता है।

सामाजिक और सांस्कृतिक अभ्युन्नति के लिए शाक्य संघ सर्वदा यत्नशील था। वेधञ्ञा ग्राम के आम्रवन में 'सिप्पुग्गहन पासाद' था जिसमें धनुर्वेद-शिल्प की शिक्षा दी जाती थी। शाक्य जनों को अपनी जाति और कुल में बेहद अभिमान था। अन्त में यही उनके विनाश का कारण बना। बौद्ध धर्म के अनेक महान् भिक्षु और आचार्य शाक्य जनपद ने उत्पन्न किए जिनमें उपालि, नन्दुपनन्द, कुण्डदन के नाम उल्लेखनीय हैं। 'थेरीगाथा' से ज्ञात होता है कि तिस्सा, अभिरूपनन्दा, मित्ता और सुन्दरीनन्दा नामक भिक्षुणियां शाक्या थीं। उन्होंने अर्हत पद प्राप्त किया। बौद्ध धर्म में भिक्षुणी-संघ की स्थापना का श्रेय महाप्रजापति गौतमी को है जो बुद्ध की मौसी थी।

कोलिय-संघ

कोलियों की उत्पत्ति की चर्चा हम पीछे कर चुके हैं। 'दिव्यावदान' के अनुसार कोलिय भी इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय थे। यह कथन 'दीघनिकाय' और बुद्धघोष की टीका में दिए गए विवरण से मेल नहीं खाता। पितृपक्ष से कोलिय निश्चित ही नागवंशी थे क्योंकि उनका पूर्वपुरुष राम काशी का नागवंशी नरेश था।[2] 'महापरिनिब्बानसुत्त' से पता चलता है कि बुद्ध के अवशेषों पर निर्मित्त रामग्राम स्तूप की पूजा नाग करते थे। ये नाग निर्विवाद

1. रॉकहिल, लाइफ ऑव द बुद्ध, पृ० 120।
2. मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास, पृ० 51।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप से रामग्राम के नागवंशियों के परिचायक हैं। 'महावस्तु' में कोलियों की उत्पत्ति की कथा भिन्न रूप से दी गई है जिसमें शाक्य राजकुमारी की व्याघ्र से रक्षा करने वाला व्यक्ति राम नहीं वरन् 'कोल' था।

कोलियों की राजधानी रामगाम (रामग्राम) थी। इसका प्राचीन नाम कोलनगर अथवा 'व्याग्घपज्जा' था। बाद में शायद इसका नाम संस्थापक के नाम पर रामगाम कर दिया। बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि रामगाम रोहिणी नदी के पूर्व में था। इसके पश्चिम में शाक्यों का राज्य था और उत्तर में मोरिय संघ। रामग्राम की पहिचान को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है। कार्लाइल इसे आधुनिक 'रामपुर-देवरिया' मानते हैं।[1] यहां दो तालों के मध्य एक स्तूप के अवशेष हैं जिसकी पहिचान वे बुद्ध के अवशेषों पर निर्मित प्राचीन स्तूप से करते हैं। इसके विपरीत राजवली पाण्डेय[2] इसकी पहिचान आधुनिक रामगांव से करते हैं जिसके पास रामगढ़ ताल है। ह्वेनत्सांग ने रामग्राम की यात्रा की थी। उसके विवरणों के अनुसार स्तूप रामग्राम से दक्षिण-पूर्व की ओर था। चूंकि रामपुर-देवरिया में स्तूप के अवशेष गांव से उत्तर-पूर्व की ओर हैं, अतः यह प्राचीन रामग्राम नहीं हो सकता। रामगांव और रामगढ़ ताल के आसपास किसी स्तूप के अवशेष नहीं हैं जिसका कारण राप्ती नदी की बाढ़ और रामगढ़ ताल हो सकते हैं। सिंहली बौद्ध ग्रंथ 'महावंस' में रामगाम के स्तूप के गंगा नदी में बह जाने की चर्चा है। उत्खनन के अभाव में रामगाम की निश्चित स्थिति बताना दुष्कर है। कोलियों का राज्य-विस्तार गोरखपुर की सदर तहसील के दक्षिणी भाग तथा बांसगांव तहसील के पश्चिमी भाग में था।

कोलियसंघ के अनेक गांवों एवं कस्बों की चर्चा बौद्ध साहित्य में आती है जहां बुद्ध पधारे और अनेक सूत्रों का उपदेश किया, यथा ककरपत्त (आधुनिक ककरहवा बाजार) के दीघजानु कोलिय को 'दीघजानुसुत्त' का उपदेश (अंगुत्तर निकाय), 'उत्तर' अथवा 'उत्तरक' के पाटलिग्रामणी को 'पाटलिसुत्त' का उपदेश। सुप्पवासा कोलियधीता के निवास सज्जनेल ग्राम में बुद्ध के जाने की चर्चा 'अंगुत्तर निकाय' में मिलती है। कुण्डीग्राम की कोलिय दुहिता सुप्रवासा को बुद्ध ने सुखी और निरोग होने का आशीर्वाद दिया था। कोलियों के एक अन्य प्रमुख कस्बे हलिद्दवन (हरिद्रवन) में बुद्ध ने 'कुक्कुरवतिक-सुत्तन्त' (मज्झिमनिकाय) और 'मेत्त-सुत्त' (संयुत्तनिकाय) का उपदेश किया था। बुद्धघोष की 'पपंचसूदनी' से ज्ञात होता है कि इस गांव के नामकरण का कारण इसके बसाये जाते समय लोगों द्वारा हल्दी रंग का वस्त्र पहन कर नक्षत्र-पर्व मनाया जाना था। कोलियों के ग्राम सापुग में बुद्ध के शिष्य आनन्द के निवास करने का उल्लेख है (अंगुत्तर निकाय)। इन उल्लेखों से पता चलता है कि कोलिय जनपद में बुद्ध और उनके शिष्यों ने अनेक स्थानों पर विचरण किया था।

कोलियों की दो शाखाओं की चर्चा की जाती है—एक रामगाम की और दूसरी देव-दह की। देवदह का उल्लेख पालि साहित्य में शाक्य जनपद की नगरी के रूप में आता

1. आर्क्योलोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, 22।
2. पूर्वोक्त, पृ० 70।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। अनुमानतः देवदह पर शाक्यों और कोलियों का समानाधिकार था।

'संयुत्तनिकाय' में कोलियों के आरक्षक पुरुषों (पुलिस) का उल्लेख आता है। इनका कार्य चोर डाकुओं को पकड़ना था। ये रक्षापुरुष उत्पीड़क और अत्याचारी भी थे। उनकी उद्दण्डता विख्यात थी। बुद्ध और पाटलिग्रामणी के संवाद में इन रक्षापुरुषों की बात आई है :

बुद्ध—'ग्रामणी, कोलियों के लम्बे बाल वाले रक्षापुरुषों को जानते हो?'

पाटिलग्रामणी—'हां भन्ते, उन्हें जानता हूं।'

बुद्ध—'कोलियों के लम्बे बाल वाले पुरुष किस लिए रक्खे गये हैं?'

पाटलिग्रामणी—'भन्ते, चोरों से पहरा देने और दूत का काम करने के लिए।'

वैवाहिक सम्बन्धों में गुंथे होने के बावजूद भी कोलियों और शाक्यों में छिटपुट संघर्ष हो जाते थे। ऐसे ही एक संघर्ष की चर्चा 'सुमंगलविलासिनी' में आई है। रोहिणी नदी शाक्यों और कोलियों के राज्य की सीमा थी। एक बार जेठ्ठमूल (ज्येष्ठ मूल) माह में जब कृषि सूख रही थी, दोनों जनपदों के कृषक रोहिणी के तट पर एकत्र हुए। कोलियों ने सुझाया कि "दोनों ओर पानी बांटने से किसी की भी सिंचाई पूरी नहीं होगी। हमारा काम एक सिंचाई से हो जाएगा अस्तु हमें पानी ले लेने दो।" अभिमानी शाक्य बिगड़ गए। उन्होंने कहा, "हमारा काम भी एक ही सिंचाई से हो जाएगा। पानी हम पहले लेंगे। तुम कोठार भर कर खड़े रहोगे तो भी हम पच्छि (स्थानीय भाषा में पाथी =टोकरा) और पसिब्बक (बोरा) लेकर तुम्हारे दरवाजे (मांगने) नहीं जाएंगे।" बात बढ़ती गई और दोनों संघर्ष पर आमादा हो गए। इस अवसर पर बुद्ध ने बीच-बचाव किया। उन्होंने उन्हें समझाया कि पानी का कोई मूल्य नहीं, क्षत्रिय अमूल्य हैं, पानी के लिए क्षत्रियों का नाश नहीं होना चाहिए। बुद्ध ने कहा कि "हम वैरियों में अवैरी होकर सुख से जीते हैं, विहरते हैं।"

मोरिय संघ

पिप्फलिवन के मोरियों की उत्पत्ति के विषय में प्रारम्भिक पालि-साहित्य मौन है। 'दीघ-निकाय'[1] में कहा गया है कि उन्होंने स्वयं क्षत्रिय होने के कारण भगवान् बुद्ध के अवशेषों की मांग की थी : "पिप्फलिवन के मोरियों ने सुना कि भगवान् कुशीनगर में परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। पिप्फलिवन के मोरियों ने मल्लों के पास दूत द्वारा यह संदेश भेजा—भगवान् भी क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय हैं (अस्तु) भगवान् के शरीर का अंश पाने का हमारा भी अधिकार है।" दुर्भाग्य से मोरियों का दूत कुशीनगर विलम्ब से पहुंचा। तब तक ब्राह्मण द्रोण बुद्ध के अवशेषों को आठ भागों में बांट चुका था। मोरियों को चिता का अंगार ही मिल पाया जिस पर उन्होंने अंगार स्तूप का निर्माण करवाया। (अंगारथूपं कारेसुं मोरिया तुट्ठमानसा—बुद्धवंस)।

1 खण्ड 2, पृ० 132 (बम्बई विश्वविद्यालय प्रकाशन)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परवर्ती बौद्ध साहित्य में मोरियों की उत्पत्ति की कथा को नया रंग दिया गया है। 'महावंस'[1] में चन्द्रगुप्त मौर्य का सम्बन्ध मोरियों के क्षत्रिय वंश से जोड़ दिया गया है। 'महावंस' की टीका में इस कथा का विस्तार नई बातों को जोड़कर किया गया है। इसके अनुसार पिप्फलिवन के मोरिय कपिलवस्तु के शाक्यों की शाखा थे। विडूडभ के आक्रमण के समय भागकर इन्होंने नया नगर पिप्फलिवन बसाया। नगर के चतुर्दिक पीपल के वृक्षों की बहुलता से ही नगर का यह नाम पड़ा। मोरिय नामकरण का कारण चारों ओर मोरों की कूज बताया गया है। इसी तरह 'महाबोधिवंस' में क्षत्रिय कुलोत्पन्न (नरिन्दकुलसंभव) चन्द्रगुप्त को शाक्य पुत्रों द्वारा बनाए मोरिय नगर का निवासी कहा गया है। जैन लेखक हेमचन्द्र[2] ने भी चन्द्रगुप्त को मयूरपोषकों के ग्राम के प्रमुख की कन्या का पुत्र कहा है। परन्तु मोरियों का सम्बन्ध शाक्यों से नहीं जोड़ा जाना चाहिए क्योंकि शाक्यों पर विडूडभ के आक्रमण और बुद्ध निर्वाण के समय में बहुत अन्तर नहीं है, और बुद्ध अवशेष पर दावा जताते हुए मोरियों ने स्वयं को केवल क्षत्रिय कहा है। बुद्ध के वंश से सम्बन्ध होने पर निस्संदेह वे शाक्यों की तरह इसका उल्लेख करते।

पिप्फलिवन की पहिचान लाहा[3] ने बस्ती जिले में पिपरहवा नामक स्थान से करने का प्रयास किया था जो भ्रामक है। ह्वेनत्सांग, जो पश्चिम से पूर्व की ओर जा रहा था, उल्लेख करता है कि मोरियों की राजधानी से उत्तर-पूर्व की ओर पर्याप्त दूर चलकर वह कुशीनगर पहुंचा था। इससे सिद्ध होता है कि मोरियों का पिप्फलिवन कोलियों और मल्लों (पावा+कुशीनगर) के राज्य के मध्य था। कार्लाइल[4] ने पिप्फलिवन की पहिचान गोरखपुर नगर से प्रायः 14 मील दक्षिण पूर्व उपधौलिया ग्राम से की है जो गुर्रा नदी के तट पर है। उपधौलिया का दूसरा नाम 'राजधानी' भी है। राजधानी या उपधौलिया के आसपास आज भी पीपल के वृक्ष बहुतायत से हैं और इसके समीप प्राचीन भग्नावशेष अब भी विद्यमान हैं। राजधानी के प्राचीन आयताकार किले के ध्वंसावशेष को आज भी 'सहनकोट' के नाम से जाना जाता है। इन परिस्थितियों में उपधौलिया की पहिचान पिप्फलिवन से करना समीचीन प्रतीत होता है। भावी उत्खनन संभवतः इस अनुमान को और भी अधिक पुष्ट कर सकेंगे।

मल्ल जनपद

'दीघनिकाय' के 'महापरिनिब्बानसुत्त' में मल्लों को वशिष्ठ गोत्र का क्षत्रिय कहा गया है। 'दिव्यावदान'[5] के अनुसार इक्ष्वाकु से नौ क्षत्रिय कुल उत्पन्न हुए—मल्ल, जनक, विदेह, कोलिय, मौर्य, लिच्छवि, ज्ञातृ, वज्जि और शाक्य। अस्तु मल्ल इक्ष्वाकु-

1. मोरियानं खत्तियानं वंसे जातं सिरीधरं।
   चन्द्रगुप्तो ति पञ्ञतं चणक्को बह्मणों ततो ।। (महावंस, स० गीगर), पृ० 20।
2. परिशिष्टपर्व 8. 230।
3. हिस्टारिकल ज्योग्राफी ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया, पृ० 117।
4. ए० एस० आई०, ए० आर०, खण्ड 18, पृ० 31 अ०; वही, खण्ड 22, पृ० 7।
5. राजबली पाण्डे द्वारा उद्धृत, पूर्वोक्त, पृ० 75।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वंशी क्षत्रिय थे । 'मल्ल' नाम की समीक्षा करते हुए राजवली पाण्डय[1] ने उन्हें राम का वंशज वताया है । वाल्मीकि की 'रामायण' से ज्ञात होता है कि अपने जीवनकाल में ही राम ने सारा राज्य अपने पुत्रों तथा भतीजों में वांट दिया था। इस विभाजन में लक्ष्मण के एक पुत्र चन्द्रकेतु को 'मल्लभूमि' मिली जिसकी राजधानी 'चन्द्रकान्ता' थी ।[2] 'रामायण' के इस कथन की पुष्टि कालिदास के 'रघुवंश'[3] और 'वायु पुराण'[4] से भी होती है । 'चन्द्रकान्ता' की सही पहिचान संभव नहीं है । परन्तु 'रामायण' से पता चलता है कि यह कारुपथ के पूर्व में थी । कारुपथ का राज्य लक्ष्मण के दूसरे पुत्र अंगद को मिला था जिसकी राजधानी अंगदीया थी । कारुपथ की पहिचान बस्ती जिले के क्षेत्र से की जाती है । बुद्ध के समय मल्लों के दो केन्द्र थे, कुशीनगर और पावा । राजधानी का स्थानान्तरण चन्द्रकान्ता से कुशीनगर कव हुआ, यह कहना कठिन है । कुशावती (कुशीनगर) राम के पुत्र कुश की राजधानी थी । इसके पास शरावती लव की राजधानी थी । कुछ समय वाद इन नगरों को त्याग कर वे लोग क्रमशः अयोध्या और श्रावस्ती चले गये । अनुमानतः यह स्थानान्तरण बुद्ध काल के पूर्व हुआ होगा ।

मल्ल संघ की दोनों शाखाओं की स्थिति पास-पास थी । 'सुमंगलविलासिनी' के अनुसार पावा से कुशीनगर की दूरी केवल तीन 'गावुत' (प्रायः 6 मील) थी (पावा नगरतो तीणि गावुतानि कुसीनारा नगरं) । ककुत्था नदी इनके मध्य सीमा थी । परन्तु 'मल्लाकोसि-नारका' (कुसीनारा=कुशीनगर के मल्ल) और 'मल्लापावेय्यका' (पावा के मल्ल) दो भिन्न गण या संघ थे। इसकी पुष्टि 'महापरिनिब्वानसुत्त' से होती है जिसमें पावा के मल्लों ने बुद्धावशेष के एक अंग की मांग की और उसे प्राप्त भी किया । कुशीनगर के मल्लों ने यह कहा था कि बुद्ध हमारे ग्राम क्षेत्र में निर्वाण को प्राप्त हुए हैं । (भगवा अम्हाकं गामक्खेत्ते परिनिब्वुतु), हम उनके शरीरावशेष किसी को नहीं देंगे (न मयं दस्साम भगवतो सरीरानं भागं) । परन्तु युद्ध की स्थिति उत्पन्न होने पर उन्हें बुद्ध के अवशेषों को आठ भागों में बांटना पड़ा ।

बुद्ध-निर्वाण के समय कुसीनगर विशाल नगर नहीं था । आनन्द ने बुद्ध से कहा था, "कुसीनगर एक क्षुद्र नगर है । आप यहां महापरिनिर्वाण न प्राप्त करें । अच्छा हो आप चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्वी या वाराणसी जैसी महानगरी में निर्वाण प्राप्त करें ।" इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया था, "आनन्द, पूर्व पश्चिम में बारह योजन

1. वही, पृ० 76 ।
2. चन्द्रकेतोश्च मल्लस्य मल्लभूम्यां निवेशिता ।
   चन्द्रकान्तेति विख्याता दिव्यास्वर्गपुरी यथा ॥ —उत्तरकाण्ड, 102.9
3. अंगदं चन्द्रकेतुं च लक्ष्मणोऽप्यात्मसंभवौ ।
   शासनाद्रघुनाथस्य चक्रे कारापथेश्वरौ ॥ —रघुवंश, 15.90
4. अंगदश्चन्द्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजावुभौ ।
   हिमवत्पर्वताभ्यासे स्फीतौ जनपदौ तयोः ॥
   अंगदस्यांगदीया तु देशे कारपथे पुरी । —वायु० 88.187-88

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विस्तीर्ण कुशावती प्राचीनकाल में राजा सुदर्शन की राजधानी थी। वह अत्यन्त समृद्ध और जनसंकुल थी।"

कुसिनगर (कुशीनगर) की पहिचान आधुनिक देवरिया जिले (उत्तर प्रदेश) में कसिया नामक स्थान से की जाती है। यहां पर उत्खनन में महापरिनिर्वाण स्तूप एवं चैत्य के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। यहां से उपलब्ध मिट्टी की उत्कीर्णित मुहरों पर 'श्री महापरिनिर्वाणविहारभिक्षुसंघस्य' और 'कुसनगर' लेख लिखे मिले हैं। एक ताम्रपत्र पर 'परिनिर्वाण चैत्य ताम्रपट्ट' उत्कीर्ण है। यह समस्त साक्ष्य कसिया को बुद्ध का परिनिर्वाण क्षेत्र अर्थात् कुशीनगर या कुसिनारा सिद्ध करते हैं। गुप्तयुग में चीनी यात्री फाह्यान ने मोरियों के अंगार स्तूप से पूर्व की ओर बारह योजन चलकर कुसिनारा पहुंचने का उल्लेख किया है। ह्वेनत्सांग ने मोरियों के अंगार स्तूप से उत्तर-पूर्व की ओर कुसिनारा की स्थिति बताई है।

कुसिनारा से दक्षिण-पश्चिम में हिरण्यवती नदी के उस पार मल्लों का 'उपवत्तन' नामक शालवन था जहां पर बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया। उपवत्तन की पहिचान कनिंघम ने कसिया के माथाकुंवर-कोट से की है जो परिनिर्वाण चैत्य से केवल चार सौ गज दक्षिण-पश्चिम दिशा में है। माथाकुंवर-कोट से दक्षिण की ओर प्रायः तीन फर्लांग दूर 'अनरुधवां' गांव में अनेक प्राचीन टीले हैं जिन्हें कुसिनारा के मल्लों की राजधानी के अवशेष माना जाता है।

मल्लों की पावा स्थित दूसरी शाखा राजनीतिक दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण थी। 'महापरिनिव्वान सुत्त' से ज्ञात होता है कि बुद्ध वैशाली से कुशीनगर जाते समय पावा में ठहरे थे। यहीं पर उन्होंने कम्मारपुत्त चुन्द के यहां अन्तिम भोजन किया जिसमें 'सूकर मद्दव' भी था। 'सूकर मद्दव' खाने से ही बुद्ध को रक्तातिसार हो गया और वे महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए। पावा से चलकर ही बुद्ध कुसिनारा पहुंचे थे। कार्लाइल ने पावा की पहिचान आधुनिक फाजिलनगर (जिसका दूसरा नाम चेतियांव=चैत्य ग्राम) से की है।[1] इस गांव में अनेक प्राचीन अवशेष आज भी विद्यमान हैं। इसके विपरीत कनिंघम ने पावा को देवरिया जिले का पडरौना स्थान माना है। यह मत साहित्यिक साक्ष्य के विपरीत है क्योंकि यह स्थल वैशाली-कुशीनगर मार्ग पर नहीं है। इसी प्रकार लाहा[2] का मत कि पावा और कसिया एक ही हैं, निर्मूल है। कुसिनगर से बारह मील दूर पपउर-गांव (रामकोला रेलवे स्टेशन के पास) से भी पावा की पहिचान का प्रयास किया गया है। इन सभी सम्भावित स्थानों का वैज्ञानिक उत्खनन ही निश्चित पहिचान में सहायक हो सकता है। वर्धमान महावीर का निर्वाण भी पावापुरी में ही हुआ था। जैन लोग इस पावापुरी को आधुनिक बिहार शरीफ से 7 मील दक्षिण-पूर्व की ओर स्थित मानते हैं। स्पष्ट है कि बौद्धसाहित्य की पावापुरी की इससे पहिचान नहीं की जा सकती।

1. ए० एस० आई०, ए० आर०, 18, पृ० 93।
2. हिस्टोरिकल ज्योग्राफी ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया, पृ० 116। लाहा के तर्क का आधार ह्वेनत्सांग का यह उल्लेख है कि उसने चुन्द कम्मार पुत्त का घर कुशीनगर में देखा था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मगध से इतना समीप स्वतन्त्र मल्ल संघ की स्थिति वैसे भी संदिग्ध प्रतीत होती है।

'दीघनिकाय' (3.10) के संगीति-परियाय-सुत्त से ज्ञात होता है कि बुद्ध ने मल्लों के एक नये संस्थागार में पांच सौ भिक्षुओं के साथ पधारकर उपदेश किया था। बौद्ध साहित्य में अनेक ऐसे स्थानों का उल्लेख आता है जो मल्ल राष्ट्र में स्थित बताये गये हैं और जहां पर भगवान् बुद्ध ने उपदेश दिया था। परन्तु इन स्थानों के स्पष्टतः पावा या कुसिनारा में होने का विवरण नहीं दिया गया है।

मल्लों के राज्य की सीमा का निश्चित विवरण अप्राप्य है। ह्वेनत्सांग कोलियों के रामगाम से पूर्व की ओर चलकर कुशीनगर पहुंचा था। उसकी यात्रा का मार्ग घने जंगलों, जंगली पशुओं और डाकुओं से भरा हुआ था। ह्वेनत्सांग के उल्लेखों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मल्लों का राज्य उत्तर-पश्चिम और पश्चिम में कोलियों की सीमा तक था। दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम में मोरियों का राज्य था। सम्भावना इस बात की है कि मल्लों का राज्य दक्षिण-पश्चिम में कोसल से, दक्षिण में काशी से दक्षिण-पूर्व में मगध से और पूर्व में लिच्छवि राज्य से सटा था।[1] लिच्छवि और मल्ल राज्य की सीमा महानदी (=सदानीरा या आधुनिक बड़ी गंडक) थी। इस प्रकार मल्ल संघ कोसल के गणराज्यों में सबसे बड़ा और शक्तिशाली था।

मल्लसंघ दीर्घकाल तक स्वतन्त्र संघ के रूप में जीवित रहा। 'महाभारत' (2.30.3) में मल्लों का उल्लेख नृपतन्त्रात्मक राज्य के रूप में है। महाभारत युद्ध के बाद अन्य अनेक राज्यों की भांति इसने भी गणतांत्रिक परम्परा का अनुगमन किया। अजातशत्रु के द्वारा मल्ल भी पराभूत हुए। परन्तु इसके बाद भी इनकी स्थिति बनी रही और अनुमानतः इनका अंत मौर्य साम्राज्य के विस्तार के कारण हुआ।[2]

मल्लसंघ की शासन-प्रणाली पर बौद्ध साहित्य से प्रकाश पड़ता है। बुद्ध ने मल्लों के संस्थागारों में प्रवचन किया था। बुद्ध निर्वाण के समय भी कुसिनारा के मल्ल अपने संस्थागार में विचार-विमर्श करते हुए उल्लिखित हैं। 'अर्थशास्त्र' में मल्लों को' राज-शब्दोपजीविनः (11.1.1) कहा गया है। मल्ल सैनिक प्रवृत्ति के भी थे। बुद्ध के मुख से एक बार कहलवाया गया है कि अपने सदस्यों को निर्वासित करने, प्राणदण्ड देने या न्यायरक्षा से बाहर करने की मल्लसंघ को पूर्ण स्वतन्त्रता थी। मल्ल अत्यन्त विद्या-प्रेमी थे। बन्धुल मल्ल कोसल के राजा प्रसेनजित् और लिच्छवि कुमार महालि का सहपाठी था। इन सबकी शिक्षा तक्षशिला में हुई थी। बौद्ध धर्म के अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति जैसे आनन्द, उपालि, अनुरुद्ध, दब्ब और देवदत्त मल्लजातीय थे। देवदत्त बुद्ध के घोर प्रतिपक्षी के रूप में उल्लिखित है। मल्लों की घनिष्ठता कोसल से थी। कुछ उल्लेखों से पता चलता है कि लिच्छवियों से इनके सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण नहीं थे। 'धम्मपद अट्ठकथा' के अनुसार बन्धुल मल्ल (जो कोसल का सेनापति था) की पत्नी मल्लिका के लिच्छवि

1. पाठक, विशुद्धानन्द, पूर्वोक्त, पृ० 285।

2. अजातशत्रु के बाद मल्ल राज्य के अस्तित्व का वस्तुतः कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। कौटिल्य मल्लों का उल्लेख करता है, परन्तु वह परवर्ती लेखक है—सम्पादक।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुष्करिणी में स्नान कर लेने के कारण भीषण रक्तपात हो गया और वन्धुल का पीछा करते हुए 500 लिच्छवि मारे गये। परन्तु जैन ग्रन्थों से पता चलता है कि मगध के विरुद्ध मल्ल संघ लिच्छवियों के साथ था।

बुलि संघ

अलकप्प के बुलि संघ के विषय में ज्ञात तथ्य अत्यल्प हैं। 'महापरिनिब्बानसुत्त' से केवल यह ज्ञात होता है कि बुलि भी भगवान् बुद्ध के शरीरावशेषों में एक अंश के दावेदार थे और उन्होंने उपलब्ध धातु अंश पर स्तूप बनवाया था। 'बुद्धवंस' में भी इनका उल्लेख है (एको च अलकप्पके)। 'धम्मपद अट्ठकथा' में अलकप्प का विस्तार दस योजन कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि बुलि संघ अपेक्षाकृत छोटा था। अलकप्प की ठीक स्थिति निर्धारित करना भी कठिन है। कुछ इतिहासकारों ने अलकप्प की पहिचान जैन साहित्यिक स्रोतों में उल्लिखित आमलकप्पा से की है। ध्वनि साम्य के आधार पर बुलि जनपद की पहिचान उत्तर प्रदेश के बलिया जिले से की जाती है। 'धम्मपद अट्ठकथा' में इसकी पहिचान के कुछ सूत्र विद्यमान हैं जिसके अनुसार अलकप्प के राजा तथा वेठदीप के राजा वेठदीपक में मित्रता थी। इस आधार पर अलकप्प और वेठदीप को एक दूसरे के समीप स्थित होने का सुझाव दिया जाता है। परन्तु वेठदीप की स्थिति निर्धारित करना भी एक समस्या है। 'महापरिनिब्बानसुत्त' में बुद्ध के अवशेषों को आठ भागों में विभाजित करने वाले द्रोण ब्राह्मण को वेठदीप का निवासी बताया गया है। द्रोण ने क्षत्रियों की अनुमति से वह घड़ा स्वयं प्राप्त किया था जिसमें बुद्ध के अवशेष रखे गये थे। 'बुद्धवंस' में इस घड़े के ऊपर द्रोण द्वारा एक स्तूप के निर्माण की चर्चा है (कुम्भस्स थूंप कारेसि ब्राह्मणो दोणसाह्वयो)। इस स्तूप की स्थिति ह्वेनत्सांग के विवरण के अनुसार 'मो-ह-शो-लो' से 100 ली दक्षिण-पूर्व थी। मो-ह-शो-लो की पहिचान आरा (बिहार) से छः मील पश्चिम महासार (आधुनिक मसार) से की जाती है। इस विवरण के अनुसार वेठदीप आरा के समीप कहीं होना चाहिए और उसके ही समीप कहीं अलकप्प। होय[1] के अनुसार वेठदीप चम्पारन जिले का वेतिया है।

कालाम संघ

कालाम संघ का अभिनिवेश केसपुत्त था। बुद्ध ने जिन आचार्यों से शिक्षा ग्रहण की उसमें केसपुत्त के आलार कालाम का नाम भी आता है। कालाम क्षत्रियों का संघ था। 'भरण्डुसुत्त' (अंगुत्तर निकाय) में भरण्डु कालाम का उल्लेख है जिसका आश्रम कपिलवस्तु में था। एक बार बुद्ध उसके आश्रम में ठहरे थे। 'अंगुत्तरनिकाय' के ही 'केसियसुत्त' से ज्ञात होता है कि केसपुत्त में विभिन्न धर्मों के आचार्य स्वमत प्रचारार्थ आते थे। इसी सुत्त में 'कोसल में चर्या करते हुए' भगवान् बुद्ध के द्वारा कालामों के केसपुत्त नगर में जाने का उल्लेख है। इससे प्रकट होता है कि केसपुत्त कोसल के अधीन था। राय-

1. हेमचन्द्र रायचौधुरी द्वारा उद्धृत, पूर्वोक्त, पृ० 193।

चौधुरी[1] ने 'शतपथ ब्राह्मण' में उल्लिखित गोमती तटवासी केशियों को केसपुत्त से अभिन्न माना है।

भग्ग राज्य

भग्गों का राज्य सुंसुमारगिरि (या सुंसुमारगिर) में था। 'अभिधानप्पदीपिका' में इन नगर की गणना बुद्ध के समसामयिक भारत के बीस प्रमुख नगरों में की गई है। 'चुल्लवग्ग' (विनय पिटक) में वत्सराज उदयन के पुत्र कुमार बोधि का उल्लेख है जिसने सुंसुमारगिरि में अपने नये बनवाये गये कोकनद प्रासाद में बुद्ध का स्वागत किया था। इस उल्लेख से लगता है कि सुंसुमारगिरि वत्स राज्य के अधीन या प्रभाव में था। इसी आधार पर इस नगर की स्थिति कौसाम्बी के आसपास निर्धारित की जाती है। रायचौधुरी ने भग्गों की स्थिति यमुना और सोन के बीच विंध्य क्षेत्र में मानी है। राहुल सांकृत्यायन ने गंगा नदी के दक्षिणवर्ती बनारस, मिर्जापुर, इलाहाबाद के कुछ अंश को भग्गों का क्षेत्र सिद्ध करने का प्रयास किया है। 'हरिवंश' और 'महाभारत' में भी भग्गों और वत्सों की समीपता की चर्चा इस बात की पुष्टि करती है कि भग्ग वत्सों के आसपास ही थे। रायचौधुरी[2] ने 'ऐतरेय ब्राह्मण' में उल्लिखित भार्गायण कुमार का सम्बन्ध भग्गों से जोड़ा है।

बौद्ध साहित्य में सुंसुमारगिरि की अनेक बार चर्चा आई है। इसिपत्तन मिगदाय की तरह यहां भी एक मिगदाय (मृगदाव) था जिसका नाम 'भेसकलावन' था। बुद्ध का आठवां वर्षावास इसी मिगदाय में हुआ था। शांत और एकान्त प्रदेश होने के कारण महामोग्गलान (महामौद्गल्यायन) जैसे आचार्यों ने यहां पर ध्यान किया था। सिरिमण्ड स्थविर को सुंसुमारगिरि का निवासी कहा गया है।

1. वही।
2. वही पृ० 192।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 8

मगध का उदय : बिम्बिसार

मगध जनपद

बुद्धकाल के महाजनपदों में मगध सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था और अन्ततोगत्वा इसी को अखिल भारतीय साम्राज्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त हुई। सम्भवतः इसीलिए पुराणों तथा बौद्ध ग्रन्थों में इसका इतिहास विस्तार से दिया गया है। मगध में आधुनिक बिहार का दक्षिणी भाग—पटना तथा गया जिले व निकटवर्ती भूखण्ड—सम्मिलित थे। इसके उत्तर में वज्जिसंघ (सीमा गंगा नदी), पश्चिम में काशी जनपद (सीमा सोन नदी) दक्षिण-पूर्व में सुह्म जनपद, दक्षिण में कलिंगारण्य और पूर्व में अंग जनपद (सीमा चम्पा नदी) थे। इसकी प्राचीनतम राजधानी गिरिव्रज (गिरिव्रज) अथवा पुरातन राजगृह (राजगिर या राजगीर, जो गया के समीप स्थित है) नामक नगर था। इसके समीप बिम्बिसार ने एक नया राजगृह भी बसाया था। गिरिव्रज को 'महाभारत' में बार्हद्रथपुर तथा मागधपुर नामों से पुकारा गया है, 'रामायण' में वसुमती नाम से, कुछ बौद्ध ग्रन्थों में बिम्बिसारपुरी नाम से तथा शुआन-च्वांग द्वारा कुशाग्रपुर नाम से।[1] चौदहवीं शती के जैनाचार्य जिनप्रभसूरि को भी कुशाग्रपुर राजगृह के प्राचीन नाम के रूप में ज्ञात था।[2] 'महाभारत' के अनुसार यह पांच पहाड़ियों—वैहार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि तथा चैत्यक—से घिरा होने के कारण एक अगम्य दुर्ग के समान था (पुरं दुराधर्षं समन्ततः)। बौद्ध ग्रन्थों में इन पहाडियों के नाम पाण्डव, गिज्झकूट (गृध्रकूट), वेभार (वैहार), इसिगिलि (ऋषिगिरि) तथा वेपुल्ल दिये गये हैं।[3]

'ऋग्वेद' (3. 53. 14) में प्रमगन्द राजा द्वारा शासित कीकट प्रदेश का उल्लेख मिलता है। यास्क ने 'कीकट' को 'अनार्यनिवास' बताया है (कीकटो नाम देशोऽनार्य निवासः) और परवर्ती ग्रन्थों में इसे मगध का पर्याय माना गया है। 'वृहद्धर्म पुराण' में गया को कीकट देश में सम्मिलित बताया गया है। यह ग्रन्थ कीकट को ऐसी 'पाप-भूमि' कहता है जहां कहीं-कहीं पुण्यदेश भी थे।[4] यहां 'पापभूमि' से आशय स्पष्टतः वही है जो यास्क के 'अनार्य निवास' से है।

1. सन्दर्भों के लिए दे०, पो० हि० ए० इ०, पृ० 111; उपाध्याय, बु० का० भू०, पृ० 175।
2. कुशाग्रपुरसंज्ञं च क्रमाद्राजगृहाह्वयं (विविधतीर्थकल्प)।
3. सन्दर्भों के लिए दे०, पो० हि० ए० इ०, पृ० 111; उपाध्याय, बु० का० भू०, पृ० 175।
4. सन्दर्भों के लिए दे०, प्रो० हि० ए० इ०, पृ० 112।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैदिक साहित्य में मगध का उल्लेख प्रायः अनादर भाव से ही हुआ है। इसका नाम सर्वप्रथम प्रयोग 'अथर्ववेद' (5. 22. 14) में मिलता है जहां प्रार्थना की गई है कि तक्मन् (ज्वर) गन्धारियों, मूजवतों, अंगों और मगधों के देशों को चला जाए। 'यजुर्वेद' में मगध के भाटों का उल्लेख है।[1] 'अथर्ववेद' के 'व्रात्यकाण्ड' में व्रात्यों को, जो वैदिक धर्म की परिधि के परे माने जाते थे, 'पुंश्चली' तथा 'मागध' से सम्बन्धित बताया गया है। श्रौतसूत्रों में मगध के ब्राह्मणों का 'ब्रह्मबन्धु मागधदेशीय' कहकर मज़ाक उड़ाया गया है।[2] 'बौधायन धर्मसूत्र' में मगध तथा अंग वासियों को 'संकीर्ण योनि' अर्थात् मिश्रित रक्त वाला बताया गया है। ओल्डनबर्ग के अनुसार वैदिक काल में मगधवासियों के प्रति यह अनादर भाव इसलिए था क्योंकि इस प्रदेश में ब्राह्मण धर्म का पूर्णतः प्रचार नहीं हुआ था।[3] पार्जिटर के अनुसार मगध में आर्यों के साथ समुद्री दिशा से आने वाले आक्रमणकारी घुलमिल गये थे।[4]

वैदिक साहित्य में प्रमगन्द के अतिरिक्त मगध के किसी राजा का नाम नहीं मिलता। 'महाभारत' (1. 63. 30) और पुराणों के अनुसार मगध के प्रथम राजवंश की स्थापना वसु चैद्य-उपरिचर के पुत्र एवं जरासन्ध के पिता बृहद्रथ ने की थी। 'रामायण' (1. 32. 7) के अनुसार वसु ने ही गिरिव्रज या वसुमती नगर की स्थापना की थी। 'ऋग्वेद' में बृहद्रथ नामक व्यक्ति का दो बार (1. 36. 18 तथा 10. 49.6) उल्लेख मिलता है परन्तु ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता जिससे यह कहा जा सके कि वह मगध के प्रथम वंश का संस्थापक ही था।[5] पुराणों में बृहद्रथ-वंश के राजाओं का इतिहास जरासन्ध के पुत्र सहदेव से दिया गया है और सेनाजित् को, जो सहदेव के बाद सातवीं पीढ़ी में हुआ, परिक्षितवंशीय अधिसीम कृष्ण तथा दिवाकर ऐक्ष्वाक का समकालीन बताया गया है। पुराणों के ही अनुसार इस वंश का पतन उस समय हुआ जब पुलिक ने इस वंश के अन्तिम राजा रिपुंजय को मारकर अपने पुत्र प्रद्योत को गद्दी पर बैठाया।[6] पुराणों के शब्दों में जब प्रद्योत गद्दी पर बैठा 'बृहद्रथों, वीतिहोत्रो और अवन्तियों (अथवा अवन्ति में वीतिहोत्रों)' का शासन समाप्त हुआ। अब, क्योंकि प्रद्योत बुद्ध का समकालीन था इसलिए बार्हद्रथ वंश का पतन छठी शती ई० पू० में हुआ होगा। लेकिन पुराणों के कथन का यह अंश निश्चय ही गलत है कि प्रद्योत वंश ने मगध पर शासन किया था क्योंकि बौद्ध साक्ष्य से यह प्रश्नातीत रूप से

1. वैदिक इण्डेक्स, 2, पृ० 116।
2. तु०, पुराणों में मगध के राजाओं के लिए प्रयुक्त पद 'राजानः क्षत्रबन्धवः' (पार्जिटर, डा० क० ए०, पृ० 221)।
3. ओल्डनबर्ग, बुद्ध, पृ० 400 टि०।
4. जे० आर० ए० एस०, 1908, पृ० 851-53।
5. जैन लेखकों ने राजगृह के दो राजाओं समुद्रविजय एवं उसके पुत्र गय का उल्लेख किया है (एस० बी० ई०, 45, पृ० 86)। गय ने जैनधर्म स्वीकृत किया था। गय नाम के एक राजा का उल्लेख 'महाभारत' (7.64) में भी हुआ है, परन्तु वह अमूर्तरय का पुत्र था।
6. स चैनं स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रं प्रद्योतनामानमभिषेक्ष्यति। —विष्णु पुराण 4.24.2।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रमाणित है कि चण्ड प्रद्योत महासेन ने अवन्ति पर शासन किया था, मगध पर नहीं।

हर्यंक वंश

पुराणों के अनुसार मगध का अगला वंश शैशुनाग था जिसकी स्थापना शिशुनाग ने की थी। इन ग्रन्थों के अनुसार बुद्ध का समकालीन मगध-नरेश बिम्बिसार शैशुनाग वंश में ही उत्पन्न हुआ था। ये ग्रन्थ बिम्बिसार को शिशुनाग के बाद दसवीं पीढ़ी में रखते हैं। लेकिन अब यह निश्चित हो गया है कि शिशुनाग-वंश के राजाओं ने बिम्बिसार-वंश के पतन के बाद शासन किया, शिशुनाग बिम्बिसार का पूर्वज नहीं था। इस प्रश्न पर हमने विस्तार से विचार अध्याय दस में शैशुनाग वंश का अध्ययन करते समय किया है। अश्वघोष ने, जो प्रथम कनिष्क (78 ई०) के समकालीन थे, 'बुद्धचरित' (11. 2) में श्रेण्य (=बिम्बिसार) को हर्यंक कुल में उत्पन्न बताया है।[1] 'हर्यंक' शब्द से अश्वघोष का क्या आशय है यह स्पष्ट नहीं है। कुछ विद्वानों ने इसका सम्बन्ध चम्पा के हर्यङ्ग से जोड़ा है जिसका उल्लेख 'हरिवंश' तथा पुराणों में मिलता है। लेकिन रायचौधुरी का अनुमान है कि क्योंकि 'हरि' के अर्थ पीला, अश्व, सिंह या नाग आदि होते हैं अतः 'हरि' इस वंश का लाञ्छन रहा होगा। इसके कारण इस वंश को उसी प्रकार पर्यंक कह दिया जाता होगा जिस प्रकार हम आजकल मन्दसौर के गुप्तकालीन वर्मा वंश को औलिकर लाञ्छन वाला होने के कारण 'औलिकर' कह देते हैं।[2]

डी० आर० भाण्डारकर बिम्बिसार को नागजातीय मानते हैं। उन्होंने ध्यान दिलाया है कि बिम्बिसार के अन्तिम उत्तराधिकारी का नाम 'महावंस' के अनुसार नागदासक (=नागदर्शक) था। उनका विचार है कि उसके वंश से पृथक्ता दिखाने के लिए ही शिशु नाग को शिशु (=लघु) नाग कहा गया है।[3] परन्तु बिम्बिसार के वंश को नागजातीय मानने के पक्ष में कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

बिम्बिसारः प्रारम्भिक जीवन

बिम्बिसार के प्रारम्भिक जीवन के विषय में डी० आर० भाण्डारकर ने एक बड़ा रोचक सुझाव रखा है।[4] इसके अनुसार उसके राजपद प्राप्त करने के पूर्व वज्जियों का अधिकार मगध पर भी था और बिम्बिसार ने अपना जीवन वज्जियों के सेनापति के रूप में प्रारम्भ किया था। इसका तथाकथित प्रमाण 'सुत्तनिपात' का 1013वां श्लोक है जिसमें वैशाली को 'मागधंपुरं' कहा गया है। इससे लगता है कि कभी वैशाली मगध की राजधानी रही थी। भाण्डारकर के अनुसार बिम्बिसार के आविर्भाव के पूर्व मगध वैशाली जनपद में सम्मिलित था तथा बिम्बिसार वैशाली का मगध स्थित 'सेनिय' या सेनापति था। उसने विद्रोह करके राजपद पाया। परन्तु यह सुझाव 'महावंस' (2.

1. आई० एच० क्यू०, 1, 1925, पृ० 87।
2. रायचौधुरी, पो० हि० ए० इ०, पृ० 117।
3. कार्माइकेल लेक्चर्स, सं० 2।
4. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

29-30) के इस साक्ष्य के विरुद्ध है कि बिम्बिसार को उसके पिता ने उस समय ही राजपद पर अभिषिक्त कर दिया था जब बिम्बिसार की आयु केवल 15 वर्ष थी।[1] क्योंकि बिम्बिसार ने 52 वर्ष शासन किया इसलिए उसका 15 वर्ष की आयु में सिंहासनासीन होना असम्भव नहीं है। दूसरे, 'सुत्तनिपात' में 'मागधंपुरं' को वैशाली के विशेषण के रूप में नहीं वरन् एक भिन्न नगर—राजगृह—के नाम के पर्याय के रूप में उल्लिखित किया गया है। तीसरे, 'सुत्तनिपात' के इसी श्लोक व अगले श्लोक के सम्मिलित साक्ष्य से ज्ञात होता है कि 'मागधंपुरं' में एक पाषाण चैत्य था जो एक पहाड़ी पर बना था। यह वर्णन राजगृह पर लागू होता है। लाहा का विचार है कि यहां राजगृह के गृध्रकूट विहार की ओर संकेत है।[2]

'महावंस' में बिम्बिसार के पिता का नाम भातिय या भट्टिय दिया गया है। इसके विपरीत तिब्बती साहित्य में उसे महापद्म कहा गया है तथा पुराणों में हेमजित्, क्षेमजित्, क्षेत्रोजा या क्षेत्रौजा। अगर पुराणों का साक्ष्य सही है तो बिम्बिसार के पिता का नाम क्षेमजित् (या इस नाम का पुराणों में प्रदत्त कोई दूसरा रूप) रहा होगा तथा उपाधि भट्टिय—वैसे ही जैसे बिम्बिसार की उपाधि 'सेनिय' थी और अजातशत्रु की कुणिक। रायचौधुरी ने बिम्बिसार के पिता के उपर्युक्त सभी नामों को काल्पनिक माना है।[3]

विवाह-सम्बन्ध नीति

बिम्बिसार अपने युग का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, महत्त्वाकांक्षी और प्रबुद्ध नरेश था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने छठी शती ई० पू० के उत्तरार्द्ध के उत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति को ठीक तरह से समझ लिया था। उस समय उत्तर भारत बहुत से छोटे-छोटे जनपदों में विभाजित था जिनमें मगध भी एक था। मगध के उत्तर-पश्चिम में स्थित कोसल, पश्चिम में स्थित वत्स तथा उसके परे स्थित अवन्ति—ये भारत के प्राचीन और शक्तिशाली राज्यों में से थे। इनके अतिरिक्त मगध का उत्तरी पड़ोसी—वज्जि संघ—भी एक अत्यन्त शक्तिशाली जनपद था। बिम्बिसार यह जानता था कि उस समय मगध की यथार्थ शक्ति वत्स, कोसल और अवन्ति के बराबर नहीं थी यद्यपि सम्भावी शक्ति की दृष्टि से मगध उनसे कहीं अधिक सबल था। इसलिए आवश्यक था कि वह कुछ समय तक अपने शक्तिशाली पड़ोसियों से मित्रता रखता और अपनी आन्तरिक शक्ति बढ़ाकर पड़ोस के उन राज्यों को जीतता जो कोसल, वत्स और अवन्ति की आकांक्षा-क्षेत्र के परे थे। बिम्बिसार ने इसी नीति को अपनाया और अपना ध्यान मगध के मित्रों की संख्या तथा सैनिक शक्ति बढ़ाने में लगाया। अपनी विजयाकांक्षा उसने पूर्वी

1. गीगर, महावंस, पृ० 12; तुलनीय चतुर्थ शती ई० में प्रथम चन्द्रगुप्त का अपने पुत्र समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी बनाना।
2. लाहा, ट्राइब्स् इन एन्श्येण्ट इण्डिया, पृ० 328।
3. रायचौधुरी, पूर्वो०, पृ० 205।

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पड़ोसी अंग तक सीमित रखी जहां अन्य राज्यों से प्रतिद्वन्द्विता होने की सम्भावना अत्यल्प थी।

बिम्बिसार ने अपने मित्रों की संख्या बढ़ाने के लिए परवर्ती गुप्त सम्राटों एवं यूरोप के हेप्सबर्ग व बूर्बों नरेशों की तरह विवाह-सम्बन्ध नियोजित करने की नीति अपनाई जिनमें कुछ का राजनीतिक महत्त्व हमारे उपलब्ध साक्ष्य से संकेतित है। 'महावग्ग' में उसकी रानियों की संख्या 500 बताई गई है। यह संख्या अतिरंजित हो सकती है परन्तु उसने कई विवाह किए थे, इसमें सन्देह नहीं। उदाहरण के लिए उसने कोसल नरेश के साथ दोहरा विवाह सम्बन्ध किया क्योंकि 'धम्मपद टीका' के अनुसार उसने अपनी बहिन का विवाह प्रसेनजित् से किया और प्रसेनजित् की बहिन कोसलादेवी को अपनी रानी बनाया। कोसलादेवी को कोसल नरेश ने काशी के एक गांव की एक लाख कार्षापण की आय 'नहानचुन्न' (स्नान चूर्ण) के व्यय के लिए दहेज में दी।[1] इससे मगध का काशी प्रदेश पर प्रभाव स्थापित हुआ। शान्तिपूर्ण उपाय से प्राप्त इस महत्त्वपूर्ण सफलता से मगध के प्रसार का इतिहास प्रारम्भ हुआ।

बिम्बिसार को सबसे अधिक भय अवन्ति नरेश चण्डप्रद्योत महासेन की ओर से था। प्रद्योत ने, जैसाकि हमने अन्यत्र देखा है (अध्याय 4) सूरसेन तथा मत्स्य जनपद को अपने प्रभावान्तर्गत किया था। जैन साक्ष्य के अनुसार उसने बिम्बिसार के शासनकाल में राजगृह पर भी आक्रमण किया था जिसे अभय राजकुमार ने असफल कर दिया था।[2] हमें इस साक्ष्य में विश्वास नहीं है क्योंकि वत्स राज्य को अपने अधिकार में किए बिना मगध पर आक्रमण करना अवन्ति नरेश के लिए एक भौगोलिक असम्भावना थी और वत्स उस समय तक एक स्वतन्त्र राज्य था। ऐसा प्रतीत होता है कि अजातशत्रु के काल में (जब वत्स राज्य प्रद्योत के अधीन हुआ, दे० अध्याय 4) प्रद्योत ने राजगृह पर आक्रमण करने की जो योजना बनाई होगी जिसे जैन लेखकों ने गलती से बिम्बिसार के काल में घटी घटना बता दिया है। जो भी हो, इतना निश्चित है कि बिम्बिसार के प्रद्योत के साथ अच्छे सम्बन्ध थे। जब प्रद्योत पाण्डु रोग से पीड़ित हुआ तो बिम्बिसार ने उसकी चिकित्सा के लिए अपने वैद्य जीवक को भेजा था और जीवक प्रद्योत को निरोग करने में सफल हुआ था।

प्रद्योत ने गन्धार-नरेश पुष्करसारी पर भी आक्रमण किया। पुष्करसारी के शत्रुओं में पाण्डव भी थे जो टॉलेमी (दूसरी शती ई०) के काल में शाकल पर शासन करते थे। चौथी शती ई० पू० में शासन करने वाला पोरस भी, जो आम्भी का पड़ोसी था, पाण्डववंशीय रहा होगा। अनुमान किया जा सकता है कि पाण्डव नरेश व प्रद्योत दोनों परस्पर मित्र रहे होंगे। ऐसी स्थिति में जब हम पाते हैं कि बिम्बिसार की महिषी खेमा (क्षेमा) मद्रदेश (राजधानी शाकल) की राजकुमारी थी[3] तो तत्कालीन युग में सत्ता

1. तु०, परवर्ती युगों में बेगमों को मिलने वाला खर्च-ए-पानदान।
2. ए० बी० ओ० आर० आई०, 1920-21 पृ० 3।
3. थेरीगाथा अट्ठकथा, 139-143।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूपी शतरंज के दाँव-पेंच कुछ स्पष्ट होने लगते हैं। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार गन्धार-नरेश ने बिम्बिसार के साथ भेंटों का आदान-प्रदान किया था और अपना एक दूत-मण्डल राजगृह भेजा था। बिम्बिसार ने भी उसके पास अपना सन्देश भेजा था जिसमें बुद्ध के उपदेश भी बताए गए थे। रायचौधुरी का अनुमान है कि गन्धार-नरेश ने पाण्डवों व अवन्ति के विरुद्ध बिम्बिसार से सहायता मांगी होगी। लेकिन बिम्बिसार ने गन्धारराज के प्रति सौहार्द प्रदर्शित करने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया। रायचौधुरी का यह सुझाव तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के प्रकाश में सर्वथा बोधगम्य है क्योंकि बिम्बिसार न तो अवन्ति से झगड़ा मोल लेना चाहता होगा और न उसकी महिषी खेमा अपने पितृ-प्रदेश (शाकल) के विरुद्ध मागध सहायता भेजने के पक्ष में रही होगी।

अंग विजय

बिम्बिसार ने पड़ोसी राज्यों के साथ सम्बन्ध सुधारने के साथ अपनी सैनिक शक्ति भी बढ़ाई। उसे 'सेणिय' या 'सेनिय' कहा जाता था। 'सुमंगलविलासिनी' के अनुसार इसका कारण यह था कि उसके पास एक बड़ी सेना थी (महतिया सेनाय समन्नागतत्ता)। इस सेना का उपयोग उसने अंग विजय में किया। उसकी अंग विजय से मागध साम्राज्य का विकास और प्रसार प्रारम्भ होता है। यहां यह ध्यान दिलाना अनुचित न होगा कि गंगा की घाटी—हरिद्वार से लेकर कलकत्ता तक विस्तृत भूखण्ड—एक विशाल मैदानी प्रदेश है। यह उत्तर में हिमालय और दक्षिण में राजस्थान के मरुस्थल और बुन्देलखण्ड के वन्य प्रदेश से घिरी है। इसमें आविर्भूत होने वाले सभी साम्राज्यिक वंशों ने इस बात का प्रयास किया कि वे इसके समस्त भागों पर प्रत्यक्षरूपेण शासन करें। यहां तक कि समुद्रगुप्त पराक्रमांक (लगभग 350-375 ई०) ने भी, जिसने उत्तर भारत और दक्षिणापथ के राजाओं को या तो मात्र सर्वकरदान आदि के लिए विवश किया अथवा जीतकर छोड़ दिया, गंगा की उपत्यका के राजाओं को उन्मूलित करने की नीति अपनाई थी। ऐसी नीति को प्राचीन भारतीय विचारकों ने 'असुरविजय' की नीति कहा है। बिम्बिसार और अजातशत्रु और उनके बाद नन्द नरेशों ने भी इसी नीति का अवलम्बन किया। जब चतुर्थ शती ई० पू० में सिकन्दर भारत आया था तो उसने सम्पूर्ण गंगा-उपत्यका को एक ही राजा के अधीन पाया था। इस नीति का अवलम्बन बाद में मौर्यों ने भी किया। इस दृष्टि से बिम्बिसार की अंग-विजय उस प्रक्रिया की प्रथम अवस्था थी जिसकी परिणति अशोककालीन अखिल भारतीय साम्राज्य था।

यहां यह अनुमान करना आवश्यक नहीं है कि बिम्बिसार या अजातशत्रु के सम्मुख अखिल भारतीय साम्राज्य की स्थापना का आदर्श था। उनका उद्देश्य सम्भवतः बहुत सीमित था—मात्र गंगा सरित्प्रणाली पर आधिपत्य स्थापित करना। उस युग में जब भारत में आबादी कम थी, सड़कें खराब थीं और वनों का आधिक्य था, अन्तर्देशीय व्यापार प्रधानतः नदियों द्वारा ही होता था। इसलिए ऐसा नरेश जो गंगा और उसकी सहायक नदियों पर नियंत्रण रख सकता था, आन्तरिक व्यापार से अधिक लाभान्वित हो सकता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। इस तथ्य के प्रकाश में यह अनुमान करना असंगत न होगा कि जब बिम्बिसार ने अंग पर आक्रमण किया, उसका लक्ष्य मूलतः आर्थिक ही था। अंग-विजय से एक ओर उसके लिए बंगाल विजय का मार्ग खुल सकता था तो दूसरी तरफ चम्पा पर अधिकार हो जाता जो अंग की राजधानी ही नहीं वरन् एक बहुत बड़ा सरित् बन्दरगाह भी था। जातकों के अनुसार सुवर्णभूमि के साथ उसके व्यापार के कारण मसालों और सुवर्ण की बहुतायत रहती थी। दक्षिणी अनाम और कोचीन चाइना में बसाए गए चम्पा नामक उपनिवेश का नाम इस नगर पर रखा गया था। गौतम बुद्ध के समय इसे राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और बनारस के साथ भारत के छः बड़े नगरों में गिना जाता था। स्पष्ट है कि चम्पा एक ऐसा व्यापार-केन्द्र था जहां से दक्षिण की बहुमूल्य वस्तुएं उत्तर भारतीय बाजारों में वितरित होती थीं।[1] इसलिए अंग की विजय से बिम्बिसार को न केवल मगध के भावी प्रसार की योजना को कार्यान्वित करने के लिए धन मिल सकता था वरन् मागध व्यापारी भी उससे लाभान्वित हो सकते थे।

बिम्बिसार के अंग पर आक्रमण का तात्कालिक कारण सम्भवतः उसकी अंग से बदला लेने की आकांक्षा थी। अंग और मगध की शत्रुता बहुत पहिले से चली आई थी। जातकों के अनुसार उनके पारस्परिक संघर्ष में कभी एक को सफलता मिलती थी, कभी दूसरे को। एक समय ऐसा भी आया था जब स्वयं मगध अंग राज्य में सम्मिलित था। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में अंग वैरोचन को एक मूर्धाभिषिक्त नरेश बताया गया है। 'महाभारत' में अंग देश के एक राजा द्वारा गया में यज्ञ करने का उल्लेख है। 'विधुर पण्डित जातक' में राजगृह को अंग की राजधानी बताया गया है। एक अन्य जातक में एक कथा आई है कि एक बार अंगराज ने मगध की सेना को चम्पा नदी तक खदेड़ा जिससे हताश होकर मगधराज नदी में कूद पड़ा। बाद में उसने नागराज की सहायता से अंग को परास्त किया।[2]

अंग ने मगध पर अन्तिम विजय बिम्बिसार के पिता भाति या भट्टिय या भातिय के काल में प्राप्त की थी। 'दीपवंश' के अनुसार अंग नरेश ब्रह्मदत्त ने बिम्बिसार के पिता भातिय को हराया था। इस ब्रह्मदत्त की पहिचान जैन ग्रन्थों में उल्लिखित दधिवाहन से की जा सकती है जिसने वत्स नरेश शतानीक को परास्त किया था।[3] उस समय मगध अंग में सम्मिलित रहा होगा। लेकिन तिब्बती 'दुल्व' के अनुसार बिम्बिसार ने, उस समय ही जब वह युवराज था, ब्रह्मदत्त को मारकर उसकी राजधानी चम्पा पर अधिकार कर लिया और अपने पिता द्वारा वहां का उपराजा बना दिया गया।[4] बिम्बिसार

1. बैशम, पी० आई० एच० सी०, 191, पृ० 40।
2. सन्दर्भों के लिए दे०, उपाध्याय, म० सि०, पूर्वो०, पृ० 345-46
3. हर्ष के नाटक 'प्रियदर्शिका' का यह कथन कि अंग नरेश दृढ़वर्मा (=दधिवाहन ?) ने शतानीक के पुत्र उदयन के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया था और उदयन ने अपने श्वसुर को उसका राज्य लौटाया था, स्पष्टतः अशुद्ध है। उदयन के राज्यारोहण के बहुत पहिले ही अंग की स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो गई थी।
4. हार्डी, मैनुअल ऑव बुद्धिज्म, पृ० 163, टि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का राज्यारोहण हमने 544-543 ई० पू० में रखा है। इसलिए 'दुल्व' का कथन अगर सही हो तो उसकी अंग विजय 550-545 ई० पू० में रखनी होगी। लेकिन हमें 'दुल्व' के इस साक्ष्य में श्रद्धा नहीं है क्योंकि हम यह सम्भव नहीं मानते कि बिम्बिसार इतनी कम उम्र में चम्पा का गवर्नर बना दिया गया होगा (स्मरणीय है कि बिम्बिसार अपने पिता द्वारा 15 वर्ष की आयु में ही राजा बना दिया गया था)।

बिम्बिसार का अंग पर आधिपत्य अन्य अनेक साक्ष्य से प्रमाणित है। 'विनय पिटक' में मगध की राजधानी राजगृह को अंग और मगध की आय का मुख कहा गया है। 'महावग्ग' में (अंग सहित) मगध के गांवों की सम्मिलित संख्या 80,000 बताई गई है।[1] 'धम्मपद अट्ठकथा' में बताया गया है कि तीन सौ योजन के अंग-मगध राज्य में बिम्बिसार की आज्ञा चलती थी। 'पपंचसूदनी' में बिम्बिसार को अंग और मगध दोनों का राजा बताया गया है। 'दीघनिकाय' के 'सोणदण्ड सुत्त' में कहा गया है कि चम्पा निवासी ब्राह्मण सोणदण्ड (सुवर्णदण्ड) को चम्पा की सारी आय राजा बिम्बिसार द्वारा मिली हुई थी। वह ब्राह्मण "मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार द्वारा प्रदत्त· ·जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य सहित, राजभोग्य, राजदाय, ब्रह्मदेय चम्पा का स्वामी था।"[2] 'महा-वग्ग' में भी बिम्बिसार के चम्पा पर शासन करने का उल्लेख है। हेमचन्द्र के 'परिशिष्ट पर्वण' 7.22) तथा 'भगवती सूत्र' एवं 'निरयावली सूत्र' आदि जैन ग्रन्थों के अनुसार भी सेणिय (=बिम्बिसार) का चेल्लनादेवी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र राया कुणिक (=अजात-शत्रु) चम्पा नगरी पर वायसराय रूप में शासन करता था (चम्पायां कुणिको राजा)।[3] बिम्बिसार की चम्पा में अपने पुत्र को वायसराय बनाने की नीति प्रसेनजित् द्वारा अपने भाई को काशिराज बनाने एवं उदयन द्वारा अपने पुत्र बोधि राजकुमार को भग्ग देश में वायसराय नियुक्त करने की नीति से तुलनीय है। जो भी हो, बिम्बिसार ने काशी प्रदेश को शान्तिपूर्ण उपायों से अपने प्रभावान्तर्गत लाकर एवं अंग को युद्ध द्वारा जीत-कर मगध के प्रसार की वह प्रक्रिया प्रारम्भ की जो तब जाकर पूर्ण हुई जब अशोक ने कलिंग-विजय के उपरान्त शस्त्र-विजय की नीति का परित्याग करके धम्मविजय की नीति अपनाई।[4]

बिम्बिसार और वज्जि संघ

बिम्बिसार के काल में वज्जिसंघ, जो मगध का उत्तरी पड़ोसी था, पूर्वी भारत का एक सशक्त और प्रतिष्ठित राज्य था। बिम्बिसार के साथ उसके प्रारम्भिक सम्बन्ध के

1. यह संख्या बौद्धों ने बहुधा प्रयुक्त की है, अतः इसे बहुत विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता।
2. संदर्भों के लिए दे०, उपाध्याय, पूर्वो०, पृ० 347-48।
3. पो० हि० ए० इ०, पृ० 207।
4. वही। 'धम्मपद अट्ठकथा' (4.2) में प्रदत्त बुद्ध एवं बिम्बिसार के संवादानुसार, जो बुद्ध के छठे वर्षावास में हुआ, इस संवाद के समय बिम्बिसार के राज्य में मगध और अंग सहित 300 योजन भूमि थी। क्योंकि बुद्ध के छठे वर्षावास की तिथि 522 ई० पू० पड़ेगी, इसलिए बिम्बिसार ने अंग को इस तिथि के पूर्व जीता होगा (दे०, योगेन्द्र मिश्र, अ० हि० वं०, पृ० 127)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय में डी० आर० भाण्डारकर के मत की चर्चा और आलोचना पीछे की जा चुकी है। जैन साक्ष्य अनुसार बिम्बिसार ने लिच्छवि राजा (गणाध्यक्ष) चेटक की पुत्री चेल्लना से विवाह किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पूर्व या उपरान्त बिम्बिसार का वैशाली से युद्ध हुआ था। इसकी चर्चा बौद्ध ग्रन्थों में प्रसंगवशात् मिलती है[1] लेकिन कहीं भी इसका कारण, तिथि व परिणाम नहीं बताए गए हैं। शुआन च्वांग ने बिम्बिसारराज पर आक्रमण करने के लिए वैशालीराज द्वारा सेना संगृहीत करने का उल्लेख किया है, परन्तु उनके संघर्ष का कारण उसने भी नहीं बताया है। योगेन्द्र मिश्र का अनुमान है कि जब बिम्बिसार ने अंग पर आक्रमण किया, तो हो सकता है कि विदेह का गंगा पार वाला अंगुत्तरावाप प्रदेश अंग के पास रहा हो और अंग-मगध युद्ध के दौरान वज्जियों ने अपने (विदेह उनका अंग होने के कारण) इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया हो। अंग जीत लेने के बाद बिम्बिसार ने इस प्रदेश को मांगा होगा जिसके कारण मगध वज्जि-संघ में युद्ध छिड़ गया होगा।[2] इस युद्ध की केवल एक घटना साहित्य में उल्लिखित मिलती है। इसके अनुसार जब यह युद्ध चल रहा था, बिम्बिसार ने अपने मन्त्री गोपाल से वैशाली की गणिका अम्बपाली (आम्रपाली) के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनी। इससे आकृष्ट होकर वह छद्मवेश में वैशाली गया और वज्जियों से युद्धरत रहने के बावजूद वहां सात दिन तक रहा। अम्बपाली से उसे अभय या अभयकुमार नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। यह कथा गिलगित पाण्डुलिपियों तथा जैन ग्रन्थों में भी मिलती है। लेकिन 'थेर गाथाएं' व 'थेरी गाथाएं' में उसके अम्बपाली से उत्पन्न पुत्र का नाम विमल कोडञ्ञ दिया गया है और बताया गया है कि विमल बाद में भिक्षु बना था और उसके उपदेश से अम्बपाली को बड़ा प्रकाश मिला था।[3] सम्भवतः बिम्बिसार का चेटक की पुत्री चेलन्ना से विवाह इसी युद्ध का सुखद परिणाम था।

बिम्बिसार ने लिच्छवियों का अनुकरण करके अपनी राजधानी राजगृह में नगर-शोभिणी (नगर गणिका) की नियुक्ति की प्रथा चलाई। 'महावग्ग' के अनुसार इस पद पर सर्वप्रथम सालवती की नियुक्ति की गई।

'दीघनिकाय' के 'महालिसुत्त' में मगध के राजदूतों के वज्जि राजधानी में विद्यमान होने की चर्चा है।

प्रशासन-व्यवस्था

अंग विजय से बिम्बिसार के राज्य का विस्तार 300 योजन हो गया। बौद्ध ग्रन्थों से हमें इस विशाल राज्य के शासन प्रबन्ध पर भी कुछ सूचनाएं मिलती हैं। उसके प्रधान पदाधिकारी 'महामत्त' (महामात्र) कहलाते थे। 'चुल्लवग्ग' से संकेतित है कि वह अपने

1. विनयपिटक, (हिन्दी अनुवाद), 1, पृ० 189; गिलगित पाण्डुलिपियां, 3, खण्ड 2, पृ० 20; राक्हिल, पृ० 64 (योगेन्द्र मिश्र, अ० हि० वै०, पृ० 136, टि० 2 में उद्धृत)।
2. मिश्र, योगेन्द्र, पूर्वो०, पृ० 136।
3. वही, पृ० 137।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महामत्तों (महामात्रों) पर कठोर अंकुश रखता था। जो उसे गलत सलाह देते थे उन्हें पदच्युत कर देता था और सही सलाह देने वालों को पुरस्कृत करता था। इसके परिणामस्वरूप मगध को अगली पीढ़ी में सुनीथ और वस्सकार जैसे योग्य पदाधिकारी मिले। वस्सकार (वर्षकार) अजातशत्रु का मन्त्री था और सुनीथ सेनापति। बिम्बिसार के महामत्त (महामात्र) कई प्रकार के थे। 'सब्बाथक' महामत्त सब प्रकार के कार्य करते थे, सेनानायक महामत्त सैनिक पदाधिकारी थे और वोहारिक महामत्त न्याय-व्यवस्था से सम्बन्धित थे। विनिच्चयामच्च भी, जिसका उल्लेख पालि ग्रन्थों में है, न्याय-व्यवस्था से सम्बन्धित थे। एक चौथे वर्ग के महामत्त सम्भवतः उपज का दशमांश वसूल करने के लिए उत्तरदायी थे। बिम्बिसारकालीन न्याय-व्यवस्था की कुछ झलक 'विनयपिटक' में मिलती है। इससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन युग में कारावास के अतिरिक्त कोड़ों से पिटाई करने, शरीर दागने, शिरोच्छेदन करने, जीभ निकाल लेने तथा पसलियां तोड़ देने का दण्ड भी दिया जाता था।

प्रान्तीय प्रशासन में प्रादेशिक स्वतन्त्रता का ध्यान रखा गया था। अंग जीतने के बाद वहां अंगराज कहे जाने वाले वायसराय की नियुक्ति की गई थी—सम्भवतः इसलिए जिससे उस प्रदेश का प्रादेशिक व्यक्तित्व एकदम समाप्त हो गया प्रतीत न हो। कुछ ग्रन्थों में माण्डलिक राजाओं का उल्लेख हुआ है। 'सुमंगलविलासिनी' के अनुसार उसके राज्य में कुछ संघ या गण भी थे जिनका अध्यक्ष राजकुमार कहलाता था। 'महावग्ग' के अनुसार बिम्बिसार ने अपने विशाल राज्य के 80,000 गांवों के ग्रामिकों की एक सभा बनाई हुई थी।[1] इनमें कुछ ग्रामों का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में आता है।

बिम्बिसार ने यातायात व्यवस्था सुधारने का प्रयास किया। शुआन च्वांग ने उसके द्वारा बनवाई गई सड़कों की चर्चा की है। उसने यह भी बताया है कि जब कुशाग्रपुर (पुराना राजगृह) में बार-बार आग लगी तो बिम्बिसार ने श्मशान के पास नया नगर (नया राजगृह) बनवाया। लेकिन फा-शिएन (फा-हिएन) ने नये राजगृह के निर्माण का श्रेय अजातशत्रु को दिया है। 'विमानवत्थु अट्ठकथा' के अनुसार बिम्बिसार का नगर मापक सूत्रधार व राजप्रासाद का स्थपति महागोविन्द था। 'सुमंगलविलासिनी' में इसके 32 महाद्वारों और 64 छोटे द्वारों (खुद्दद्वारानि) का उल्लेख है।[2] ये द्वार सन्ध्या होने पर राजा सहित सबके लिए बन्द कर दिये जाते थे।[3]

बौद्ध ग्रन्थों में बिम्बिसार के राज्य के कुछ महत्त्वपूर्ण गांवों के नाम भी मिलते हैं जैसे सेनानिगम (सम्भवतः सेना की भर्ती का एक केन्द्र), एकनाला (जहां भारद्वाज नामक ब्राह्मण निवास करता था), खानुमत (जो एक ब्राह्मण ग्राम था), नालक गाम (जहां सारिपुत्त ने एक उपदेश दिया था), आदि।

1. विनयपिटक, पृ० 199, 200, 201 (तेन खो पन समयेन राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो असीतिया गाम सहस्सेसु इस्सराधिपच्चं राजं कारेति—महावग्ग)।

2. राजगीर की खुदाई में परकोटे का कुछ भाग मिला है।

3. लेकिन स्मरणीय है 'महागोविन्द सुत्तन्त' में महागोविन्द द्वारा स्थापित सात नगरों में गिरिव्रज को नहीं गिनाया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिम्बिसार का धर्म और धार्मिक नीति

बिम्बिसार को बौद्ध तथा जैन दोनों धर्म अपना-अपना अनुयायी कहते हैं। 'उत्तराध्ययन सूत्र' में बताया गया है कि किस प्रकार राजाओं में चक्रवर्ती सिंह बिम्बिसार माण्डिकुक्षि चैत्य में अपनी रानियों, परिचारकों और सम्बन्धियों के साथ अणगार सीह (भिक्षुओं में सिंह) माहवीर के पास भक्तिपूर्वक आया और जैन धर्म में श्रद्धावान् हुआ। जैन धर्म की ओर उसका झुकाव उसकी लिच्छवि रानी चेलन्ना का प्रभाव प्रतीत होता है। अपने ग्रन्थ 'त्रिषष्टिशलाका' (106. 10-11) में हेमचन्द्र ने बताया है कि 'जब देश में भीषण हिमपात हुआ सम्राट् बिम्बिसार देवी चेलन्ना के साथ महावीर की अभ्यर्थना के लिए गए।' स्मरणीय है कि महावीर की माता लिच्छवि चेटक की बहिन थी। इस प्रकार चेलन्ना महावीर की ममेरी बहिन थी। अतः यह सर्वथा स्वाभाविक था कि चेलन्ना के हृदय में महावीर के प्रति विशेष अनुराग होगा।

गौतम बुद्ध से बिम्बिसार का परिचय पुराना था। जब महाभिनिष्क्रमण के बाद सिद्धार्थ गौतम राजगृह आए थे (सम्बोधि प्राप्त करने के छः वर्ष पूर्व), तो बिम्बिसार ने गिरिव्रज (प्राचीन राजगृह) में उनका स्वागत किया था और पाण्डव पर्वत पर हुई भेंट में उसने अनुरोध किया था कि उच्चपद प्राप्त करके वह उसके राज्य में रहें। जब बुद्ध ने उसका अनुरोध नहीं माना तब उसने आग्रह किया कि वह बुद्धत्व प्राप्ति के उपरान्त राजगृह पधारने का कष्ट अवश्य करें। बुद्धत्व प्राप्ति के छः मास बाद बुद्ध ने बिम्बिसार का स्मरण किया और नवीन राजगृह पधारे जहां बिम्बिसार उस समय निवास कर रहा था। बिम्बिसार ने उनका भव्य स्वागत किया, वेणुवन संघ को अर्पित किया और बौद्ध धर्म स्वीकृत किया। 'दीघनिकाय' के 'कूटदन्त सुत्त' में कूटदन्त ब्राह्मण कहता है: 'मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार पुत्र सहित, भार्या सहित, परिषद् सहित, अमात्य सहित प्राणों से श्रमण गौतम का शरणागत हुआ है' (समणं खलु भो गोतमं राजा मागधो सेणियो बिम्बिसारो सपुत्तो सभरियो सपरिसो सामच्चो पाणेहि सरणं गतो)। एक बार बिम्बिसार ने अस्सी हजार ग्रामिकों की सभा बुलाकर उनसे कहा था 'मैंने तुमसे इस जन्म की बात कही। अब तुम भगवान् बुद्ध की सेवा में जाओ। वे तुम्हें जन्मान्तर के हित की बात कहेंगे।' 'सुमंगलविलासिनी' में कहा गया है कि 'बुद्ध, धर्म संघ' का उच्चारण करते हुए बिम्बिसार ने प्राण छोड़े थे। 'दीघनिकाय' के 'जनवसभसुत्त' में बताया गया है कि 'मरते दम तक बिम्बिसार ने भगवान् बुद्ध का यश कीर्तन करते हुए मृत्यु को प्राप्त किया।' बिम्बिसार की रानी खेमा को भी बौद्ध धर्म में दृढ़ आस्था थी। कहा जाता है कि खेमा ने पसेनदि को भी उपदेश दिया था। उसकी कुछ गाथाएं भी 'थेरी गाथा' में सुरक्षित हैं। बौद्ध धर्म के प्रति बिम्बिसार की आस्था इस तथ्य से भी प्रकट है कि उसने अपने निजी वैद्य जीवक को बुद्ध व संघ का चिकित्सक नियुक्त किया था और एक बार जब गंगा पार करते समय बुद्ध के पास नाविक को देने के लिए पैसा नहीं निकला तो उसने भिक्षुओं के लिए तरपण्य निःशुल्क कर दिया था।[1]

1. दे०, उपाध्याय, भ० सि०, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० 171-2।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसा प्रतीत होता है कि बिम्बिसार की व्यक्तिगत श्रद्धा बुद्ध में थी यद्यपि वह महावीर के प्रति भी भक्तिभाव प्रदर्शित करने में संकोच नहीं करता था। इसी प्रकार वह ब्राह्मण धर्म के साथ भी अच्छा व्यवहार करता था। 'दीघनिकाय' के अनुसार उसने सोणदण्ड नामक ब्राह्मण को चम्पा की सारी आय दान में दे रखी थी। स्मरणीय है कि अंग तथा मगध प्रदेश यद्यपि आर्यावर्त के अन्तर्गत नहीं थे तथापि यहां आर्य संस्कृति व ब्राह्मणों का काफी प्रभाव था। उरुवेला में उरुवेल काश्यप, नदी काश्यप तथा गया काश्यप नाम के साधु प्रतिवर्ष एक विशाल यज्ञ करते थे जिसमें अंग और मगध के सहस्रों लोग प्रभूत मात्रा में खाद्य और भोज्य पदार्थ लेकर पहुंचते थे। अंग तथा मगध के लोग महाब्रह्मा की पूजा में 60 गाड़ियां ईंधन जला डालते थे। मगध के बहुत से गांव यथा एकनाला, पंचशाल, अम्बसण्ड, सालिन्दिय तथा खाणुमत विशुद्ध ब्राह्मण ग्राम थे तथा मगध देश कूटदन्त, सोणदण्ड तथा भारद्वाज जैसे ब्राह्मणों का निवास स्थान था।[1] इसलिए मगध-राज बिम्बिसार ब्राह्मण धर्म के प्रति उपेक्षा का व्यवहार नहीं कर सकता था।

बिम्बिसार के अन्तिम दिन

बिम्बिसार का अन्तिम जीवन बहुत दुःखमय रहा और उसे करीब 15 वर्ष[2] बन्दीघर में बिताने पड़े। इसका कारण उसके पुत्र अजातशत्रु की महत्वाकांक्षा एवं बुद्ध के ममेरे भाई और साले देवदत्त की बुद्ध के प्रति ईर्ष्या थी। देवदत्त उन व्यक्तियों में से था जिन्होंने बौद्ध धर्म सबसे पहले स्वीकार किया था। उसने कुछ आध्यात्मिक उन्नति कर ली थी और कुछ ऋद्धियां भी पा ली थीं जिससे उसने अजातशत्रु को विश्वास दिला दिया कि वह एक सिद्ध है। वह चाहता था कि बुद्ध उसे अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दें। बुद्ध के अस्वीकृत कर देने पर वह बहुत क्रुद्ध हुआ और कुछ दुष्ट व्यक्तियों के साथ मिल-कर उसने एक नया संघ संगठित किया। उसे राजकुमार अजातशत्रु का भी समर्थन प्राप्त हो गया जो अपने पिता का वध करके राज्य पाना चाहता था। दोनों ने मिलकर अपने-अपने रास्ते के कांटों को निकालना चाहा। देवदत्त ने बुद्ध का वध करने के लिए कुछ गुण्डे भेजे। परन्तु वे बुद्ध के भक्त बन गये। तब उसने बुद्ध के ऊपर एक शिला लुढ़क-वाई परन्तु वह दो पत्थरों में अटक गई। तदुपरान्त उसने बुद्ध के ऊपर एक पागल हाथी छुड़वाया परन्तु वह बुद्ध के सम्मुख चुपचाप बैठ गया। देवदत्त ने अजातशत्रु को भी उकसाया कि जीवन थोड़े दिनों का होता है, न जाने राज्य मिलने में कितनी देर लगे। "अतएव हे राजकुमार! पिता का वध करके राजा बनो।"[3] देवदत्त के सिखाने से अजातशत्रु अपने पिता का वध करने ही वाला था कि मन्त्रियों ने उसे पकड़ लिया। उसने अपना अपराध स्वीकार किया। मन्त्रियों ने राजा को सलाह दी कि षड़यन्त्र-कारियों का वध कर दिया जाय। परन्तु बिम्बिसार ने अजातशत्रु को क्षमा कर दिया

1. दे०, उपाध्याय, भ० सि०, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० 216 अ०।
2. दे०, अगला अध्याय। तु० शाहजहां का अपने अन्तिम वर्ष बन्दीघर में बिताना।
3. विनय, 2.190; दीघ 1.86; सुमंगलविलासिनी 1.133-36; पेतवत्थु अट्टकथा, 105।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और राज्य भी उसे सौंप दिया।[1] फिर भी अजातशत्रु ने अपने पिता को मरवा ही डाला। बाद में उसने बुद्ध के सम्मुख अपने इस अपराध को स्वीकार किया था। 'महावंस' के अनुसार उसने यह अपराध बुद्ध के परिनिर्वाण के आठ वर्ष पूर्व किया था, जब बिम्बिसार को शासन करते हुए 52 वर्ष हो चुके थे।

जैन ग्रन्थों में इस विषय में अजातशत्रु के प्रति कुछ पक्षपात दिखाया गया है। इनमें कहा गया है कि यद्यपि श्रेणिक (बिम्बिसार) अपने पुत्र कुणिक (अजातशत्रु) को अपना उत्तराधिकारी बनाने का संकल्प कर चुका था परन्तु कुणिक ने अधीर व संदिग्धमन होकर अपने पिता को कारागृह में डाल दिया। कारागृह में कुणिक की माता चेलन्ना ने अपने पति की भक्तिपूर्वक सेवा की। एक बार तो उसने अपने पति की मवाद भरी अंगुली को उसकी पीड़ा कम करने के लिए अपने मुंह में चूस लिया था। इससे अजातशत्रु के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने पश्चात्तापपूर्वक सोचा कि 'मैंने अपने पिता के साथ बड़ा दुःखद व्यवहार किया है।' ऐसा कहकर वह एक लोहे की गदा लेकर कारागृह गया जिससे अपने पिता के बन्धन तोड़ दे। किन्तु श्रेणिक उसे अचानक गदा लेकर आते देखकर भयभीत हो उठा और विष उसने खाकर अपने प्राण दे दिए।[2]

विन्सेण्ट स्मिथ ने बिम्बिसार की मृत्यु विषयक पालि परम्परा की विश्वसनीयता में सन्देह प्रकट किया है। लेकिन इस विषय में बौद्ध परम्परा जैन परम्परा से परोक्षतः समर्थित ही होती है। इसके सिवाय कि जैनों ने अजातशत्रु को पितृहत्या के अपराध से मुक्त करने की असफल चेष्टा की है, बौद्ध और जैन परम्पराओं में विशेष अन्तर नहीं है। इसलिए रीज़ डेविड्स, गीगर तथा रायचौधुरी आदि विद्वान् बिम्बिसार की हत्या अजातशत्रु के हाथों हुई मानते हैं।

1. विनय 2.190।
2. आवश्यक सूत्र. 682-3।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 9

अजातशत्रु

परिवार

विम्बिसार की चेलन्ना, कोसला देवी, खेमा आदि अनेक रानियां थीं जिनसे उसको न केवल अनेक पुत्र मिले वरन् उन रानियों के पितृकुलों की राजनीति से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का सामना भी करना पड़ा। उसका पुत्र अजातशत्रु (अजातसत्तु) उसकी किस रानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था इसके विषय में हमारे साक्ष्य में मतभेद है।[1] 'थुसजातक' व 'मूषिक जातक' के अनुसार वह कोसलादेवी का पुत्र था। सम्भवतः अजातशत्रु द्वारा अपने पिता की हत्या की व्याख्या करने के लिए इस जातक में कहा गया है कि जब वह गर्भ में था तो उसकी मां, कोसलराज की पुत्री, के मन में विम्बिसार के दाहिनी घुटने का रक्त पीने की उत्कट गर्भेच्छा हुई। 'संयुक्तनिकाय' में एक स्थल पर प्रसेनजित् ने अजातशत्रु को अपना भाञ्जा बताया है। लेकिन इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थल पर अजातशत्रु की माता का नाम मद्दा (मद्रा=मद्रदेशोत्पन्ना; खेमा ?) दिया गया है। एक अन्य परम्परानुसार, जो अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है, कूणिय (अजातशत्रु) वैशाली के गणाध्यक्ष चेटक की पुत्री चेल्लणा (चेल्लना) के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। यह परम्परा हमें प्रधानतः जैन ग्रन्थ 'निरयावली सूत्र' में मिलती है। मूलसर्वास्तिवादी विनय के अनुसार भी अजातशत्रु की माता चेला थी जो विदेह से आने के कारण वैदेही कहलाती थी। 'दिव्यावदान' में भी कहा गया है कि बिम्बिसार की 'महादेवी' वैदेही अजातशत्रु की माता थी। क्योंकि विदेह वैशाली में था इसलिए चेलन्ना को वैदेही कहा जा सकता था। 'महापरिनिब्बान सुत्त' तथा अन्य कई बौद्ध ग्रन्थों में अजातशत्रु को 'वैदेही पुत्र' कहा गया है।[2] तिब्बती 'दुल्व' में अजातशत्रु की माता का नाम वासवी दिया गया है और एक अन्य तिब्बती ग्रन्थ में श्रीभद्रा। श्रीभद्रा नाम चेटक की पत्नी सुभद्रा के नाम का स्मरण दिलाने वाला है।

इस प्रकार अजातशत्रु की माता के छः नाम मिलते हैं—चेलन्ना, कोसला, वैदेही, वासवी,

1. सन्दर्भों के लिए दे०, मिश्र, योगेन्द्र, अ० हि० वै०, पृ० 138-40

2. बुद्धघोष ने 'संयुत्तनिकाय' (3.2.4-5) की टीका करते हुए वैदेही का सन्धि-विग्रह वेद-इह =वेदेन इहति करके इसका अर्थ 'बौद्धिक प्रयास' किया है और 'विदेहीपुत्त' का अर्थ 'प्रबुद्ध राजकुमारी का पुत्र' माना है। रायचौधुरी के अनुसार कोसल की राजकुमारी कोसलादेवी को भी वैदेही कहा जा सकता था। उदाहरणार्थ, कोसल का राजा पर अट्नार 'वैदेह' कहलाता था। परन्तु यह व्याख्या जैन साक्ष्य के विरुद्ध है। स्वयं बुद्धघोष ने अन्यत्र वैदेही को 'विदेह प्रदेश उत्पन्ना' अर्थ में ही लिया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीभद्रा और मद्दा (मद्रा)। हमें इनमें यह परम्परा सही लगती है कि उसकी माता विदेह अर्थात् वज्जि प्रदेश के 'राजा' चेटक की पुत्री चेलन्ना थी। वासवी उसका दूसरा नाम हो सकता है। श्रीभद्रा, कोसला और मद्दा नाम उसे कुछ लेखकों ने भ्रमवशात् दे दिए हैं। प्रसेनजित् ने अजातशत्रु को अपना भाञ्जा इसलिए कह दिया होगा क्योंकि प्रसेनजित् की बहिन कोसलादेवी अजातशत्रु की सौतेली मां थी।

अजातशत्रु के कुछ भाइयों के नाम बौद्ध और जैन साहित्य में सुरक्षित हैं। जैन ग्रन्थों में चेल्लना के पुत्रों में अजातशत्रु के अतिरिक्त हल्ल और वेहल्ल को गिनाया गया है तथा आम्रपालि का पुत्र अभयकुमार को बताया गया है। इसके अतिरिक्त जैन ग्रन्थ मेघकुमार का नाम लेते हैं। बौद्ध ग्रन्थों में विमलकोण्डञ्ञ को आम्रपालि का पुत्र बताया गया है और अन्य पुत्रों में वेहल्ल, जयसेन तथा सीलवत को गिनाया गया है। बिम्बिसार की एक पुत्री चुन्दी का उल्लेख भी उपलब्ध है।[1] अभय राजकुमार के विषय में जैन ग्रन्थों में कहा गया है कि उसने बिम्बिसार के काल में प्रद्योत के सम्भावित आक्रमण के षड्यन्त्र को व्यर्थ किया था।

अजातशत्रु को जैन ग्रन्थों में कूणिक तथा अशोकचन्द कहा गया है (कथाकोश) तथा 'औपपातिक सूत्र' में देवानुंपिय। 'देवानुंपिय' उपाधि स्पष्टतः 'देवानांप्रिय' का प्राकृत रूप है। उसकी दो रानियों का नाम भी परम्पराओं में सुरक्षित है—वजिरा तथा पद्मावती।

State 6884

अजातशत्रु के शासन का तिथिक्रम

अजातशत्रु ने अपने पिता को कब बन्दी बनाया था, यह किसी साक्ष्य में स्पष्टतः नहीं कहा गया है। परन्तु प्रस्तुत अध्याय के लेखक का विचार है कि उसने अपने राज्यारोहण के लगभग 14-15 वर्ष पूर्व ही अपने पिता को बन्दी बना लिया था। दूसरे शब्दों में बिम्बिसार को 14-15 वर्ष बन्दीगृह में रहना पड़ा। इस प्रसंग में हम विद्वानों का ध्यान निम्नलिखित तथ्यों की ओर दिलाना चाहेंगे:—

प्राचीनतम बौद्ध साहित्य से यह निश्चित रूप से ज्ञात है कि कोसलराज प्रसेनजित् और बुद्ध समवयस्क थे और दोनों की मृत्यु 80 वर्ष की आयु में (483 ई० पू० में) हुई थी। अब, बौद्ध ग्रन्थों के ही अनुसार प्रसेनजित् ने अजातशत्रु द्वारा बिम्बिसार के साथ हुए अन्याय का समाचार सुनकर काशी के ग्राम की आय जो बिम्बिसार की रानी महाकोसला को दहेज रूप में दी गई थी, मगध को देना बन्द कर दिया था। इसके परिणाम स्वरूप अजातशत्रु और प्रसेनजित् में युद्ध हुआ। इस युद्ध का वर्णन 'संयुत्तनिकाय' के प्रथम और द्वितीय संगामसुत्तों में तथा 'वड्ढकी सूकर' 'हरितमात' 'कुम्मासपिण्ड' 'भद्दसाल' और 'तच्छसूकर' जातकों में मिलता है। ये ग्रन्थ अजातशत्रु और प्रसेनजित् के मध्य लड़े गए दो युद्धों का वर्णन करते हैं। आजकल सभी विद्वान् इन्हें एक ही युद्ध के दौरान लड़ी गई दो लड़ाइयां मानते हैं और इस युद्ध को स्थूलतः अजातशत्रु के राज्या-

1. रायचौधुरी, पूर्वो०, पृ० 209, टि० 2।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिषेक के लगभग तत्काल बाद रखते हैं।[1] परन्तु ये ग्रन्थ स्पष्टतः बताते हैं कि दूसरे युद्ध के उपरान्त (जिसमें प्रसेनजित् जीता) प्रसेनजित् ने अपनी रानी मल्लिका के गर्भ से उत्पन्न पुत्री वजिरा का विवाह अजातशत्रु से कर दिया था और उसने मल्लिका से अपना विवाह अजातशत्रु के विरुद्ध लड़े गये प्रथम युद्ध के उपरान्त, जिसमें वह हारा था, किया था। इससे स्पष्ट है कि अजातशत्रु के विरुद्ध लड़े गये प्रथम और द्वितीय युद्धों के मध्य उससे कुछ अधिक अन्तर अवश्य था जितने वर्ष की आयु वजिरा की अजातशत्रु के साथ विवाह के समय रही होगी। दूसरे शब्दों में ये दोनों युद्ध 15-20 वर्ष के अन्तर से अवश्य ही लड़े गए। स्पष्टतः इनमें दूसरा युद्ध बिम्बिसार की हत्या के बाद और अजातशत्रु के राज्याभिषेक (जो इस ग्रन्थ में स्वीकृत तिथिक्रमानुसार 491 ई० पू० में हुआ[2]) के बाद किसी समय लड़ा गया था और पहिला उसके 15-20 वर्ष पूर्व उस समय जब प्रसेनजित् को बिम्बिसार के बन्दी बनाए जाने का समाचार मिला। दूसरे युद्ध की तिथि एक स्थल पर प्रसेनजित् की मृत्यु से तीन वर्ष पूर्व बताई गई है।[3] इसलिए दूसरा युद्ध 483+3=486 ई० पू० में लड़ा गया होगा और पहिला उसके करीब 15-20 वर्ष पूर्व अर्थात् 505 ई० पू० के लगभग। इनमें प्रथम युद्ध के लड़े जाने के समय अजातशत्रु के सम्मुख कोई कठिनाई नहीं थी इसलिए उसने प्रसेनजित् को परास्त करने में सफलता पाई और बिम्बिसार कैद में ही पड़ा रह गया। इसके विपरीत दूसरे युद्ध के दौरान अजातशत्रु वज्जि संघ से युद्धरत था, इसलिए परास्त हुआ। लेकिन इस बार उसके सौभाग्य से प्रसेनजित् ने विजय पाने के बावजूद उससे सन्धि कर ली और उसे अपनी पुत्री वजिरा तथा काशी के ग्राम की विवादग्रस्त आय दोनों दे दिए।

बिम्बिसार के बन्दी बनाए जाने और उसकी हत्या में लगभग 15 वर्ष का अन्तर एक अन्य साक्ष्य से भी संकेतित है। बौद्ध परम्परानुसार महावीर की मुक्ति बुद्ध निर्वाण के कुछ पूर्व हुई थी। हमने महावीर की मुक्ति 486 ई० पू० में निर्धारित की है।[4] अब, जैन 'भगवतीसूत्र' के अनुसार आजीविक सम्प्रदाय के आचार्य मंखलिपुत्त गोसाल का देहान्त महावीर की मुक्ति के 16 वर्ष पूर्व अर्थात् 502 ई० पू० में हुआ और गोसाल की मृत्यु के समय कूणिय (अजातशत्रु) व वज्जियों का संघर्ष चल रहा था। इसका अर्थ यह हुआ कि अजातशत्रु अपने पिता की मृत्यु के (जो 491 ई० पू० में हुई) कम से कम 11 वर्ष पूर्व वज्जि संघ से युद्ध प्रारम्भ कर चुका था। ऐसा वह तभी कर सकता था जब उसने 502 ई० पू० के कुछ वर्ष पहिले ही बिम्बिसार को कैद कर लिया होता। इन तथ्यों के प्रकाश में बिम्बिसार के बन्दी बनाये जाने की तिथि लगभग 505 ई० पू० मानना सत्य से अति दूर नहीं होगा। हमारा यह निष्कर्ष अजातशत्रु के शासन काल पर नया प्रकाश देता है क्योंकि इससे प्रमाणित होता है कि (1) बिम्बिसार को अपने जीवन

1. दे० मुकर्जी, ए० इ० यू०, पृ० 23; रायचौधुरी, पो० हि० ए० इ०, पृ० 210-11।
2. दे०, अध्याय 8 तथा 12।
3. डि० पा० प्रो० ने०, 2, पृ० 172 (सुमंगल विलासिनी)।
4. दे०, अध्याय 12।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अन्तिम लगभग 15 वर्ष बन्दीघर में बिताने पड़े। (2) अजातशत्रु को कोसल के विरुद्ध दो युद्ध लड़ने पड़े थे–एक बिम्बिसार को कैद करने के बाद और दूसरा उसकी हत्या के बाद। (3) वज्जिसंघ के विरुद्ध युद्ध 502 ई० पू० में या इसके भी कुछ पहिले शुरु हुआ। क्योंकि भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के समय लिच्छवि और मल्ल जातियों की स्वतन्त्रता बनी हुई थी (महापरिनिब्बानसुत्त) इसलिए यह युद्ध 483 ई० पू० तक अवश्य ही चला होगा। एक बौद्ध ग्रन्थानुसार इसका अन्त निर्वाण के करीब तीन वर्ष उपरान्त अर्थात् लगभग 480 ई० पू० में हुआ।[1]

अपने उपर्युक्त निष्कर्षों को हम इस प्रकार तालिकाबद्ध कर सकते हैं—

558 ई० पू० : बिम्बिसार का जन्म
543 ई० पू० : बिम्बिसार का राज्याभिषेक[2]
505 ई० पू० : बिम्बिसार का बन्दीकरण
503 ई० पू० : अजातशत्रु का प्रसेनजित् से प्रथम युद्ध; लिच्छवि-युद्ध का प्रारम्भ
491 ई० पू० : बिम्बिसार की हत्या; अजातशत्रु का राज्याभिषेक
486 ई० पू० : महावीर की मुक्ति; अजातशत्रु का कोसल से दूसरा युद्ध
483 ई० पू० : बुद्ध का महापरिनिर्वाण
480 ई० पू० : वज्जिसंघ का पतन
459 ई० पू० : अजातशत्रु की मृत्यु

कोसल के साथ दो बार युद्ध

अपने पिता को बन्दी बनाने के बाद अजातशत्रु ने कोसल नरेश प्रसेनजित् से जो दो युद्ध लड़े उनका उल्लेख 'संयुत्त निकाय' के 'संगामसुत्तों' में मिलता है। प्रथम 'संगामसुत्त' के अनुसार मगध-कोसल संघर्ष में कोसल की पराजय हुई और दूसरे 'संगामसुत्त' में वर्णित युद्ध में मगध को पराजित होना पड़ा था। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम युद्ध अजातशत्रु द्वारा बिम्बिसार के बन्दीकरण के परिणामस्वरूप हुआ था और दूसरा बिम्बिसार की हत्या के कारण। बिम्बिसार की हत्या के बाद प्रसेनजित् की बहिन कोसलादेवी की पति वियोग के दुःख से मृत्यु हो गई। इस पर प्रसेनजित् ने दुखित होकर काशी के उस ग्राम की आय, जो कोसलादेवी को 'नहानचुन्न' मूल्य रूप में दी गई थी, मगध भेजनी बन्द कर दी। इस निर्णय को अजातशत्रु ने अपना अपमान समझा जिसके परिणामस्वरूप लड़े गए इस युद्ध में प्रसेनजित् विजयी हुआ। स्मरणीय है कि प्रसेनजित् ने काशी के ग्राम की आय कोसलादेवी की मृत्यूपरान्त मगध भेजनी बन्द की थी और कोसला देवी की मृत्यु 491 ई० पू० में बिम्बिसार की मृत्यु हो जाने के बाद हुई, इसलिए इस ग्राम की आय का प्रश्न बिम्बिसार के बन्दीकरण के बाद लड़ गये प्रथम युद्ध का कारण नहीं हो सकता था।

'भद्दसाल जातक' के अनुसार अजातशत्रु के हाथों परास्त होने के बाद प्रसेनजित् ने

1. डि० पा० प्रो० ने०, 1, पृ० 33-4 (सुमंगलविलासिनी)।
2. तु० पृथ्वीराज एवं अकबर का अत्यल्पायु में अभिषेक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपने माली के घर शरण ली और उस समय उसकी पुत्री मल्लिका का प्रेम पाकर उसके साथ विवाह किया। 'तच्छसूकर' व 'वड्ढकीसूकर' जातकों के अनुसार उसने अपनी पराजय के बाद बौद्ध संघ के भिक्षुओं से सलाह लेने के लिए अपने दूत भेजे। उन दूतों ने जेतवन में मन्तिदत्त और धनुग्गतिस्स नामक दो भिक्षुओं के, जो पहिले राजपदाधिकारी रह चुके थे, वार्तालाप को छिपकर सुना जिसमें शकटव्यूह बनाने से सम्बन्धित उस योजना की चर्चा थी जिसपर चलकर प्रसेनजित् अजातशत्रु को हरा सकता था। अन्ततोगत्वा प्रसेनजित् ने उस योजना पर अमल करके अजातशत्रु को पकड़ लिया। 'संयुत्तनिकाय' के दूसरे 'संगामसुत्त' में इसी दूसरे युद्ध का वर्णन है। इसके अनुसार प्रसेनजित् ने अजातशत्रु को बन्दी बना लिया और उसकी सेना को अपने अधीन कर लिया परन्तु अन्त में यह सोचकर कि अजातशत्रु उसका 'भाञ्जा' है उसे छोड़ दिया और उसके साथ अपनी पुत्री वजिरा का विवाह करके काशी के ग्राम की विवादग्रस्त आय वजिरा को 'ऱ्नानचुन्न' मूल्य रूप में दे दी।[1] स्मरणीय है कि इस समय भी अजातशत्रु को उस ग्राम की आय मात्र मिली थी, स्वयं वह ग्राम या काशी प्रदेश नहीं।

अजातशत्रु और वजिरा के विवाह से मगध और कोसल के सम्बन्ध ठीक हो गये। 'मज्झिमनिकाय' में चर्चा आई है कि एक बार अजातशत्रु ने प्रसेनजित् को बहुमूल्य विदेशी वस्त्र भेंट में दिया था।[2] इसे प्रसेनजित् ने बुद्ध के शिष्य आनन्द को दे दिया। यह घटना दोनों राजाओं के बीच मधुर सम्बन्धों का संकेत है जो बिम्बिसार के बन्दीकरण व मृत्यु के कारण उत्पन्न होने वाली कटुता के दूर हो जाने के बाद ही सम्भव थे। विडूडभ के विद्रोह कर देने के बाद प्रसेनजित् भागकर अजातशत्रु के पास शरण लेने गया था। अगर उसका अजातशत्रु से शत्रुभाव होता तो वह ऐसा नहीं करता।

वज्जिसंघ व मल्लों का उन्मूलन

अजातशत्रु का कोसल-युद्ध सम्भवतः उसके वज्जि व मल्ल जातियों के विरुद्ध लड़े गए युद्ध से सम्बन्धित था। जैसाकि पिछले अध्याय में दिखाया जा चुका है, मागध नरेशों के लिए यह सर्वथा स्वाभाविक था कि वे गंगा की सम्पूर्ण उपत्यका को अपने अधिकार में करने का प्रयास करते—जैसाकि बाद में समुद्रगुप्त ने किया था। बिम्बिसार ने अंग विजय द्वारा चम्पा के महत्त्वपूर्ण सरित् बन्दरगाह पर अधिकार कर ही लिया था। अजातशत्रु ने अपना ध्यान अपने उत्तरी पड़ोसियों—वज्जि संघ व उसके सहायकों—की ओर लगाया क्योंकि इससे गंगा के दोनों तटों पर उसका अधिकार हो जाता।[3] इस प्रसंग में यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि कम से कम इस संघर्ष की कथा के बौद्ध संस्करण में अजातशत्रु का वज्जियों से झगड़ा गंगा के तट पर स्थित एक बन्दरगाह से ही प्रारम्भ होता है। 'दीघनिकाय' के 'महापरिनिब्बानसुत्त' तथा उसके ऊपर बुद्धघोष द्वारा लिखित

1. संयुत्त, 1, 84-6; जातक, 4. 342, धम्मपद अट्ठकथा, 3. 259
2. डि० पा० प्रो० ने०, 1, पृ० 31 अ०।
3. वैशम, स्टडीज इन इण्डियन हिस्टरी एण्ड कल्चर, पृ० 76।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टीका 'सुमंगलविलासिनी' के अनुसार गंगा के तट पर स्थित एक बन्दरगाह आधा लिच्छवियों के अधिकार में था और आधा अजातशत्रु के। इसके समीप पर्वत की तलहटी में 'गन्धभाण्ड' (कोई सुगन्धित द्रव्य) या किसी बहुमूल्य रत्न[1] की खान मिली। इस पदार्थ की बहुत मांग थी। अजातशत्रु व लिच्छवियों ने इसे परस्पर बांट लेने का समझौता किया। लेकिन जब अजातशत्रु अपना भाग लेने पहुंचा तो उसने पाया कि लोभी लिच्छवि सारा माल ले जा चुके हैं। अगले वर्ष भी ऐसा ही हुआ। इससे अजातशत्रु बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने निश्चय किया कि वह वज्जियों का पूर्ण विनाश कर देगा। पालि ग्रन्थों से यह भी ज्ञात होता है कि लिच्छवि लोग पाटलिगाम के निवासियों को बराबर परेशान करते रहते थे। एक बार तो उन्होंने वहां के निवासियों को उनके घरों से निकाल कर वहां डेढ़ माह तक अपना अधिकार बनाए रखा था।[2]

जैन ग्रन्थ 'निरयावलिका सूत्र' या 'निरयावली सूत्र' में इस युद्ध का भिन्न कारण बताया गया है। इसके अनुसार बिम्बिसार ने अजातशत्रु के सगे भाई हल्ल और वेहल्ल को सेयणग (सेचनक) नाम का राजहस्ती तथा 18 लड़ियों वाला एक कण्ठा दिया था। जब अजातशत्रु राजा बना तो उसकी रानी पउमावई (पद्मावती)[3] ने, जो उक्त हाथी व माला की अभिलाषिणी थी, अजातशत्रु को उकसाया कि वह हल्ल वेहल्ल से उन्हें छीन ले। इस पर हल्ल वेहल्ल अपने नाना चेडग (चेटक) के पास वैशाली भाग गये। अजातशत्रु ने चेटक से मांग की कि वह भगोड़े राजकुमारों, हाथी व माला को लौटा दे। चेटक के इन्कार कर देने पर उसने वैशाली पर आक्रमण कर दिया (न ददासि तदा युद्ध सज्जो भवामीति)।[4]

ऐसा प्रतीत होता है कि वज्जिसंघ के साथ अजातशत्रु के संघर्ष का मूल कारण उसकी साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा तथा गंगा की मध्यवर्ती उपत्यका के दोनों तटों को नियन्त्रित करने की इच्छा थी तो उसका तात्कालिक कारण उनके सीमान्त झगड़ों (जिनकी झलक बौद्ध ग्रन्थों में मिलती है) तथा मगध राजपरिवार की आन्तरिक दलबन्दी (जिसका संकेत जैन ग्रन्थों में है) को माना जा सकता है। बिम्बिसार के द्वारा अनेक विवाह किए जाने से जहां मगध के राजनीतिक प्रभाव में वृद्धि हुई वहां उनके परिणामस्वरूप मागध राजपरिवार में विभिन्न रानियों के पितृकुलों के हितों के टकराव से राजनीतिक वैमनस्य का वातावरण भी बना। वज्जिसंघ के साथ युद्ध में इसकी झलक स्पष्ट है।

किन्तु अजातशत्रु के लिए लिच्छवियों को जीतना सरल कार्य नहीं था। जैन ग्रन्थों के अनुसार लिच्छवि अकेले नहीं थे। तत्कालीन युग के नौ लिच्छवियों के साथ नौ मल्लकियों तथा कासी-कोसल के 18 गणराजाओं ने (अर्थात् कुल मिलाकर 36 गणराजाओं

1. मुक्र्जी, ए० इ० यू०, पृ० 28; बैशम, पूर्वो०, पृ० 72।
2. बुद्धचर्या, पृ० 491, टि० 1।
3. क्योंकि पद्मावती नाम अनेकत्र आता है (बिम्बिसार की रानी, अजातशत्रु की रानी व दर्शक की बहिन) इस लिए रायचौधुरी ने इसे एक विशेषण या उपाधि माना है, नाम नहीं।
4. पो० हि० ए० इ०, पृ० 211; हर्नले, उवासगदसाओ, 2; परिशिष्ट पर्वण, पृ० 60।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ने) मिलकर अजातशत्रु का सामना किया (वज्जी विदेहपुत्ते जइत्था, नव मल्लह, नव-लेच्छइ, कासी कोसलगा अट्ठारसवी गणरायाणो पराजइत्था)।[1] 'निरयावली सूत्र' के अनुसार वज्जि संघ के अध्यक्ष चेटक ने इस संघ के सदस्यों को बुलाकर पूछा कि अजात-शत्रु की मांग मानी जाय या युद्ध किया जाय। निर्णय युद्ध करने के पक्ष में रहा।

लिच्छवियों के साथी गणराज्यों में काशी-कोसल के 18 गणराज्यों की गणना समस्या-मूलक है। रायचौधुरी के अनुसार इस युद्ध में काशी-कोसल के राजाओं ने वैशाली का साथ दिया था। कोसल एवं वैशाली के मधुर सम्बन्धों का संकेत 'मज्झिम निकाय' में उपलब्ध है।[2] उनके विचार से काशी, कोसल, व मल्ल आदि गणराज्यों ने मिलकर मगध का वैसे ही विरोध किया था जैसे सेम्नाइटों, एट्रूस्कनों तथा गॉलों ने रोम का किया था।[3] ए० एल० वैशम को यह व्याख्या सही नहीं लगती। उनका कहना है कि विडूडभ के द्वारा शाक्यों के विनाश से क्रुद्ध होकर काशी-कोसल के गणराज्य वैशाली के लिच्छवियों से मिल गये होंगे। परन्तु विडूडभ ने शाक्यों का विनाश 483 ई० पू० में प्रसेनजित् की मृत्यु के उपरान्त किया और इस तिथि के बाद तीन वर्ष के अन्दर ही वज्जि संघ का पतन हो चुका था। इसलिए विडूडभ के द्वारा शाक्यों के विनाशोपरान्त काशी-कोसल के गणराज्यों को वज्जिसंघ से मिलने का समय ही नहीं बचता।

प्रस्तुत अध्याय के लेखक ने मगध-कोसल युद्धों के विषय में जो सुझाव रखा है उससे रायचौधुरी के मत का समर्थन होता है। इस सुझावानुसार मगध-कोसल युद्ध लगभग 503 ई० पू० से लेकर 486 ई० पू० के बीच में लड़े गए थे और मगध-वज्जि युद्ध लगभग 503 ई० पू० से लेकर 480 ई० पू० के बीच में। इस प्रकार ये युद्ध लगभग समकालीन थे और इसलिए दोनों परस्पर सम्बन्धित हो सकते हैं।

जिस समय वज्जि-मगध युद्ध प्रारम्भ हुआ, वज्जिसंघ बहुत शक्तिशाली था। वज्जियों में एकता थी और वे अपनी शक्ति व समृद्धि की पराकाष्ठा पर थे। इसके अतिरिक्त उनका नेता चेटक विवाह सम्बन्धों द्वारा असामान्य राजनीतिक प्रभाव से युक्त था (दे०, अध्याय 6)। इसलिए उनके विरुद्ध युद्ध छेड़ने के पूर्व अजातशत्रु ने बुद्ध की इस विषय में सम्मति जान लेना आवश्यक समझा। लेकिन देवराज चनान के अनुसार इस संघर्ष में बुद्ध का दृष्टिकोण निष्पक्ष नहीं था।[4] उनके अनुसार इस युद्ध में अजातशत्रु की विजय प्रधानतः बुद्ध की सलाह पर चलने के कारण ही हुई थी। 'महा-परिनिब्बानसुत्तन्त' के अनुसार एक बार जब बुद्ध राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर ठहरे हुए थे वैदेहीपुत्र अजातशत्रु ने, जो वज्जियों का उन्मूलन करने के लिए कृत-संकल्प

1. भगवती सूत्र, हिन्दू सभ्यता, पृ० 185 पर उद्धृत।
2. मज्झिम नि०, 2, पृ० 101।
3. पो० हि० ए० इ०, पृ० 213; बी० ए० बरुआ (आई० सी०, 2, पृ० 810) के अनुसार यहां काशी-कोसल के 'गणराज्यों' का उल्लेख इसलिए हुआ है क्योंकि उस समय कोसल राज्य लिच्छवियों के अधीन था। यह मत सम्पूर्ण बौद्ध साक्ष्य के विरुद्ध है।
4. चनान, डी० आर, जे० बी० आर० एस०, बुद्ध जयन्ती विशेषांक, 2, पृ० 363-371।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था ।[1] अपने महामात्य ब्राह्मण वस्सकार (वर्षकार) से कहा कि वह बुद्ध से जाकर कहे कि अजातशत्रु ने वज्जियों के उन्मूलन का निश्चय किया है। बुद्ध ने वस्सकार से यह सूचना मिलने पर आनन्द को सम्बोधित करते हुए उत्तर दिया कि जब तक वज्जि लोग सात बातों को पूरा करते रहेंगे वे अजेय रहेंगे। ये बातें निम्नलिखित थीं : संघ द्वारा नियत समय पर पूर्णोपस्थितियुक्त अधिवेशन, मन्त्र और नीति विषयक एकता, प्राचीन परम्पराओं तथा संस्थाओं का यथावत् पालन, वृद्धों का मान, चैत्य पूजा का यथाशक्ति पालन, अर्हतों का सम्मान तथा स्त्रियों का सम्मान (दे० अध्याय 6)। वस्सकार के मुख से बुद्ध का यह मत जानकर अजातशत्रु ने निष्कर्ष निकाला कि वज्जि संघ को परास्त करने के लिए उसकी एकता भंग करना आवश्यक है। ऐसा ही उसने किया भी। इससे चनान ने निष्कर्ष निकाला है कि अजातशत्रु की विजय बुद्ध की सलाह का प्रत्यक्ष परिणाम थी। उनके अनुसार बुद्ध के मन में अजातशत्रु के प्रति पक्षपात था इसलिए उन्होंने न तो वज्जियों को अजातशत्रु के आसन्न आक्रमण की चेतावनी दी और न अजातशत्रु को उसके निश्चिय से हटाने का प्रयास किया। उनका कहना है कि 'आध्यात्मिक सम्राट्' बुद्ध अपना अन्तिम संस्कार 'चक्रवर्ती सम्राट्' के अन्तिम संस्कार की भांति कराना चाहते थे, अतः उनके मन में अजातशत्रु के प्रति कुछ पक्षपात था। चनान का यह कथन सही नहीं है क्योंकि सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य में बुद्ध के मुख से लिच्छवियों की प्रशंसा अनेकत्र मिलती है। उदाहरणार्थ जब लिच्छवि लोग उन्हें भोजन के लिए निमन्त्रित करने गए थे तब उन्हें दूर से ही देखकर बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा था, 'भिक्षुओ ! अवलोकन करो लिच्छवियों की इस परिषद् को। भिक्षुओ ! लिच्छवि परिषद् त्रायस्त्रिंश देव-परिषद् के समान जान पड़ती है'।[2] अजातशत्रु के लिच्छवि युद्ध के दौरान उन्होंने कहा था : 'भिक्षुओ ! लिच्छवि लकड़ी के बने तख्त पर सोते हैं, अप्रमत्त हो उत्साह के साथ अपने कर्त्तव्य पूरे करते हैं। मगधराज वैदेहिपुत्र अजातशत्रु उनके विरुद्ध कोई दांव-पेच नहीं पा रहा है।"[3] लेकिन वह यह भी जानते थे कि लिच्छवि लोग धीरे-धीरे विलासप्रिय होते जा रहे हैं, इसलिए उन्होंने आशंका प्रकट की 'भिक्षुओ ! भविष्य में लिच्छवि लोग बड़े सुकुमार और कोमल हाथ पैर वाले हो जाएंगे। वे गद्देदार बिछावन पर गुलगुले तकिये लगाकर दिन चढ़े तक सोये रहेंगे। तब मगधराज वैदेहिपुत्र अजातशत्रु को उनके विरुद्ध दांवपेंच मिल जाएगा।"[4] बुद्ध लिच्छवियों से इतने अधिक प्रभावित थे कि उन्होंने बौद्ध संघ के नियम ही वज्जि संघ का अनुकरण करते हुए बनाए थे। उन्होंने वस्सकार से लिच्छवियों के विषय में जो कुछ भी कहा था उसमें उनकी प्रशंसा ही थी। अजातशत्रु ने उनके कथन से अपने हितार्थ कोई अन्य अर्थ निकाल लिया तो

1. 'वज्जि चाहे जितने बड़े और सशक्त हों मैं उनको उखाड़ डालूंगा, मिटा डालूंगा, धूलिसात कर डालूंगा' (महापरिनिब्बान सुत्त)।
2. महापरिनिब्बानसुत्त (दी० नि०, 2.3)।
3. संयुत्त निकाय, हिन्दी अनुवाद, 1, पृ० 308।
4. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह उसकी बुद्धिमत्ता थी। अगर बुद्ध के इस कथन से अजातशत्रु को मदद मिली तो इससे वज्जि लोग भी यह संकेत पा सकते थे कि सफलता पाने के लिए उन्हें क्या करना चाहिए। अगर इस प्रकार किसी की प्रशंसा करना प्रशंसित व्यक्ति या संस्था के प्रति द्वेष भाव होता है तो बुराई करना सदैव अच्छा समझा जाना चाहिए और प्रशंसा करना बुरा।

अजातशत्रु ने बुद्ध का मत जानने के बाद वज्जियों के विनाश के लिए कई प्रकार से तैयारी की। एक, उसने अपने मन्त्री वस्सकार से झगड़ा हो जाने का दिखावा किया। वस्सकार ने भागकर वैशाली में 'शरण' ली। वहां वज्जियों ने उसे एक उच्च पद दिया जिसका लाभ उठाकर उसने तीन वर्ष के अन्दर ही उनमें अपनी कूटनीति (उपलापन)द्वारा विलासिता और आपसी झगड़ों (मिथुभेद) के बीज बो दिए।[1] परिणामस्वरूप जब मगध वैशाली युद्ध हुआ तो वे आपस में ही बहस करने लगे कि कौन आगे बढ़कर लड़े। उनमें जो दब्बू थे वे बोले : 'जो लिच्छवि तगड़े हों वे आगे बढ़कर शत्रुओं से लोहा लें।' दूसरे, अजातशत्रु ने देखा कि लिच्छवियों से लड़ने के लिए राजगृह दूर पड़ता था और गंगा से दक्षिण की ओर काफी हटकर था। इसलिए उसने गंगा के किनारे पाटलिगाम में एक नवीन दुर्ग का निर्माण कराया। यही कालान्तर में पाटलिपुत्र नामक नगर के रूप में परिणत हुआ। दुर्ग निर्माण का कार्य उसके महामन्त्री वस्सकार व सेनापति सुनीथ (सुनीध या सुनीढ़) की देखरेख में किया गया। एक दिन भगवान् बुद्ध ने उनका निमन्त्रण पाकर पाटिलगाम में भोजन किया। जिस द्वार से वह निकले उसका नाम गौतम द्वार रखा गया और जिस घाट से उन्होंने गंगा पार की उसका गौतम तीर्थ। इस अवसर पर बुद्ध ने भविष्यवाणी की थी कि वह नगर भारत का प्रमुख नगर व वाणिज्य केन्द्र बनेगा।[2] तीसरे, जैन ग्रन्थ 'भगवती सूत्र' के अनुसार अजातशत्रु ने इस युद्ध में नए प्रकार के युद्ध यन्त्रों से काम लिया। इनमें एक था 'महाशिलाकण्टक' जो एक प्रकार का विशाल अपक्षेपी (गोफन या गुलेल) था जिससे पत्थर के बड़े बड़े ढोके शत्रु पर फेंके जाते थे। दूसरा था 'रहमुषल' (रथमूसल) जिसमें बड़े-बड़े मूसल जड़े हुए थे। यह इधर-उधर चक्कर खाकर मूसलों से शत्रु का विनाश करता था।[3]

लेकिन इतनी तैयारियों के बावजूद यह युद्ध लम्बे समय तक चला। 'निरयावली सूत्र'

1. सुमंगलविलासिनी, 2, पृ० 522।
2. दीघनिकाय, 2, पृ० 72 अ०।
3. 'रहमुषल' को बिना घोड़े या सारथी से चलने वाला कहा गया है। यह इसका अतिरंजित वर्णन भी हो सकता है, यद्यपि यह भी सम्भव है कि इसमें अन्दर बैठा कोई व्यक्ति पहियों को चलाता हो। इसकी तुलना आजकल के टैंकों से की जा सकती है। बैशम (स्टडीज इन इण्डियन हिस्टरी एण्ड कल्चर, पृ० 78) ने 'महाशिलाकण्टक' का अस्तित्व सन्दिग्ध माना है क्योंकि ऐसे यन्त्रों का अस्तित्व पश्चिमी एशिया में भी सिकन्दर के काल तक चर्चित नहीं मिलता, 'ओल्ड टेस्टामेण्ट' के एक संदिग्ध स्थल को छोड़कर जो सिडनी स्मिथ के अनुसार उस ग्रन्थ में बाद में जोड़ा गया था। क्योंकि ऐसे यन्त्रों की चर्चा स्वयं भारतीय साहित्य में भी काफी बाद तक नहीं मिलती, इसलिए बैशम इसका अजातशत्रु-युगीन भारत में अस्तित्व न मानना अधिक उचित समझते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अनुसार इसमें अजातशत्रु के कई भाई मारे गए। 'भगवतीसूत्र' के अनुसार इस युद्ध में दो बड़े संग्राम लड़े गए। पहिले में प्रथम दस दिन तक मागध सेना का एक-एक सेनापति चेटक के हाथों मारा जाता रहा। ग्यारहवें दिन इन्द्र द्वारा प्रदत्त 'महाशिलाकण्टक' के कारण अजातशत्रु की विजय हुई। दूसरे संग्राम में भी यही हालत रही—इस बार मागधों को विजय मिली रहमुषल के कारण। इस कथा को और आगे बढ़ाया है जिनदासगणि ने 'आवश्यकसूत्र' की 'चूर्णि' में। इसके अनुसार पराजय के उपरान्त 36 गण राजाओं का संघ टूट गया और वे अपने-अपने नगर लौट गए। अकेला चेटक वैशाली में बारह वर्ष तक युद्ध लड़ता रहा। वैशाली में लिच्छवियों को कूलपालक नामक सन्त ने अपने तप के प्रभाव से अजेय बना रखा था। परन्तु अजातशत्रु ने एक सुन्दरी वेश्या की सहायता से उसका तप भंग करवा दिया और नगर का पतन हो गया। चेटक ने एक कुए में डूबकर अपनी जान दे दी और बचे-खुचे लिच्छवि नेपाल भाग गए।[1] बौद्ध ग्रन्थों में युद्ध का इतना विस्तृत विवरण नहीं मिलता परन्तु स्मरणीय है इनमें भी लिच्छवियों की शक्ति की प्रशंसा है। जब वस्सकार बुद्ध से मिला था अजातशत्रु को अपनी विजय में पूर्ण विश्वास नहीं था। पाटलिग्राम का दुर्ग भी उसने रक्षा के हेतु बनवाया था, आक्रमण के हेतु नहीं। एक स्थल पर स्वयं अजातशत्रु के मुख से लिच्छवियों को 'वे चाहे जितने बड़े और सशक्त हों' कहलाकर उनकी सबलता स्वीकार की गई है।

जैसाकि पीछे कहा जा चुका है आजीविक आचार्य मंखलिपुत्त गोसाल की मृत्यु महावीर की मुक्ति (486 ई० पू०) के सोलह वर्ष पूर्व हुई थी अर्थात् 502 ई० पू० में और उस समय वज्जि-मगध संघर्ष प्रारम्भ हो चुका था। जैन 'कल्पसूत्र' के अनुसार महावीर की मुक्ति के समय 36 गणराजाओं का संघ यथावत् बना हुआ था क्योंकि उन्होंने 'महान् ज्योति भगवान् महावीर की मुक्ति के अवसर पर सार्वजनिक प्रकाश पर्व' आयोजित किया था। बुद्धघोष के अनुसार लड़ाई बुद्ध के परिनिर्वाण (483 ई०पू०) के तीन वर्ष बाद तक जारी रही थी अर्थात् 480 ई० पू० तक। इसलिए यह युद्ध कम से कम 22 वर्ष चला होगा।

वज्जिसंघ के पतन से अजातशत्रु के राज्य में वज्जि संघ, मल गणराज्य व अन्य लघु गणराज्य सम्मिलित हो गए। बिम्बिसार के राज्य में 300 योजन भूमि थी, अजातशत्रु की विजयों से इसका विस्तार 500 योजन हो गया।[2] 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' के अनुसार भी उसके राज्य में मगध के अतिरिक्त अंग, वाराणसी[3] तथा वैशाली सम्मिलित थे।[4]

अजातशत्रु के शासन की राजनीतिक महत्त्व की कोई और घटना ज्ञात नहीं है।

1. बैशम, पूर्वो०, पृ० 74।
2. विनय, 1.179; सुमंगलविलासिनी, 1. 148।
3. अजातशत्रु के राज्य में अगर वाराणसी सम्मिलित था तो उसने उसे विडूडभ के काल में या उसके बाद जीता होगा।
4. आ० म० मू० क०, गणपति शास्त्री का संस्करण, पृ० 603।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

केवल इतना मालूम है कि उसने अवन्ति-नरेश प्रद्योत के आक्रमण की आशंका से राजगृह को प्राचीर या दुर्ग से सुरक्षित करवाया था।[1] इसका अर्थ है कि इस बीच में किसी समय अवन्ति ने वत्स को जीत लिया था क्योंकि वत्स को जीते बिना अवन्ति नरेश राजगृह पर आक्रमण नहीं कर सकता था।

अजातशत्रु का धर्म और धार्मिक नीति

अजातशत्रु को बौद्ध और जैन, दोनों धर्म अपना-अपना अनुयायी बताते हैं। सम्भवतः वह प्रारम्भ में जैन था और बुद्ध से द्वेष रखता था। जैन साहित्य न केवल उसकी प्रशंसा से परिपूर्ण है वरन् इसमें उसे पितृहत्या के अपराध से मुक्त करने का प्रयास भी किया गया है (दे०, पृ० 98)। कहा गया है कि वह अपनी रानियों और बहुसंख्यक परिजनों के साथ निगण्ठ नातपुत्त से प्रायः मिलने आता था। वैशाली व चम्पा में वह महावीर के सम्पर्क में आया था। उस समय उसने जैन संघ के प्रति बड़ा आदर भाव प्रकट किया था। स्मरणीय है कि उसकी मां चेल्लना महावीर की ममेरी बहिन थी, इसलिए महावीर रिश्ते में अजातशत्रु के मामा होते थे। 'औपपातिक सूत्र' में वह महावीर व उनके शिष्यों के समक्ष स्पष्टतः कहता है कि भगवान् (महावीर) ने सत्य का उपदेश दिया है व त्याग व अहिंसा के संदेश से धर्म का मार्ग आलोकित किया है। बौद्ध ग्रन्थों में उसका बुद्ध के प्रति द्वेष-भाव भी स्पष्टतः उल्लिखित है। विनय के साक्ष्यानुसार जब देवदत्त ने कुमार अजातशत्रु से बुद्ध के प्राणों का हनन करने में सहायता मांगी तो अजातशत्रु ने अपने पुरुषों को आज्ञा दी कि 'अर्हत् देवदत्त जैसा कहें वैसा करो।' उसने देवदत्त के लिए गयासीस पर्वत पर एक विहार भी बनवाया था। बुद्ध ने भी अजातशत्रु के प्रति अपने विचार को इन शब्दों में प्रकट किया था : 'भिक्षुओ ! मगधराज अजातशत्रु जो भी पापी हैं उनके मित्र हैं, उनसे प्रेम करते हैं और उनसे संसर्ग रखते हैं।'

लेकिन धीरे-धीरे अजातशत्रु के मन में भगवान् बुद्ध के प्रति श्रद्धा का उदय हुआ—विशेषतः देवदत्त की मृत्यु के उपरान्त। 'सामञ्ञफलसुत्त' में कहा गया है कि पितृघात के कारण अजातशत्रु की मानसिक शांति नष्ट हो गई थी और वह अत्यन्त व्याकुल रहने लगा था। तब वह बौद्धेतर मतों के छः बड़े आचार्यों से मिला। इनमें महावीर के अतिरिक्त पूरण कस्सप, मंखलि गोसाल, अजित केसकम्बलि, ककुध कच्चायन तथा संजय वेलट्ठपुत्त सम्मिलित थे। परन्तु उसे किसी के भी उपदेश से शान्ति नहीं मिली। तब वह एक बार कार्तिक की पूर्णिमा को जीवक के साथ राजगृह में स्थित आम्रवन में गया। उपस्थित संघ के पूर्ण मौन से उसे धोखे का सन्देह हुआ। उसने जीवक से पूछा : "जीवक कहीं मेरे साथ धोखा तो नहीं कर रहे हो ? कहीं तुम मुझे शत्रुओं के बीच तो नहीं ले आए हो ? 1250 भिक्षुओं की सभा में कोई छींकता खांसता भी नहीं है, कैसे एकदम सन्नाटा छाया हुआ है ?" जीवक के आश्वासन देने पर वह सरोवर की

1. मज्झिम निकाय, 3.7।

तरह शान्त भिक्षु संघ के पास आया और बोला : "क्या ही अच्छा होता यदि मेरा पुत्र उदायिभट्ट ऐसा ही शान्त होता जैसा यह भिक्षु संघ है।" इस अवसर पर बुद्ध से उसकी भेंट का दृश्य द्वितीय शती ई० पू० के एक भरहुत शिलापट्ट पर अंकित है जिससे इस अनुश्रुति की लोकप्रियता प्रमाणित होती है। मूर्ति पर लेख है 'अजातसत्तु भगवतो वन्दते।' यह 'महापरिनिब्वानसुत्त' के इस वाक्य से मिलता है : "मागधो अजातसत्तु वैदेहिपुत्तो भगवतो पादे सिरसा वंदति।' इस शिलापट्ट से ये दृश्य बने हैं : (अ) राजा हाथी पर आरूढ़ है। उसके पीछे दो रानियां भी हाथी पर बैठी हैं। (आ) वह हाथी से उतरकर कुछ कहने की मुद्रा में बुद्ध के स्थान के पास खड़ा है। (इ) वह बुद्ध के आसन के पास, जिस पर बुद्ध की पादुकाएं अंकित हैं, अंजलिबद्ध मुद्रा में रानियों सहित प्रणाम कर रहा है।

बुद्ध के साथ हुई इस भेंट ने अजातशत्रु के जीवन में गम्भीर परिवर्तन किया। इसके बाद हम उसे बुद्ध के परिनिर्वाण का समाचार सुनकर कुशिनारा जाते हुए देखते हैं। उसने बुद्ध की धातुओं का एक अंश भी मांगा : "भगवान् भी क्षत्रिय थे। मैं भी क्षत्रिय हूं। मुझे भी भगवान् की धातुओं का एक अंश मिलना चाहिए (भगवापि खत्तियो अहम्पि खत्तियो। अहम्पि अरहामि भगवतो सरीरानं भागं)।" 'मैं भगवान् के अस्थि अवशेष पर एक स्तूप बनाऊंगा और ब्रह्मभोज करूंगा।'[1] सुमंगलविलासिनी' के अनुसार महाकस्सप ने, जो बुद्ध की धातुओं का बंटवारा कर रहे थे, अवशेषों का मुख्य भाग अजातशत्रु को दिया और शेष को बाकी दावेदारों में विभाजित कर दिया। अजातशत्रु ने धातु अंश प्राप्त करके उन पर एक स्तूप बनवाया। 'महावंस' के अनुसार उसने अपनी राजधानी के चारों ओर धातु चैत्य बनवाए व उन अट्ठारह महाविहारों की मरम्मत करवाई जिनको बुद्ध निर्वाण के बाद भिक्षु छोड़कर चले गए थे।

अजातशत्रु का नाम बौद्ध धर्म के इतिहास में प्रथम संगीति के कारण भी प्रसिद्ध है। बुद्ध के परिनिर्वाण के उपरान्त उनके उपदेशों को व्यवस्थित करने एवं उनकी संगायना के हेतु एक संगीति अजातशत्रु के तत्त्वाधान में राजगृह में आयोजित की गई जिसमें 500 प्रतिष्ठित भिक्षुओं व स्थविरों ने भाग लिया। ये देश के विभिन्न भागों से चलकर राजगृह आए क्योंकि यहां भिक्षुओं के लिए आवश्यक चारों वस्तुएं—वस्त्र, भिक्षा, आवास स्थान तथा औषधियां—सुविधा से उपलब्ध थीं। अजातशत्रु ने संगीति की सफलता के लिए पूरा सहयोग दिया। उसने वैभार पर्वत पर सत्तपण्णि (सप्तपर्णि) गुहा के द्वार के सम्मुख एक विशाल मण्डप बनवाया। यह देवसभा के समान सुन्दर था। इसमें उसने भिक्षुओं की संख्यानुसार बहुमूल्य कालीन बिछवाए। संगीति के अध्यक्ष के लिए एक ऊंचा थेरासन और संगायना करने वाले भिक्षु के लिए कक्ष के मध्य एक धम्मासन भी बनवाए गए।[2]

1. महापरिनिब्वानसुत्त, दीघ, 2.3। 2. महावंस, 3; जायसवाल जैसे कुछ विद्वान् परखम व झींग का नगरा से प्राप्त मूर्तियों पर 'कुणिक' नाम पढ़ते हैं और उन्हें अजातशत्रु की मूर्तियां मानते हैं। लेकिन ये वास्तव में यक्ष मूर्तियां हैं। दे०, वा० श० अग्रवाल का जनरल ऑव यू० पी० हिस्टोरिकल सोसायटी के मई 1933 के अंक में 'प्री-कुषाण आर्ट ऑव मथुरा' शीर्षक लेख।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अजातशत्रु के शासन के अन्तिम वर्षों की घटनाएं अज्ञात हैं। केवल इतना निश्चित प्रतीत होता है कि उसकी मृत्यु 459 ई० पू० में उसके पुत्र उदायिभद् के हाथों हुई थी।

विम्बिसार और उसका पुत्र अजातशत्रु दोनों सम्भवतः परोक्षतः साखामनीषी सम्राटों की सफलताओं से प्रभावित हुए थे। यह बात केवल संयोग मात्र नहीं है कि जिस समय विम्बिसार का उदय हुआ कुरुष महान् पश्चिमी एशिया में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर रहा था। अजातशत्रु के द्वारा अपने पिता को बन्दी बनाकर सिंहासन को हस्तगत करने तक तो इस साम्राज्य में सिन्धु नदी के इस पार के कुछ प्रदेश भी सम्मिलित कर लिए थे। यद्यपि उस युग में मगध आदि पूर्वी प्रदेश गन्धार आदि पश्चिमोत्तरीय प्रदेशों की राजनीतिक गतिविधि से प्रत्यक्षतः प्रभावित नहीं होते थे परन्तु दोनों प्रदेशों का परस्पर घनिष्ठ सम्पर्क अवश्य ही था।[1] श्रीमन्त वर्ग के युवक —जैसे प्रसेनजित्, बन्धुल मल्ल, तथा महालि लिच्छवि—शिक्षा प्राप्त करने तक्षशिला जाते थे। एक अत्यन्त व्यस्त रहने वाला व्यापार-मार्ग भी मगध से गान्धार को जोड़े हुए था। स्वयं विम्बिसार के गन्धार-नरेश पुक्कसाति के साथ दौत्य सम्बन्ध थे और उसकी एक रानी खेमा मद्र देश (मध्य पंजाब) की राजकुमारी थी। इससे यह स्पष्ट है कि विम्बिसार और अजातशत्रु ईरानी सम्राटों की साम्राज्यिक गतिविधि से परिचित और प्रभावित हो सकते थे।

1. दे०, 'हर्षचरित' जिसमें शैशुनागी काकवर्णी के काल में यवनों द्वारा मगध में 'आकाशयान' बनाने की चर्चा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 10

अजातशत्रु के उत्तराधिकारी तथा शिशुनाग-वंश

अजातशत्रु के उत्तराधिकारी

अजातशत्रु के उत्तराधिकारियों के विषय में हमारे साक्ष्य में काफी मतभेद है। पुराणों में उसका उत्तराधिकारी दर्शक को बताया गया है। दर्शक नाम भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' नाटक में भी मिलता है जिसमें उदयन की रानी पद्मावती को इस नाम के मगध-नरेश की बहिन बताया गया है।[1] 'कथासरित्सागर' में भी यह परम्परा मिलती है, यद्यपि उसमें मगधराज का नाम नहीं दिया गया है। यह परम्परा सही नहीं हो सकती क्योंकि उदयन, जिसने बिम्बिसार के मित्र प्रद्योत की पुत्री से विवाह किया था, अजातशत्रु के पुत्र का दामाद नहीं हो सकता था। बौद्ध और जैन ग्रन्थों में उदायिभद्द को अजातशत्रु का पुत्र और उत्तराधिकारी बताया गया है। बौद्ध ग्रन्थ उसे वजिरा के गर्भ से उत्पन्न बताते हैं परन्तु यह स्पष्टतः असम्भव है क्योंकि अजातशत्रु ने वजिरा से विवाह द्वितीय कोसल युद्ध के (486 ई० पू०) उपरान्त किया था जबकि बुद्ध से उसकी प्रथम भेंट होने के समय, जो बिम्बिसार की हत्या (491 ई० पू०) के बाद कभी हुई, उदायिभद्द एक वयस्क राजकुमार था (दे०, पिछला अध्याय)। इसलिए हमारे विचार से जैन ग्रन्थ 'कथाकोश' तथा 'परिशिष्टपर्वण' का यह कथन सही होना चाहिए कि उदय या उदायी कूणिक की रानी पद्मावती का पुत्र था। गीगर व रायचौधुरी आदि विद्वान् पालि त्रिपिटक, सिंहली ग्रन्थों व जैन साहित्य को विश्वसनीय मानकर उदायी को ही अजातशत्रु का उत्तराधिकारी स्वीकार करते हैं। जहां तक दर्शक का सम्बन्ध है, डी० आर० भाण्डारकर ने उसे बिम्बिसार वंश के सिंहली ग्रन्थों में उल्लिखित अन्तिम नरेश नागदासक (दे०, आगे) से अभिन्न माना है, रायचौधुरी ने उदायीकालीन कोई माण्डलिक राजा तथा एस० एन० प्रधान ने अजातशत्रु के पूर्व शासन करने वाला उसका कोई अग्रज।

अपने राज्यारोहण के पूर्व उदायी चम्पा में अपने पिता का उपराजा था। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार उसने अजातशत्रु को मारकर राज्य प्राप्त किया था। लेकिन जैन ग्रन्थों के अनुसार वह अपने पिता का बड़ा भक्त था और सामन्तों द्वारा आग्रह किए जाने पर गद्दी पर बैठा था। पिता की मृत्यु हो जाने से वह बड़ा दुखित हुआ था। 'परिशिष्टपर्वण' के अनुसार उसने गंगा के तट पर एक नई राजधानी का निर्माण किया जो पाटलिपुत्र

1. महाराज दर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम।...
एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम—आदि —स्वप्नवासवदत्ता, 1

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नाम से विख्यात हुई। इसके बीच में (नगर नाभौ) उसने एक जैन चैत्यगृह बनवाया था। 'गार्गी संहिता' तथा 'वायु पुराण' के अनुसार भी उदायी ने अपने शासन के चौथे वर्ष में कुसुमपुर नगर का निर्माण किया था। यह स्थल विस्तृत मागध राज्य के मध्य एवं दो नदियों—गंगा तथा सोन—के संगम पर स्थित था। अतः यह राजगृह से अधिक सुविधाजनक राजनीतिक केन्द्र तो था ही, इसके साथ एक उच्च कोटि का व्यापार-केन्द्र भी हो सकता था।

उदायी के शासनकाल में मगध और अवन्ति का प्रत्यक्ष संघर्ष प्रारम्भ हुआ। 'परिशिष्टपर्वण' में अवन्ति नरेश का उदायी के शत्रु रूप में वर्णन है। जैसा कि पिछले अध्याय में कहा जा चुका है अजातशत्रु को अवन्ति-नरेश प्रद्योत के आक्रमण की आशंका से राजगृह को सुरक्षित कराने के लिए दुर्ग या प्राचीर बनवानी पड़ी थी। इससे लगता है कि इस बीच में अवन्ति ने वत्स को आत्मसात कर लिया था। जैन ग्रन्थों में प्रद्योत के पुत्र पालक द्वारा कौशाम्बी जीत लेने का स्पष्ट उल्लेख है। इनके अनुसार उदायी बड़ा निष्ठावान जैन था और अष्टमी और चतुर्दशी को उपवास रखता था (आवश्यकसूत्र)। ऐसे ही उपवास के एक दिन जब वह एक जैन आचार्य का उपदेश सुन रहा था, आचार्य के एक शिष्य ने उसे छुरे से मार डाला। 'आवश्यकसूत्र' के अनुसार उस शिष्य को अवन्ति-नरेश पालक ने उदायी को मारने के लिए ही भेजा था। वह किसी ऐसे राज्य का राजकुमार था जिस पर उदायी ने अधिकार कर लिया था और उसके पिता को मार डाला था। दुःखी राजकुमार ने पालक की शरण ली थी और उसके उत्साहित करने पर वेश बदल कर उदायी को मार डाला था। पालक प्रद्योत का पुत्र था और इस ग्रन्थ के अनुसार कौशाम्बी जीत लेने के कारण बड़ा शक्तिशाली हो गया था। लेकिन उदायी ने उसे कई बार युद्ध में परास्त किया था जिसका बदला उसने इस प्रकार लिया।

'परिशिष्टपर्वण' के अनुसार हत्या किए जाने के समय उदायी[1] को कोई सन्तान नहीं थी। पुराणों में उसके उत्तराधिकारी नन्दिवर्धन और महानन्दी बताए गए हैं। इन सबकी तुलना में सिंहली ग्रन्थ 'दीपवंस' व 'महावंस' का साक्ष्य अधिक सही प्रतीत होता है। इसके अनुसार उदायी (शासन काल 16 वर्ष) के उपरान्त क्रमशः अनुरुद्ध, मुण्ड (दोनों का सहशासन 8 वर्ष) व नागदासक (24 वर्ष) ने शासन किया। इस परम्परा का अंशतः समर्थन 'अंगुत्तर निकाय' से होता है जिसमें 'पाटलिपुत्र के राजा' मुण्ड का उल्लेख है। इस ग्रन्थ में कहा गया है कि जब मुण्ड की रानी भद्दा (भद्रा) का देहान्त हुआ तो वह बड़ा शोकाकुल हुआ और उसने उसके मृतक शरीर को एक लौह पात्र में तेल में डुबा कर रखवा दिया। उसने भद्दा का दाह-संस्कार तब तक नहीं होने दिया जब तक कुक्कुटाराम के विद्वान् थेर नारद ने उसे समझा-बुझाकर शान्त नहीं कर दिया। इस प्रसंग में उसके कोषाध्यक्ष पियक (प्रियक) का नाम भी आता है। 'अंगुत्तर निकाय' में पाटलिपुत्र का राजधानी रूप में उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि मुण्ड के राज्यारोहण के पूर्व राज-

1. कलकत्ते के राष्ट्रीय संग्रहालय में रखी गई पटना से प्राप्त एक मूर्ति को जायसवाल ने उदायी की मूर्ति माना था। परन्तु यह वास्तव में एक यक्ष मूर्ति है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गृह के स्थान पर पाटलिपुत्र को यह प्रतिष्ठा मिल चुकी थी। मुण्ड का उल्लेख 'दिव्यावदान' में भी हुआ है परन्तु यह ग्रन्थ अनुरुद्ध व नागदासक का उल्लेख नहीं करता।[1]

नागदासक की पहिचान बहुत से विद्वान् पुराणों के दर्शक से करते हैं (दे०, पीछे)। परन्तु यह असम्भव है।

सिंहली ग्रन्थों के अनुसार अजातशत्रु से लेकर नागदासक तक पांचों राजा पितृहन्ता थे। उनसे क्रोधित होकर पुष्पपुर (=पाटलिपुत्र) के नागरिकों ने उन्हें खदेड़ दिया और अमात्य शिशुनाग को राजा बनाया।

शैशुनाग वंश

मागध इतिहास में शैशुनाग वंश का स्थान कुछ विवादग्रस्त है। पुराणों में इस वंश को बार्हद्रथ वंश के उपरान्त स्थान दिया गया है और बुद्ध के समकालीन बिम्बिसार को शैशुनाग वंशोत्पन्न बताया गया है। इस प्रकार पौराणिक साक्ष्यानुसार शिशुनाग बिम्बिसार का पूर्वज था। इसके विपरीत 'महावंस' में सुसुनाग (=शिशुनाग) को एक पृथक् वंश का संस्थापक बताया गया है और तिथिक्रमिक दृष्टि से उसके वंश को बिम्बिसार के वंश के उपरान्त रखा गया है। इन दोनों परम्पराओं में स्मिथ जैसे कुछ विद्वान् प्रथम को सही मानते हैं,[2] परन्तु रायचौधुरी व मुकर्जी आदि ने दूसरी परम्परा को सही माना है[3] क्योंकि :—

(1) पुराणों में प्रदत्त मागध राजवंशों के इतिहास में कई अशुद्धियां हैं। इसमें बार्हद्रथ वंश के उपरान्त प्रद्योत वंश को और प्रद्योतों के उपरान्त शैशुनागों को (जिनमें बिम्बिसारीय नरेश भी सम्मिलित हैं) रखा गया है। परन्तु बौद्ध ग्रन्थों से प्रमाणित है प्रद्योत वंश ने मगध पर नहीं अवन्ति पर शासन किया था। कुछ विद्वानों ने कल्पना की है कि अवन्ति का प्रद्योत वंश मगध के प्रद्योत वंश से भिन्न था। परन्तु पुराणों में पुलिक द्वारा अपने पुत्र को राजा बनाने का उल्लेख करते समय अवन्ति की चर्चा की गई है। दूसरे, पुराणों में प्रद्योत को 'नयवर्जित' और पड़ोसी राजाओं को अपने अधीन करने वाला कहा गया है। यह वर्णन बौद्ध ग्रन्थों में अवन्ति-नरेश प्रद्योत को 'चण्ड' और 'महासेन' कहे जाने से तुलनीय है। तीसरे, बौद्ध ग्रन्थों में अवन्ति के प्रद्योत राजाओं के जो नाम मिलते हैं लगभग वही नाम पुराणों में उल्लिखित हैं। इसलिए पुराणों और बौद्ध ग्रन्थों में चर्चित प्रद्योत वंश एक ही होना चाहिए और उसे बौद्ध ग्रन्थों के अकाट्य साक्ष्यानुसार अवन्ति का शासक मानना चाहिए।

1. राजगृहे नगरे बिम्बिसारो राजा राज्यं कारयति। राज्ञो बिम्बिसारस्य अजातशत्रु पुत्रः। अजातशत्रोरुदायी। उदयिभद्रस्य मुण्डः॥ मुण्डस्य काकवर्णी॥
—दिव्यावदान, 26 (पृ० 369)।

2. स्मिथ, अ० हि० इ०, अध्याय 2।

3. रायचौधुरी, पो० हि० ए० इ०, पृ० 115 अ०; मुकर्जी, ए० इ० यू०, पृ० 18-9; भाण्डारकर, कार्मा० ले०, 1, पृ० 67 अ०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(2) बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार मगध-नरेश बिम्बिसार अवन्ति-नरेश चण्ड प्रद्योत महासेन का समकालीन था। बिम्बिसार ने प्रद्योत के पाण्डु रोग का इलाज करने के लिए अपने वैद्य जीवक को भेजा था। बौद्ध ग्रन्थों में अजातशत्रु को उसके आक्रमण से आशंकित दिखाया गया है। प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता का उदयन से विवाह प्राचीन साहित्य की बहुचर्चित कथा थी। इस साक्ष्य के प्रकाश में पुराणों के शिशुनाग को बिम्बिसार के उपरान्त रखना आवश्यक है क्योंकि स्वयं पुराणों के अनुसार शिशुनाग ने प्रद्योतों के गौरव का अन्त किया था। अतः शिशुनाग का समय प्रथम प्रद्योत और तदनुसार बिम्बिसार के उपरान्त पड़ेगा।

(3) पुराणों में कहा गया है कि शिशुनाग ने अपने पुत्र को वाराणसी का राजा बनाया था। अब, वाराणसी पर मगध-नरेशों का प्रभुत्व बिम्बिसार के समय प्रारम्भ हुआ जब कोसल की राजकुमारी महाकोसला का विवाह बिम्बिसार से हुआ और कोसलराज ने काशी के एक ग्राम की आय अपनी पुत्री को 'स्नानचुन्न' मूल्य के लिए दी। इसलिए शिशुनाग जिसके राज्य में वाराणसी सम्मिलित था बिम्बिसार के उपरान्त रखा जाना चाहिए। यही बात शिशुनाग के साम्राज्य में वैशाली नगर सम्मिलित होने के विषय में कही जा सकती है क्योंकि इस नगर को मागध साम्राज्य में अजातशत्रु ने मिलाया था।[1]

शिशुनाग (सुसुनाग) वैशाली के एक लिच्छवि राजा का एक नगरशोभिणी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र था जिसे एक राजपदाधिकारी ने पाला पोसा था (महावंसटीका)।[2] लगता है वह पहिले बनारस का गवर्नर था। एस० एन० प्रधान का यह सुझाव सही हो सकता है कि राजा बनने के पूर्व भी यथार्थ राजसत्ता उसी के हाथ में रही होगी और नागदासक को यह नाम शिशुनाग का दासवत् होने के कारण मिला होगा। किसी अमात्य के इस प्रकार गवर्नर होने की प्रथा प्राचीनकाल में प्रचलित थी। शक महाक्षत्रप रुद्रदामा का सुराष्ट्र स्थित गवर्नर अमात्य ही कहलाता था।[3] पुराणों के अनुसार शिशुनाग ने बनारस में अपने पुत्र को नियुक्त किया और स्वयं गिरिव्रज में रहने लगा।[4] इस प्रकार उसने मगध की राजधानी पाटलिपुत्र से हटाकर पुनः गिरिव्रज में स्थापित की। उसने अपनी दूसरी राजधानी वैशाली नगर को बनाया।[5] 'द्वात्रिंशतपुत्तलिका' के अनुसार तो वैशाली दूसरी राजधानी नन्द युग तक बनी रही।[6] वैशाली में उत्पन्न होने के कारण उसका उस नगर के प्रति मोह स्वाभाविक था।

1. पुराणों में कहा गया है कि प्रद्योत का अभिषेक वीतिहोत्रों के पतन के बाद हुआ और शिशुनाग ने प्रद्योतों का अन्त किया, लेकिन उसके उपरान्त इन ग्रन्थों में वीतिहोत्रों को शैशुनागों की समकालीन शक्तियों में भी गिनाया गया हैं (पार्जिटर, डा० क० ए०, पृ० 69)। यह स्पष्टतः विरोधाभास है और पुराणकारों के मन में उत्पन्न भ्रम का परिचायक है।
2. टर्नर, महावंस, पृ० 39।
3. सरकार, सलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० 180।
4. वाराणस्यां सुतं स्थाप्य श्रयिष्यति गिरिव्रजम्। —मत्स्य पुराण, 272.6
5. एस० बी० ई०, 11, भू०, पृ० 16।
6. रायचौधुरी, पूर्वो०, पृ० 219, टि० 4।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गृह के स्थान पर पाटलिपुत्र को यह प्रतिष्ठा मिल चुकी थी। मुण्ड का उल्लेख 'दिव्यावदान' में भी हुआ है परन्तु यह ग्रन्थ अनुरुद्ध व नागदासक का उल्लेख नहीं करता।[1]

नागदासक की पहिचान बहुत से विद्वान् पुराणों के दर्शक से करते हैं (दे०, पीछे)। परन्तु यह असम्भव है।

सिंहली ग्रन्थों के अनुसार अजातशत्रु से लेकर नागदासक तक पांचों राजा पितृहन्ता थे। उनसे क्रोधित होकर पुष्पपुर (=पाटलिपुत्र) के नागरिकों ने उन्हें खदेड़ दिया और अमात्य शिशुनाग को राजा बनाया।

शैशुनाग वंश

मागध इतिहास में शैशुनाग वंश का स्थान कुछ विवादग्रस्त है। पुराणों में इस वंश को बार्हद्रथ वंश के उपरान्त स्थान दिया गया है और बुद्ध के समकालीन बिम्बिसार को शैशुनाग वंशोत्पन्न बताया गया है। इस प्रकार पौराणिक साक्ष्यानुसार शिशुनाग बिम्बिसार का पूर्वज था। इसके विपरीत 'महावंस' में सुसुनाग (=शिशुनाग) को एक पृथक् वंश का संस्थापक बताया गया है और तिथिक्रमिक दृष्टि से उसके वंश को बिम्बिसार के वंश के उपरान्त रखा गया है। इन दोनों परम्पराओं में स्मिथ जैसे कुछ विद्वान् प्रथम को सही मानते हैं,[2] परन्तु रायचौधुरी व मुकर्जी आदि ने दूसरी परम्परा को सही माना है[3] क्योंकि :—

(1) पुराणों में प्रदत्त मागध राजवंशों के इतिहास में कई अशुद्धियां हैं। इसमें बार्हद्रथ वंश के उपरान्त प्रद्योत वंश को और प्रद्योतों के उपरान्त शैशुनागों को (जिनमें बिम्बिसारीय नरेश भी सम्मिलित हैं) रखा गया है। परन्तु बौद्ध ग्रन्थों से प्रमाणित है प्रद्योत वंश ने मगध पर नहीं अवन्ति पर शासन किया था। कुछ विद्वानों ने कल्पना की है कि अवन्ति का प्रद्योत वंश मगध के प्रद्योत वंश से भिन्न था। परन्तु पुराणों में पुलिक द्वारा अपने पुत्र को राजा बनाने का उल्लेख करते समय अवन्ति की चर्चा की गई है। दूसरे, पुराणों में प्रद्योत को 'नयवर्जित' और पड़ोसी राजाओं को अपने अधीन करने वाला कहा गया है। यह वर्णन बौद्ध ग्रन्थों में अवन्ति-नरेश प्रद्योत को 'चण्ड' और 'महासेन' कहे जाने से तुलनीय है। तीसरे, बौद्ध ग्रन्थों में अवन्ति के प्रद्योत राजाओं के जो नाम मिलते हैं लगभग वही नाम पुराणों में उल्लिखित हैं। इसलिए पुराणों और बौद्ध ग्रन्थों में चर्चित प्रद्योत वंश एक ही होना चाहिए और उसे बौद्ध ग्रन्थों के अकाट्य साक्ष्यानुसार अवन्ति का शासक मानना चाहिए।

1. राजगृहे नगरे बिम्बिसारो राजा राज्यं कारयति। राज्ञो बिम्बिसारस्य अजातशत्रु पुत्रः। अजातशत्रोरुदायी। उदयिभद्रस्य मुण्डः॥ मुण्डस्य काकवर्णी॥
—दिव्यावदान, 26 (पृ० 369)।

2. स्मिथ, अ० हि० इ०, अध्याय 2।

3. रायचौधुरी, पो० हि० ए० इ०, पृ० 115 अ०; मुकर्जी, ए० इ० यू०, पृ० 18-9; भाण्डारकर, कार्मा० ले०, 1, पृ० 67 अ०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(2) बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार मगध-नरेश बिम्बिसार अवन्ति-नरेश चण्ड प्रद्योत महासेन का समकालीन था। बिम्बिसार ने प्रद्योत के पाण्डु रोग का इलाज करने के लिए अपने वैद्य जीवक को भेजा था। बौद्ध ग्रन्थों में अजातशत्रु को उसके आक्रमण से आशंकित दिखाया गया है। प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता का उदयन से विवाह प्राचीन साहित्य की बहुचर्चित कथा थी। इस साक्ष्य के प्रकाश में पुराणों के शिशुनाग को बिम्बिसार के उपरान्त रखना आवश्यक है क्योंकि स्वयं पुराणों के अनुसार शिशुनाग ने प्रद्योतों के गौरव का अन्त किया था। अतः शिशुनाग का समय प्रथम प्रद्योत और तदनुसार बिम्बिसार के उपरान्त पड़ेगा।

(3) पुराणों में कहा गया है कि शिशुनाग ने अपने पुत्र को वाराणसी का राजा बनाया था। अब, वाराणसी पर मगध-नरेशों का प्रभुत्व बिम्बिसार के समय प्रारम्भ हुआ जब कोसल की राजकुमारी महाकोसला का विवाह बिम्बिसार से हुआ और कोसलराज ने काशी के एक ग्राम की आय अपनी पुत्री को 'स्नानचुन्न' मूल्य के लिए दी। इसलिए शिशुनाग जिसके राज्य में वाराणसी सम्मिलित था बिम्बिसार के उपरान्त रखा जाना चाहिए। यही बात शिशुनाग के साम्राज्य में वैशाली नगर सम्मिलित होने के विषय में कही जा सकती है क्योंकि इस नगर को मागध साम्राज्य में अजातशत्रु ने मिलाया था।[1]

शिशुनाग (सुसुनाग) वैशाली के एक लिच्छवि राजा का एक नगरशोभिणी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र था जिसे एक राजपदाधिकारी ने पाला पोसा था (महावंसटीका)।[2] लगता है वह पहिले बनारस का गवर्नर था। एस० एन० प्रधान का यह सुझाव सही हो सकता है कि राजा बनने के पूर्व भी यथार्थ राजसत्ता उसी के हाथ में रही होगी और नागदासक को यह नाम शिशुनाग का दासवत् होने के कारण मिला होगा। किसी अमात्य के इस प्रकार गवर्नर होने की प्रथा प्राचीनकाल में प्रचलित थी। शक महाक्षत्रप रुद्रदामा का सुराष्ट्र स्थित गवर्नर अमात्य ही कहलाता था।[3] पुराणों के अनुसार शिशुनाग ने बनारस में अपने पुत्र को नियुक्त किया और स्वयं गिरिव्रज में रहने लगा।[4] इस प्रकार उसने मगध की राजधानी पाटलिपुत्र से हटाकर पुनः गिरिव्रज में स्थापित की। उसने अपनी दूसरी राजधानी वैशाली नगर को बनाया।[5] 'द्वात्रिंशतपुत्तलिका' के अनुसार तो वैशाली दूसरी राजधानी नन्द युग तक बनी रही।[6] वैशाली में उत्पन्न होने के कारण उसका उस नगर के प्रति मोह स्वाभाविक था।

1. पुराणों में कहा गया है कि प्रद्योत का अभिषेक वीतिहोत्रों के पतन के बाद हुआ और शिशुनाग ने प्रद्योतों का अन्त किया, लेकिन उसके उपरान्त इन ग्रन्थों में वीतिहोत्रों को शैशुनागों की समकालीन शक्तियों में भी गिनाया गया हैं (पार्जिटर, डा० क० ए०, पृ० 69)। यह स्पष्टतः विरोधाभास है और पुराणकारों के मन में उत्पन्न भ्रम का परिचायक है।
2. टर्नर, महावंस, पृ० 39।
3. सरकार, सलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० 180।
4. वाराणस्यां सुतं स्थाप्य श्रयिष्यति गिरिव्रजम्। —मत्स्य पुराण, 272.6
5. एस० बी० ई०, 11, भू०, पृ० 16।
6. रायचौधुरी, पूर्वो०, पृ० 219, टि० 4।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिशुनाग के शासन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना अवन्ति के प्रद्योतों का विनाश थी। प्रद्योत के उपरान्त अवन्ति की शक्ति और अधिक बढ़ी थी, यद्यपि उसका प्रद्योतोत्तर इतिहास स्पष्ट नहीं है। प्रद्योत के दो पुत्र थे गोपाल तथा पालक जिनके उपरान्त क्रमशः विशाखयूप (पालक का पुत्र) और आर्यक या अजक (गोपाल का पुत्र) तथा नन्दिवर्धन (या वर्तिवर्धन, गोपाल का पुत्र) ने शासन किया। 'कथासरित्सागर' के अनुसार पालक के एक पुत्र का नाम भी अवन्तिवर्धन था। रायचौधुरी तथा प्रधान आदि ने अवन्तिवर्धन की पहिचान नन्दिवर्धन से की है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रद्योत के बाद गोपाल ने शासन नहीं किया, इसलिए पालक राजा बना। जैन ग्रन्थों के अनुसार उसने उस वर्ष शासन करना प्रारम्भ किया जिस वर्ष महावीर की मुक्ति हुई। नेपाली 'बृहत्कथा' के अनुसार गोपाल ने पालक (शासन काल 24 वर्ष) के पक्ष में राज्य-त्याग कर दिया था। वह बड़ा अत्याचारी बताया गया है। उसी ने उदायी की हत्या करवाई थी। पालक के पुत्र विशाखयूप का नाम पुराणेतर ग्रन्थों में नहीं मिलता। रायचौधुरी का यह अनुमान सही लगता है कि उसने केवल माहिष्मती प्रदेश में छोटे से राज्य पर शासन किया होगा। 'कालिकापुराण' में माहिष्मती पर शासन करने वाले विशाखयूप नामक राजा का उल्लेख मिलता भी है। पालक की मृत्यु के तत्काल बाद उसे गद्दी से हटा दिया गया होगा। उसके बाद शासन किया गोपाल के पुत्र आर्यक (अजक) ने (शासन काल 21 वर्ष)[1] और तदुपरान्त पालक के पुत्र अवन्तिवर्धन ने (शासन काल 30 वर्ष)। 'आवश्यक कथानक' के अनुसार अवन्तिवर्धन के दो पुत्र थे, अवन्तिसेन (जो उज्जैन पर शासन करता था) और मणिप्रभ (जो कौशाम्बी पर शासन करता था)।

अवन्तिवर्धन के शासन का अन्त महावीर की मुक्ति के 75 वर्ष बाद हुआ (24 वर्ष पालक के + 21 वर्ष आर्यक के + 30 वर्ष अवन्तिवर्धन के) अर्थात् 486-75 = 411 ई० पू० में। 'महावंस' के तिथिक्रमानुसार यही तिथि शिशुनाग के राज्यारोहण की है (दे०, अध्याय 4, 12)। अतः शिशुनाग ने अवन्तिवर्धन के उत्तराधिकारी अवन्तिसेन व मणिप्रभ का उन्मूलन किया होगा। इसीलिए प्रद्योतों का उल्लेख उनके बाद नहीं मिलता।

इस प्रकार शिशुनाग के शासन काल में मगध और अवन्ति के उस परम्परागत वैमनस्य का अन्त हुआ जिसका प्रारम्भ प्रद्योत के शासन काल में हुआ था। अवन्ति के मगध में मिल जाने से मगध उत्तर भारत की सबसे बड़ी शक्ति बन गया।[2]

शिशुनाग के उपरान्त पुराणों के अनुसार उसके पुत्र काकवर्ण ने शासन किया और सिंहली ग्रन्थों के अनुसार उसके (शिशुनाग के) पुत्र कालाशोक ने। जैकोबी, गीगर, भाण्डारकर, प्रधान, रायचौधुरी आदि इस विषय में सहमत हैं कि काकवर्ण (=वह

1. रायचौधुरी (पूर्वा०, पृ० 220, टि० 1) का कहना है कि आर्यक प्रद्योतवंशीय पालक का पुत्र नहीं किसी गोपालक (ग्वाले) का लड़का था जिसे 'मृच्छकटिक' के अनुसार जनता ने अत्याचारी पालक के विरुद्ध विद्रोह करके गद्दी पर बैठा दिया था।

2. 'काव्य मीमांसा' की एक रोचक सूचनानसार शिशुनाग ने अपने अन्तःपुर में मूर्धन्य अक्षरों का प्रयोग वर्जित कर दिया था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Chandigarh

जिसका रंग काकवत् था) तथा कालाशोक (काले रंग का अशोक) एक हीं व्यक्ति थे। 'दिव्यावदान' में काकवर्णी को (शिशुनाग का उल्लेख किए बिना) मुण्ड के उपरान्त रखा गया है। वह अपने पिता के शासन काल में वाराणसी का गवर्नर रह चुका था। उसके शासनकाल की दो घटनाएं प्रसिद्ध हैं। एक, उसने अपने साम्राज्य की राजधानी गिरिव्रज से हटाकर पुनः पाटलिपुत्र में स्थापित की। दूसरे, उसके शासन काल के दसवें वर्ष बुद्ध-निर्वाण को सौ वर्ष पूर्ण हुए। उस समय उसके तत्त्वावधान में वैशाली के वालिकाराम विहार में द्वितीय बौद्ध संगीति आयोजित की गई। 'महावंस' के अनुसार इसमें यस (यश) नाम के थेर ने प्रमुख भाग लिया। इसकी अध्यक्षता थेर रेवत ने की जिसने संगीति के लिए 700 प्रतिष्ठित भिक्षुओं का चयन किया। 'चुल्लवग' में यस को यश काकण्डकपुत्त कहा गया है तथा 'महावग्ग' में यस कुलपुत्त। थेर रेवत व 700 भिक्षुओं सहित उसका नाम 'महाबोधिवंस' में भी मिलता है जिसके अनुसार यह संगीति वैशाली के वालुकाराम में आयोजित की गई थी। 'दिव्यावदान' भी 700 भिक्षुओं व थेर यश से परिचित है। परन्तु तारानाथ ने 700 भिक्षुओं और थेर यस का उल्लेख करते हुए इस संगीति का स्थान वैशाली का कुसुमपुरी विहार बताया है और जिस राजा के तत्त्वावधान में यह बुलाई गई थी उसका नाम 'नन्दी' लिखा है। इसलिए प्रधान ने कालाशोक की पहिचान पुराणों के महानन्दी से की है और उसके पिता शिशुनाग की नन्दिवर्धन से।

बाण ने अपने 'हर्षचरित' में एक रोचक कथा दी है। इसके अनुसार आश्चर्य की वस्तुओं में कुतूहल रखने वाले काकवर्ण शैशुनागी (शिशुनाग के पुत्र काकवर्ण) को दण्ड के लिए पकड़कर लाए गए यवनों द्वारा निर्मित आकाशयान से नगर के उपकण्ठ में ले जाया गया और उसके कण्ठ को तलवार से काटकर मार डाला गया। इस कथा का समर्थन, जैसा कि हम अभी देखेंगे, कर्टियस के कथन से भी होता है।

'महावंस' के अनुसार शिशुनाग ने 18 वर्ष शासन किया और कालाशोक ने 28 वर्ष। इस ग्रन्थ के अनुसार कालाशोक के दस पुत्र थे जिन्होंने 22 वर्ष राज्य किया। उनके नाम इस प्रकार हैं—भद्रसेन, कोरण्डवर्ण, मंगुर, सरबञ्जह, जालिक, उभक, सञ्जय, कोरव्य, नन्दिवर्द्धन तथा पञ्चमक। उनके उपरान्त नन्दवंश के राजाओं ने 22 वर्ष शासन किया। 'दिव्यावदान' में काकवर्णी के उत्तराधिकारी सहाली, तुलकुचि, महामण्डल तथा प्रसेनजित् बताए गए हैं जिनके उपरान्त राजसत्ता नन्द वंश के हाथ में चली गई। भाण्डारकर ने 'महावंस' के नन्दिवर्धन की पहिचान पुराणों के नन्दिवर्धन से की है।[1] परन्तु, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, एस० एन० प्रधान पुराणों के नन्दिवर्धन को स्वयं शिशुनाग मानते हैं।

नन्द वंश के संस्थापक का उल्लेख करते हुए यूनानी इतिहासकारों ने सूचना दी है कि सिकन्दरकालीन नन्द नरेश एग्रेम्मिज़ (औग्रसेन्य) का पिता नापित था। वह रानी का जार होने के कारण राजा का विश्वासपात्र बन बैठा और इस स्थिति का लाभ

1. जायसवाल ने पटना से प्राप्त एक सिरविहीन प्रतिमा को नन्दिवर्धन की बताया है। परन्तु वस्तुतः यह भी एक यक्ष प्रतिमा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उठाकर उसने राजा का वध कर डाला। इसके बाद उसने राजकुमारों का अभिभावक बनने के बहाने समस्त राजसत्ता स्वयं हथियाली और तदुपरान्त राजकुमारों की भी हत्या करके रानी के गर्भ से उस राजा अर्थात् एग्रेम्मिज़ को उत्पन्न किया जो सिकन्दर के आक्रमण के समय शासन कर रहा था (कर्टियस)। इस साक्ष्य का विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में किया गया है। यहां इतना कह देना ही पर्याप्त है कि प्रथम नन्द नरेश ने जिस राजा का वध किया वह स्पष्टतः कालाशोक-काकवर्णी था और उसके द्वारा मारे गए राजकुमार कालाशोक के उपर्युक्त पुत्र थे। इस प्रकार शैशुनागवंशीय काकवर्ण की हत्या का बाण द्वारा प्रदत्त वृत्तान्त यूनानी साक्ष्य से समर्थित होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 11

नन्द वंश

नन्द इतिहास के स्रोत एवं कुछ समस्याएं

अन्तिम शैशुनाग-नरेश की हत्या और नन्द वंश की स्थापना से मागध साम्राज्य के प्रसार का तीसरा चरण प्रारम्भ होता है। अब इसमें पहिली बार उत्तर भारत के गंगा की उपत्यका के बाहर स्थित प्रदेश भी सम्मिलित किए गए। इतना ही नहीं इसमें दक्षिण भारत का काफी विस्तृत भूभाग भी सम्मिलित हुआ जिससे इतिहास में प्रथम बार एक अखिल भारतीय साम्राज्य की स्थापना व्यावहारिक सम्भावना प्रतीत होने लगी। विशालता के अतिरिक्त नन्दवंशीय मागध साम्राज्य अन्य कई दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। वह गुप्त, वर्धन तथा राजपूतयुगीन साम्राज्यों के समान एक 'महाराजधिराज' द्वारा नियन्त्रित परन्तु अधीन राजाओं द्वारा शासित राज्यों का संघ नहीं वरन् एक सबल और साधन-सम्पन्न 'एकराट्' द्वारा शासित केन्द्रीभूत शक्ति वाला साम्राज्य था। इसकी स्थापना ही 'सब क्षत्रिय नरेशों का अन्त करके' की गई थी। इसका संस्थापक, जैसाकि हम अभी देखेंगे, शुद्ध रक्त का दावा करने वाला कोई क्षत्रिय न होकर क्षत्रियों का परशु-राम के समान कट्टर दुश्मन था। उसने अपनी नीति से तत्कालीन युग में राजनीति में रुचि रखने वाले कट्टर ब्राह्मण वर्ग को भी अपना शत्रु बनाने में संकोच नहीं किया। कोई आश्चर्य नहीं अगर पुराणकारों ने उसे कलि के अंश से उत्पन्न बताया और उसके राज्या-रोहण को परीक्षित के राज्याभिषेक के समान युग प्रवर्त्तक घटना माना।

नन्द वंश का नाम किसी समसामयिक साक्ष्य में उल्लिखित नहीं मिलता। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में, जिसे सामान्यतः चन्द्रगुप्त मौर्य के युग में लिखित माना जाता है, नन्द वंश की चर्चा मिलती है,[1] लेकिन इस ग्रन्थ की तिथि विवादग्रस्त है। इस अध्याय के लेखक के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना लगभग 300 ई० में हुई थी।[2] जस्टिन (दूसरी शती ई०) ने अपने चन्द्रगुप्त विषयक वर्णन में, जो उसने पोम्पियस ट्रोगस तथा अन्य प्राचीनतर लेखकों के आधार पर लिखा है, एक स्थल पर 'अलेक्जेण्ड्रम' का उल्लेख किया है। गुटिड (Gutschmid) ने यहां 'अलेक्जेण्ड्रम' के स्थान पर 'नेण्ड्रम' पाठ सुझाया है और स्मिथ,

1. येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदंकृतम् ॥
—अर्थशास्त्र, 15.1; वाचस्पति गैरोला का संस्करण, पृ० 944।

2. दे०, अध्याय 2।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बोंगार्ड-लेविन तथा ट्रॉटमान ने इस सुझाव को स्वीकृत किया है।[1] परन्तु अन्य विद्वान् इस संशोधन को सामान्यतः अस्वीकृत करते हैं। फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि क्लासिकल लेखकों से हमें नन्दों के विषय में परोक्षतः कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य ज्ञात होते हैं। भारतीय स्रोतों में 'अर्थशास्त्र' के उपरान्त प्राचीनतम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्रोत खारवेल का हाथिगुम्फा अभिलेख है जिसमें दो स्थलों पर 'नन्दराज' का उल्लेख है। कालक्रमेण इसके उपरान्त बौद्ध ग्रन्थ 'मिलिन्दपञ्हो' का स्थान आता है जिसमें एक स्थल पर चन्द्रगुप्त मौर्य के नन्दों के साथ संघर्ष का वर्णन है। बौद्ध और जैन साहित्य में नन्दों का उल्लेख प्रायः चन्द्रगुप्त-कथा तथा जैनाचार्यों के इतिहास के प्रसंग में आता है। सिंहली 'दीपवंस' और 'महावंस' एवं इनकी टीकाएं, 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प', जैन ग्रन्थ 'उत्तरज्झयण,' देवेन्द्रगणी द्वारा 'उत्तरज्झयण' पर लिखित 'सुखबोधा' नाम की टीका, भद्रबाहु की 'आवस्सय निज्जूति' पर लिखी गई 'चुण्णि' (आवश्यकनिर्युक्ति चूर्णि), हरिभद्र की 'आवश्यकवृत्ति,' तथा हेमचन्द्र का 'परिशिष्टपर्वण' इनमें महत्त्वपूर्ण हैं। इन ग्रन्थों में उल्लिखित घटनाओं का ब्राह्मण परम्पराओं में सुरक्षित रूप पुराणों, विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' नाटक तथा 'कथासरित्सागर' आदि ग्रन्थों में उपलब्ध लोककथाओं में मिलता है।

क्षेमेन्द्र के ग्रन्थ 'बृहत्कथामंजरी' तथा सोमदेव के 'कथासरित्सागर' में नन्द नामक एक राजा की कथा मिलती है। वह पाटलिपुत्र का स्वामी था और चन्द्रगुप्त उसका पुत्र था। उसके मृत शरीर में इन्द्रदत्त नामक एक अन्य व्यक्ति ने योगबल से प्रवेश किया जिसके परिणामस्वरूप चन्द्रगुप्त के पिता को 'पूर्वनन्द' कहा गया और उसके योगबल से पुनरुज्जीवित शरीर को 'योगनन्द'। योगनन्द के पुत्र का नाम हिरण्यगुप्त अथवा हरिगुप्त था।[2] पूर्वनन्द का मन्त्री शकटार चन्द्रगुप्त को राजा बनाना चाहता था। उसने युक्ति से चाणक्य को योगनन्द का शत्रु और अपना मित्र बना लिया। इसके बाद चाणक्य ने अपनी कृत्या (मारण-मन्त्र) से योगनन्द को मार डाला और शकटार ने हिरण्यगुप्त को। तदुपरान्त पूर्वनन्द का पुत्र चन्द्रगुप्त राजा बना और चाणक्य उसका महामन्त्री। इस कथा के आधार पर जायसवाल ने सुझाव रखा है कि वस्तुतः नन्द वंश संख्या में दो थे—पूर्वनन्द वंश जिसके सदस्य नन्दिवर्धन और महानन्दी थे तथा नवनन्द वंश जिसका संस्थापक महापद्मनन्द था। उन्होंने 'नव' शब्द का अर्थ 'नौ' न करके 'नवीन' किया है।[3] स्मिथ के अनुसार यह सुझाव सत्य हो सकता है।[4] लेकिन जैसाकि रायचौधुरी[5] ने आग्रह किया

1. स्मिथ, अ० हि० इ०, 123, टि० 1; ट्रॉटमान, टॉमस आर०, ए० बी० ओ० आर० आई०, 51, पृ० 240-43; बोंगार्ड-लेविन, एन्श्येण्ट इण्डिया एण्ड सेण्ट्रल एशिया, पृ० 79 अ०।

2. जैन ग्रन्थों में अन्तिम नन्द नरेश के पुत्र का नाम 'सिद्धपुत्र' दिया गया है और बौद्ध ग्रन्थ 'वंसत्थप्पकासिनी' में 'पर्वत'। जैन ग्रन्थों में उसकी अन्तिम नन्द नृपति की दो रानियों तथा दुर्धरा अथवा सुप्रभा नामक पुत्री का भी, जिसका विवाह चन्द्रगुप्त मौर्य से हुआ बताया गया है, उल्लेख है (दे० चटर्जी, सी० डी०, आई० सी०, 1, पृ० 220, 223)।

3. जायसवाल, जे० बी० ओ० आर० एस०, 4, पृ० 91-95।

4. अ० हि० इ०, पृ० 44; रेप्सन (कै० हि० इ०, पृ० 280) इससे सहमत हैं।

5. ए० न० मौ०, पृ० 20।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है, कश्मीरी ग्रन्थों में प्रदत्त उपर्युक्त कथा में दो नन्द वंशों की चर्चा नहीं है—इनमें एक ही व्यक्ति के दो व्यक्तित्वों में अन्तर किया गया है। दूसरे, पुराणों, सिंहली ग्रन्थों तथा जैन साहित्य इन सभी में 'नवनन्द' का अर्थ 'नौ नन्द' किया गया है 'नवीन नन्द' नहीं।

प्रथम नन्द नरेश के नाम के विषय में हमारे साक्ष्य एक मत नहीं है। 'विष्णुपुराण' में, जो प्राचीनतम पुराणों में से एक है, उसे 'नन्द' कहा गया है।[1] इस परम्परा का समर्थन 'परिशिष्टपर्वण' तथा 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' से होता है।[2] इसके विपरीत बौद्ध ग्रन्थ 'महाबोधिवंश' और 'वंसत्थप्पकासिनी' में उसका नाम उग्गसेन नन्द (=उग्रसेन नन्द) दिया गया है।[3] पुराणों में उसे महापद्म (विष्णु०) अथवा महापद्मपति (भागवत०) भी कहा गया है। 'महापद्म' का अर्थ 'एक खरब' होता है। इसलिए 'भागवत पुराण' के टीकाकार के अनुसार 'महापद्मपति' का अर्थ था 'अनन्त सैनिकों अथवा अतुल धन का स्वामी।'[4] इससे लगता है कि यह सम्भवतः प्रथम नन्द नरेश का नाम न होकर उसकी उपाधि थी, यद्यपि वायु० और मत्स्य० में 'महापद्म' को उसका दूसरा नाम ही बताया गया है। यूनानी साक्ष्य में सिकन्दर के आक्रमण के समय (326 ई० पू०) शासन करने वाले मगध-नरेश को, जिसके नापित पिता ने अपने स्वामी को मारकर राज्य छीना था (दे०, आगे), एग्रेम्मिज़, (Agrammes) कहा गया है। रायचौधुरी आदि के अनुसार यह नाम संस्कृत नाम 'औग्रसेन्य' (=उग्रसेन का पुत्र) का यूनानी रूपान्तर हो सकता है।[5] इससे भी लगता है कि प्रथम नन्द नरेश का 'महाबोधिवंश' में प्रदत्त उग्रसेननन्द नाम ही सही है। जहां उसे मात्र नन्द कहा गया है वहां उसका उसके कुलनाम से उल्लेख मानना चाहिए—वैसे ही जैसे गुप्त नरेशों को बोलचाल में गुप्त कह दिया जाता था और मौखरी राजाओं को मौखरी।[6] अतः हम प्रथम नन्द नरेश का नाम उग्रसेननन्द मान सकते हैं और उपाधि महापद्मनन्द।

पण्डित क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने यूनानियों के एग्रम्मिज़ की पहिचान स्वयं उग्रसेन -महापद्मनन्द से की है।[7] उनका कहना है कि 'एग्रेम्मिज़' का रूपान्तर 'उग्रसेन' हो सकता है। उनके अनुसार जब यूनानियों ने भारतीयों से गंगा की उपत्यका के राजा का नाम पूछा होगा तो उन्हें उसका व्यक्तिगत नाम ही बताया गया होगा। हाल ही में रूसी विद्वान् बोंगार्ड-लेविन ने पण्डित चट्टोपाध्याय के मत का बिना उनका उल्लेख किए

1. पार्जिटर, डी० के० ए०, पृ० 25, 69, टि० 15।
2. परिशिष्टपर्वण, 6.231; आर्यमंजुश्रीमूलकल्प, पृ० 15।
3. बर्मी परम्परा में भी उसका नाम उग्रसेननन्द दिया गया है। 'अभिधान राजेन्द्र' नामक जैन ग्रन्थ में भी प्रथम गुप्त नरेश को मात्र 'नन्द' कहा गया है (बोंगार्ड-लेविन द्वारा 'एन्श्येण्ट इण्डिया एण्ड सेण्ट्रल एशिया' में उद्धृत)।
4. विष्णुपुराण, विल्सन का अनुवाद, पृ० 394, टि० 18।
5. पो० हि० ए० इ०, पृ० 236। ऐतरेय ब्रा० (8.21) में युद्धाथ्रौष्टि नामक नरेश को औग्रसेन्य कहा गया है।
6. तु०, अफसड़-अभिलेख जिसमें ईशानवर्मा के उत्तराधिकारी को केवल 'मौखरी' कहा गया है।
7. पी० एच० सी०, 4, लाहौर अधिवेशन, पृ० 140-47।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समर्थन किया है।[1] उनका कहना है कि प्रथम नन्द नरेश सत्तापहारक, राजहन्ता एवं नापितजातीय था, अतः उसको भारतीय ग्रंथों में राजा नहीं माना गया। इस प्रकार ये दोनों विद्वान् यह मानते हैं कि उग्रसेन-महापद्म सिकन्दर के आक्रमण के समय भी शासन कर रहा था और तदनुसार वे उसके उत्तराधिकारियों को सिकन्दरोत्तर युग में रखते हैं एवं चन्द्रगुप्त द्वारा मौर्य वंश स्थापना की तिथि 313 ई० पू० बताते हैं। परन्तुः—

(1) एग्रेम्मिज़ को यूनानियों ने स्पष्टतः 'राजा का पुत्र' बताया है जबकि उग्रसेन राजा का पुत्र नहीं था। उसने स्वयं राजपद प्राप्त किया था।

(2) पुराणों में महापद्मनन्द को स्पष्टतः 'एकराट्' कहा गया है। अतः यह मान्यता कि भारतीय परम्परा में उसे राजा नहीं माना गया, गलत है।

(3) प्रत्येक वंश का संस्थापक सत्तापहारक होता है और राज्य को प्रायः भूतपूर्व नरेश को मारकर प्राप्त करता है। लेकिन इस आधार पर भारतीय ग्रंथों में ऐसे व्यक्तियों को राजा मानने में कभी आपत्ति प्रकट नहीं की गई।

(4) महापद्मनन्द के शूद्र होने के कारण पुराणों में उसे राजा नहीं माना गया हो, ऐसी बात भी नहीं है। इन ग्रंथों में स्पष्टतः कहा गया है कि शैशुनागों के उपरान्त शूद्र राजा होंगे। अन्यत्र भी इन ग्रंथों में 'शूद्र भूपालों' की चर्चा मिलती है।

(5) चट्टोपाध्याय व बोंगार्ड-लेविन ने महापद्मनन्द के उत्तराधिकारियों को 325-313 ई० पू० में रखा है। इसके समर्थन में वह जैन ग्रंथों का प्रमाण देते हैं जिनमें अवन्ति के इतिहास के सन्दर्भ में चन्द्रगुप्त मौर्य की तिथि 313 ई० पू० बताई गई है। परन्तु यह जैन परम्परा या तो गलत है और या इसका आशय यह है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने 313 ई० पू० में अवन्ति पर विजय प्राप्त की थी। स्मरणीय है कि हमारे सभी साक्ष्य चन्द्रगुप्त और अशोक के मध्य 52 वर्ष का अन्तर बताते हैं। अतः चन्द्रगुप्त मौर्य को 313 ई० पू० में रखने पर अशोक का अभिषेक 313-52=261 ई० पू० में रखना अनिवार्य है जो उसके समकालीन यूनानी राजाओं की तिथियों के प्रकाश में असम्भव है। चन्द्रगुप्त 313 ई० पू० में और अशोक को 261 ई० पू० में रखना इस बौद्ध परम्परा के भी प्रतिकूल होगा कि बुद्ध के परिनिर्वाण एवं प्रियदर्शी (अशोक) के अभिषेक के मध्य 218 वर्ष व्यतीत हुए थे।

(6) पण्डित चट्टोपाध्याय का कहना है कि जब यूनानियों ने गंगा की उपत्यका के राजा का नाम पूछा होगा तो उन्हें उसका व्यक्तिगत नाम ही बताया गया होगा। लेकिन यह तर्क सही नहीं लगता। अगर भारतीयों ने उस राजा का नाम 'औग्रसेन्य' के बजाय 'उग्रसेन' बताया होता तो यूनानी लेखक उसका यूनानी रूप 'एग्रेम्मिज़' न करके 'ओग्रसेनस' करते। सेनान्त नाम 'सुभागसेन' का यूनानी रूप 'सोफागसेनस' इसका प्रमाण है।

1. बोंगार्ड-लेविन, एन्श्येण्ट इण्डिया एण्ड सेण्ट्रल एशिया, पृ० 79 ग्र० 1।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(7) स्मरणीय है कि यूनानियों ने अनेक राजाओं के व्यक्तिगत नाम न लिखकर उनके कुलनाम या जातिनाम आदि ही दिये हैं और बहुत बार उनके राज्य के नाम उन पर आरोपित कर दिये हैं। 'एस्सेकेनोस्', 'पोरस,' 'टेक्सिलिज़' तथा 'अमिसारिज़' नाम इसके उदाहरण है। बिन्दुसार की चर्चा वह 'अमित्रोखेटिज़' (अमित्रघात) उपाधि से करते हैं। इन तथ्यों के प्रकाश में यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि वे उग्रसेन के पुत्र को 'एग्रेम्मिज़' कह सकते थे। यही मत आजकल सामान्यतः स्वीकृत किया जाता है।[1]

नन्दों की उत्पत्ति

नन्दों की जाति के विषय में बौद्ध साहित्य में, सिवाय 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' के जिसमें प्रथम नन्द नरेश को 'नीचमुख्य' कहा गया है (नीचमुख्य समाख्यातो ततो लोके भविष्यति), कोई निश्चित सूचना नहीं मिलती। सिंहली परम्परा तथा 'वंसत्थप्पकासिनी' जैसे ग्रंथों में अवश्य ही प्रथम नन्द को अज्ञात कुल में उत्पन्न (तेसं हि जेट्ठो पनो अज्ञात कुलस्स पुत्तो) कहा गया है, परन्तु इससे इसके अतिरिक्त कि इन ग्रन्थों के लेखकों की सहानुभूति सम्भवतः नन्दों के साथ थी, और कुछ सिद्ध नहीं होता। एक अन्य अनुश्रुति के अनुसार जो हमें सर्वप्रथम 'मुद्राराक्षस' नाटक में मिलती है, नन्द नरेश 'प्रथितकुलजाः' अथवा उच्च-कुल के थे।[2] एक स्थल पर इस नाटक में नन्दों का मन्त्री राक्षस उन्हें 'अभिजन' कहता है।[3] इस नाटक के टीकाकार धुण्ढिराज (18वीं शती) ने भी किसी जगह उन्हें हीन-कुलोत्पन्न नहीं कहा है। उल्टे, अपनी टीका के उपोद्घात में वह हमें बताता है कि सर्वार्थसिद्धि की दो पत्नियां थीं—एक क्षत्रिय कुलोत्पन्ना सुनन्दा जिससे नौ नन्द उत्पन्न हुए तथा दूसरी वृषलात्मजा मुरा जिससे मौर्य नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।[4] जैना-चार्य हेमचन्द्र ने तो 'परिशिष्टपर्वण' में एक स्थल पर अन्तिम नरेश की पुत्री को स्पष्टतः 'क्षत्रिय-कन्या' कहा है (प्रायः क्षत्रिय कन्यायां शस्यतेहि स्वयंवरः)। परन्तु यह अनुश्रुति निश्चित रूप से गलत है। स्वयं हेमचन्द्र ने उसी ग्रन्थ में अन्यत्र प्रथम नन्द नरेश को एक वेश्या के गर्भ से (गणिकाकुक्षिजन्मा) दिवाकीर्ति नामक नाई द्वारा उत्पन्न (नापित कुमार) बताया है।[5] 'अभिधान राजेन्द्र' में भी प्रथम नन्द को 'गणिकासुतो नन्दः'

1. दे०, रायचौधुरी, पूर्वो० पृ० 236; मुकर्जी, आर० के०, ए० इ० यू०, पृ० 31; शास्त्री, नील-कान्त, हिस्टरी ऑव इण्डिया, 1, पृ० 52।
2. मुद्राराक्षस (2.9)। 'नीति विक्रमगुणव्यापारशान्तद्विषां नन्दानां विपुले कुले' (मुद्राराक्षस 2.4)।
3. देवं भुवन पतिमुच्चैरभिजनम् (6.6)।
4. राज्ञः पत्नी सुनन्दासीज्ज्येष्ठान्या वृषलात्मजा।
   मुराख्या सा प्रिया भर्तुः शीललावण्यसंपदा॥
5. इतश्च तत्रैव पुरे दिवाकीर्तेरभूत्सुतः।
   एकस्य गणिकाकुक्षिजन्मा नन्दोऽभिधानतः॥
   स नापितकुमारस्तु प्रभात समये तदा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहा गया है । क्योंकि प्राचीन काल में किसी व्यक्ति की जाति सामान्यतः उसके पिता की जाति से तय होती थी इसलिए इस परम्परानुसार प्रथम नन्द नरेश को नापित जाति का मानना पड़ेगा । हरिभद्रसूरि के 'आवश्यकसूत्र वृत्ति' तथा जिनप्रभ के 'विविध कल्पतरु' नामक जैन ग्रन्थों में भी उसे क्रमशः 'नापितदास' और 'नापितगणिकासुत' कहा गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि जहां हेमचन्द्र ने नन्द राजकुमारी को क्षत्रिय-कन्या बताया है वहां उन्होंने इस शब्द का प्रयोग राजकन्या के अर्थ में किया है ।

जैन ग्रन्थों की नन्दों की उत्पत्ति विषयक परम्परा का समर्थन अंशतः पुराणों से भी होता है जिनमें प्रथम मगध नरेश को अन्तिम शैशुनाग नृपति महानन्दी द्वारा एक शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न (शूद्रागर्भोद्भवः) और उसके वंशजों को 'शूद्रभूपालाः' कहा गया है । क्योंकि प्राचीन काल में नापितों को हीनजातीय माना जाता था इसलिए इस विषय में जैन और पौराणिक साक्ष्य को आंशिक रूप से एक दूसरे का समर्थक माना जा सकता है, यद्यपि पुराणों का यह कथन कि महापद्मनन्द का पिता मगध-नरेश महानन्दी था,[1] स्पष्टतः जैन परम्परा के विपरीत है ।

पुराणों की तुलना में जैन ग्रन्थों की परम्परा को सत्य के अधिक निकट मानना चाहिये क्योंकि उन अफवाहों से जो सिकन्दर ने भारत में सुनी थीं इसका समर्थन होता है । कर्टियस के कथनानुसार जिस समय सिकन्दर व्यास के तट पर पहुंचा तो पोरस ने उसे बताया था कि गेंगेरीडाई और प्रासाई का तत्कालीन नरेश एग्रम्मिज़ बड़ा अप्रतिष्ठित (ignobles) व्यक्ति था । 'उसका पिता वस्तुतः एक नाई था जो अपनी दैनिक आय से अपना पेट मुश्किल से भर पाता था, लेकिन जिसने अपने सुन्दर व्यक्तित्व के कारण रानी का प्रेम और उसके (रानी के) प्रभाव के कारण तत्कालीन राजा का घनिष्ठ विश्वास प्राप्त कर लिया था । लेकिन बाद में उसने अपने स्वामी की धोखे से हत्या कर दी और तब राजकुमारों के संरक्षक होने का दिखावा करके सर्वोच्च सत्ता हथिया ली । इसके बाद उसने अल्पवयस्क राजकुमारों को भी मरवा दिया और फिर (रानी के गर्भ से) वर्तमान राजा को उत्पन्न किया ।'[2] डायोडोरस ने भी अपने ग्रन्थ में कर्टियस के कथन का स्थूलतः समर्थन किया है और गेंगेरेडाई और प्रासाई के तत्कालीन राजा जेन्ड्रे-मिज़ को अज्ञात कुल वाला (adokson), नीच (eutele Pantelos) तथा जाति से नाई बताया है ।[3] प्लुटार्क के अनुसार एण्ड्रोकोट्टोस (चन्द्रगुप्त मौर्य) बाद में कहा करता था कि सिकन्दर चाहता तो सारे देश (गंगा की उपत्यका वाला भूखण्ड) पर आसानी से अधिकार कर सकता था क्योंकि वहां का राजा 'नीचकुलोत्पन्न' और अज्ञात वंश का (dusgeneia) था और इसलिए प्रजा उसे घृणा तथा तिरस्कार की दृष्टि से देखती

1. महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कलिकांशजः ।
उत्पस्यते महापदमः सर्वक्षत्रांतको नृपः ।।

2. मजूमदार, क्ला० एका०, पृ 129 । लेकिन डायोडोरस ने राजा की हत्या की अपराधिनी स्वयं उसकी रानी को बताया है ।

3. वही, पृ० 172 ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थी। इन साक्ष्यों से स्पष्ट है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय मगध पर शासन करने वाले नरेश को, जो चन्द्रगुप्त मौर्य का पूर्वगामी होने के कारण अन्तिम नन्द-नरेश से अभिन्न माना जाएगा, नीच कुल में उत्पन्न और उसके पिता को, जिसने राजसत्ता पर छल से अधिकार किया था, जाति से नाई माना जाता था। यह परम्परा उग्रसेन-महा पद्म के विषय में उपलब्ध जैन अनुश्रुति से पूर्णतः संगत है।[1]

महापद्म नन्द द्वारा सत्ता का अपहरण

जिस उपाय से प्रथम नन्द नरेश ने राजसत्ता को अधिकृत किया उसका सर्वाधिक विश्वसनीय वर्णन कर्टियस का उपर्युक्त साक्ष्य ही है। लेकिन भारतीय साहित्य भी इस विषय में मौन नहीं है तथा क्लासिकल लेखकों के साक्ष्य का समर्थन और परिवर्धन करता है। उदाहरणार्थ, कर्टियस के इस कथन का कि नन्द वंश का संस्थापक अपने स्वामी का 'घनिष्ठ विश्वासपात्र' बन गया था क्या आशय है यह 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' से स्पष्ट होता है जिसमें कहा गया है कि राजपद प्राप्त करने के पूर्व वह प्रधानमंत्री रहा था।[2] इसी प्रकार मगध के जिस राजा की रानी को उसने अपने रूपजाल में फंसाया था, उसकी पहिचान शिशुनागवंशीय काकवर्ण से पुराणों और 'हर्षचरित' के सम्मिलित साक्ष्य से तय होती है क्योंकि पुराणों में शिशुनाग के पुत्र और उत्तराधिकारी का नाम काकवर्ण दिया गया है और बाण के 'हर्षचरित' में बताया गया है कि काकवर्णी शैशुनागी नामक राजा को उसके गले में खंजर भोंक कर मार डाला गया था।[3] सिंहली अनुश्रुतियों में उसका नाम कालाशोक दिया गया है और कहा गया है कि उसके बाद उसके नौ (अथवा दस) पुत्रों ने सम्मिलितरूपेण दस (अथवा अट्ठाइस) वर्ष शासन किया। 'महाबोधिवंश' में उनके नामों की जो सूची मिलती है उनमें कम से कम एक नाम नन्दिवर्धन पुराणों में भी मिलता है। अतः यह सर्वथा सम्भव है कि उग्रसेन-महापद्म ने अपने जिस स्वामी का वध किया था वह कालाशोक-काकवर्णी रहा हो और कर्टियस ने जिन राजकुमारों की हत्या की जाने की चर्चा की है वे काकवर्णी के पुत्र रहे हों।

'महावंसटीका' में उग्रसेन के उदय के विषय में सर्वथा भिन्न अनुश्रुति दी गई है। इसके अनुसार 'अज्ञातकुलजन्मा' उग्रसेन सीमावर्ती प्रदेश का रहने वाला (पच्चन्तवासिक) था। वह एक बार डाकुओं के हाथ में पड़ गया। वे उसे मलय नामक सीमान्त प्रदेश में ले गए ('मुद्राराक्षस' में भी मलय की चर्चा है)। धीरे-धीरे वह डाकुओं का नेता बन बैठा। 'महाबोधिवंश' में भी उग्रसेन के साथियों को 'चोरपुब्बस' (पुराने चोर) कहा गया है। अपने डाकू साथियों के साथ उसने पड़ोसी राज्यों पर आक्रमण करना

1. इस मत के लिए कि नन्द राजा नापित के नहीं थे दे०, बुद्धप्रकाश, स्टडीज, पृ० 103 अ०। यह मत सर्वथा निराधार है।
2. जायसवाल, इ० हि० इ०, पृ० 14।
3. काकवर्णः शैशुनागिश्च नगरोपकण्ठे कण्ठे निचकृते निस्त्रिंशेन।
—हर्षचरित, काणे का संस्करण, पृ० 50, 161

'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' के अनुसार प्रथम नन्द ने राज्य को धन और मंत्र बल से प्राप्त किया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और सीमान्त नगरों पर (पच्चंत नगरं गत्वा) धावे बोलना शुरू कर दिया (रट्ठं विलुमपमानो विचरंतो)। वह राजाओं को अन्तिमेत्थम् दिया करता था "या तो युद्ध करो अथवा राज्य मुझे दे दो"। (रज्जम वा देतु युद्धं वा)। इसके बाद उसने सर्वोच्च सत्ता प्राप्त करने का निश्चय किया। शायद यहां बौद्ध लेखकों का आशय मगध-विजय से है। लेकिन उन्होंने यह नहीं बताया है कि उसने उसको किस तरह जीता। अगर यह मान लिया जाय कि उग्रसेन की शक्ति से भयभीत होकर अन्तिम शिशुनाग राजा उसे अपना प्रधान मन्त्री बनाने के लिए विवश हो गया था और यह पद पाने के बाद उग्रसेन ने रानी को अपने रूपजाल में फंसाया था, तो बौद्ध तथा जैन साक्ष्य में कुछ समन्वय हो सकता है।[1]

महापद्मनन्द ने जिस प्रकार सिंहासन को हस्तगत किया वह इस बात का प्रमाण है कि बिम्बिसार के समय की तुलना में शैशुनाग-युग में साम्राज्य की शासन व्यवस्था में मूलभूत अन्तर हो गया था। बिम्बिसार अपने महामात्रों और मन्त्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखता था और जो उसे गलत मंत्रणा देते थे उन्हें अपदस्थ करना तथा सही मंत्रणा देने वालों को प्रश्रय देना उसके लिए सामान्य बात थी। इसके परिणामस्वरूप वर्षकार और सुनीध जैसे पदाधिकारियों का, जो योग्य होने के साथ स्वामी-भक्त भी थे, उत्कर्ष हुआ। लेकिन शैशुनाग-युग के अन्त तक स्थिति इतनी परिवर्तित हो गई थी कि एक नापित भी रानी के प्रभाव से राजा का 'घनिष्ठ विश्वासपात्र' और 'प्रधानमन्त्री' बन सकता था और उसे मार सकता था। जैसा कि रायचौधुरी ने ध्यान दिलाया है महापद्म का प्रारम्भिक जीवनवृत्त परवर्ती युग के बिज्जल का स्मरण दिलाता है और उसका शैशुनाग राजपरिवार से सम्बन्ध फ्रांस में तेरहवें लुई के साथ कार्डिनल मेज़रीन के सम्बन्ध का।

उग्रसेन-महापद्म नन्द जाति से नाई होने के बावजूद एक विजिगीषू और सफल नरेश सिद्ध हुआ। अपनी महत्वकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उसने अनन्त सम्पत्ति और एक विशाल सेना एकत्र की। जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं, सम्भवतः असंख्य सैनिकों और अतुल सम्पदा का स्वामी होने के कारण वह 'महापद्मपति' उपाधि से विख्यात हुआ था। उसका उग्रसेन नाम भी हो सकता है उसकी प्रचण्ड सेना के कारण पड़ा हो। 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' में उसकी विशाल सेना का उल्लेख करते हुए उसे 'महासैन्य' और 'महाबलः' कहा गया है। कर्टियस ने उसके उत्तराधिकारी एग्रेम्मिज़ की सेना का वर्णन करते हुए बताया है कि उसमें 20 सहस्र अश्वारोही, 2 लाख पदाति, चार घोड़ों से खींचे जाने

1. प्रथम नन्द द्वारा राज्य पाने की 'परिशिष्टपर्वण' में दी गई कथा एकदम गलत प्रतीत होती है। इसमें कहा गया है कि एक बार प्रथम नन्द ने कुमारावस्था में एक स्वप्न में पाटिलपुत्र को अपनी आंतों से घिरा हुआ देखा। इसे उसकी भावी महत्ता का संकेत मानकर उसके गुरु ने उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। जब उसकी बारात नगर से होकर जा रही थी तो वहां से राजलांछनों का जलूस गुजरा क्योंकि तभी उदायी की हत्या हो जाने से सिंहासन रिक्त हो गया था। उस समय शाही हाथी ने नन्द को अपनी पीठ पर बैठा लिया। इस पर जनता ने उसे अपना राजा बना लिया (ततः प्रधान पुरुषैः पौरर्जनपदेन च। चक्रे नन्दस्य सानन्दमभिषेकमहोत्सवः॥)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वाले 2 हजार रथ एवं 3 हजार हाथी थे। डायोडोरस ने हाथियों की संख्या 4 हजार बताई है और प्लुटार्क ने हाथियों की 6 हजार, अश्वारोही सेना की 80 हजार और रथों की 8 हजार। पदातियों की संख्या ये लेखक भी दो लाख ही बताते हैं। इन संख्याओं में कुछ अतिरंजना हो सकती है, परन्तु अगर हम ध्यान रखें कि चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना में 6 लाख पदाति थे और वह अपनी हस्ति-सेना में से 500 हाथी सेल्युकस को अनायास दे सकता था, तो नन्द सेना की उपर्युक्त संख्या अविश्वसनीय नहीं लगेगी। नन्द सेना की विशालता और शक्ति जैन ग्रन्थों तथा 'मिलिन्दपञ्हो'[1] में वर्णित नन्द-मौर्य संघर्ष की भयंकरता से भी (दे०, आगे) संकेतित है।

महापद्मनन्द और उसके उत्तराधिकारियों द्वारा अतुल धन एकत्र किए जाने के भी अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। चीनी, यूनानी, तथा भारत के जैन, बौद्ध, ब्राह्मण एवं तमिल साहित्यों में नन्दों के वैभव का अनेकत्र उल्लेख है। एक मत के अनुसार स्वयं उग्रसेन अतुल धन का स्वामी होने के कारण महापद्मपति कहलाया था। 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' में उसको 'महाभोगी' और धन की सहायता से राज्य प्राप्त करनेवाला बताया गया है।[2] एक जैन ग्रन्थ 'तित्थोगाली पइण्णा' में एक नन्द राजा (नन्दोराया) के बारे में, जो बहुत धनी, सुन्दर तथा यशस्वी (अत्थसमिद्धो रूपसमिद्धो जससमिद्धो) था, कहा गया है कि उसने पांच स्तूपों (पंचथूमे) में असंख्य सुवर्ण मुद्रायें (हिरण्णं निस्किंत्तं), दबा दी थीं जिन्हें वहां से कल्कि उठा ले गया था।[3] इस नन्द नरेश का वर्णन, विशेषतः उसके रूपवान् होने का उल्लेख कर्टियस द्वारा वर्णित प्रथम नन्द के व्यक्तित्व का स्मरण दिलाता है।

नन्दों के अपरिमित धन की चर्चा उपर्युक्त साक्ष्य के अतिरिक्त अन्य अनेक ग्रन्थों में मिलती है। उदाहरणार्थ, चीनी यात्री युवान च्वांग ने नन्दराज के सात बहुमूल्य पाषाणों के पांच कोषागारों की चर्चा की है। 'मुद्राराक्षस' में नन्दों को 'नवनवतिशत-द्रव्यकोटीश्वराः' (990 करोड़ सुवर्ण मुद्राओं का स्वामी) तथा 'अर्थरुचि'[4] 'कहा गया है। 'कथासरित्सागर' के अनुसार भी नन्दराज ने 990 करोड़ सुवर्ण मुद्राएं एकत्र कर ली थीं। दक्षिण भारत के संगम साहित्य (ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियां) में नन्दों के असीम धन का उल्लेख है। एक स्थल पर कहा गया है कि नन्दराज ने 'पहिले पाटलि में धन संचित किया और फिर उसे गंगा की धारा में छिपा दिया।' मामूल्नार ने एक स्थान पर प्रेम की मारी नायिका के मुख से कहलाया है: "वह क्या है जो मेरे प्रेमी को मेरे रूप से भी अधिक आकर्षक लगा है?—क्या यह युद्धों में विजय प्राप्त करने वाले सुप्रतिथ नन्दों का पाटिलपुत्र में संचित और गंगा में छिपाया गया धन है?" इसके अतिरिक्त 'अहनानूरु' में भी उसने एक स्थल पर कहा है कि 'प्रेमी अपना पग पीछे नहीं हटा सकता चाहे ऐसा करने पर उसे नन्दों का धन ही क्यों न मिल जाय।' 'कुरुण्दोगई' नामक

1. 'मिलिन्दपञ्हो' में नन्दों के एक सेनापति भद्दसाल (भद्रसाल)का उल्लेख मिलता है।
2. तद्धनं प्राप्य मन्त्रीसौलोके पार्थिवतां गतः।
3. प्रकाश द्वारा उद्धृत (पूर्वो०, पृ० 113)।
4. नन्दस्यार्थरूचेरर्थं सम्बन्धः प्रीतिमुत्पादयति।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रन्थ में भी एक कविता में नन्दों के उल्लेख के साथ पाटलिपुत्र में सुवर्ण के प्राचुर्य की चर्चा हुई है ।[1]

उपर्युक्त सभी साक्ष्य में नन्दों के धन की चर्चा करते समय किसी विशिष्ट राजा का नाम नहीं लिया गया है, परन्तु बौद्ध ग्रन्थों में प्रदत्त कथाओं में नन्दों के विशाल राज-कोष की चर्चा करते समय अन्तिम नन्द नृपति धननन्द का उल्लेख है । इस आधार पर अधिकांश विद्वान् तमिल साहित्य आदि में उल्लिखित सम्पत्ति को संचित करने का श्रेय धननन्द को ही देते हैं । परन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं स्वयं प्रथम नन्द उग्रसेन के अतुल धन की चर्चा भी साहित्य में है । दूसरे, ध्यान रखना चाहिए कि उग्रसेन के आठ उत्तराधिकारियों ने कुल मिलाकर 12 वर्ष शासन किया । इसलिए धननन्द का शासन तीन-चार वर्ष से अधिक लम्बा नहीं रहा होगा । मात्र इतने समय में वह उतना धन और अपयश अर्जित नहीं कर सकता था जितना हमारे साक्ष्य संकेत देते हैं । इसलिए नन्दों के अतुल धन के संचय का श्रेय प्रधानतः उग्रसेन-महापद्म को ही दिया जाना चाहिए । लेकिन इतना अवश्य ही माना जा सकता है कि धननन्द ने अपने पिता की परम्परा को बनाए रखा था । 'महावंस टीका' के अनुसार उग्रसेन के पुत्रों में सबसे छोटा भाई 'धन एकत्र करने का शौकीन होने के कारण धननन्द कहलाया । ···उसने अस्सी कोटि धन एकत्र किया और गंगा नदी की तलहटी में एक विशाल शिला में दीर्घाकार गुहा बनवाकर अपने कोष को उसमें दबा दिया ।' 'वंसत्थप्पकासिनी' में भी कुछ इसी प्रकार की सूचना मिलती है ।[2]

साम्राज्य-स्थापन

शैशुनाग साम्राज्य पर अधिकार कर लेने, अपनी सैनिक शक्ति बढ़ा लेने तथा आर्थिक स्थिति दृढ़ कर लेने के उपरान्त उग्रसेन-महापद्म ने सम्भवतः अखिल भारतीय साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास किया जिसमें उसे पूर्णतः नहीं तो आंशिक सफलता अवश्य ही मिली है । जैन लेखकों ने नन्द के मन्त्री द्वारा समुद्रपर्यन्त पृथिवी जीते जाने की चर्चा की है ।[3] पुराणों में महापद्म को 'एकच्छत्र' और 'अनुल्लंघित रूप से पृथिवी को भोगने वाला' (स चैकच्छत्रामनुल्लङ्घितशासनो महापद्मः पृथिवीं भोक्ष्यते) 'कलि से उत्पन्न (कलिकाङ्शजः) तथा 'एकराट्' कहा गया है । इनमें यह भी कहा गया है कि वह दूसरा परशुराम (द्वितीय इव भार्गवः) था और उसने परशुराम के समान सब क्षत्रयों का विनाश किया था (परशुराम इवापरोखिल क्षत्रान्तकारी) । इसका अर्थ यह लगाया गया

1. सन्दर्भों के लिए दे०, पो० हि० ए० इ०, पृ० 230-31 ।
2. अन्तोगंगाय पासाणतले महन्तं आवाटं कारापेत्वा तत्थ धनं ततोपरि पासाणे संथरापेत्वा ···तं पकति पासाणतलं विय जातं गंगं विसज्जापेसि ।
3. समुद्रवसने शेभ्य आसमुद्रमपिश्रियः ।
उपायहस्तैराकृष्य ततः सोऽकृतनन्दसात् ॥
—परिशिष्टपर्वण; 7.81; पो० हि० ए० इ०, पृ० 234, टि० 2 में उद्धृत ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि उसने इक्ष्वाकु, पञ्चाल, काशेय, हैहय, कलिंग, अश्मक, कुरु, मैथिल, शूरसेन तथा वीतिहोत्र आदि उन क्षत्रिय वंशों का उन्मूलन किया था, जिन्होंने पुराणों के अनुसार शैशुनागों के साथ भारत के विभिन्न भागों पर शासन किया था (तुल्यकालं भविष्यन्ति सर्वेऽप्येते महीक्षितः) । इस साक्ष्य को जब हम नन्दों के साम्राज्य के विषय में क्लासिकल लेखकों तथा भारतीय इतिहास से ज्ञात छिट-पुट सूचनाओं के साथ मिलाते हैं तो नन्द साम्राज्य की सीमाओं का स्थूल परन्तु पर्याप्त विश्वसनीय चित्र बन जाता है ।

पुराणों में उल्लिखित मैथिल क्षत्रिय मिथिला के शासक थे । 'रामायण' की नायिका सीता के पिता जनक की राजधानी के रूप में यह नगर बहुत विख्यात रहा है । इसकी पहिचान नेपाल राज्य में स्थित जनकपुर से (जो उस स्थल से, जहां दरभंगा और मुजफ्फरपुर जिले मिलते हैं, कुछ उत्तर की ओर स्थित है) की जाती है । छठी शती ई० पू० में मिथिला राज्य उस वज्जिसंघ में सम्मिलित था जो अजातशत्रु के समय में मागध-साम्राज्य का अंग बन गया था । परन्तु उपर्युक्त पौराणिक अनुश्रुति में अगर कुछ सत्यांश है तो मानना पड़ेगा कि मिथिला के क्षत्रिय तराई वाले नेपाली इलाके में नन्द युग के प्रारम्भ तक अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाए रहे थे । शायद नन्दों ने वैशाली को अपना केन्द्र बनाकर उन पर आक्रमण किया और उन्हें अपने अधिकार में कर लिया । यहां यह ध्यान दिलाना अनुचित न होगा कि 'सुमतितन्त्र' नामक ग्रन्थ के अनुसार नन्दों ने स्वयं नेपाल अर्थात् काठमाड़ौ की घाटी पर भी शासन किया था ।[1] लेकिन इस परम्परा के समर्थन अथवा विरोध में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है ।

पुराणों में उल्लिखित कुरु जन आधुनिक देहली-पानीपत-थानेसर प्रदेश में रहते थे, पञ्चाल गंगा-यमुना दोआब के उपरले भाग में, शूरसेन मथुरा प्रदेश में, काशेय आधुनिक वाराणसी प्रदेश में और इक्ष्वाकु कोसल या अवध में । स्थूलतः ये पांचों राज्य उस भूखण्ड में स्थित थे जिसमें आधुनिक उत्तर प्रदेश और देहली राज्य हैं । इनमें कोसल के साथ मगध का संघर्ष प्रसेनजित् और अजातशत्रु के समय ही प्रारम्भ हो गया था । प्रसेनजित् के पुत्र विडूडभ के उपरान्त कोसल का इतिहास अन्धकारमय हो जाता है । लेकिन नन्दों ने कोसल को अधिकृत किया था इसका एक सूक्ष्म सा संकेत 'कथासरित्सागर' में उपलब्ध है जिसमें कोसल के सुप्रथित नगर अयोध्या में नन्दराज के सैनिक शिविर की स्थिति का उल्लेख हुआ है । हो सकता है इसी समय कोसल के इक्ष्वाकुओं की एक शाखा दक्षिण में जाकर बसी हो जहां हम उसे तीसरी शती ई० में कृष्णा की निचली घाटी में बसा पाते हैं । काशी राज्य जो कोसल के दक्षिण में था, मागध साम्राज्य के प्रभावान्तर्गत बिम्बिसार और अजातशत्रु के युग में ही आ गया था । पुराणों के अनुसार शिशुनाग ने भी राजसत्ता पर अधिकार करके वहां अपने पुत्र को वायसराय नियुक्त किया था (वाराणस्यां सुतं स्थाप्य श्रयिष्यति गिरिव्रजम्) । महापद्मनन्द ने इस राजकुमार को अथवा उसके किसी उत्तराधिकारी को पराजित करके 'काशेयों' को अधिकृत किया होगा ।

1. रेग्मी, एन्श्येण्ट नेपाल, पृ० 68; दे०, गोयल, श्रीराम, प्राचीन नेपाल का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 46 ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पालि साहित्य में नन्द को काशी का राजा प्रायः बताया गया है।[1]

काशी और कोसल के पश्चिम में स्थित कुरु, पञ्चाल और शूरसेन जनपदों पर नन्द युग के पूर्व मगध के अधिकार का कोई प्रमाण नहीं मिलता,[2] परन्तु क्लासिकल लेखकों का साक्ष्य यह प्रमाणित करता है कि ये सब भूखण्ड नन्दों के अधिकार में थे। कर्टियस के अनुसार जब सिकन्दर व्यास नदी के तट पर पहुंचा तो फेगेलस नामक भारतीय नरेश ने उसे बताया था कि व्यास नदी के परे "विशाल रेगिस्तान है· · ·उसके बाद गंगा नदी है जो समस्त भारत की सबसे बड़ी नदी है और उसके परे स्थित प्रदेश में गेंगेरीडाई (Gangaridae) तथा प्रासाई (Prasii) नाम की जातियां रहती हैं जिनका राजा एग्रेम्मिज़ (Agrammes) है"।[3] उसकी राजधानी पाटलिपुत्र (पालिबोथ्रा) बताई गई है। डायोडोरस का विवरण भी ऐसा ही है, इस अन्तर के अतिरिक्त कि वह राजा का नाम एग्रेम्मिज़ के स्थान पर जेण्ड्रेमिज़ (Xandrames) बताता है।[4] इस वर्णन से स्पष्ट है कि व्यास नदी और एग्रेम्मिज़ के साम्राज्य के मध्य मात्र रेगिस्तान था कोई स्वतन्त्र राज्य नहीं। इसलिए नन्द साम्राज्य पश्चिम में कुरु देश तक विस्तृत था इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता। सिकन्दर के भय से कनीयस् पुरु (Younger Poros) का, जो पंजाब में शासन करता था, भागकर गेंगेरीडाई राज्य में जाना (डोयोडोरस) भी यही संकेत देता है। इन तथ्यों से आभास मिलता है कि क्लासिकल लेखकों का गेंगेरीडाई से आशय गंगा की उपरली घाटी में रहने वाली जातियों से था। 'प्रासाई' का तो अर्थ ही होता है 'प्राच्य' अर्थात् 'पूर्व के निवासी'। लेकिन मेगास्थनिज़ ने गेंगेरीडाई का अर्थ 'गंगा के मुहाने वाले प्रदेश के निवासी' बताया है। उस अवस्था में आधुनिक उत्तर प्रदेश और बिहार को 'प्रासाई' में परिगणित करना होगा।

नन्दों के उदय के समय शासन करने वाले दो क्षत्रिय वंश—हैहय और वीतिहोत्र—मालवा के थे और परस्पर घनिष्ठतः सम्बन्धित थे। 'वायुपुराण' के अनुसार वीतिहोत्र हैहयों के पांच गणों में से एक थे।[5] मध्य काल में हैहय नर्मदा की घाटी में निवास करते मिलते हैं। उनकी राजधानी माहिष्मती की पहिचान पार्जिटर ने मान्धाता से की है और अन्य विद्वानों ने नर्मदा के उत्तरी तट पर स्थित महेश्वर स्थल से। हैहय और वीतिहोत्रों का घनिष्ठ सम्बन्ध अवन्ति के साथ था जिसपर छठी शती ई० पू० में प्रद्योत वंश ने शासन किया था। नन्दों के द्वारा हैहयों और वीतिहोत्रों का उन्मूलन असम्भव नहीं लगेगा अगर हम ध्यान रखें कि (1) पुराणों के अनुसार नन्दों के पूर्व शैशुनाग राजवंश ने अवन्ति के प्रद्योतों के यश का विनाश किया था (हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनागो भविष्यति)। इस तथ्य के प्रकाश में नन्दों के द्वारा हैहयों और वीतिहोत्रों का उन्मूलन इस प्रदेश की विजय

1. सन्दर्भों के लिए दे०, प्रकाश, स्टडीज़, पृ० 106।
2. 'महाभारत' में गंगा के तट पर स्थित महापद्मपुर नगर का उल्लेख है।
3. क्ला० एका०, पृ० 128।
4. वही, पृ० 172।
5. दे०, पो० हि० ए० इ०, पृ० 234, टि० 1

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की तरफ अगला कदम प्रतीत होता है। यह सही है कि पुराणों में एक स्थल पर वीतिहोत्रों का अवसान प्रद्योतों के उदय के समय बताया गया है, परन्तु असम्भव नहीं है कि शिशुनाग ने प्रद्योतों का उन्मूलन करके वीतिहोत्रवंशीय कुछ राजाओं को पुनः प्रतिष्ठापित कर दिया हो और उन्हीं का उन्मूलन नन्दों ने किया हो। स्वयं पुराणों द्वारा शिशुनाग राजाओं के समकालीन क्षत्रिय वंशों में वीतिहोत्रों की गणना से[1] यही संकेत मिलता है। (2) मालवा और गुजरात नन्दों के बाद शासन करने वाले चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य का अंग थे। इसलिए नन्दों द्वारा माहिष्मती तक शासन कदापि असम्भव नहीं कहा जा सकता। (3) जैन लेखकों के अनुसार नन्दों ने अवन्ति पर शासन किया था।

कलिंग देश (आधुनिक उड़ीसा राज्य और कुछ निकटवर्ती भूखण्ड) पर नन्दों के आधिपत्य का निश्चित रूप से समर्थन खारवेल के हाथिगुम्फा-अभिलेख से होता है। इसमें दो स्थलों पर 'नन्दराज' का उल्लेख किया गया है। एक स्थल पर कहा गया है कि खारवेल 'तीन सौ साल पूर्व नन्दराज द्वारा खुदवाई गई नहर को अपने शासन के पांचवें वर्ष तनसुलियवाट से राजधानी में लाया।'[2] इसके बाद खारवेल के शासन के बारहवें वर्ष की चर्चा करते हुए कहा गया है कि खारवेल उस जिन प्रतिमा को ले आया था जो नन्दराज कलिंग से उठाकर ले गये थे।[3] इस 'नन्दराज' की पहिचान का प्रश्न बड़ा ही विवादास्पद है। सामान्यतः रायचौधुरी, सरकार तथा अन्यान्य अधिकांश विद्वानों ने उसे मगध का प्राङ्मौर्ययुगीन नन्द सम्राट् ही माना है। परन्तु बरुआ[4] का आग्रह था कि यह नन्दराज अशोक के पूर्व शासन करने वाला नरेश नहीं हो सकता क्योंकि अशोक के अभिलेखों में यह दावा किया गया है कि उसके द्वारा जीते जाने के पूर्व तक कलिंग 'अविजित' देश रहा था। लेकिन जैसा कि रायचौधुरी ने ध्यान दिलाया है कि इस प्रकार के दावे विश्वसनीय नहीं होते। उदाहरणार्थ, जहांगीर ने यह स्पष्टतः गलत दावा किया है उसके पूर्व कांगड़ा पर किसी भी सुल्तान ने विजय प्राप्त नहीं की थी।[5] कुछ विद्वानों का विचार है कि हाथिगुम्फा-लेख में उल्लिखित 'नन्दराज' कलिंग का कोई स्थानीय राजा रहा होगा। लेकिन इस नन्दराज के विषय में यह कहा जाना कि वह कलिंग से कोई मूर्ति उठा ले गया था, और उसकी चर्चा खारवेल द्वारा मगध और अंग

1. द्र०, डा० क० ए०, 24, 69।

2. पंचमे च दानी वसे नंदराज तिवससत ओघाटितं तनसुनलिय वाटा पाणाडिं नगरं पवेसयति सो · · ·। (पञ्चमे च इदानीं वर्षे नन्दराज त्रिवर्षशतोद्घाटितां (=त्रिशतवर्षो०) तनसुलिय वर्त्मनः प्रणालीं नगरं (=राजधानीं) प्रवेशयति· · ·॥ स० इ०, पृ० 215, 220।

3. नन्दराज नीतं च कालिंग जिनं संनिवेस· · ·अंग मगध वसुं च नयति (नन्दराज नीतं च कलिंग जिनं सन्निवेश· · ·अंग मगध वसुं च नयति)। स० इ०, पृ० 217, 220।

बरुआ के अनुसार (आई० एच० क्यु०, 14, 1938, पृ० 259 अ०) यहां 'नन्दराजजितं कलिंग जन संनिवेसं' पाठ है। इसका अर्थ है 'नन्दराज द्वारा विजित कलिंग जनों का सन्निवेश'। 'सन्निवेश' का अर्थ होता है स्टेशन, चौकी इत्यादि।

4. आई० एच० क्यु०, 14, 1938, पृ० 259 अ०।

5. पो० हि० ए० इ०, पृ० 230, टि० 2।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विजय के प्रसंग में किया जाना उसे मगध का शासक सिद्ध करते हैं। दूसरे, जायसवाल ने एक प्राचीन संस्कृत पाण्डुलिपि का एक श्लोक उद्धृत किया है जिसमें किसी नन्दराज द्वारा कलिंग जीतने की चर्चा है।[1] तीसरे, इतिहास में खारवेल के पूर्व शासन करने वाला कलिंग का कोई स्थानीय नन्द वंश सर्वथा अज्ञात है।[2] जायसवाल का कहना है कि हाथिगुम्फा-लेख में चर्चित नन्दराज नन्दवंशीय न होकर शैशुनाग वंश का नन्दिवर्धन था। उनके इस सुझाव को आजकल प्रायः कोई नहीं मानता। शिशुनाग-वंशीय नरेशों का कलिंग से सम्बन्ध सर्वथा अज्ञात है। वस्तुतः जायसवाल द्वारा इस मत को प्रतिपादित किए जाने का कारण यह था कि वह खारवेल को पुष्यमित्र शुंग और यवनराज डिमिट्रियस का समकालीन मानते थे। यह विश्वास निश्चय ही गलत है।

अश्मक जाति या वंश का निवास दक्षिणापथ में गोदावरी की घाटी के एक भाग में था। उनकी राजधानी पोतलि, पोतन या पोदन थी जिसकी पहिचान गोदावरी और मंजीरा के संगम के समीप स्थित बोधन स्थल (निजामाबाद के निकट) से की जाती है। गोदावरी नदी के तट पर नौ-नन्द देहरा (आधुनिक नान्देड़) नामक नगर की स्थिति से यह संकेतित माना जा सकता है कि 'नौनन्दों' ने अश्मक राज्य पर विजय प्राप्त की थी। इसका परोक्ष रूप से समर्थन संगमयुगीन तमिल ग्रन्थों में 'पाटिलपुत्र' के 'अत्यधिक धनी' नन्दों के उल्लेख से भी होता है।[3] इसके अतिरिक्त यह भी स्मरणीय है कि मैसूर से प्राप्त कई मध्यकालीन अभिलेखों में (12वीं शती ई०) कुन्तल देश को नन्द-साम्राज्य में सम्मिलित बताया गया है। यद्यपि इस परम्परा का समर्थन किसी अन्य साक्ष्य से नहीं होता लेकिन हम अगर यह ध्यान रखें कि चन्द्रगुप्त मौर्य के जमाने से ही कृष्णा के दक्षिणवर्ती कुछ प्रदेश मौर्य साम्राज्य में सम्मिलित थे तो नन्दों का कुन्तल तक शासन एकदम असम्भव धारणा नहीं लगेगी। जो भी हो, ज्ञात तथ्यों के प्रकाश में नन्दों का दक्षिणापथ में कलिंग तथा अश्मक प्रदेश पर आधिपत्य तो निस्संकोच माना ही जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि यद्यपि नन्द साम्राज्य के विस्तार के विषय में अधिकांश सामग्री अपेक्षया परवर्तीयुगीन है, परन्तु खारवेल के हाथिगुम्फा-अभिलेख तथा क्लासिकल लेखकों का सम्मिलित साक्ष्य, जिनमें अविश्वास नहीं किया जा सकता, नन्दों को आधुनिक उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल तथा उड़ीसा राज्य के काफी बड़े भूभाग

1. कै० हि० इ०, I, पृ० 281 पर उद्धृत।

2. कलिंग का नन्द या नन्दोद्भव वंश परवर्तीयुगीन है। उसका मगध के नन्द वंश से सम्बन्ध अज्ञात है।

3. जैन ग्रन्थ 'भगवती सूत्र' (15.1) में विन्ध्य पर्वत की तलहटी में स्थित शतद्वार नामक नगर पर शासन करने वाले एक शक्तिशाली नरेश देवसेन विमलवाहन महापद्म (महापउम) का उल्लेख है जिसका समय मक्खली गोशाल से 'बहुत बाद में' बताया गया है। एक अन्य पाठ के अनुसार शतद्वार 'पुण्ड्र' (=पुण्ड्रवर्धन) में था। 'कथासरित्सागर' में भी पुण्ड्रवर्धन के राजा देवसेन की चर्चा है। बी० एम० बरुआ ने 'भगवती सूत्र' के महापद्म को महापद्मनन्द माना है (जे० डी० एल०, 2, 1920, पृ० 67) जबकि बैशम को इसमें शंका है (हिस्टरी ऑव दी आजीविकज, पृ० 142-45)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का स्वामी सिद्ध करता है। इनके अतिरिक्त उनका मालवा तथा अश्मक प्रदेश के स्वामी होना भी पर्याप्त सबल सम्भावना है। कुन्तल पर उनका आधिपत्य मात्र मध्यकालीन अभिलेखों में चर्चित है, परन्तु उस क्षेत्र में मौर्यों की सफलता के प्रकाश में इसकी सम्भावना भी एकदम विस्तृत नहीं की जा सकती।

उग्रसेन-महापद्मनन्द के उत्तराधिकारी तथा उनका तिथिक्रम

पुराणों के अनुसार महापद्मनन्द के उपरान्त (जिसकी मृत्यु 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' के अनुसार 67 वर्ष की आयु में रोगग्रस्त हो जाने से हुई) उसके आठ पुत्रों ने शासन किया।[1] बौद्ध साहित्य में सभी नवनन्दों को परस्पर भाई (नवभातरो) बताया गया है। पुराणों में महापद्मनन्द के उत्तराधिकारियों में केवल सुकल्प का नाम दिया गया है (सुकल्पादि सुता ह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः)। सुकल्प नाम के सहल्य तथा सुकल्य आदि रूप भी मिलते हैं। इनमें, जैसाकि बरुआ ने ध्यान दिलाया है, सहल्य रूप 'दिव्यावदान' में प्रदत्त सहली नाम से मेल खाता है। पुराणों में उसके अन्य भाइयों के नाम नहीं दिए हैं। यह कमी 'महाबोधिवंश' से दूर होती है, लेकिन इसमें प्रदत्त सूची 'कम्बोडियायी महावंश' को छोड़कर अन्य किसी साक्ष्य से अभी तक समर्थित नहीं हो पाई है। ये नाम हैं : पण्डुक, पण्डुगति, भूतपाल, राष्ट्रपाल, गोविषाणक, दशसिद्धक, कैवर्त तथा धन। 'कम्बोडियायी महावंश' में इनमें केवल प्रथम दो नाम भिन्न हैं—इसमें उन्हें कनक तथा चन्द्र गुप्तिक (=चन्द्रगुप्तक) कहा गया है।[2] इनमें धननन्द की पहिचान क्लासिकल लेखकों द्वारा उल्लिखित एग्रेम्मिज़ (कर्टियस) या ज़ेण्ड्रेमिज़ (डायोडोरस) से की जाती है। कुछ विद्वानों ने ज़ेण्ड्रेमिज़ (Xandrames) नाम का संस्कृत रूप चन्द्रमस् मान कर उसकी पहिचान स्वयं चन्द्रगुप्त मौर्य से की है।[3] लेकिन एक तो गेंगेरीडाई-नरेश को डायोडोरस

1. कुछ विद्वानों का कहना है कि नन्द वंश की सार्वभौम सत्ता उनके संयुक्त परिवार के हाथों में थी। 'चाणक्य-कथा' नामक ग्रन्थ के अनुसार महापद्म के बाद उसके पुत्र राज्य के उत्तराधिकारी बने। वे सब मिलकर शासन करते थे और उनमें प्रति वर्ष बारी-बारी से एक को राजा चुन लिया जाता था, पर सार्वभौम सत्ता उन सबके हाथों में सम्मिलित रूप से रहती थी। दे०, मुकर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृ० 99।

2. कनिट्ठभातरो तस्स अच्चयेनेव होन्ति ते।
उग्गसेननन्दमेको कनकनन्दमाह्वयो॥
चन्द्रगुत्तिक (चन्दगतिक) नन्दो च भूतपालनन्दो तथा।
रट्ठपालनन्दो चेव गोविसांक नन्दको॥
दससिद्धिकनन्दो च केवट्टनन्दको तथा।
नुक्कमेन्नुक्कमेनेव खत्तिया अट्ठ पि जना॥
पाटलिपुत्तनगरे रज्जं समनुसासयुं।
कनिट्ठो धननन्दो स सब्बेसं नवमो ततो॥
द्वावीसति च वस्सानि रज्जं समनुसासयि।

3. अय्यर वेंकटेश्वर, आई० ए०, 1915, अंक 44, पृ० 41-52; एफ० डब्ल्यू० टॉमस ने भी एग्रेम्मिज़ के स्थान पर ज़ेण्ड्रेमिज़ नाम सही मान कर उसका संस्कृत रूप चन्द्रमस् माना है, परन्तु उसकी पहिचान उन्होंने नन्दनरेश से ही की है चन्द्रगुप्त मौर्य से नहीं (दे०, कै० हि० इ०, पृ० 422)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने 'ज़ेण्ड्रेमिज़' अवश्य कहा है, परन्तु अन्य क्लासिकल लेखक उसे एग्रेम्मिज़ ही कहते हैं। दूसरे, प्लुटार्क आदि लेखक एग्रेम्मिज तथा एण्ड्रोकोट्टोस् (=चन्द्रगुप्त मौर्य) में स्पष्ट अन्तर बताते हैं। जस्टिन भी इस अन्तर से परिचित हैं। तीसरे, ज़ेण्ड्रेमिज़ एक नाई का, जो राजा बन गया था, पुत्र था जबकि सेण्ड्रोकोट्टोस् या एण्ड्रोकोट्टोस् ने एक नए राजवंश की स्थापना की थी।

महापद्मनन्द के सभी उत्तराधिकारियों का व्यक्तित्व एकदम धुंधला है। अन्तिम पुत्र धननन्द-औग्रसैन्य के विषय में भी हम केवल इतना ही जानते हैं कि सम्भवतः उसे अपने पिता के समान सम्पत्ति एकत्र करने का शौक था और उसे वह प्रजाहित के लिए व्यय किया करता था। यह सर्वथा सम्भव है कि वह और उसके भाई लोग उग्रसेन की उस प्रेमिका रानी के गर्भ से उत्पन्न हुए हों जिसके प्रभाव से उग्रसेन अन्तिम शैशुनाग नरेश का विश्वासपात्र बन गया था। कर्टियस का यह कथन भी कि प्रथम नन्द ने अपने स्वामी-नरेश के पुत्रों का वध करके 'वर्तमान राजा को पैदा किया' यही संकेत देता है। इस अनुमान से पुराणों में उल्लिखित शैशुनाग-नन्द वंशों के सम्बन्ध की भी कुछ व्याख्या हो जाती है। हो सकता है कि पुराणकारों ने अन्तिम शैशुनाग राजा की रानी से अन्तिम आठ नन्दों की उत्पत्ति बताने के बजाय गलती से प्रथम नन्द को ही उसके गर्भ से उत्पन्न लिख दिया हो।

जब 326 ई० पू० में सिकन्दर ने पंजाब पर आक्रमण किया और युवक चन्द्रगुप्त ने उससे भेंट की, तब सम्भवतः महापद्म का अन्तिम पुत्र धननन्द ही शासन कर रहा था। इस तिथि के उपरान्त 4-5 वर्ष के अन्दर ही चन्द्रगुप्त मौर्य ने नन्द वंश का विनाश कर डाला। इससे स्पष्ट है कि नन्दों ने चतुर्थ शती ई० पू० के तृतीय पाद में अवश्य ही शासन किया था। लेकिन उनकी निश्चित तिथियां अभी तक अज्ञात हैं। आर० डी० बनर्जी जैसे कुछ विद्वानों ने खारवेल के हाथिगुम्फा-अभिलेख में नन्द-संवत् का उल्लेख माना है।[1] परन्तु भारत में संवतों द्वारा तिथि गणना की परम्परा नन्दों के काफी समय बाद विदेशी राजाओं ने चलाई थी।[2] वस्तुतः हाथिगुम्फा लेख का तिथि विषयक साक्ष्य अत्यन्त विवादास्पद है। इसके आधार पर अधिक से अधिक खारवेल की तिथि निश्चित की जा सकती है, नन्दों की नहीं।[3]

प्रथम नन्द नरेश महापद्मनन्द का शासनकाल 'मत्स्यपुराण' में 88 (अष्टाशीति) वर्ष का बताया गया है। इसकी तुलना में 'वायुपुराण' में प्रदत्त 28 वर्ष (अष्टाविंशति)

1. नन्द संवत् की चर्चा 'सुमतितन्त्र' नामक नेपाली ग्रन्थ में भी हुई है (गोयल, श्रीराम, प्राचीन नेपाल का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 46)। परन्तु इससे भी यह सिद्ध नहीं होता कि नन्द काल में कोई संवत् प्रचलित था (वही)।

2. सरकार, इण्डियन एपिग्राफी, पृ० 242 अ०।

3. एस० कोनो (एक्टा ओरियण्टेलिया, 1, पृ० 22-26) ने 'ति-विस-सत' संख्या को नन्दराज और खारवेल के मध्य की अवधि नहीं वरन् नन्दराज के शासन काल में किसी पूर्वकालीन संवत् की तिथि माना है। परन्तु ऐसे किसी सम्वत् का अस्तित्व अभी तक सिद्ध नहीं हो पाया है। खारवेल तथा अशोक के लेखों में उनके राज्यकाल के वर्षों का उल्लेख है, किसी संवत् में तिथियाँ नहीं दी गई हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
अधिक सही संख्या लगती है। शायद मत्स्य० में 'अष्टाविंशति' के स्थान पर 'अष्टाशीति' पाठ किसी लिपिक की गलती से हो गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार उसके पुत्रों ने 16 वर्ष शासन किया। इस प्रकार इस परम्परानुसार नन्दों के कुल शासन का योग 28+16=44 वर्ष आता है। यहां यह तथ्य अत्यन्त रोचक है कि सिंहली अनुश्रुतियों में सब नन्दों का शासन काल मिलाकर 22 वर्ष का बताया गया है और कालाशोक के पुत्रों का भी (जब वस्तुतः महापद्म ही सत्ताधारी था) 22 वर्ष। इस प्रकार इस परम्परानुसार भी नन्दों का यथार्थ शासन 22+22=44 वर्ष रहा। अतः हम इस तिथिक्रम को सही मान सकते हैं।

नन्दों का मूल्यांकन : एक नया दृष्टिकोण

नन्द-नरेश हीनजातीय होने के कारण अपने समय में बहुत हेय दृष्टि से देखे जाते थे। पंजाब के राजा पोरस ने सिकन्दर को बताया था कि गंगेरीडाई का राजा बिल्कुल निकम्मे चरित्र का था और उसका कुछ भी सम्मान नहीं था। लोग उसे नापित-पुत्र समझते थे। प्लुटार्क के अनुसार भी चन्द्रगुप्त मौर्य कहा करता था कि 'प्रजा नन्दराजा को उसके दुष्ट स्वभाव और नीच जन्म के कारण' घृणा से देखती और हेय समझती थी। पुराणों में नन्दों को 'अधार्मिक' और 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' में नीच कहा जाना भी उनकी अलोकप्रियता का प्रमाण है। आधुनिक विद्वान् भी नन्दों का चित्रण प्रायः प्रजापीड़क और लोभी नृपतियों के रूप में करते हैं। परन्तु नन्दों का युग भारतीय इतिहास का एक गौरवमय युग था। यह वह युग था जब प्रथम बार समाज के हीनतर वर्गों ने उच्च वर्णों की सत्ता का सफल विरोध किया और यह सिद्ध किया कि शूद्र जन भी योग्य ही नहीं होते, महान् सम्राट् भी बन सकते हैं। सम्भवतः जिस वैचारिक आन्दोलन के परिणामस्वरूप धार्मिक क्षेत्र में बौद्ध और जैन धर्मों का उदय हुआ, उसी ने ऐसा राजनीतिक वातावरण भी पैदा किया जिसका परिणाम शूद्रजातीय साम्राज्यिक वंश की स्थापना के रूप में सामने आया। नन्दों ने प्रथम बार गंगा की सम्पूर्ण घाटी को ही नहीं उत्तर भारत के अधिकांश तथा दक्षिणापथ के पर्याप्त भूभाग को एकता के सूत्र में आबद्ध किया। उनका युग जनपद युग के अवसान एवं मागध-साम्राज्य के प्रसार की तीसरी अवस्था का सूचक है। इस साम्राज्य का प्रसार बिम्बिसार ने काशी और अंग को तथा अजातशत्रु ने वज्जिसंघ को जीतकर प्रारम्भ किया। शैशुनाग राजाओं ने इसको अवन्ति तक विस्तृत किया। अब नन्दों ने इसमें कलिंग और अश्मक आदि तथा उत्तर-पश्चिम में कुरु, पंचाल आदि सम्मिलित करके अखिल भारतीय साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न को चरितार्थ करने की ओर अगला कदम उठाया। इतना ही नहीं उन्होंने इस साम्राज्य की सुरक्षा एवं आगामी प्रसार के हेतु विशाल सेना एकत्र की और राजकोष को भरा। अगर वे ऐसा न करते तो शायद मौर्यों को वे सफलतायें न मिलतीं जिनके कारण उनका नाम इतिहास में इतना प्रसिद्ध है। इस दृष्टि से महापद्मनन्द को भारत का प्रथम ऐतिहासिक नरेश कहना अनुचित नहीं है।

नन्दों की शासन-व्यवस्था के विषय में बहुत कम तथ्य ज्ञात हैं। पौराणिक साक्ष्या-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नुसार महापद्म निश्चितरूपेण एकतन्त्रात्मक साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। उसका 'सर्वक्षत्रान्तक,' 'एकच्छत्र' तथा 'एकराट्' होना यही संकेत देता है। उसका यह प्रयास मागध-साम्राज्य के प्राचीनतर इतिहास (जिसमें वज्जिसंघ और मल्लादि जातियों की शक्ति को पूर्णतः तोड़कर उनके राज्यों को साम्राज्य में मिला दिया गया था) तथा इसके मौर्यकालीन विकास के साथ संगत है। लेकिन यूनानी लेखकों ने गेंगेरीडाई तथा प्रासाई का पृथक्तः उल्लेख करते हुए उन्हें एक ही नरेश—एग्रेम्मिज़—के अधीन बताया है। इसके आधार पर कल्पना की जा सकती है कि शायद नन्दों ने (जिनकी राजधानी प्रासाई प्रदेश में स्थित पाटलिपुत्र नगर था) गेंगेरीडाई जाति अर्थात् गंगा के मुहाने वाले प्रदेश में रहने वालों को कुछ आन्तरिक स्वतन्त्रता दे रखी थी। प्लुटार्क के कथन के अंग्रेजी अनुवाद में तो प्रासाई और गेंगेरीडाई के 'नरेशों' का स्पष्ट उल्लेख हुआ है[1] यद्यपि वह भी उनकी सेना की सम्मिलितरूपेण ही चर्चा करता है।[2] इस स्थिति का परोक्ष रूप से समर्थन एरियन द्वारा प्रदत्त इस सूचना से भी होता है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय व्यास के पूर्व में स्थित प्रदेश में, जो अत्यन्त उर्वर था और जिसके निवासी योग्य कृषक थे, "आन्तरिक प्रशासन की सुन्दर व्यवस्था थी जिसमें जनता पर एक ऐसा कुलीन वर्ग शासन करता था जो अपनी सत्ता का प्रयोग बहुत ही न्यायपूर्वक और उदारता के साथ करता था।"

यह वर्णन एग्रेम्मिज़ के साम्राज्य के केन्द्रीय भाग के वर्णन से भिन्न है जहां सिकन्दर को प्राप्त सूचनानुसार प्रजा अपने राजा से 'घृणा करती थी'। जैसा कि हम देख चुके हैं व्यास के पूर्व में स्थित कुरु-पंचाल प्रदेश निश्चित रूप से नन्द साम्राज्य में सम्मिलित था, इसलिए यह निष्कर्ष निकालना अनिवार्य सा हो जाता है कि नन्दों ने इसे कुछ आन्तरिक स्वतन्त्रता प्रदान कर रखी थी। इन साक्ष्य से स्पष्ट है कि नन्दों ने अपने साम्राज्य के केन्द्रीय भाग—कोसल (जहां उनका एक शिविर था), काशी (जिसके राजा के रूप में वे पालि साहित्य में चर्चित हैं), मगध (जहां उनकी राजधानी थी) तथा वृजि प्रदेश (जिसकी राजधानी वैशाली के साथ उनका सम्बन्ध साहित्य में उल्लिखित है) आदि—को अपने पूर्ण नियन्त्रण में रखा हुआ था परन्तु गेंगेरीडाई (गंगा के मुहाने वाले प्रदेश) तथा कुरु, पंचाल आदि पश्चिमी प्रदेशों, और सम्भवतः कलिंग और मालवा को भी, आन्तरिक स्वतन्त्रता प्रदान कर रखी थी।[3] इससे साम्राज्य के दूरस्थ प्रान्तों पर उनकी पकड़ कुछ दुर्बल हो गई होगी। चन्द्रगुप्त मौर्य-नन्द संघर्ष विषयक कथाओं से भी, जिनमें चन्द्रगुप्त द्वारा सीमान्त प्रदेशों को आसानी से जीतने की चर्चा है, यही संकेत मिलता है।

1. क्ला० एका०, पृ० 198।

2. प्लुटार्क ने इन राजाओं को सम्मिलित सेना में हाथियों, घोड़ों और रथों की जो संख्या बताई है वह कर्टियस तथा डायोडोरस द्वारा प्रदत्त संख्या से अधिक है। लेकिन इसका कारण नन्दों की सेना के विषय में क्लासिकल लेखकों का भ्रमित होना लगता है। ध्यातव्य है कि प्लुटार्क ने पदातियों की संख्या वही बताई है जो कर्टियस तथा डायोडोरस ने।

3. यह व्यवस्था समुद्रगुप्त के साम्राज्य के संगठन से सादृश्य रखती है। दे०, गोयल, प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, 3, पृ० 142, 283-4।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नन्द साम्राज्य की प्रान्तीय व्यवस्था के विषय में और कोई तथ्य ज्ञात नहीं है। चतुर्थ शती ई० पू० में यूनानियों ने पंजाब में क्षत्रप, हाइपार्क तथा नोमार्क नामक जो प्रान्तीय और मण्डल पदाधिकारी देखे थे वैसे नन्द साम्राज्य में थे या नहीं, कहना कठिन है। इसी प्रकार नन्द नरेशों ने ग्राम-पदाधिकारियों की सभा को, जो हमें बिम्बिसार के युग में मिलती है, जीवित रखा या नहीं यह भी नहीं कहा जा सकता। लेकिन मौर्य काल में साम्राज्य की आहार, विषय तथा जनपद नामक इकाइयां तथा महामात्र, राजूक, प्रादेशिक और राष्ट्रीय नाम के पदाधिकारी नन्द काल में भी रहे होंगे यह अनायास कल्पनीय है।

नन्दों के विषय में यह धारणा आजकल प्रायः सर्वसम्मत सी है कि आर्थिक क्षेत्र में उनका ध्यान केवल धन एकत्र करने की तरफ था और उन्होंने अपनी प्रजा को चूसने के लिए बहुत भारी कर लगाए थे। लेकिन यह धारणा सम्भवतः सही नहीं है। यह हो सकता है कि वे व्यक्तिगत रूप से धनलोलुप रहे हों, लेकिन ध्यान रखना चाहिए कि वे भारतीय इतिहास में पहली बार एक लगभग अखिल भारतीय साम्राज्य स्थापित कर रहे थे। अभाग्यवश महापद्म-उग्रसेन द्वारा लड़े गये युद्धों का विस्तृत वर्णन अब उपलब्ध नहीं है परन्तु उसे बहुत कुछ वैसी ही समस्याओं का सामना करना पड़ा होगा जैसी बाद में समुद्रगुप्त के सामने आई थीं। अपनी सामरिक, प्रशासकीय तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे अतुल धन की आवश्यकता पड़ी होगी। इसके लिए उसने प्रजा पर नये कर लगाए तो कोई आश्चर्य नहीं। 'महावंस' में कहा गया है कि अन्तिम नन्द राजा ने "अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त पशुचर्मों, गोंद, पेड़ों तथा पाषाणों पर भी कर लगाया था।" इस ग्रन्थ में इन करों को बहुत प्रजापीड़क मानकर उल्लिखित किया गया है, परन्तु हम अगर मौर्यों की अर्थ-व्यवस्था को ध्यान में रखें तो ये कर कदापि अनुचित प्रतीत नहीं होंगे। लेकिन सम्भवतः प्रथम बार लगाए जाने के कारण ये तत्कालीन भारतीयों को अनुचित लगे थे और नन्दों की बदनामी का कारण हो गये थे।

नन्द-मौर्य काल में भारत में जो सिक्के चलते थे उन्हें आजकल आहत सिक्के या 'पंच-मार्क्ड क्वायन्स्' कहा जाता है। ऐसी कुछ मुद्राएं, जो गोरखपुर से मिली हैं, नन्दकालीन मानी जाती हैं। 'इन पर मौर्य काल से पहले का प्रतीक चिह्न, एक पहाड़ी पर खरगोश तथा कुत्ता' बना हुआ है जिसे हम नन्द राजाओं का प्रतीक-चिह्न मान सकते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इनमें बहुत से सिक्कों पर मौर्यों ने स्वयं अपने प्रतीक-चिह्न की मुहर लगाकर उन्हें 'कोश प्रवेश्य' अर्थात् वैध चल-मुद्रा बना दिया था. . .स्मरणीय है कि 'काशिका' में इस बात का उल्लेख मिलता है कि नन्द वंश के राजाओं ने अपना एक मानदण्ड प्रचलित किया था (नन्दोपक्रमणि मानानि 2.4.21; 6.2.14)।"[1]

नन्द नरेशों को प्रायः कंजूस और प्रजापीड़क माना जाता है[2] लेकिन हमारे विचार से

1. मुकर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृ० 283।
2. रायचौधुरी, ए० न० मौ०, पृ० 24; बुद्धप्रकाश, पूर्वो०, पृ० 131।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ज्ञात तथ्य उनके शासन का एक सर्वथा भिन्न चित्र भी प्रस्तुत करते हैं। अनेक पालि ग्रन्थों में नन्द काल में प्रजा के सुखी होने की चर्चा है।[1] एक ग्रन्थ में कहा गया है कि नन्द राजा के पास कल्पवृक्ष था जिससे उसे और उसकी प्रजा को देवी वस्त्र मिला करते थे। 'मुद्राराक्षस' में एक स्थल पर चन्दनदास से बातें करते समय चाणक्य चिन्ता प्रकट करता है कि कहीं चन्द्रगुप्त की त्रुटियों से प्रजा को पिछले राजा (अन्तिम नन्द नरेश) के गुण तो याद नहीं आते। इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थल पर राक्षस अपने भूतपूर्व स्वामी (नन्द नरेश) के प्रति नागरिकों के भक्तिभाव का उल्लेख करता है। वह जगह-जगह उसे गुणी व लोकप्रिय भी बताता है। इससे स्पष्ट है कि विशाखदत्त के अनुसार नन्दराज प्रजा के कम-से-कम एक वर्ग में बहुत प्रिय था और उसके मन्त्री भी उसके प्रति निष्ठावान् थे। नन्दों में हुए इस परिवर्तन का संकेत 'परिशिष्ट पर्वण' में भी सुरक्षित है जो एक स्थल पर प्रथम नन्द को 'गणिकापुत्र' कहता है परन्तु अन्यत्र बताता है कि अन्तिम नन्द नरेश अपने को क्षत्रिय मानता था। शायद नन्द वंश के पतन तक जनता के एक वर्ग में उनको क्षत्रिय मानने की परम्परा चल पड़ी थी।

नन्दों द्वारा किये गये जन-कल्याण के कई कार्य ज्ञात हैं। कलिंग में, जो उनके द्वारा जीता गया प्रदेश था, एक नहर का बनवाया जाना उनका प्रजाहित के प्रति सचेष्ट रहने का प्रमाण है। अगर 'कथासरित्सागर' और 'बृहत्कथामंजरी' का विश्वास किया जाय तो नन्द युग में पाटलिपुत्र में लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का वास था। नन्द राजा अपने अतुल धन का उपयोग संस्कृति और साहित्य के संरक्षण में करते थे। इन ग्रन्थों के अनुसार वर्ष, उपवर्ष, पाणिनि, कात्यायन तथा वररुचि—ये सभी नन्दों की राजधानी की शोभा बढ़ाते थे। 'काव्यमीमांसा' के लेखक राजशेखर ने भी, जो महेन्द्रपाल प्रतिहार का मन्त्री और कवि था, लिखा है कि 'कहा जाता है कि पाटलिपुत्र समस्त शास्त्रकारों, विभिन्न दर्शन पद्धतियों के संस्थापकों तथा प्रवर्तकों की परीक्षा (शास्त्रकार परीक्षा) का केन्द्र था। यहां पर वर्ष, उपवर्ष, पाणिनि, पिंगल तथा व्याडि जैसे सुविख्यात सृजनात्मक विद्वानों की परीक्षा ली गई। वररुचि तथा पतंजलि ने भी इस नगर में परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद ही विद्वानों के रूप में ख्याति अर्जित की।[2] हो सकता है इन विद्वानों में कुछ नन्द-युगीन रहे हों।

नन्द नरेश बहुत दानी भी थे। 'सुखबोधा' तथा 'आवश्यक सूत्र' आदि ग्रन्थों में प्रदत्त जैन कथाओं के अनुसार नवां नन्द राजा कार्तिक पूर्णिमा को (कत्तिय पुण्णिमाए) पाटलिपुत्र में बहुत दान दिया करता था। 'वंसत्थप्पकासिनी' नामक बौद्ध ग्रन्थ के अनुसार तो यह दान प्रतिदिन दिया जाता था। इस ग्रन्थ के अनुसार दान दिये जाने वाले धन की व्यवस्था के लिए (जो प्रतिवर्ष एक करोड़ मुद्राएं होता था) नन्द राजा ने एक 'दानग्ग' (दान-विभाग) खोल रखा था जिसका संचालन एक 'संघ' करता था। इसके सदस्य

1. वण्णवा बलवा सुखी यावता नंदराजस्स।
   विजितस्मि पटिच्छादा ततो बहुतरा भन्ते॥ पेतवत्थु, 3.2.18
2. दे० मुकर्जी, च० मौ० का०, पृ० 40।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विद्वान् ब्राह्मण ही हो सकते थे और उनमें सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण को अध्यक्ष (संघब्राह्मण) चुना जाता था। उससे अधिक विद्वान् ब्राह्मण के आ जाने पर उसे वह पद छोड़ना पड़ता था। स्वयं नन्द नृपति बीच-बीच में आकर दान कार्य की देख-भाल करता था। ऐसे ही एक अवसर पर उसने चाणक्य का, उसके कुरूप होने के कारण, अपमान कर दिया था।[1]

पुराण ने नन्दों को 'अधार्मिक' कहा है। इसका कारण नन्दों का जैन तथा आजीविक आदि धर्मों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हो सकता है। ए० एल० बैशम प्रथम नन्द नरेश को आजीविक मानने के पक्ष में प्रतीत होते हैं।[2] ज्ञातव्य है कि प्रथम नन्द को छोड़कर किसी अन्य नन्द नरेश के विरुद्ध जैन ग्रन्थों में कुछ भी नहीं कहा गया है। उल्टे, जैसा कि हम कह चुके हैं, उन्हें क्षत्रिय तक बता दिया गया है। नन्द राजाओं के मन्त्री भी जैन थे। 'आवश्यक सूत्र' के अनुसार उनमें प्रथम कल्पक था जिसे यह पद जबरदस्ती दिया गया था। कहा गया है कि इस मन्त्री की प्रेरणा से ही नन्द सम्राट् ने क्षत्रियों का अन्त करने की योजना बनाई थी। बाद के नन्द राजाओं के मन्त्री कल्पक के ही वंशज थे। नौवें नन्द का मन्त्री शकटाल या शकटार था। उसके दो पुत्र थे स्थूलभद्र और श्रीयक। शकटाल की मृत्यु के बाद स्थूलभद्र को मन्त्री पद दिया गया परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। वह छठे जिन से दीक्षा लेकर जैन साधु हो गया। 'मुद्राराक्षस' में उल्लिखित मन्त्री राक्षस का, अगर वह ऐतिहासिक व्यक्ति है, इस मन्त्री परिवार से सम्बन्ध अज्ञात है। लेकिन इस ग्रन्थ में तत्कालीन समाज पर जैन प्रभाव अवश्य ही परिलक्षित होता है। उदाहरणार्थ, चाणक्य ने इसमें एक जैन को ही अपना गुप्तचर चुना था। खारवेल के हाथिगुम्फा-लेख से, जिसमें नन्दराज के द्वारा एक जैन प्रतिमा को कलिंग से उठा ले जाने की चर्चा है, नन्दों का जैन धर्म के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध प्रमाणित होता है।[3] 'परिशिष्ट पर्वण' का साक्ष्य भी नन्दों को जैन मानने के पक्ष में है। आजीविक मत से महापद्म का सम्बन्ध 'भगवतीसूत्र' में संकेतित है (दे०, पीछे)। 'वंसत्थप्पकासिनी' में कहा गया है कि नन्दराजा के कोप से बचने के लिए भागते समय चाणक्य ने आजीविक वेश ही धारण किया था (आजविक वेसं गहेत्वा पलायन्तो)। 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' में प्रथम नन्द को बौद्ध बताया गया है। इसमें उसे 24 विहार बनवाने, वररुचि नामक बौद्ध विद्वान् को अपना मन्त्री बनाने, लोकेश से सफलता का मन्त्र प्राप्त करने तथा बौद्ध धर्म स्वीकृत कर लेने का भी श्रेय दिया गया है।[4] अन्य बौद्ध ग्रन्थों का दृष्टिकोण भी नन्दों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण प्रतीत होता है।

आजकल यह धारणा सामान्यतः प्रचलित है कि नन्दों के शूद्रजातीय होने के कारण ब्राह्मणों के साथ उनके सम्बन्ध अच्छे नहीं थे।[5] लेकिन हमारे विचार से यह धारणा भी

1. दे०, बी० सी० लाहा वॉल्यूम, 1, पृ० 592 ग्र०।
2. बैशम, हिस्टरी एण्ड डोक्ट्रिन ग्रॉव दि आजीविकज, 1951, पृ० 144-45।
3. पटना की पंच पहाड़ियों को, जो वस्तुतः पांच प्राचीन जैन या बौद्ध स्तूप हैं, एक दन्तकथा में नन्दराजा द्वारा निर्मित बताया गया है (ग्र० हि० इ०, पृ० 44, टि० 2)।
4. इ० हि० इ०, पृ० 14।
5. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गलत है। नन्दवंशीय नरेशों ने क्षत्रिय विरोधी नीति का अवलम्बन करने के बावजूद ब्राह्मणों का विरोध नहीं किया था। जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं स्वयं बौद्ध और जैन ग्रन्थों में हमें इस बात की चर्चा मिलती है कि उनकी दानशाला की व्यवस्था ब्राह्मण विद्वानों के संघ के हाथ में थी और उनमें सबसे बड़े विद्वान् को अध्यक्ष माना जाता था। इस विषय में उसका यश सुनकर ही ब्राह्मण चाणक्य उत्तरापथ से चलकर पाटलिपुत्र आया था। 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' का बौद्ध लेखक भी शिकायत करता है कि प्रथम नन्द नृपति बौद्ध, उदार तथा न्यायी होते हुए भी झूठा घमण्ड करने वाले ब्राह्मण तार्किकों से घिरा रहता था और उन्हें धन प्रदान करता रहता था।[1] इसमें उसे पाणिनि का मित्र बताया गया है। 'कथासरित्सागर' तथा अनेक जैन ग्रन्थों में भी नन्दों द्वारा अनेक ब्राह्मण विद्वानों को संरक्षण देने की चर्चा है। 'मुद्राराक्षस' में नन्दों का ब्राह्मण मन्त्री राक्षस उनका कट्टर समर्थक दिखाया गया है। स्वयं चाणक्य धननन्द से रुष्ट उनके अधार्मिक होने के कारण नहीं था। उसके रुष्ट होने का कारण था अन्तिम नन्द नरेश द्वारा, जो उससे अपरिचित था, दानशाला में उसकी कुरूपता के कारण अपमानित किया जाना। ऐसा प्रतीत होता है कि नन्दों के उन्मूलन के उपरान्त उनके अवगुणों को पुराणों तथा 'मुद्राराक्षस' जैसे नाटकों के लेखकों ने, जिनकी सहानुभूति ब्राह्मण चाणक्य के साथ थी, बहुत बढ़ा-चढ़ाकर लिख दिया।

1. ए० न० मौ०, पृ० 11।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 1

जनपदयुगीन दक्षिण भारत

दक्षिण भारत में मिलने वाले अभिलेखों में अशोक के शिलालेख (तीसरी शती ई० पू० का मध्य) प्राचीनतम हैं। लगभग इसी काल के दक्षिण भारतीय ब्राह्मी में लिखित, वे तीन अभिलेख भी हैं जो रामनाड व तिन्नेवेल्ली जिलों की प्राकृतिक गुफाओं में, जहां जैन और बौद्ध रहते थे, मिले हैं। ये लोग अपनी ही धर्म-निष्ठा से प्रेरित, बिना किसी राजकीय पृष्ठपोषण के, धीरे-धीरे समय लगाकर वहां पहुंचे होंगे। इनके अतिरिक्त भी उत्तर और दक्षिण भारत के प्राचीन सम्बन्धों के प्रमाण हैं। सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में, तक्षशिला, मदुरै तथा उड़ीसा तक विस्तृत प्रदेशों से सहस्रों की संख्या में प्राप्त आहत सिक्के (पंच मार्क्ड क्वायन्स्) इस क्षेत्र में पर्याप्त आर्थिक गतिविधि को, जो यातायात के साधनों के समुचित विकास द्वारा ही सम्भव थी, सिद्ध करते हैं। इन सिक्कों पर, जो 'भार तथा सामान्य शैली में आश्चर्यप्रद सादृश्य' रखते हैं, पुरोभाग पर प्रायः चक्र, चैत्य, स्वस्तिक, त्रिशूल, हाथी, नाग, नदी, वृक्ष आदि में से पांच चिह्न अंकित मिलते हैं। ये 32 रत्ती अथवा 52 ग्रेन के कार्षापण तौलमान के अनुसार ढाले जाते थे।[1] पांच चिह्नों वाले सिक्के प्राङ् मौर्ययुगीन भी है और मौर्ययुगीन भी। इनकी उत्पत्ति स्वदेशी थी और ये रजत तथा ताम्र दोनों धातुओं से बनाए जाते थे—यद्यपि दक्षिण भारत में केवल रजत मुद्राएं ही मिलती हैं। ये प्रायः पतले धातुपत्रों से आयताकार, चौकोर या अनियमित आकार में बनाए जाते थे। तक्षशिला निधि में दो वर्गों के आहत सिक्के मिले थे—प्राचीन (प्राङ् मौर्य) तथा परवर्ती (मौर्य)। सुल्तानपुर से प्राप्त सिक्के अर्द्ध, एकल अथवा दुगने कार्षापण तौलमान के अनुसार बने हैं। उत्तर प्रदेश के खैरी स्थल से प्राप्त पैल मुद्रानिधि के सिक्कों पर चार चिह्न अंकित है और तौल घटकर 24 से 30 रत्ती रह गई है।[2] कृष्णा जिले के सिंगावरम् स्थल से प्राप्त सिक्कों पर भी चार चिह्न मिलते

1. रजत आहत मुद्राओं के चिह्नों की व्याख्या एवं तौलमान के अध्ययन के लिए दे० दुर्गाप्रसाद, जे० ए० एस० बी०, एन० एस०, 30 (1934), पृ० 17 अ०; वाल्श, पञ्च मार्क्ड क्वायन्स् फ्रॉम तक्षशिला, पृ० 18-25; कोसाम्बी, डी० डी०, न्यु इण्डियन एण्टिक्वेरी, 4, पृ० 2 अ० तथा 58-9; हैमी, ए० एस०, जे० आर० ए० एस०, 1937, पृ० 1-26; चटर्जी, सी० डी०, न्यूमिस्मेटिक डाटा इन पालि लिटरेचर (बुद्धिस्टिक स्टडीज), पृ० 426; एलन, केटेलॉग ऑव दि इण्डियन क्वायन्स् इन दि ब्रिटिश म्यूजियम (एशन्येण्ट इण्डिया), भू०, पृ० 17-19, 69, 159-162।

2. वाल्श, इ० एच० सी०, पैल होर्ड ऑव पञ्च मार्क्ड क्वायन्स्, जे० एन० एस० आई०, 2, पृ० 15 अ०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं, यद्यपि इनमें सूर्य तथा षड्भुजी चिह्न अनुपस्थित हैं। ये 33 रत्ती या 52 ग्रेन तौलमान के अनुसार बने हैं। बनावट, चिह्नों तथा भार में सिंगावरम् से प्राप्त सिक्के उड़ीसा के सोनपुर स्थल से प्राप्त सिक्कों से मेल खाते हैं।[1] दक्षिण भारत में ये सिक्के सहस्रों की संख्या में बहुत विस्तृत भूभाग में मिलते हैं। इनकी दस निधियां कृष्णा, विजगापटम, सलेम, कोयम्बटूर, चिंग्लेपुत, दक्षिणी अर्काट, त्रिचनापली, मदुरा तथा तिरुनेल्वली जिलों तथा मद्रास नगर से मिली हैं।[2]

सिक्कों की तिथियां निर्धारित करना बड़ा कठिन होता है क्योंकि प्राचीन सिक्के परवर्ती सिक्कों के साथ चलते रहते थे और उनके साथ एक ही स्तर से मिलते हैं। अवैज्ञानिक उत्खनन ने स्तरों का अध्ययन करना और दुष्कर कर दिया है। द्रव्य से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्द वैदिक साहित्य में भी मिलते हैं। वैदिक काल के 'निष्क,' 'शतमान' तथा 'सुवर्ण' निश्चित तौल के सुवर्ण पिण्ड रहे हो सकते हैं। चांदी के प्राचीनतम सिक्कों के साथ हमें चांदी की ही मोटी, कुछ मुड़ी हुई शलाकाएं या छड़ियां मिलती हैं जिन पर पुरोभाग पर षड्भुजी चिह्न अंकित हैं और पृष्ठभाग चिह्न रहित है। इन शलाका मुद्राओं की पहिचान, जिनका भार 165.8 से 173 ग्रेन तक मिलता है, कभी-कभी 100 रत्ती के शतमान से की जाती है। इनकी आधे, चौथाई, आठवें तथा सोलहवें भाग वाली इकाइयां भी मिली हैं।

चांदी के आहत सिक्कों की, जो परवर्ती अर्थशास्त्र व स्मृति साहित्य में 'कार्षापण,' 'धरण' और 'पुराण' नाम से उल्लिखित मिलते हैं, विभिन्न तिथियां सुझाई गई हैं।[3] स्पष्टतः इनका प्रचलन सुदीर्घ काल तक रहा था। साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर अनन्त सदाशिव अल्तेकर ने आहत सिक्कों के प्रचलन का प्रारम्भ लगभग 800 ई० पू० से माना है।[4] दुर्गाप्रसाद के अनुसार चांदी के कुछ प्रारम्भिक आहत सिक्के मगध से बुद्ध के निर्वाण के कुछ ही बाद जारी किए गए थे।[5] वाल्श ने तक्षशिला निधि के पुनर्मुद्रित सिक्कों को छठी शती ई० पू० के अन्त में रखा है।[6] डी० डी० कोसाम्बी का सुझाव है कि इस निधि के कुछ प्राचीन सिक्के वहां पूर्वी भारत से पहुंचे थे। उनके विचार से इनके पुरोभाग के कुछ चिह्न शैशुनागों व नन्दों के हैं।[7]

ए० एस० अल्तेकर ने दक्षिणापथ व सुदूर दक्षिण के सिक्कों को 500 ई० पू० से प्राचीनतर नहीं माना है। उनका कहना है कि ये सिक्के इन प्रदेशों में प्रथम शती ई०

1. जे० एन० एस० आई०, 13, खण्ड 1; यही, 15, खण्ड 1, पृ० 54 अ०।
2. देशिकचारी, टी०, साउथ इण्डियन क्वायन्स्, 1933, पृ० 14।
3. डब्ल्यु० इलियट (क्वायन्स् ऑव सदर्न इण्डिया, पृ० 45) ने उनको लगभग 2500 ई० पू० का बताया। डी० आर० भाण्डारकर (एन्श्येण्ट इण्डियन न्युमिस्मेटिक्स्, पृ० 109) ने भी इनको इतना ही प्राचीन बताया है। कनिंघम (सी० ए० आई०, 1, पृ० 43) ने इनकी तिथि 1000 ई० पू० सुझाई है।
4. जे० एन० एस० आई०, 15, पृ० 1 अ०।
5. न्यु० सप्ली०, भू०, पृ० 45; आगे पृ० 78-9।
6. जे० बी० ओ० आर० एस०, 1937, पृ० 303-4।
7. न्यु० इण्डि० एण्टि०, 4, पृ० 60-6।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के अन्त तक अवश्य चलते रहे क्योंकि दक्षिणी अर्काट जिले के तोण्डमनत्तम् स्थल से प्राप्त निधि में ये सिक्के रोमक सम्राट् टाइबेरियस के 'औरई' के साथ मिले हैं। उनका यह भी सुझाव है कि सोनपुर से प्राप्त सिक्कों को नन्दों ने उड़ीसा विजय के उपरान्त चलाया था और उनके द्वारा प्रचलित प्रकार का बाद में दक्षिणापथ में अनुकरण और संशोधन किया गया।[1] टी० वी० महालिंगम ने आहत सिक्कों के चिह्नों तथा दक्षिण भारतीय मृद्भाण्डों पर उत्कीर्ण चिह्नों (400 ई० पू० से 400 ई०) की रोचक सादृश्यता की ओर ध्यान दिलाया है।[2]

यह कहा जाता है कि क्योंकि सिक्के उत्तर भारत से चलकर दक्षिण भारत आते थे इसलिए दक्षिण भारतीय सिक्कों की तिथि निर्धारित करते समय कुछ दशकों का अन्तर माना जा सकता है। लेकिन स्मरणीय है कि सिक्कों को आहत करने की आदिम पद्धति उत्तर भारत की तुलना में दक्षिण में बहुत बाद तक चलती रही और मुद्रा-निर्माण कला में परवर्ती सुधार इसी स्वदेशी प्रणाली से हुआ, ठप्पे से अंकित करने की विदेशी प्रणाली से नहीं।[3]

इस युग में उत्तर का सुदूर दक्षिण से घनिष्ठ सम्बन्ध, जो मुद्राओं से संकेतित है, पाणिनि (600-300 ई० पू०) पर वार्त्तिक लिखने वाले कात्यायन (300 ई० पू०) द्वारा 'पाण्ड्य' शब्द की व्युत्पत्ति 'पाण्डु' नाम से बताने से भी प्रमाणित है। इससे पाण्ड्य राजवंश का सम्बन्ध पाण्डव वीरों से संकेतित है। इससे कम से कम इतना तो अवश्य सिद्ध होता है कि सुदूर दक्षिण में 300 ई० पू० के पहले भी पाण्डव-कथा लोकप्रिय थी। वस्तुतः तमिल परम्परा में चोल, चेर तथा पाण्ड्यों को इतिहास के उषःकाल से ही शासन करता दिखाया गया है जैसा कि 'कुरल' के एक मध्यकालीन टीकाकार के उस अतिरञ्जित कथन से प्रमाणित है जिसके अनुसार इनकी रचना 'सृष्टि के प्रारम्भ में' हुई थी।

जैन धर्म व बौद्ध धर्म का, सम्भवतः इसी क्रम में, दक्षिण भारत में प्रवेश इनके उत्तर भारत में फैलने के कुछ ही बाद में हुआ। 'महावंस' के अनुसार निर्ग्रन्थ, जो जैनों का प्राचीनतम नाम है, सिंहल में पांचवीं शती ई० पू० में भी विद्यमान थे। सम्भवतः वे वहां तमिल देश से पहुंचे होंगे। तीसरी-दूसरी शती ई० पू० की दक्षिण भारतीय ब्राह्मी में लिखित लघु तमिल दान-लेख रामनाड तथा तिन्नेवल्ली जिलों की प्राकृतिक गुफाओं में, जहां जैन और बौद्ध रहते थे, मिले हैं।[4] इनमें कुछ गुफाओं की प्रसिद्धि 'शमनर-

1. जी० याजदानी द्वारा सम्पादित 'द अर्ली हिस्टरी ऑव डकन' (अल्तेकर : द क्वायनेज ऑव डकन), पृ० 786-7।

2. ए० के० नारायण व लल्लनजी गोपाल द्वारा सम्पादित 'सेमीनार पेपर्स ऑन द क्रोनोलॉजी ऑव द पञ्च मार्क्ड क्वायन्स्' ,1966, में 'क्रोनोलाजी ऑव द पञ्च मार्क्ड क्वायन्स् ऑव साउथ इण्डिया,' पृ० 19 अ०।

3. रेप्सन, ई० जे०, इण्डियन क्वायन्स्, 1897, पृ० 35।

4. अशोक के आन्ध्र व मैसूर से प्राप्त अभिलेख भी ब्राह्मी की दक्षिण भारतीय शैली में लिखे हैं जो उत्तर भारतीय शैली से भिन्न हैं (दे०, पीछे, पृ० 141)।

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कोडगु,' जैनियों की गुफा, रूप में है और कुछ की 'पञ्च पाण्डवमलै' रूप में जो सम्भवतः पाण्डव पव्वत का, जहां बुद्ध ने अभिनिष्क्रमण के उपरान्त प्रथम बार भोजन किया था, दक्षिण भारतीय संस्करण है।

जैन धर्म नन्दों को, जो चौथी शती ई० पू० में पाटलिपुत्र से शासन करते थे, प्रिय था। परवर्ती नाटक 'मुद्राराक्षस' (6ठी शती ई० ?) में भी, जिसमें नन्द राजसभा में जैनों की स्थिति महत्त्वपूर्ण बताई गई है, तत्कालीन युग की झांकी सुरक्षित है। 'आवश्यक सूत्र' में कहा गया है कि नन्दों के मन्त्री जैन थे।[1] क्योंकि नन्दों ने अपनी सत्ता व महत्त्वाकांक्षा को दक्षिण भारतोन्मुखी किया था, इसलिए उनके कारण जैन धर्म को भी दक्षिण में फैलने में सहायता मिली होगी।

कई साक्ष्य से संकेत मिलता है कि नन्दों का दक्षिणापथ व सम्भवतः उसके भी परे के प्रदेशों से भी, सम्बन्ध था। खारवेल[2] के हाथिगुम्फा-अभिलेख में नन्दराज का उल्लेख एक 'प्रणाली' (नहर) बनवाने के प्रसंग में किया गया है। इसमें यह भी कहा गया है कि नन्दराज कलिंग राजकोष की अनेक बहुमूल्य वस्तुएं व एक जिन मूर्ति उठा ले गया था। पुराणों में कहा गया है कि नन्दों ने अन्य क्षत्रिय जातियों के अतिरिक्त वीतिहोत्रों (नर्मदा के उत्तर में), कलिंगों तथा अश्मकों (गोदावरी की उपत्यका में) को भी जीता था। ऐसा माना जाता है कि गोदावरी की उपत्यका के उपरले भाग में स्थित नान्देड़ स्थल के नाम में साम्राज्यिक नन्दों की स्मृति अभी तक सुरक्षित है। कुछ परवर्ती अभिलेख, जो 10वीं और 11वीं शती ई० के हैं, कुन्तल देश में (उत्तरी मैसूर) नन्द शासन का उल्लेख करते हैं। संगम कवि मामूल्नार की एक कविता में एक दक्षिण भारतीय नायिका कल्पना करती है कि शायद उसका प्रियतम उत्तर में नन्दों के गंगा में छिपे धन से आकर्षित होने के कारण रुक गया है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि तत्कालीन युग में उत्तर और दक्षिण में घनिष्ठ सम्पर्क और आवागमन था और दक्षिण भारतीयों का नन्दों से इतना प्रगाढ़ परिचय था कि तमिल साहित्य में उत्तर भारत के इन राजाओं के विषय में ऐसी दन्तकथाएं प्रचलित हो सकीं।

1. पृ० 435-6, 693-95।

2. के० पी० जायसवाल तथा स्टेनकोनो ने खारवेल को द्वितीय शती ई० पू० के पूर्वार्द्ध में रखा है। जगन्नाथ ने उसका राज्यारोहण 200-196 ई० पू० के मध्य मानने के लिए विश्वसनीय प्रमाण दिए हैं (दे०, नीलकान्त शास्त्री द्वारा सम्पादित कोम्प्रे० हि० इ०, पृ० 112)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 2

मागध साम्राज्यवाद की सफलता के कारण

वेदोत्तर काल में भारत में, विशेषत: पूर्वी प्रदेशों में, राजत्व की एक नई अवधारणा का विकास हुआ। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में कहा गया है "इस प्राच्य दिशा में प्राच्य जनों के जो राजा होते हैं उनका अभिषेक साम्राज्य के लिए किया जाता है। उनका अभिषेक होते समय उन्हें 'ओ सम्राट्!' कहकर सम्बोधित किया जाता है।"[1] जब इस ग्रन्थ के लेखक ने राजत्व की इस नवीन अवधारणा की घोषणा की प्राच्य जनों में काशी, कोसल तथा विदेह प्रमुख थे। लेकिन छठी शती ई० पू० से पूर्वी भारत के राजनीतिक क्षितिज में एक नवीन नक्षत्र—मगध—का उदय होना प्रारम्भ हुआ जो धीरे-धीरे समस्त भारत में सूर्य बनकर चमकने लगा। बिम्बिसार की अंग-विजय और उसके द्वारा काशी के ग्राम की आय की प्राप्ति से मागध साम्राज्य के प्रसार की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुई वह तब तक चलती रही जब तक अशोक ने कलिंग जीतकर मागध साम्राज्य को लगभग अखिल भारतीय रूप प्रदान नहीं कर दिया। जिस प्रकार किसी शान्त सरोवर के मध्य पत्थर फेंकने पर उससे उठने वाली तरंगों के वृत्त धीरे-धीरे फैलते चले जाते हैं वैसे ही मागध साम्राज्य की सीमाएं फैलकर भारत के विभिन्न प्रदेशों को अपने में समेटती चली गईं। रायचौधुरी के शब्दों में बिम्बिसार व नन्द वंशीय राजाओं के नेतृत्व में मगध ने प्राचीन भारतीय राजनीति में वही भूमिका अदा की जो प्राक्-नॉर्मनयुगीन इंग्लैण्ड में वेसेक्स ने तथा होहनजोलर्न जर्मनी में प्रशा ने।[2]

मगध के इस अभ्युदय के अनेक कारण थे। सर्वप्रथम, इसकी भौगोलिक स्थिति ने इसको बहुत और अनेक प्रकार से सहायता पहुंचाई। उसके प्रारम्भिक प्रतिद्वन्द्वियों की तुलना में उसकी भू-राजनीतिक स्थिति बहुत अच्छी थी। उदाहरणार्थ, कोसल जनपद वत्स, पंचाल मगध व अवन्ति से घिरा था और वत्स जनपद अवन्ति, कोसल व मगध से। इसलिए उनके राजाओं को अपना राज्य फैलाने का अवसर कम था। इसके विपरीत मगध के पूर्व में अंग का दुर्बल राज्य था और उत्तर में वज्जिसंघ जो गणाधीन होने के कारण प्रकृत्या साम्राज्यवादी नहीं हो सकता था। इस भू-राजनीतिक स्थिति का मगध के नरेशों ने पूर्ण लाभ उठाया और अंग तथा वज्जि संघ पर विजय प्राप्त कर अपनी शक्ति बढ़ा ली।

1. दे०, रायचौधुरी, पो० हि० ए० इ०, पृ० 156-57।
2. वही, पृ० 188।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दूसरे, मगध गंगा की उपत्यका का मध्यवर्ती राज्य था। इसके पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर की ओर विशाल मैदानी प्रदेश था जिससे इसके प्रसार में कोई प्राकृतिक बाधा नहीं आई। स्वयं मगध की भूमि उर्वर थी और विशाल नदियां इसके अन्तरराज्यीय व्यापार के लिए सड़कों का काम देती थीं। मगध में लोहे का विशाल भण्डार भी था। हमें स्मरण रखना चाहिए कि भारत में लौह-क्रान्ति बुद्ध के कुछ सौ वर्ष पूर्व ही आई थी। इसका तात्कालिक लाभ उस प्रदेश को मिलना स्वाभाविक था जहां यह धातु प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी। मगध की प्राचीन राजधानी गिरिव्रज पांच पहाड़ियों से सुरक्षित थी और नई राजधानी पाटलिपुत्र गंगा और सोन के संगम पर बसी होने के कारण दूरस्थ प्रदेशों के साथ व्यापार सम्बन्ध रख सकती थी। भारत के पूर्वी प्रदेश अपने हाथियों के लिए भी प्रसिद्ध थे। कलिंग और अंग के हाथी सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे (कलिंगांग गजाः श्रेष्ठाः)।[1] जब अंग मगध में मिला लिया गया तो मगध को वहां के हाथी बड़ी संख्या में सुलभ हो गए। कौटिल्य के अनुसार राजाओं की विजय प्रधानतः हाथियों पर ही निर्भर होती है क्योंकि इनसे शत्रुओं की छावनी, दुर्ग आदि आसानी से तोड़े जा सकते हैं।[2] इसीलिए कौटिल्य ने हाथी को मारने वाले के लिए प्राणदण्ड का विधान किया है।[3] क्लासिकल लेखक मगध की हस्तिसेना से बहुत प्रभावित हुए थे।

मगध के राजाओं को वेतनभोगी सैनिकों को भरती करने में कोई दिक्कत नहीं थी। कौटिल्य ने मौल सेना के अतिरिक्त भृत और आटविक (वेतनभोगी एवं बनवासी लोगों की) सेनाओं का उल्लेख किया है।[4] मगध के समीप ही महाकान्तार था जहां आटविक जातियां बसती थीं। यह सुविधा कोसल आदि को प्राप्त नहीं थी।

लेकिन भौगोलिक और प्राकृतिक सुविधाओं से ही कोई प्रदेश महान् नहीं बनता। किसी प्रदेश को सफलता मिलती है उसके निवासियों के गुणों और उत्साह के कारण। बुद्धकालीन मगध की स्थिति इस दृष्टि से बहुत अच्छी थी। वेदोत्तरकाल में यहां आर्यजन प्रविष्ट हुए। यहां की आदिम जातियों से उनका रक्तमिश्रण होने के कारण समाज में एक नवीन शक्ति का संचार हुआ। इस रक्त सम्मिश्रण का प्रभाव सांस्कृतिक क्षेत्र में भी अनायास देखा जा सकता है। रायचौधुरी के अनुसार इसी के परिणामस्वरूप उस जाति ने जिसने अप्रतिम योद्धा एवं महाभारतयुगीन जरासन्ध तथा परवर्तीयुगीन अजातशत्रु, महापद्मनन्द एवं कलिंग-विजेता चण्डाशोक जैसे महान् राजोच्छेत्ता उत्पन्न किए उसी ने वर्द्धमान महावीर एवं गौतम बुद्ध के उपदेशों को इतनी लगन से सुना। बौद्ध धर्म को विश्वधर्म बनाना तथा एक अखिल भारतीय साम्राज्य की स्थापना इन दोनों ही बातों में मगधवासियों ने समान रूप से योगदान दिया। अजातशत्रु एवं बुद्ध का जन्म

1. अर्थशास्त्र, 2.2। (इस अध्याय के लेखक के मतानुसार कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' मौर्ययुगीन रचना है।—सम्पादक)।
2. वही, 10.4।
3. वही।
4. वही, 2.33।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक ही प्रदेश में और एक ही युग में हुआ और वे राजगृह में उसी प्रकार मिले जिस प्रकार वॉर्म्स में पंचम चार्ल्स एवं मार्टिन लूथर मिले थे। उस समय आक्रमक साम्राज्यवाद का प्रतीक (अजातशत्रु) उस धम्म के प्रतिपादक (बुद्ध) के सम्मुख खड़ा हुआ था जो कुछ ही शती में एशिया महाद्वीप को मानव प्रेम के सन्देश की अमृत वर्षा से सराबोर कर देने वाला था। ये दोनों विचारधाराएं बहुत समय तक अलग नहीं रही। उनका समन्वय हुआ और जिस जादूगर ने यह आश्चर्यप्रद सामंजस्य स्थापित किया वह था चन्द्रगुप्त मौर्य का पौत्र धर्माशोक जिसके व्यक्तित्व में उसके पूर्वजों की साम्राज्यवादी परम्परा तथा शाक्यों की धर्मनिष्ठा घुलमिलकर एक हो गई थीं।[1]

मगधवासियों के सामाजिक जीवन का लचीलापन उनकी सफलता का एक प्रमुख कारण था। प्रत्येक धार्मिक क्रान्ति समाज में उथल-पुथल करके नवीन शक्ति का संचार करती है। मगध में छठी शती ई० पू० में जो धार्मिक क्रान्ति हुई उससे उत्पन्न होने वाली शक्ति का लाभ इस प्रदेश को मिला। परन्तु इस लाभ का सदुपयोग करने में मागधों को सफलता मिली अपनी सामाजिक व्यवस्था के कारण जो उस व्यवस्था से सर्वथा भिन्न थी जिसका विकास सरस्वती और दृषद्वती के तटों पर हुआ था। मगध में ब्राह्मण व्रात्यों के साथ घुल मिल सकते थे, राजन्य अपने अन्तःपुर में शूद्रा कुमारियों को स्थान दे सकते थे, वैश्य और यवन राजपद सुशोभित कर सकते थे, कुलीन वंशोत्पन्न राजकुमार के बजाय नगरशोभिणी के पुत्र को राजा बनाया जा सकता था तथा एक नाई भी राजसिंहासन पर बैठने का अधिकार पा सकता था।[2]

मगध में राजत्व की जिस नवीन अवधारणा का विकास हुआ वह मर्यादाओं के बन्धन में बंधी हुई नहीं थी। मगध के वस्सकार (वर्षकार) तथा कौटिल्य जैसे मन्त्री, जिसने लिच्छवियों को जीतने के लिए उनमें आन्तरिक फूट के बीज बोए तथा चाणक्य, जिसने नन्दों के विनाश में अप्रतिम एवं मर्यादारहित कूटनीति का परिचय दिया, शत्रु संघों एवं राजाधीन जनपदों का विनाश करने के लिए किसी भी प्रकार के उपायों का अवलम्बन करने के लिए प्रस्तुत रहते थे। उन्होंने शत्रु सेनाओं के विरुद्ध नए-नए यन्त्रों का प्रयोग भी किया। उन्होंने महापद्मनन्द जैसे महत्त्वाकांक्षी नरेशों को समस्त वैदिक राजवंशों के उन्मूलन की सलाह दी और उसका मार्ग बताया। लेकिन इसके साथ ही वे विजित प्रान्तों में साम्राज्यिक व्यवस्था और शान्ति स्थापित करने के प्रति सजग थे एवं साम्राज्यिक व्यवस्था को समयानुकूलरूपेण ढालने का प्रयास करते रहते थे। मेगास्थेनिज़ ने भारत में जिस प्रशासकीय व्यवस्था को देखा था वह सैकड़ों वर्षों के प्रयास का परिणाम था, यकायक अस्तित्व में नहीं आ गई थी।

1. रायचौधुरी, पो० हि० ए० इ०, पृ० 188-9।
2. वही, पृ० 189।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 12

मागध तिथिक्रम

बुद्ध के परिनिर्वाण की तिथि

प्रारम्भिक मागध राजवंशों के तिथिक्रम का मूल आधार बुद्ध के परिनिर्वाण व महावीर की मुक्ति की तिथियां हैं, विशेषत: बुद्ध के परिनिर्वाण की तिथि क्योंकि प्रारम्भिक मागध नरेशों के विषय में, नन्द वंश को छोड़कर, हमें बौद्ध साहित्य में ही अधिक विस्तृत और विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध है। बौद्धों की लगभग सर्वस्वीकृत परम्परानुसार बुद्ध का परिनिर्वाण अजातशत्रु के शासन के 8वें वर्ष में हुआ था। आधुनिक विद्वान् भी इस परम्परा को श्रद्धेय मानते हैं। अत: परिनिर्वाण की तिथि निर्धारित करके अजातशत्रु की तिथि और अजातशत्रु की तिथि से मागध नरेशों की अन्य तिथियां निर्धारित की जा सकती हैं।

बुद्ध के परिनिर्वाण के विषय में चार प्रमुख परम्पराएं प्रचलित हैं जिनके अनुसार परिनिर्वाण अशोक के एक शती पूर्व (या 118 वर्ष पूर्व), या 544 ई० पू० में, या 486 ई० पू० में और या 483 ई० पू० में हुआ।[1] हम इन चारों की विश्वसनीयता पर क्रमश: विचार करेंगे।

प्रथम परम्परा, जिसकी ओर कुछ वर्ष पूर्व इ० जे० टॉमस ने विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया था, सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय की है। इसके अनुसार बुद्ध की मृत्यु अशोक के राज्यारोहण से 100 या 118 वर्ष पूर्व अर्थात् चौथी शती ई० पू० के प्रारम्भ में हुई थी। यह अनुश्रुति, 'दिव्यावदान' में मिलती है और कुछ सिंहली ग्रन्थों में भी पाई जाती है। टॉमस द्वारा उल्लिखित आधुनिक जापानी विद्वान् डॉ० तोकुम्यो मत्सुमोतो तथा प्रोफेसर उई ने इसे स्वीकृत कर परिनिर्वाण की तिथि 386 ई० पू० मानी है।[2] लेकिन (1) यह अनुश्रुति मौर्यवंशीय अशोक को शिशुनागवंशीय कालाशोक (जिसके राज्य-

1. इनके अतिरिक्त कुछ अन्य मत और भी रखे गए हैं। शार्पेण्टियर ने (कै० हि० इ०, पृ० 139; आई० ए०, 1914, पृ० 118 अ०; 125 अ०; 167 अ०) निर्वाण की तिथि 477-78 ई० पू० सुझाई है, एफ० डब्ल्यु० टॉमस ने 488 ई० पू० तथा दीवान बहादुर एल० डी० एस० पिल्लै ने (वही 1914, पृ० 197-204), 1 अप्रैल 478 ई० पू०। 'महावंस' में अशोक के अभिषेक और निर्वाण के बीच 218 वर्ष का जो अन्तर बनाया गया है उसकी व्याख्या करने के लिए शार्पेण्टियर ने यहां अशोक के अभिषेक से आशय उसकी कलिंग-विजय या धर्म-परिवर्तन से माना है। लेकिन यह एक स्पष्ट कथन के साथ अनावश्यक खींचतान है।

2. बी० सी० लाहा वॉल्यूम, 2, पृ० 18-22।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काल में बुद्ध के परिनिर्वाण के एक शती अनन्तर द्वितीय बौद्ध संगीति आयोजित हुई) मानने की भूल का परिणाम प्रतीत होती है। (2) उपर्युक्त ग्रन्थों में, जिनमें यह परम्परा उल्लिखित है, शिशुनाग-वंश को बुद्धोत्तर युग में नहीं रखा गया है जबकि यह वंश निश्चित रूप से हर्यंक और नन्द वंशों के मध्य रखा जाना चाहिए। (3) यह परम्परा अन्य सभी ज्ञात तथ्यों के विरुद्ध है। (4) इसको मानने से चन्द्रगुप्त मौर्य को सिकन्दर का समकालीन मानना तक असम्भव हो जाता है।

दूसरी परम्परा हमें सिंहली साहित्य में मिलती है। इसके अनुसार बुद्ध का परिनिर्वाण 544 या 543 ई० पू० में हुआ। सिंहल के निर्वाण-संवत् की तिथि (544 ई० पू०) इस गणना पर ही आधृत है और इसी के अनुसार 1956 ई० में बुद्ध की 2500वीं तिथि मनाई गई थी। स्मिथ जैसे कुछ विद्वान् इस परम्परा में श्रद्धा रखते हैं।[1] लेकिन (1) यह परम्परा 'दीपवंस' और 'महावंस' के इस कथन के विरुद्ध है कि गौतम बुद्ध के परिनिर्वाण और अशोक के अभिषेक में 218 वर्ष का अन्तर था।[2] अशोक का अभिषेक 265 ई० पू० में या इस तिथि के आसपास होना निश्चित है, इसलिए परिनिर्वाण की तिथि भी 265+218=483 ई० पू० या इसके आसपास पड़ेगी। बुद्ध का निर्वाण 544 ई० पू० मानने पर अशोक का अभिषेक 326 ई० पू० में पड़ेगा जो सर्वथा असम्भव है। (2) कैण्टन की बिन्दु-परम्परा (डॉटिड रिकार्ड) भी 544 ई० पू० के विरुद्ध है। ताकाकुसु के अनुसार भगवान् बुद्ध की मृत्यु के बाद प्रतिवर्ष एक बिन्दु लगाने की परम्परा चली थी जो संघभद्र द्वारा कैण्टन ले जाई गई और वहां 489 ई० तक जारी रही। उस समय इसमें 975 बिन्दु थे। इस तरह इस परम्परानुसार परिनिर्वाण की तिथि 489 ई० से 975 वर्ष पूर्व अर्थात् 486 ई० पू० होगी (दे०, आगे)। (3) चीनी इतिहास ग्रन्थों में लंका के राजा श्री मेघवर्ण द्वारा समुद्रगुप्त के पास दूतमण्डल भेजने का जो उल्लेख मिलता है वह निर्वाण तिथि को 480 ई० पू० के लगभग मानने पर ही बोधगम्य हो सकता है। (4) परमार्थ ने 'वसुबन्धु की जीवनी' नामक ग्रन्थ में वृषगण और विन्ध्यवास नाम बौद्ध आचार्यों का समय बुद्ध संवत् की दसवीं शताब्दी बताया है। इन आचार्यों का काल पांचवीं शती ई० है। उनका यह काल तभी माना जा सकता है जब हम बुद्ध का परिनिर्वाण पांचवीं शती ई० पू० के प्रारम्भ में रखें। (5) एक खोतनी परम्परा में धर्माशोक (=अशोक मौर्य) को महापरिनिर्वाण के 250 वर्ष उपरान्त शासन करते दिखाया गया है। यह अनुश्रुति तभी सत्य हो सकती है जब हम परिनिर्वाण को 480 ई० पू० के आसपास रखें (लगभग 480—250=लगभग 230 ई० पू०)।

रायचौधुरी[3] का कहना है कि 'दीपवंस' में बुद्ध के परिनिर्वाण और पियदस्सन के

1. स्मिथ, अ० हि० इ०, पृ० 48-50।
2. द्वसतानि च वस्सानि अट्ठारस वस्सानि च।
   संबुद्धो परिनिब्बुते अभिसित्तो पियदस्सनो॥ —दीपवंस, 6.1
3. आई० सी० 2, पृ० 560; जे० बी० ओ० आर० एस०, 1, पृ० 97।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राज्यारोहण में 218 वर्ष का जो अन्तर बताया गया है उसे परिनिर्वाण की 544 ई० पू० तिथि व चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्याभिषेक में अन्तर भी माना जा सकता है क्योंकि चन्द्रगुप्त मौर्य को भी 'मुद्राराक्षस' में 'प्रियदर्शन' कहा गया है। इस सुझावानुसार चन्द्रगुप्त मौर्य की तिथि 544—218=326 ई० पू० होगी जो सत्य के पर्याप्त निकट है। अतः हो सकता है यहां 'दीपवंस' के लेखक का आशय चन्द्रगुप्त मौर्य से रहा हो और वह बुद्ध का निर्वाण 544 ई० पू० में मानता हो। लेकिन रायचौधुरी का सुझाव रोचक होते हुए भी अस्वीकार्य है क्योंकि (1) जैसाकि गीगर व सिंहली विद्वान् सेनावर्तने ने सिद्ध किया है 544 ई० पू० विषयक परम्परा अपेक्षया 'आधुनिक' है। 15वीं शती ई० तक तो सिंहल में भी यही परम्परा प्रचलित थी कि गौतम का परिनिर्वाण 483 ई० पू० में हुआ था। फ्लीट के अनुसार 483 ई० पू० विषयक परम्परा मूलतः भारतीय थी और लंका में अशोक के पुत्र महेन्द्र ने प्रचलित की थी।[1] 'मुद्राराक्षस' में चन्द्रगुप्त मौर्य के लिए 'प्रियदर्शन' एक विशेषण रूप में प्रयुक्त है परन्तु बौद्ध साहित्य व अभिलेखों में अशोक का नाम ही 'पियदस्सन' बताया गया है। मात्र 'मुद्राराक्षस' के साक्ष्य के आधार पर चन्द्रगुप्त का नाम 'प्रियदर्शन' नहीं माना जा सकता।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बुद्ध का परिनिर्वाण 480 ई० पू० के लगभग हुआ था। इसलिए, शार्पेण्टियर के शब्दों में, अब विद्वानों में इस विषय में सामान्य सहमति है कि बुद्ध की मृत्यु 480 ई० पू० के आसपास हुई थी।[2] इस तिथि के लगभग दो परम्पराएं मिलती हैं : कैण्टोनी बिन्दु-परम्परा जिसके अनुसार ताकाकुसु ने बुद्ध का परिनिर्वाण 486 ई० पू० में रखा है[3] और सिंहली परम्परा जिसके अनुसार गीगर, विक्रमसिंगे, चटर्जी, फ्लीट व रेप्सन तथा अन्यान्य विद्वान् बुद्ध की मृत्यु 483 ई० पू० में हुई मानते हैं।[4] हमारा विचार है कि इनमें दूसरा मत ही सत्य है क्योंकि—

(1) 'दीपवंस' व 'महावंस' में प्रदत्त बौद्ध परम्परानुसार चन्द्रगुप्त मौर्य व अशोक के राज्यारोहण में 56 वर्ष का अन्तर था (24 वर्ष चन्द्रगुप्त के शासन के, 28 बिन्दुसार के व 4 वर्ष अशोक के राज्यारोहण व अभिषेक में अन्तर के)। अतः चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारोहण व निर्वाण में 218—56=162 वर्ष का अन्तर था। अब परिनिर्वाण की तिथि 486 ई० पू० मानने पर चन्द्रगुप्त द्वारा मगध की विजय 486—162=324 ई० पू० में सम्पन्न माननी पड़ेगी। इसके विपरीत परिनिर्वाण को 483 ई० पू० में

1. सेनावर्तने, जॉन एम०, जे० आर० ए० एस०, सीलोन ब्रांच, 23, नं० 67, पृ० 141 अ; गीगर, महावंस, भू०, पृ० 1।
2. कै० हि० इ०, 1, पृ० 139।
3. जे० आर० ए० एस०, 1905, पृ० 51।
4. फ्लीट, जे० आर० ए० एस०, 1906, पृ० 984-6; 1909, पृ० 1, अ०; पृ० 323 अ०; गीगर, महावंस, भू०, पृ० 22 अ०; चटर्जी, बी० सी० लाहा वॉल्यूम, 1, पृ० 607; विक्रमसिंगे, चटर्जी द्वारा उद्धृत। फ्लीट ने परिनिर्वाण की निश्चित तिथि 13 अक्तूबर 483 ई० पू० मानी है और चटर्जी (डी० आर० भाण्डारकर वॉल्यूम, पृ० 329-330) ने अप्रैल 26, 483 ई० पू०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रखने पर चन्द्रगुप्त की मगध-विजय 483 — 162 = 321 ई० पू० में पड़ेगी। इनमें दूसरी तिथि सही होनी चाहिए क्योंकि क्लासिकल लेखकों के साक्ष्य से निश्चित है कि चन्द्रगुप्त 325 ई० पू० में सिकन्दर से भेंट करते समय राजा नहीं, एक सामान्य युवक था। इस घटना के बाद सेना एकत्र कर मगध जीतने में उसे दो-चार वर्ष का समय अवश्य ही लगा होगा। इसलिए चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण की तिथि 321 ई० पू० और तदनुसार परिनिर्वाण की तिथि 483 ई० पू० मानना अधिक उचित है।

(2) हाल ही में डब्ल्यु० पाचाओ नामक चीनी विद्वान् ने सिद्ध कर दिया है कि कैण्टोनी बिन्दु-परम्परा के विषय में ताकाकुसु से एक भूल हो गई है।[1] सर्वप्रथम ताकाकुसु ने ही चीनी साहित्य में उल्लिखित इस परम्परा की ओर ध्यान दिलाया था। इसका उल्लेख 597 ई० में फेई-चांग-फांग नामक चीनी विद्वान् ने किया है। फेई-चांग-फांग के ग्रन्थ 'ली-ताई-सान्-पाओ-ची' के अनुसार छी वंश के सम्राट् वूती के शासनकाल (482-493 ई०) में संघभद्र नाम के आचार्य हुए जिनके पास विनय की एक ऐसी प्रति थी जिस पर परिनिर्वाण के वर्ष बुद्ध के शिष्य उपालि ने एक बिन्दु लगाया था। यह प्रति उपालि के बाद उनकी शिष्य परम्परा (उपालि > दासक > सोनक > सिग्गव > मोग्गलिपुत्ततिस्स > चन्दवज्जी)[2] के पास रही और इस प्रकार परम्परानुसार संघभद्र के पास आई। इस बीच में इसमें प्रतिवर्ष एक बिन्दु जोड़ा जाता रहा। संघभद्र ने अन्तिम बिन्दु 489 ई० में जोड़ा था और जब 535 ई० में चाओ-पी-शियु ने हुंग-तु के पास इस ग्रन्थ के दर्शन किए उस समय इसमें 975 बिन्दु थे। इसलिए ताकाकुसु के अनुसार बुद्ध का परिनिर्वाण 489 ई० के 975 वर्ष पूर्व अर्थात् 486 ई० पू० में हुआ था। लेकिन डॉ० पाचाओ ने ध्यान दिलाया है कि शेंग-यु के ग्रन्थ 'छुसन-त्जांग-ची-ची' (444-518 ई०) के अनुसार 493 ई० में चीनी भिक्षुणी चिंग-शियु ने इस ग्रन्थ के दर्शन करके इसमें एक बिन्दु जोड़ा था। इसलिए 535 ई० में अगर इसमें 975 बिन्दु थे तो इनमें संघभद्र के बाद (जिसने अन्तिम बिन्दु 489 ई० में जोड़ा था) लगाए गए तीन या चार बिन्दु भी रहे होंगे[3] जिनकी सूचना न तो हुंग-तु को थी और न 597 ई० में इस परम्परा का वर्णन करने वाले फेई-चांग-फांग को। जो भी हो, ताकाकुसु का यह कथन निश्चय ही गलत है कि संघभद्र द्वारा 489 ई० में लगाया गया बिन्दु 'अन्तिम' था। पाचाओ के अनुसार यह सर्वथा सम्भव है कि 489 ई० में इसमें कुल 972 बिन्दु रहे हों। उस अवस्था में इस बिन्दु-परम्परा से भी बुद्ध का परिनिर्वाण 489 ई० के 972 वर्ष पूर्व अर्थात् 483 ई० पू० प्रमाणित होता है।

1. पाचाओ, डब्ल्यु०, जे० ए० ओ० एस०, 85, सितम्बर 1965, पृ० 342 अ०।

2. कुछ परम्पराओं में चन्दवज्जी को मोगलिपुत्ततिस्स के पूर्व रखा गया है और लिस्स के बाद महिंद को।

3. अनुमानतः संघभद्र ने 490 और 491 के बिन्दु लगाए होंगे। 492 का बिन्दु लगाने के पूर्व वह स्वदेश लौट गए। इसके बाद 493 में भिक्षुणी चिंग-शियु ने बिन्दु लगाया। अतः हो सकता है 492 में बिन्दु लग ही न पाया हो और 489 ई० के बाद इसमें केवल 3 बिन्दु जोड़े जा सके हों।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(3) लेकिन प्रश्न है कि क्या कैण्टोनी बिन्दु-परम्परा विश्वसनीय है। पाचाओ के अनुसार, नहीं। एक, पालि त्रिपिटक में परिनिर्वाण के तत्काल बाद बुद्धवचन लेखबद्ध किए जाने और बिन्दु-परम्परा के प्रारम्भ होने का कहीं भी उल्लेख नहीं आता। अन्य सिंहली और भारतीय ग्रन्थों में भी इस परम्परा की कहीं भी चर्चा नहीं है जबकि अगर यह यथार्थ परम्परा होती तो विनय की उस प्रति की उसी प्रकार पूजा की जाती जिस प्रकार बुद्ध के अवशेषों या बोधिवृक्ष की की जाती थी। दूसरे, संघभद्र किस देश के रहने वाले थे यह कहीं नहीं कहा गया है। तीसरे, 975 वर्ष एक लम्बा समय है। इस बीच में बिन्दु लगाने में यदाकदा भूल-चूक अवश्य ही हुई होगी।

लेकिन इन शंकाओं के बावजूद इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कैण्टोनी बिन्दु-परम्परा में सत्यांश होने की भी काफी सम्भावना है। परिनिर्वाण की इस परम्परा से ज्ञात तिथि (483 ई० पू०) और सिंहली परम्परा द्वारा प्रदत्त तिथि एक ही हैं। इसे मात्र संयोग नहीं कहा जा सकता। अतः हमारा विचार है कि फिलहाल इस तिथि को ही परिनिर्वाण की तिथि मान लेना उचित होगा।

महावीर की मुक्ति तिथि

बुद्ध की तिथि की तरह महावीर की तिथि के विषय में भी प्राचीन भारतीय साहित्य में अनेक परम्पराएं मिलती हैं और तदनुसार आधुनिक विद्वानों में इस प्रश्न पर गम्भीर मतभेद हैं। आजकल महावीर की मृत्यु-तिथि के विषय में तीन मत विशेषतः प्रचलित हैं : 527 ई० पू०, 490 ई० पू०, तथा 467 ई० पू०। हम इन तीनों मतों का क्रमशः अध्ययन करेंगे।

महावीर की मृत्यु को 527 ई० पू० में रखने वाले विद्वानों ने हार्नले तथा गुइरिनो प्रमुख हैं।[1] यह मत श्वेताम्बर सम्प्रदाय के विद्वान् मेरुतुंग (14वीं शती ई०) की 'विचार श्रेणी' एवं जैन, 'हरिवंश पुराण,' 'विविध तीर्थ कल्प,' 'तीर्थोद्धार प्रकीर्णक', 'त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति' तथा 'तेपागच्छ पट्टावली' आदि ग्रन्थों के साक्ष्य पर निर्भर हैं। इसके अनुसार पालक का राज्याभिषेक उसी रात को हुआ जिस रात महावीर की मृत्यु हुई। इसके बाद क्रमशः पालक ने 60 वर्ष, नन्दों ने 155 वर्ष, मौर्यों ने 108 वर्ष, पूसमित्त (पुष्यमित्र) ने 30 वर्ष, बलमित्र व भानुमित्र ने 60 वर्ष, नभोवाहन (नहपान) ने 50 वर्ष, गर्द-भिल्ल ने 13 वर्ष और शकों ने 4 वर्ष शासन किया। तदुपरान्त विक्रमादित्य का राज्या-भिषेक हुआ जिसने विक्रम संवत् का प्रवर्तन किया। इस प्रकार महावीर की मृत्यु विक्रम संवत् के प्रवर्तन के 60+155+108+30+60+13+4 वर्ष पूर्व अर्थात् 470+57=527 ई० पू० में हुई। इस परम्परा का समर्थन नेमिचन्द्राचार्य[2] के 'महावीरचरित' के इस कथन से होता है कि महावीर के निर्वाण और शकराज के जन्म

1. हार्नले, ए० एफ० आर०, पी० ए० एस० बी०, 1898, पृ० 39 अ०; गुइरिनो, योगेन्द्र मिश्र द्वारा 'हिस्टरी ऑव वैशाली' में पृ० 195 पर उद्धृत।

2. ब्युलर, आई० ए०, 2, पृ० 362-63; चटर्जी, बी० सी० लाहा वॉल्यूम, 1, पृ० 606।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के बीच 605 वर्ष 5 माह बीते। इतना ही समय दिगम्बर लेखक नेमिचन्द्र के 'त्रिलोक सार' एवं एक अन्य दिगम्बर आचार्य यतिवृषभ के ग्रन्थ 'त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति' में महावीर की मृत्यु और शकराज के अभिषेक के मध्य बीता बताया गया है।[1] इन लेखकों का आशय स्पष्टतः वीर-निर्वाण और शक-संवत् (78 ई०) के मध्य व्यतीत समय से है। इससे भी वीर निर्वाण तिथि 527 ई० पू० सिद्ध होती है। लेकिन यह मत स्वीकृत नहीं किया जा सकता। जैसाकि शार्पेण्टियर ने ध्यान दिलाया है :[2] (1) मेरुतुंग आदि द्वारा प्रदत्त परम्परा राजाओं के तिथिक्रम पर आधारित है। परन्तु इस विषय में इन लेखकों का ज्ञान सदोष था। उदाहरणार्थ, मेरुतुंग ने अवन्ति-नरेश पालक को मागध नरेशों के साथ गिन दिया गया है और नभोवाहन या नहपान को, जो मगध का शासक नहीं था, इस सूची में सम्मिलित कर लिया है। इतना ही नहीं इसमें नभोवाहन को विक्रमादित्य के भी पहले रखा गया है जबकि नहपान की तिथि प्रथम शती ई० के पूर्व कदापि नहीं पड़ सकती। (2) मेरुतुंग की तिथि में विक्रम संवत् का प्रवर्तक विक्रमादित्य को बताया गया है जबकि अब यह निश्चितप्रायः है कि इस संवत् को विक्रमादित्य द्वारा प्रवर्तित मानने की परम्परा मध्यकालीन है। प्रथम अभिलेख जो इस संवत् का उल्लेख विक्रम नाम से करता है 842 ई० का है। इससे पूर्व यह संवत् 'मालव' नाम से और उसके भी पहिले 'कृत' नाम से विख्यात था। (3) इस परम्परा में नन्दों का काल 155 वर्ष बताया गया है जो अन्य सभी साक्ष्य के विरुद्ध एवं सर्वथा असम्भव है। (4) कुछ जैन ग्रन्थों में विक्रम संवत् का प्रवर्तन विक्रमादित्य के अभिषेक से नहीं जन्म से माना गया है। उस अवस्था में 470 वर्ष में, जो महावीर की मुक्ति और विक्रम के अभिषेक में बीते, अनुमान से उतने वर्ष कम करने होंगे जितने वर्ष की आयु विक्रम की अभिषेक के समय रही होगी। अगर विक्रम की आयु अभिषेक के समय 40 वर्ष की मानी जाय तो महावीर की मुक्ति 57 ई० पू० के 430 वर्ष पूर्व अर्थात् 487 ई० पू० के लगभग पड़ेगी। (5) जैन साहित्य में महावीर को कुणिक (अजातशत्रु) का समकालीन माना गया है। अगर महावीर की मृत्यु 527 ई० पू० में हो गई थी तो वह बुद्ध के निर्वाण के केवल आठ वर्ष पूर्व राज्य पाने वाले अजातशत्रु के समकालीन नहीं हो सकते थे। (6) बौद्ध साहित्य के अनुसार बुद्ध और महावीर ने कुछ समय साथ-साथ धर्म प्रचार किया। अब बुद्ध (563-483 ई० पू०) को सम्बोधि प्राप्त हुई 528 ई० पू० में। अगर महावीर की मृत्यु भी लगभग उसी समय हो गई थी तो वे दोनों समकालीन धर्मोपदेशक नहीं हो सकते थे। (7) मेरुतुंग के कथन को मानने से चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण विक्रम संवत् के 255 वर्ष पूर्व अर्थात् 312 ई० पू० में पड़ता है। अशोक की तिथि को ध्यान में रखते हुए यह कदापि स्वीकार्य नहीं हो सकता।

1. प्रधान, एस० एन०, क्रोनोलोजी ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया, पृ० 243।

2. कै० हि० इ० 1, पृ० 155-6; आई० ए०, 1914, पृ० 175-77। दे०, रायचौधुरी, एन एडवान्स्ड हिस्टरी ऑव इण्डिया, अध्याय 6; जैकोबी, कल्पसूत्रज ऑव भद्रबाहु, पृ० 8; योगेन्द्र मिश्र, पूर्वो०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महावीर की मृत्यु तिथि विषयक दूसरी परम्परा सुप्रतिथ जैन आचार्य हेमचन्द्र (1088-1172 ई०) के ग्रन्थ 'स्थविरावलीचरित' अथवा 'परिशिष्टपर्वण' में मिलती है।[1] इसके अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण (जिसकी जैन तिथि 312 ई० पू० है) महावीर की मुक्ति से 155 वर्ष उपरान्त हुआ। इसलिए महावीर की मृत्यु 312+155= 467 ई० पू० में हुई। यही परम्परा भद्रेश्वर की 'कहावली' में मिलती है।[2] श्वेताम्बर जैनों की पट्टावलियों के अनुसार भी जैनाचार्य सम्भूत विजय की मृत्यु महावीर के निर्वाण के 156 वर्ष बाद हुई थी और वह चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन का प्रथम वर्ष था। इस परम्परा को जैकोबी व शार्पेण्टियर आदि स्वीकृत करते हैं।[3] एस० एन० प्रधान चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण की तिथि 325 ई० पू० मानकर महावीर की मुक्ति तिथि उसके 155 वर्ष पूर्व अर्थात् 480 ई० पू० में (और विकल्प रूप से चन्द्रगुप्त के अभिषेक की तिथि 322 मानकर महावीर की मुक्ति 477 ई० पू० में) रखते हैं। इस मत के पक्ष में कहा जा सकता है कि इसको मानने से बुद्ध और महावीर समकालीन हो जाते हैं। दूसरे, इससे भद्रबाहु, जिन्हें चन्द्रगुप्त का गुरु बताया गया है, चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालीन हो जाते हैं क्योंकि जैन परम्परानुसार भद्रबाहु महावीर की मृत्यु के 156 वर्ष बाद सम्भूतविजय की मृत्यु होने पर आचार्य बने और 15 वर्ष तक आचार्य रहने के बाद मरे। लेकिन महावीर की मृत्यु 467 ई० पू० में मानने में प्राचीनतम बौद्ध साहित्य, जो निश्चित रूप से जैन ग्रन्थों से प्राचीनतर और अधिक विश्वसनीय है, बाधा उपस्थित करता है क्योंकि इसके अनुसार निगण्ठ नाटपुत (=महावीर) बुद्ध के निर्वाण के बाद नहीं, पहिले मरे थे। 'दीघनिकाय' में एक स्थल पर चर्चा आती है कि चुन्द नामक भिक्षु ने भगवान् बुद्ध को, जब वह शाक्यों के सामगाम नामक ग्राम में ठहरे हुए थे, सूचित किया था कि हाल ही में पावा में निगण्ठ नाटपुत अर्थात् महावीर का देहावसान हो गया है (पावायं अधुना कालकतो होति) और उनके शिष्य दो दलों में बंट गए हैं। उस समय बुद्ध ने चुन्द और आनन्द को जो उपदेश दिये थे वे 'दीघ निकाय' में सुरक्षित हैं। इस ग्रन्थ में बुद्ध और उनके शिष्य सारिपुत्त इस बात पर भी चिन्ता प्रकट करते हैं कि कहीं जैन संघ में महावीर के कारण उत्पन्न हुए मतभेद की लहर बौद्ध संघ में भी न फैल जाए।[4] इससे स्पष्ट है कि महावीर की मृत्यु बुद्ध के जीवन काल में अर्थात् 483 ई० पू० के पूर्व ही हो गई थी। इसलिए यह परम्परा कि महावीर की मुक्ति चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारोहण के (जो 324 ई० पू० के पूर्व कदापि नहीं रखा जा सकता) 155 वर्ष पूर्व और तदनुसार बुद्ध के परिनिर्वाण के अनन्तर हुई थी, सही नहीं हो सकती।

1. एवं च श्री महावीरमुक्ते वर्षशते गते।
   पंच पंचाशदधिके चन्द्रगुप्तोभवन्नृपः॥ —परिशिष्टपर्वण, 8.339
2. जैकोबी, परिशिष्टपर्वण, भू०, पृ० 20।
3. आई० ए०, 1914, पृ० 175-77।
4. सन्दर्भों के लिए दे०, बी० सी० लाहा वॉल्यूम, 1, पृ० 606। स्मरणीय है कि जैन साक्ष्यानुसार भी महावीर की मृत्यु पावा में ही हुई थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ विद्वानों ने महावीर की मुक्ति तिथि बुद्ध के परिनिर्वाण से कुल तीन वर्ष पूर्व मानी है। हमारे विचार से यही मत सही है। इसके विषय में अनेक प्रमाण रखे गए हैं। (1) एच० सी० सेठ[1] का अत्यन्त तर्कसंगत सुझाव है कि मेरुतुंग आदि ने महावीर की मुक्ति तिथि एवं विक्रम संवत् के प्रवर्त्तन के बीच शासन करने वाले राजाओं में नभोवाहन या नहपान को गलती से सम्मिलित कर लिया है। अब हम निश्चित रूप से जानते हैं कि नहपान ने विक्रम-संवत् के प्रवर्त्तन के पूर्व नहीं, इसके उपरान्त, प्रथम शती ई० के अन्त और द्वितीय शती ई० के प्रारम्भ में कभी, शासन किया। इसलिए हम अगर महावीर और विक्रम संवत् के प्रवर्तन के बीच में मेरुतुंग आदि के अनुसार व्यतीत होने वाले 470 वर्षों में से नहपान के 40 वर्ष निकाल दें तो महावीर की मृत्यु 57 ई० पू० के 430 वर्ष पूर्व अर्थात् 430+57=487 ई० पड़ेगी। इस तिथि से जैन साक्ष्य इस बौद्ध परम्परा के साथ संगत हो जाता है कि बुद्ध का निर्वाण महावीर की मुक्ति के उपरान्त हुआ था।

(2) सी० डी० चटर्जी ने सुझाव रखा है कि चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण महावीर की मृत्यु से 155 वर्ष पूर्व नहीं (जैसाकि हेमचन्द्र ने लिखा है)वरन् वस्तुतः 165 वर्ष पूर्व हुआ होगा। बाद में इस संख्या को किसी ने गलती से 155 वर्ष कर दिया होगा। इस सुझाव को मानने से महावीर की मुक्ति बुद्ध के निर्वाण से तीन वर्ष पूर्व पड़ेगी क्योंकि बौद्ध परम्परानुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का अभिषेक बुद्ध के निर्वाण के 162 वर्ष पूर्व हुआ था।[2] चटर्जी के इस सुझाव से महावीर की मुक्ति तिथि 486 ई० पू० निर्धारित होती है।

(3) डॉ० योगेन्द्र मित्र ने महावीर की तिथि निर्धारित करने के लिए बुद्ध और महावीर के जीवन काल की घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया है और दिखाया है कि इन दोनों धर्मगुरुओं ने कई बार एक ही स्थान पर वर्षावास किया था। ये वर्षावास उनके जीवन के किस-किस वर्ष के थे यह भी बौद्ध और जैन साहित्य बताते हैं। इसके आधार पर मिश्र महोदय ने महावीर के अन्तिम वर्षावास की तिथि बौद्ध साक्ष्य के आधार पर निश्चित की है और निष्कर्ष निकाला है कि महावीर की मृत्यु बुद्ध के निर्वाण के तीन वर्ष पूर्व हुई थी।[3] क्योंकि डॉ० मिश्र बुद्ध निर्वाण की तिथि 487 ई० पू० मानते हैं इसलिए वह महावीर की मृत्यु 490 ई० पू० में रखते हैं। परन्तु हमने बुद्ध की निर्वाण-तिथि 483 ई० पू० मानी है, इसलिए डॉ० मिश्र के उपर्युक्त निष्कर्षानुसार हम महावीर की मृत्यु 486 ई० पू० में मान सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अधिकांश साक्ष्य यह निष्कर्ष स्वीकार करने से परस्पर संगत हो जाते हैं कि महावीर की मृत्यु 486 ई० पू० में हुई। इसलिए ज्ञान की वर्तमान अवस्था में हम इस तिथि को सही मानकर अपना काम चला सकते हैं। इस ग्रन्थ में प्रदत्त राजनीतिक इतिहास का तिथिक्रम हमने बुद्ध की निर्वाण तिथि 483 ई० पू० और

1. सेठ, एच० सी०, भारत कौमुदी, 2, पृ० 817-38।
2. बी० सी० लाहा वॉल्यूम, 1, पृ० 607, टि० 1।
3. मिश्र, योगेन्द्र, एन अर्ली हिस्टरी ऑव वैशाली, पृ० 202-12।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महावीर की मुक्ति तिथि 486 ई० पू० मानकर ही निर्धारित किया है।

मागध तिथिक्रम

बुद्ध और महावीर की तिथियां निर्धारित हो जाने पर मागध राजवंशों का तिथिक्रम निश्चित किया जा सकता है। पुराणों में बिम्बिसार का शासन काल 28 या 38 वर्ष का बताया गया है और अजातशत्रु का 25 या 27 वर्ष का। लेकिन पुराणों में शैशुनाग वंश को बिम्बिसार के पूर्व रखा गया है इसलिए इन ग्रन्थों का एतद्विषयक साक्ष्य संदिग्ध हो जाता है। इनसे अधिक विश्वसनीय परम्परा सिंहली ग्रन्थों में मिलती है। इसके अनुसार बिम्बिसार ने 52 वर्ष शासन किया और अजातशत्रु ने 32 वर्ष। बिम्बिसार के शासन की यह अवधि सही हो सकती है क्योंकि परम्परानुसार उसने 15 वर्ष की आयु में ही राज्य करना प्रारम्भ कर दिया था। अब, 'महावंस' के अनुसार अजातशत्रु के शासन के आठवें वर्ष बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ था। (अजातसत्तुनो वसे अट्ठमे मुनि निब्बतु)। इसलिए बुद्ध के परिनिर्वाण को हम अगर 483 ई० पू० में रखते हैं तो बिम्बिसार की मृत्यु 483+8=491 ई० पू० में तथा राज्यारोहण 491+52=543 ई० पू० में मानने होंगे और अजातशत्रु की मृत्यु 491—32=459 ई० पू० में रखनी होगी। यह सर्वथा सम्भव है कि सिंहल में बाद में 544–43 ई० पू० में प्रारम्भ होने वाला जो निर्वाण संवत् कल्पित हुआ वह भ्रमवशात् बिम्बिसार के राज्यारोहण से परिगणित कर दिया गया हो।

बिम्बिसार व अजातशत्रु की तिथियां निर्धारित हो जाने से शेष मागध नरेशों का तिथिक्रम भी निश्चित हो जाता है। 'महावंस' के अनुसार नन्दवंश के पतन तक मागध राजाओं का तिथिक्रम एवं उनकी ईसवी सन् में तिथियां इस प्रकार हैं :—

राजा का नाम	शासन के वर्ष	ईसवी सन् में तिथियां
1. बिम्बिसार	52	543—491 ई० पू०
2. अजातशत्रु	32	491—459 ई० पू०
3. उदायी	16	459—443 ई० पू०
4-5. अनरुद्ध और मुण्ड	8	443—435 ई० पू०
6. नागदासक	24	435—411 ई० पू०
7. शिशुनाग	18	411—393 ई० पू०
8. कालाशोक	28	393—365 ई० पू०
9. कालाशोक के दसपुत्र	22	365—343 ई० पू०
10. नवनन्द	22	343—321 ई० पू०

इसकी तुलना में पुराणों का तिथिक्रम इस प्रकार है :

बिम्बिसार	28 वर्ष (वायु०, मत्स्य०)
दर्शक	24 वर्ष (मत्स्य०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अजातशत्रु	25 वर्ष (वायु०, ब्रह्माण्ड०)
उदायी	33 वर्ष (वायु०, मत्स्य०)
नन्दिवर्धन	40 वर्ष (मत्स्य०, ब्रह्माण्ड०)
महानन्दी	43 वर्ष (वायु०, मत्स्य०, ब्रह्माण्ड०)
महापद्म	28 वर्ष (वायु०) 88 वर्ष (मत्स्य०)
सुमाल्य आदि	16 वर्ष (वायु०) 12 वर्ष (मत्स्य०)

इन दोनों सूचियों में 'महावंस' का तिथिक्रम अधिक सही है। इसके समर्थन में कई तर्क दिए जा सकते हैं :

(1) अनेक पालि बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार द्वितीय बौद्ध संगीति बुद्ध के निर्वाण के सौ वर्ष बाद बुलाई गई थी। सर्वास्तिवादियों एवं युवान च्वांग के अनुसार यह घटना निर्वाण के 110 वर्ष बाद घटी थी। सिंहली ग्रन्थों में इसको आयोजित करने वाले राजा का नाम कालासोक दिया गया है।[1] उपर्युक्त तिथिक्रम इस परम्परा के साथ संगत है, चाहे यह संगीति निर्वाण के सौ वर्ष बाद (383 ई० पू०) बुलाई गई हो या 110 वर्ष बाद (393 ई० पू०)।

(2) जैन साक्ष्य में बताया गया है कि उदायी के निस्सन्तान मरने के बाद मन्त्रियों ने राजसत्ता एक नापित के पुत्र को जो एक गणिका के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, सौंप दी। उस समय महावीर की मुक्ति को साठ वर्ष व्यतीत हुए थे।[2] यह परम्परा उस समय बोधगम्य हो जाती है जब हम यह मानें कि जैन ग्रन्थों में गलती से महापद्मनन्द की पहिचान शिशुनाग से कर दी गई है क्योंकि वास्तव में मन्त्रियों द्वारा पुराने राजा को हटाकर किसी नए व्यक्ति को राजा बनाने की कथा बौद्ध ग्रन्थों में शिशुनाग के विषय में ही मिलती है (महावंस)। यह भी स्मरणीय है कि 'महावंसटीका' के अनुसार शिशुनाग एक लिच्छवि राजा द्वारा नगरशोभिणी (वेश्या) के गर्भ से उत्पन्न पुत्र था। इसलिए जैन लेखक उसे भ्रमवशात गणिकागर्भोद्भव महापद्मनन्द मान सकते थे। यह सर्वथा सम्भव है कि शिशुनाग और उसका पुत्र कालाशोक नन्दिवर्द्धन और महानन्दी नामों से विख्यात रहे हों। तारानाथ का यह कथन कि द्वितीय बौद्ध संगीति 'नन्दी' नामक राजा के शासनकाल में बुलाई गई थी, इस अनुमान को कुछ आधार प्रदान करता है। इन नामों के कारण जैन लेखक शिशुनाग को महापद्मनन्द समझ बैठे होंगे। इस सुझाव से यह भी बोधगम्य हो जाता है कि हेमचन्द्र ने महापद्मनन्द का राज्यारोहण महावीर की मुक्ति के 60 वर्ष बाद क्यों रखा है। हमारे तिथिक्रम के अनुसार महावीर की मुक्ति 486 ई० पू० में हुई और शिशुनाग का अभिषेक 411 ई० पू० में अर्थात् 75 वर्ष बाद।

1. सन्दर्भों के लिए दे०, मिश्र, जी० एस० पी०, दि एज ऑव विनय, पृ० 15।
2. अनन्तरं वर्धमानस्वामि निर्वाणवासरात्।
गतायां षष्ठिवत् सयायामेष नन्दोऽभवन्नृपः॥ —स्थविरावलीचरित, 6.243

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह अन्तर हेमचन्द्र की संख्या के निकट है ।

(3) हेमचन्द्र ने प्रथम नन्द का अभिषेक महावीर की मुक्ति के 60 वर्ष बाद रखा है और चन्द्रगुप्त मौर्य का 155 वर्ष बाद । इस तरह वह नन्द वंश का शासन 95 वर्ष का मानता है । उसके लिए यह सर्वथा स्वाभाविक था क्योंकि वह शिशुनागवंशीय राजाओं का अस्तित्व मानता ही नहीं । अगर उसने भ्रमवशात् शिशुनाग को प्रथम नन्द मान लिया है तो यह तथ्य महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि बौद्ध साक्ष्य शिशुनाग व चन्द्रगुप्त मौर्य के अभिषेकों में 411—321=90 वर्ष का अन्तर मानते हैं जो हेमचन्द्र की 95 वर्ष की अवधि के निकट है ।

(4) पौराणिक तिथिक्रम में शिशुनाग-वंश को बिम्बिसार के पूर्व रखने और इसके साथ ही नन्दिवर्धन तथा महानन्दी (हमारे सुझावानुसार शिशुनाग व कालाशोक) को अलग रखने से बहुत भ्रम उत्पन्न हो गया है, परन्तु पुराणों के कुछ तथ्य 'महावंस' के साक्ष्य के साथ मिलाए जा सकते हैं । उदाहरणार्थ, बिम्बिसार का शासन 'महावंस' में 52 वर्ष बताया गया है जबकि मत्स्य० में बिम्बिसार (28 वर्ष) व दर्शक (24 वर्ष) के शासन काल का योग ठीक इतना ही है । इसी प्रकार 'महावंस' में कालासोक के पुत्रों के शासन की अवधि (जब प्रथम नन्द ने उनका संरक्षक होने का बहाना करके शासन किया) 22 वर्ष है और नवनन्दों के शासन को भी 22 वर्ष का माना गया है । इन दोनों का योग 44 वर्ष होता है । पुराणों में न कालासोक का उल्लेख है न उसके पुत्रों का, लेकिन 'वायुपुराण' में महापद्म के शासन की अवधि 28 वर्ष बताई गई है और उसके पुत्रों के शासन की 16 वर्ष । इन दोनों का योग भी 44 वर्ष होता है । स्पष्टतः पुराणों में कालासोक के पुत्रों के शासन की अवधि को महापद्मनन्द के शासन में ही परिगणित कर दिया गया है । इन तथ्यों के प्रकाश में हम मागध नरेशों के उस तिथिक्रम को ही सही मानना उचित समझते हैं जो 'महावंस' में दिया गया है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 13

साखामनीषी आक्रमण (१)

प्राक्-साखामनीषी युग

उत्तर में हिमालय, पश्चिम में हिन्दुकुश, सफेदकोह, सुलेमान तथा किर्थर पर्वत श्रेणियां, दक्षिण में अरब सागर तथा पूर्व में थार रेगिस्तान और पूर्वी पंजाब की पहाड़ियों से घिरी हुई सिन्धु एवं उसकी सहायक नदियों की विशाल उपत्यका (प्राचीन भारतीयों का 'उत्तरापथ') भारतीय सांस्कृतिक जगत् का अंग होते हुए भी गंगा की घाटी से प्रारम्भ होने वाली राजनीतिक हलचलों से कुछ कटी हुई रहती थी। गंगा की घाटी में उद्भूत होने वाला पहला राजवंश, जिसने इस पर शासन किया, मौर्यों का था। उनके बाद अनेक शताब्दियों तक गंगा-उपत्यका के साम्राज्यों—शुंग, भारशिव, गुप्त, वर्धन इत्यादि—में इसे स्थायी रूप से सम्मिलित नहीं किया जा सका।[1] इसके विपरीत यह प्रदेश पश्चिमी और मध्य एशियायी प्रजातीय और राजनीतिक उथल-पुथलों से प्रायः प्रभावित होता रहा। स्वयं आर्यों का मध्य एशिया से भारत में आगमन और उनके उपरान्त क्रमशः ईरान के साखामनीषी (Achaeminid) सम्राटों एवं मकदूनी-यूनानी, बैक्ट्रियायी-यूनानी, शक, पह्लव, कुषाण और हूण आदि जातियों के आक्रमण इसका प्रमाण हैं। इस प्रदेश के तीन प्राकृतिक भाग हैं—उत्तर का पर्वतीय प्रदेश, 'सप्तसिन्धु' अथवा पंजाब का उर्वर मैदान तथा सिन्ध का लगभग पूर्णतः शुष्क प्रदेश। सिन्धु नदी, जो तिब्बत के पठार से निकलती है, इस सम्पूर्ण भूखण्ड को पार करके अरब सागर में गिरती है। इस नदी से ही हमारे देश को 'हिन्दुस्तान' (सिन्धु>हिन्दु) नाम मिला था। कुछ यूनानी लेखकों की दृष्टि में यह प्राचीन काल में भारत की पश्चिमोत्तर सीमा भी थी (दे०, आगे)। अटक के समीप इसमें काबुल नदी (संस्कृत कुभा; यूनानी कोफेन) पश्चिम से आकर अपना और अपनी सहायक नदियों का जल उड़ेलती है। लेकिन इसकी अधिक बड़ी सहायक नदी सतलज (संस्कृत शुतुद्रि अथवा शतद्रु; यूनानी नाम हेसिड्रुस अथवा जरड्रोस) है। यह झेलम (संस्कृत नाम वितस्ता; यूनानी नाम हाइडेस्पिज़), चिनाब (चन्द्रभागा अथवा असिक्नी; यूनानी नाम एकेसिनिज़), रावी (प्राचीन परुष्णी अथवा इरावती; यूनानी हाइड्रओटिज़) और ब्यास (प्राचीन संस्कृत नाम विपाशा; यूनानी नाम हाइफेसिस) के जल से शक्तिवती होकर मिठनकोट के पास सिन्धु में आ मिलती है। इन्हीं नदियों के द्वारा सिंचित प्रदेश पञ्चनद या पंजाब (पांच नदियों का देश)

1. सिन्धु-उपत्यका के प्रति गंगा की उपत्यका के सम्राटों के दृष्टिकोण का विस्तार से अध्ययन करने के लिए दे०, गोयल, हिस्टरी ऑव इम्पीरियल गुप्तज़, पृ० 277-82।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कहलाता है। इस भौगोलिक स्थिति का पंजाब के इतिहास पर गहरा प्रभाव पड़ा। इन नदियों की अन्तर्वेदियों में बसी जातियों में एक और आंशिक भौगोलिक पृथकत्व से प्रादेशिक स्वतन्त्रता की भावना पैदा होती थी तो दूसरी ओर उनकी सम्पदा साम्राज्य-वादी नरेशों को आकर्षित करती थी जिनके आक्रमणों में ये नदियां वर्षाकाल में बाधक सिद्ध होती थीं और अन्य समय सहायक। सिन्धु की उपत्यका (विशेषतः पंजाब) न केवल अपनी उर्वरता के लिए प्रसिद्ध थी वरन् यहां सिन्धु, काबुल एवं कुछ नदियों की रेत में सुवर्णकण भी मिलते थे। हेरोडोटस के अनुसार, पांचवीं शती ई० पू० में 'इण्डिया' (=सिन्धु की उपत्यका का एक भाग) से ईरानियों को कर के रूप में प्रति वर्ष 360 टेलेण्ट[1] सुवर्ण रेत मिलती थी। सिकन्दर के इतिहासकारों एवं शुआन-च्वांग (7वीं शती ई०) ने भी इस प्रदेश में सुवर्ण की 'खानों' की चर्चा सुनी थी।[2] गन्धार (तक्षशिला-पुरुषपुर प्रदेश) अपनी बहुमूल्य लकड़ी के लिए भी प्रसिद्ध था। एक साखामनीषी अभि-लेख में चर्चा आई है कि एक ईरानी राजप्रासाद के निर्माण में गन्धार की 'टीक' का प्रयोग किया गया था।

साखामनीषी-युग में भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश का इतिहास, विशेषतः इस पर ईरानी आधिपत्य का ज्ञान भारतीय साहित्य से नहीं होता—केवल छठी शती ई० पू० में इस प्रदेश के गन्धार और कम्बोज राज्यों को बौद्ध तथा जैन साहित्य में सोलह महा-जनपदों की सूचियों में परिगणित करते हुए कुछ छिट-फुट सूचनाएं दी गई हैं। पाणिनि ने, जो गन्धार प्रदेश के निवासी थे, अपना व्याकरण-ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' साखामनीषी युग में अवश्य लिखा, परन्तु वे अपने युग के विभिन्न राजाधीन और गणाधीन राज्यों की, जो साखामनीषियों के प्रभावान्तर्गत रहे होंगे, चर्चा मात्र करते हैं, उनके राज-नीतिक महत्त्व की कोई सूचना नहीं देते। इस विषय में हमारी सर्वाधिक सहायता पर्सिपॉलिस, नाक्शेरुस्तम तथा बेहिस्तुन आदि स्थलों से प्राप्त साखामनीषी अभिलेख करते हैं। दूसरा महत्त्वपूर्ण स्रोत यूनानी लेखक हैं। इनमें प्रथम दारयवहुष का सम-कालीन भूगोलवेत्ता हेकाटयस, 'हिस्टरीज' नामक ग्रन्थ का लेखक 'इतिहास-पिता' हेरोडोटस (5वीं शती ई० पू०), 416 से 398 ई० पू० तक ईरानी राजसभा में राज-वैद्य के रूप में रहने वाला टीसियस, तथा क्युनेक्सा के युद्ध में भाग लेने वाला एक्सनाफन (मृत्यु लग० 355) प्राक्-सिकन्दरकालीन हैं। इनके ग्रन्थों में भारत विषयक सूचनाएं प्रायः स्काइलैक्स (दे०, आगे) जैसे पदाधिकारियों द्वारा प्रदत्त सूचनाओं पर आधारित हैं। सिकन्दर के बाद भारत पर ईरानी आधिपत्य विषयक सूचनाएं क्लासिकल लेखकों को प्रधानतः स्वयं सिकन्दर के नियर्कस, ओनेसिक्रिटस तथा एरिस्टोबुलस जैसे लेखकों तथा मेगास्थेनिज़ जैसे राजदूतों से मिली। इन क्लासिकल लेखकों में स्ट्रेबो (लग० 64 ई० पू०-19 ई०), डायोडोरस (मृ० 36 ई० पू०), ज्येष्ठ प्लिनी (प्रथम शती ई०),

1. टेलेण्ट प्राचीन यूनान की तौल का एक मान था। एक टेलेण्ट करीब 57 पौण्ड के बराबर होता था।

2. स्ट्रेबो ने मूसिकेनोस के राज्य में सोने चांदी की खानें होने का ज़िक्र किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्लुटार्क (45-125 ई०), जस्टिन (दूसरी शती ई०) तथा एरियन (जन्म लगभग 130 ई०) उल्लेखनीय हैं। भारत और पश्चिमी एशियायी देशों के प्राक्-साखामनीषीयुगीन सम्बन्धों के विषय में भी क्लासिकल लेखकों का साक्ष्य ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

ईरान और पश्चिमी एशियायी देशों के साथ भारत का सम्बन्ध मुख्यतः स्थल-मार्ग से और अंशतः समुद्री मार्ग से जुड़ता था। सैन्धव सभ्यता के युग में भारत के पश्चिमी एशिया और सम्भवतः मिस्र के साथ व्यापार सम्बन्ध थे। ऐतिहासिक युग में भारत से खैबर दर्रा, कन्धार, हिरात, हेकाटोम्पाइलोस् तथा एकबटाना होते हुए सेल्युसिया जाने वाला मार्ग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था।[1] इसके अतिरिक्त एक अन्य मार्ग, जिसे बाद में शक आक्रमणकारियों ने प्रयुक्त किया, मुल्ला दर्रे से गुजरता था।[2] साखामनीषी आक्रमण के उपरान्त ये मार्ग अतीव महत्त्वपूर्ण हो गए और पहिले ईरानी तथा तदनन्तर यूनानी संस्कृति के भारत में प्रवेश का माध्यम बने। समुद्रीमार्ग का प्रयोग भी सम्भवतः प्राक्-साखामनीषी युग में ही प्रारम्भ हो गया था। वस्तुतः सैन्धव सभ्यता के प्रकाश में आने के पूर्व भी कैनेडी का विचार था कि भारत और असीरिया-बैबिलोनिया में फारस की खाड़ी के मार्ग से सातवीं शती ई० पू० में और सम्भवतः उसके पूर्व भी व्यापार होता था।[3] ओमस्टीड को भारत और असीरिया-बैबिलोनिया के व्यापार सम्बन्ध विषयक यह सुझाव स्वीकार है, यद्यपि वह उस काल में स्थल मार्ग के प्रयोग की सम्भावना पर अधिक बल देते हैं।[4] लेकिन ये सम्बन्ध सम्भवतः कभी भी राजनीतिक रूप धारण नहीं कर पाए थे। एरियन (दूसरी शती ई०) के अनुसार सिन्धु और काबुल नदियों के मध्य निवास करने वाले भारतीय 'पुराने जमाने में असीरियनों के अधीन थे, फिर वे मीडों के अधीन हुए और अन्त में ईरानियों के' (इण्डिका, 1.1-3)। उसके अनुसार जिस समय सिकन्दर भारत से गेड्रोशिया (बलूचिस्तान) होते हुए बैबिलोन जा रहा था, गेड्रोशिया के निवासियों ने उसे बताया था कि असीरिया की रानी सेमिरामिस भारत पर असफल आक्रमण करने के बाद अपनी जान बचाकर भागते हुए केवल बीस आदमियों के साथ उस मार्ग से गुजरी थी (एनाबेसिस, 6.24.2-3)। जस्टिन ने भी लिखा है कि भारत पर सेमरामिस और सिकन्दर के अतिरिक्त कभी किसी विदेशी ने आक्रमण नहीं किया।[5] इस प्रसंग में विंक्लर ने ध्यान दिलाया है कि असीरिया-नरेश तृतीय अथवा चतुर्थ श्लमनेसर (8वीं अथवा 7वीं शती ई० पू०) को बैक्ट्रिया और 'इण्डिया' से क्रमशः ऊंटों और हाथियों की भेंट मिली थी[6] तथा बीर्सनिमरूद में कैल्डियन नरेश नेबूशद्रेज्ज़र (604-5

1. टार्न, हेलेनिस्टिक सिविलिजेशन, पृ० 193-214। सिकन्दर ने इसी मार्ग का अनुसरण किया था। अन्य मार्गों के लिए दे०, ए०, इ० यू०, पृ० 612।
2. टार्न, ग्री० बै० इ०, पृ० 320।
3. जे० आर० ए० एस०, 1898, पृ० 241-68: दे०; रॉलिन्सन, इण्टरकोर्स बिट्विन इण्डिया एण्ड दि वेस्टर्न वर्ल्ड, पृ० 10 अ०।
4. ओमस्टीड, हिस्टरी ऑव असीरिया, पृ० 532।
5. हिस्टोरिए फिलिप्पीकाय, 1. 2. 9 कै०; हि० इ०, पृ० 297, टि० 2 में उद्धृत।
6. ए० इ० यू०, पृ० 612।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ई० पू०) के राजप्रासाद तथा उर नगर में एक मन्दिर के उत्खनन में भारतीय टीक के शहतीर मिले थे।[1] परन्तु इन सब साक्ष्य से यह किंचित्मात्र भी प्रमाणित नहीं होता कि असीरियनों, बैबिलोनियनों अथवा मीडों ने भारत पर किसी समय भी आक्रमण किया था। पूर्व दिशा में असीरियन अभियान पश्चिमी ईरान के मन्नई प्रदेश तक सीमित रहे—इसके और पूर्व में असीरियन कभी नहीं बढ़ पाये। इसलिए सेमिरामिस का तथाकथित अभियान एक किंवदंती मात्र ही माना जा सकता है। सम्भवतः इस विषय में मेगास्थेनिज़ का यह कथन सही है कि सेमिरामिस इस भारतीय अभियान की योजना को कार्यान्वित करने के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो गई थी।[2]

क्योंकि ईरान तथा भारत में इण्डो-यूरोपीय प्रजाति का प्रवेश लगभग एक साथ हुआ और दोनों देशों में आने वाले आर्य मूलतः एक ही जाति के थे, इसलिए ईरान की प्राचीनतम संस्कृति भारत की वैदिक संस्कृति के सदृश और भाषा वैदिक संस्कृति से मिलती-जुलती थी।[3] यह सादृश्य सर्वज्ञात है; इसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है।[4] उस युग का अर्थात् छठी शती ई० पू० के पहिले के भारतीय-ईरानी राजनीतिक सम्बन्धों का इतिहास सर्वथा अज्ञात है। यह सही है कि वैदिक साहित्य में पार्थव (ऋ० 6.27.3) पर्शव (ऋ० 10.33.2) तथा वल्हिक (अथर्व० 5.22.5,7,9) आदि शब्द मिलते हैं जिनका ईरान से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है, परन्तु इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।[5] इसी प्रकार 'अवेस्ता' में कई स्थलों पर 'हिन्द' की चर्चा है, एक स्थल (यश्त 8.32) में उस्-हिन्दव पर्वत (हिन्दुकुश ?) की और एक अन्य स्थल पर अहुरमज़्दा द्वारा निर्मित ईरानी जगत् के सोलह प्रदेशों की सूची में हफ्तहिन्दु (=सप्तसिन्धु) की। ऐसा ही एक उल्लेख यश्त 10.104 में है जहां 'अवेस्ता' के देवता मिथ्र के लिए कहा गया है कि वह 'पश्चिमी हिन्द' से 'पूर्वी हिन्द' तक के पातकी जनों का नाश करने वाला है। इसके अतिरिक्त भारत और ईरान के मध्यवर्ती सीमा-प्रदेशों—हरःवैति (=एरेकोशिया), हरोइव (=हिरात), वाइकेरेत (=काबुल की घाटी), वारव्दी (=बैक्ट्रिया या बल्ख) आदि का उल्लेख भी 'अवेस्ता' में हुआ है। परन्तु 'अवेस्ता' का परवर्ती पार्थियन और सासानी युगों में कई बार संशोधन और परिवर्धन हुआ, इसलिए इसके आधार पर प्राक्-साखामनीषी युग में भारत के साथ

1. वही।
2. स्ट्रेबो द्वारा उद्धृत।
3. दे०, जैक्सन, डब्ल्यू०, कै० हि० इ०, पृ० 282 अ०; गोयल, श्रीराम, विश्व की प्राचीन सभ्यताएं, पृ० 502; वैदिक एज, पृ० 222-27।
4. इस प्रसंग में ईरान के पश्चिम में बसी मितन्नी जाति में (लगभग 1400 ई०पू०) वैदिक देवता मित्र, उरुव्न (=वरुण), इन्दर (=इन्द्र) नासात्तिय (नासत्यद्वय) की उपासना, जिसका उल्लेख एक बोघजकोई अभिलेख में मिलता है, स्मरणीय है।
5. ऐतरेय ब्रा० (8.14) में 'उत्तर कुरु' और 'उत्तर मद्र' का उल्लेख है और उन्हें हिमालय के परे (परेण हिमवन्तम्) निवास करने वाली जातियां कहा गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ईरान के राजनीतिक सम्बन्धों के विषय में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।[1]

छठी शती ई० पू० में भारत और ईरान के मध्य हिन्दुकुश और सुलेमान पर्वत सीमा रेखा थे और काबुल की उपत्यका में भारतीय जातियां, विशेषतः गान्धारी, बसी हुई थीं। सतगिडे (Satagydae—शतगु) भी, जिसे ईरानी थतगु कहते थे, अनुमानतः भारतीय ही थी।[2] हिन्दुकुश के दक्षिण-पश्चिम में आधुनिक अफगानिस्तान और बलूचिस्तान में सम्मिलित बहुत से भूभाग—वाह्लिक से लेकर गेड्रोशिया तक—भारतीय और ईरानी जगत् के मध्यवर्ती प्रदेश थे और इनके निवासी दोनों देशों की संस्कृतियों के प्रभावान्तर्गत रहते थे। उदाहरणार्थ, चेरेक्स के इसिडोर के अनुसार एरेकोशिया अथवा कन्धार ('अवेस्ता' का हरःवैती और साखामनीषी लेखों का हरउवतिश) प्रथम शती ई० में भी 'श्वेत भारत' (ह्वाइट इंडिया) कहलाता था।[3] भारतीय महाजनपदों की बौद्ध ग्रन्थों में प्रदत्त सूची से भी स्पष्ट है कि छठी शती ई० पू० में कम से कम गन्धार तक विस्तृत प्रदेश को भारत के अन्तर्गत गिना जाता था। सुप्रथित फ्रान्सीसी विद्वान् डर्मेस्टेटर का निष्कर्ष है कि काबुल से सीस्तान तक का प्रदेश ईसा के पहले और बाद की शताब्दियों में ईरानी कम थे, भारतीय ज्यादा। दूसरी तरफ यूनानी-रोमक लेखक सिन्धु के पार के प्रदेशों को प्रायः भारत से पृथक् मानते थे। इस प्रसंग में फूशे ने ध्यान दिलाया है कि सिन्धु पार के बहुत से स्थलों के नाम भारतीय न होकर ईरानी थे। नृतत्त्ववेत्ताओं के अनुसार भी सिन्धु नदी, 'भारतीय-आर्य' और 'तुर्की-ईरानी' जाति परिवारों के बीच सीमा रेखा है। सम्भवतः इसीलिए बुद्धघोष ने योनों और काम्बोजों को ईरानी प्रभावक्षेत्र के अन्तर्गत बताया था। 'अथर्ववेद' के ऋषियों ने भी तक्मन् ज्वर को अंग और मगध के साथ गन्धारियों और मूजवन्तों के पास जाने को कहकर[4] यह प्रकट किया है कि उत्तर वैदिक काल में ही यह धारणा बलवती हो चुकी थी कि उत्तरापथ की संस्कृति मध्यदेशीय संस्कृति से हीनतर थी। 'बौधायन-धर्मसूत्र' में तो स्पष्टतः कहा गया है कि जिस व्यक्ति को आरट्टों के देश जाना पड़ जाये और उसे लौट कर अपने को शुद्ध करने वाले अनुष्ठान करने चाहिये।[5] इसके आधार पर निष्कर्ष निकाला गया है कि वैदिक काल में आर्यों के एक से अधिक आक्रमण हुए थे।[6] इनमें कुछ आक्रमणकारी शायद ईरान की तरफ से आये थे। 'ऋग्वेद' में उल्लिखित 'पख्त' अगर आधुनिक पश्तुओं के पूर्वज थे, तो वे ईरानी भाषा-भाषी ही रहे होंगे क्योंकि पश्तो एक

1. जैक्सन की यह धारणा कि 'अवेस्ता' में प्रदत्त ईरान और भारत के परिचय विषयक तथ्य प्राक्-साखामनीषी युग से सम्बन्धित माने जा सकते हैं और इनके आधार पर उस युग में उत्तर भारत पर ईरानी राजनीतिक प्रभाव की कुछ कल्पना की जा सकती है, अभी तक अप्रमाणित है। दे०, ए० इ० यू०, पृ० 39।
2. एडवर्ड मियर, एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, 11वां संस्करण, 21, 203, 'पर्शिया, लेख।
3. जैक्सन, पूर्वो०, पृ० 292।
4. अथर्ववेद, 5. 22. 14।
5. बौ० ध० सू०, 1. 2. 14।
6. चन्दा, आर० पी०, इण्डो-आर्य रेसिज।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईरानी भाषा है। ज़ीन शिलुस्की ने ऐसी कई जातियों का अध्ययन प्रस्तुत किया है जो उनके अनुसार साखामनीषी आक्रमण के पूर्व उत्तरापथ में आकर बस गई थीं।[1] सिकन्दर के इतिहासकारों ने पंजाब के एक पर्वतीय प्रदेश के शासक आर्सेसिज़ (Arsaces) और सिन्धु के समीप निवास करने वाली सोग्डोई (Sogdoi) जाति का उल्लेख किया है। इनमें 'आर्सेसिज़' नाम पार्थियन है और 'सोग्डोई' मध्य एशिया के सोग्डियाना प्रान्त के नाम से व्युत्पन्न।[2] लेकिन यहां यह स्मरणीय है कि ये नाम साखामनीषी युग में भारत पर पड़े ईरानी प्रभाव का परिणाम भी हो सकते हैं।

सातवीं शती ई० पू० के उत्तरार्ध में ईरान के पश्चिमी प्रान्त मीडिया में एक शक्तिशाली राजवंश की स्थापना हुई। इसके एक नरेश उवक्षत्र ने बैबिलोन के कैल्डियन नरेश नेबोपोलस्सर के साथ 612 ई० पू० में असीरिया पर आक्रमण कर उसका विनाश कर दिया और असीरिया-साम्राज्य के उत्तरी प्रान्तों को अधिकृत कर लिया।[3] उसके द्वारा स्थापित इस मीडियन साम्राज्य की राजधानी एकबटना नगर था। जैसा कि हम पीछे कह आए हैं, एरियन के एक कथनानुसार मीडों ने काबुल और सिन्धु नदी के मध्यवर्ती भूभाग पर आधिपत्य स्थापित किया था।[4] परन्तु मीडियायी इतिहास से स्पष्ट है कि मीडों का अधिकार सम्पूर्ण ईरान पर भी नहीं था, भारत के सीमावर्ती प्रान्तों की बात ही क्या।[5]

कुरुष महान् और भारत

छठी शती ई० पू० के मध्य ईरान में बड़ी राजनीतिक उथल-पुथल हुई। उवक्षत्र के पश्चात् मीडियायी साम्राज्य का स्वामी उसका पुत्र इश्तवेगु (584-550 ई० पू०) हुआ जिसके काल में दक्षिणी ईरान के अन्सान प्रान्त के साखामनीषी वंशीय शासक प्रथम कम्बुजिय (Cambyses) ने, जो नाममात्र के लिए उसके अधीन था, अपनी शक्ति बढ़ा ली। इससे प्रभावित होकर इश्तवेगु (Astyages) ने अपनी पुत्री का विवाह उसके

1. जे० ए०, 1926, पृ० 11। इस मत के लिए कि 'शर्व' के उपासक ईरानी थे और ऋग्वेदोत्तर काल में भारत में आए, दे०, वि० व० राव की पुस्तक 'उत्तर वैदिक समाज और संस्कृति' में वी० एस० पाठक द्वारा लिखित 'प्रवेशक'।

2. लेकिन इस नाम का सही रूप सम्भवतः सोग्डोई न होकर सौद्रे (Sodrai) था और यह संस्कृत नाम शौद्रायण का यूनानी रूपान्तर था।

3. दे०, गोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएं, पृ० 501 अ०।

4. हर्ज्फल्ड का विश्वास है कि मीडियन साम्राज्य में भारतीय प्रान्त सम्मिलित थे, आई० ए०, 1947, पृ० 181-84।

5. मीडिया और भारत के सांस्कृतिक सम्बन्धों के परवर्ती युगीन प्रमाण उपलब्ध हैं। हेरोडोटस ने जिन मागियों को छः मीडियायी कबीलों में एक बताया है (हिस्टरीज, 1. 101) वे भारतीय साहित्य में उल्लिखित सूर्यपूजक मग ब्राह्मणों से (मत्स्यपुराण, अध्याय 122) अभिन्न माने जाते हैं। वे भारत में शाक द्वीप से आए थे। टॉलेमी ने भी बेट्रिगो पर्वत के एक भाग में रहने वाले 'बखमनाई मगोई' का उल्लेख किया है (मजूमदार, क्ला० ए० इ०, पृ० 375)। 'बृहत्संहिता' में वराहमिहिर ने 'मेदों' के एक उपनिवेश की चर्चा की है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथ कर दिया। कम्बुजिय की इस रानी के गर्भ से ही सुप्रतिथ नरेश द्वितीय कुरुष (Cyrus) का जन्म हुआ जिसने इश्तवेगु के असन्तुष्ट सामन्तों के सहयोग से 553 ई० पू० में विद्रोह कर दिया और 550 ई० पू० में मीडिया को अधिकृत कर लिया। द्वितीय कुरुष एक महत्त्वाकांक्षी और योग्य नरेश सिद्ध हुआ। उसका ईरान के इतिहास में वही स्थान है जो भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य का।[1] 547 ई० पू० में उसने लीडिया जीता और 538 ई० पू० में बैबिलोनिया। 529 में मृत्यु होने के पूर्व उसने पश्चिम में एशिया माइनर तक विजय प्राप्त कर ली थी और सम्पूर्ण ईरान को अपने अधिकार में कर लिया था। लेकिन ईरान-भारत के मध्यवर्ती प्रदेशों और स्वयं भारत में उसे कितनी सफलता मिली, यह प्रश्न अत्यन्त विवादग्रस्त है।

कुरुष की भारतीय प्रदेशों की विजय के सम्बन्ध में प्रायः स्वीकृत मत ए० वी० डब्ल्यु० जैक्सन का है। उनके अनुसार "इस बात में शंका करने के लिए युक्तियुक्त आधार हो सकते हैं कि कुरुष ने वस्तुतः उत्तरी भारत पर आक्रमण किया था, लेकिन यह एक सन्देहातीत तथ्य है कि उसने उन प्रदेशों पर, जो आजकल अफगानिस्तान और बलूचिस्तान कहलाते हैं, आक्रमण किया था।"[2] वह एडवर्ड मियर[3] के इस मत से लगभग पूर्णतः सहमत है कि "कुरुष ने पेरोपेनिसस (हिन्दुकुश प्रदेश) और काबुल की घाटी में बसी जातियों को जीता प्रतीत होता है जबकि दारयवहुष (Darius) स्वयं सिन्धु तक बढ़ा था।" इस मत का समर्थन रायचौधुरी, चट्टोपाध्याय और मुकर्जी ने भी किया है।[4] इसके विपरीत मजूमदार का कथन है कि "यह बात मानने का तो कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता कि कुरुष ने उत्तरी भारत पर वस्तुतः आक्रमण किया था, इसमें शंका करने के लिए भी युक्तियुक्त आधार उपलब्ध हैं कि उसने आधुनिक अफगानिस्तान और बलूचिस्तान में कहीं भी आक्रमण किया था।"[5] इस मतभेद को सुलझाने के लिए मूल साक्ष्य से परिचय आवश्यक है।

कुरुष महान् की भारत विजय के सम्बन्ध में सर्वप्रथम इतिहास-पिता हेरोडोटस (5वीं शती ई० पू०) के इस कथन की चर्चा की जा सकती है कि "कुरुष ने एक एक करके प्रत्येक 'राष्ट्र' (nation) को, बीच में किसी को भी न छोड़ते हुए, जीत कर एशिया के उपरले प्रदेशों पर व्यक्तिगत रूप से विजय प्राप्त की थी" (हिस्टरीज, 1. 177)। एशिया के उपरले प्रदेशों से हेरोडोटस का आशय एशिया माइनर के पूर्व में स्थित एशियायी प्रदेशों से था।[6] लेकिन यह कथन इतना अस्पष्ट है कि उसके आधार पर

1. द्वितीय कुरुष के जीवनवृत्त के लिए दे०, गोयल, विश्व की प्राचीन सभ्यताएं, पृ० 509 अ०।
2. कै० हि० ई०, पृ० 298।
3. कै० हि० इ०, पृ० 298 पर उद्धृत; दे०, जे० बी० ग्रे तथा एम० कैरी०, कैम्ब्रिज एन्शयेण्ट हिस्टरी, 4, पृ० 183; हर्ज्फील्ड, एम० ए० एस० आई०, 34, पृ० 3।
4. रायचौधुरी, एच० सी०, पो० हि० ए० इ०, पृ० 239-40; ए० न० मौ०, पृ० 30; मुकर्जी - ए० इ० यू०, पृ० 40; चट्टोपाध्याय, एस०, पूर्वो०, पृ० 7।
5. मजूमदार, आई० एच० क्यू०, 25, पृ० 153 अ०।
6. कै० हि० इ०, पृ० 295, टि०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुरुष को किसी प्रदेश विशेष को जीतने का श्रेय नहीं दिया जा सकता सिवाय वैक्ट्रिया और शकराज्य (Sacae) के जिनका वह आगे स्पष्टरूपेण उल्लेख करता है। तिथिक्रमिक दृष्टि से हेरोडोटस के उपरान्त टीसियस (Ctesias) का स्थान है जो अर्तजक्र्सीज़ नेमोन के वैद्य के रूप में साखामनीषी राजसभा में 416 से 398 ई० पू० तक रहा था। उसे ईरानी राजाभिलेख-संग्रहालय देखने की अनुमति एवं भारत से सम्बद्ध पदाधिकारियों तथा वहां आने-जाने वाले यात्रियों से मिलने की सुविधा उपलब्ध थी। परन्तु अभाग्यवश उसके 'पर्सिका' और 'इण्डिका' नाम के ग्रन्थ अब अनुपलब्ध हैं, यद्यपि परवर्ती लेखकों के ग्रन्थों में उनके कुछ उद्धरण मिल जाते हैं। इनसे ज्ञात होता है कि कुरुष की मृत्यु 'एक भारतीय' के हाथों खाए घाव के परिणामस्वरूप हुई थी जो उसे उस समय लगा था जब 'भारतीय डेर्बिकिज़ जाति की ओर से लड़ रहे थे, जिसे उन्होंने हाथियों से मदद दी थी'। इस डेर्बिकिज़ जाति की पहिचान अनिश्चित है और जैक्सन का यह मत कि उसका निवास 'भारतीय सीमा के समीप' कहीं रहा होगा, पूर्णतः निराधार है। टीसियस की तुलना में एक्सनाफन (Xenophon) का कथन है कुछ अधिक निश्चित है। वह भी प्राक्-सिकन्दरयुगीन लेखक है और उसकी मृत्यु 355 ई० पू० के कुछ बाद में हुई। कुरुष के जीवन पर लिखित अपने ग्रन्थ 'साइरोपीडिया' (Cyropaedia) में वह हमें सूचना देता है कि कुरुष "वैक्ट्रियायों और भारतीयों को अपने आधिपत्य के अन्तर्गत लाया था" (1. 1.4) और "बैबिलोन जीतने के बाद उसने वह अभियान प्रारम्भ किया, जिसमें कहा जाता है कि उसने सीरिया से लेकर एरिथ्रीयन समुद्र (= हिन्द महासागर) तक के सब राष्ट्रों को अपने अधीन कर लिया था" (8. 6. 20-21)। इसी बात को दोहराते हुए वह कहता है कि 'कुरुष के साम्राज्य की पूर्वी सीमा पर एरिथ्रीयन समुद्र था।' इस कथन से कुरुष का सिन्धु के मुहाने तक अधिकार संकेतित होते हुए भी प्रमाणित नहीं होता क्योंकि हिन्द महासागर सिन्धु के मुहाने के पश्चिम में भी है। उसका एक अन्य कथन भी इसी प्रकार हमारी समस्या का समाधान नहीं कर पाता। एक्सनाफन बताता है कि कुरुष के द्वारा लीडिया विजय के पूर्व उसके पास एक भारतीय-नरेश का दूत-मण्डल कुछ धन लेकर आया था। इसके आधार पर जैक्सन ने निष्कर्ष निकाला है कि 'उत्तर भारत का सम्राट्' चाहे कुरुष के अधीन न भी रहा हो, लेकिन कुरुष उससे कम से कम 'प्रत्यक्ष सहायता' (direct consideration) प्राप्त करने की स्थिति में तो अवश्य ही था। परन्तु यह निष्कर्ष पूर्णतः निराधार है। ईसा पूर्व की छठी शती के उत्तरार्द्ध में न तो उत्तर भारत में कोई अधिराज था और न एक्सनाफन उत्तर भारत के अधिराज अथवा सम्राट् की बात कहता है। वह केवल 'भारत के एक राजा' का उल्लेख करता है जो भारतीय सीमा पर बसा कोई भी छोटा-मोटा राजा हो सकता था। उसके द्वारा भेजे गए धन को अधीन राजा द्वारा दी गई सहायता मानना भी युक्तियुक्त नहीं है—हो सकता है कि यह धन उसके पास मित्र राजा द्वारा दी जाने वाली भेंट के रूप में भेजा गया हो। हम पीछे देख ही चुके हैं कि शलमनेसर नामक असीरियन सम्राट् को भारतीय हाथियों की भेंट प्राप्त हुई थी जबकि उसने भारत के किसी भूभाग पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शासन नहीं किया। और फिर, जैसा कि मजूमदार ने ध्यान दिलाया है, यह दूत-मण्डल कुरुष से उसके मीडिया का राजा बनने (550 ई० पू०) के बाद और उसके द्वारा लीडिया पर आक्रमण प्रारम्भ किए जाने (लगभग 548-7 ई० पू०) के पूर्व मिला था। इस लघु काल में कुरुष का सम्पूर्ण ध्यान मीडिया और मेसोपोटामिया में अपनी स्थिति मजबूत करने की तरफ रहा होगा। अतः यह धारणा कि इन थोड़े से वर्षों में उसने ईरान, अफगानिस्तान और पश्चिमोत्तर भारत जीतकर 'उत्तर भारत के अधिराज' को भी अपने अधीन कर लिया था, पूर्णतः अनुमानाश्रित ही कही जाएगी।

कुरुष के भारत के साथ सम्बन्ध विषयक जिन साक्ष्य का हमने अभी तक विवेचन किया है उनसे कुल मिलाकर इतना ही ज्ञात होता है कि कुरुष ने पूर्व दिशा में साम्राज्य का विस्तार करते समय भारत के द्वार अवश्य ही खटखटाए थे--लेकिन कहां, यह अज्ञात रह जाता है सिवाय इसके कि उसके साम्राज्य की सीमा शायद हिन्द महासागर तक विस्तृत थी। हेलेनिस्टिक युग के नियर्कस और मेगास्थेनिज़ जैसे लेखकों से इस विषय पर अधिक प्रकाश मिलता है। लेकिन पहिले इन लेखकों द्वारा प्रदत्त सूचनाओं के पारस्परिक विरोध को सुलझा लेना आवश्यक है। मेगास्थेनिज़, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में प्रथम सेल्युकस के राजदूत रूप में रहा था, सूचना देता है कि "भारतीय कभी विदेशी युद्धों में नहीं फंसे और उन पर, हर्क्यूलिस और डायोनाइसस तथा हाल ही में मकदूनी यूनानियों के सिवाय, किसी विदेशी शक्ति ने न तो कभी आक्रमण किया और न विजय प्राप्त की।" इसके बाद उन प्राचीन विजेताओं का उल्लेख करके जिन्होंने भारत पर आक्रमण नहीं किया, वह बताता है कि "सेमिरामिस अपनी योजना को कार्यान्वित करने से पूर्व मृत्यु को प्राप्त हो गई थी और ईरानियों ने यद्यपि भारत से हाइड्रेकिज़ (=क्षुद्रक) नाम के वेतनभोगी सैनिक अवश्य ही भर्ती किए, लेकिन इस देश पर कभी आक्रमण नहीं किया; वे केवल इसकी सीमा तक उस समय पहुंचे जब कुरुष मस्सागेटाय (Messagetae) पर हमला कर रहा था।"[1] एरियन ने भी सम्भवतः मेगास्थेनिज़ के ही आधार पर लिखा है कि भारतीयों के अनुसार उनके देश पर सिकन्दर के पहले, डायोनाइसस और हर्क्युलिस के सिवाय, कभी किसी ने आक्रमण नहीं किया "यहां तक कि कम्बुजिय के पुत्र कुरुष ने भी नहीं जिसने यद्यपि स्कीथियनों (Scythians) पर आक्रमण किया था और अपने को अन्य सभी दृष्टि से एशियायी नरेशों में सर्वाधिक साहसी नृपति सिद्ध किया था" (इण्डिका, 9.10)। लेकिन अन्यत्र एरियन ने स्पष्ट लिखा है कि सिन्धु और काबुल (Cophen) नदियों के मध्य रहने वाली एस्टेकेनोई (अष्टक) और एस्सेकेनोई (अश्वक) नामक भारतीय जातियां "प्राचीन काल में असीरियनों के अधीन थीं, बाद में मीडों के अधीन हुई और अन्त में उन्होंने ईरानियों की प्रभुता को स्वीकृत किया तथा कम्बुजिय के पुत्र कुरुष को वह कर दिया जो उसने उन पर लगाया था" (इण्डिका, 1.1-3)। स्ट्रेबो और एरियन के कथनों का पारस्परिक विरोध दूर हो जाता

1. स्ट्रेबो द्वारा 'ज्योग्रेफी' में उद्धृत। मजूमदार, क्ला० ए०, पृ० 245; मस्सागेटाय का निवास वंधु नदी के उत्तर-पूर्व में था।

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है अगर हम यह ध्यान रखें कि उनके अनुसार सिन्धु नदी भारत की पश्चिमी सीमा थी—इसलिए यह जानते हुए भी कि कुरुष ने सिन्धु के पश्चिम में बसी भारतीय जातियों को जीता था, वे यह कह सकते थे कि उसने भारत पर कभी आक्रमण नहीं किया। जो भी रहा हो, एरियन के कथन से इतना अवश्य ही स्पष्ट है कि कुरुष ने काबुल और सिन्धु नदी के मध्यवर्ती भूभाग को अधिकृत किया था। इस निष्कर्ष का कुछ समर्थन प्लिनी (23-79 ई०) के इस कथन से भी होता है कि कुरुष ने केपीसीन में कपिसा नगर का विनाश किया था (नेचुरल हिस्टरी, 6.23-25)। इस नगर की पहिचान घोरबन्द की उपत्यका में काबुल के कुछ उत्तर में स्थित कफशान स्थल से की जाती है।[1] हो सकता है कि टीसियस द्वारा उल्लिखित वह युद्ध, जिसमें कुरुष एक भारतीय के हाथों मारा गया था, इसी प्रदेश में लड़ा गया हो। मजूमदार ने एरियन और प्लिनी के साक्ष्य को 'परवर्ती' कह कर अस्वीकृत कर दिया है, परन्तु अगर हम यह ध्यान रखें कि कुरुष के तत्काल बाद दारयवहुष ने गन्धार पर शासन किया था तो एरियन और प्लिनी द्वारा प्रदत्त सूचना को झुठलाना सम्भव नहीं लगेगा।

नियर्कस सिकन्दर का नौ-सेनाध्यक्ष था। उसने अपने स्वामी की विजय का जो वृत्तान्त लिखा था उसके एरियन द्वारा उद्धृत एक अंश (एनाबेसिस, 6.24. 2-3) से ज्ञात होता है कि गेड्रोशिया को पार करते समय वहां के निवासियों ने सिकन्दर को बताया था कि उस मार्ग से सेमिरामिस नामक असीरियन रानी के अतिरिक्त कभी कोई आक्रमणकारी अपनी सेना के साथ वापिस नहीं लौट पाया था (दे०, पीछे)। इसके बाद कहा गया है कि कम्बुजिय का पुत्र कुरुष भी "उस प्रदेश में भारत पर आक्रमण करने के विचार से आया था लेकिन मार्ग के उजाड़ और कठिन होने के कारण सेना का अधिकांश नष्ट हो जाने से उसे रुक जाना और केवल 7 व्यक्तियों के साथ वापिस लौट जाना पड़ा।" इस प्रकार नियर्कस के कथनानुसार कुरुष ने बलूचिस्तान पर एक असफल आक्रमण किया था। एरियन के अनुसार भी आधुनिक सीस्तान के समीप रहने वाली एरियास्पियन (Ariaspian) नामक जाति से कुरुष को स्कीथियनों के विरुद्ध युद्ध में महत्त्वपूर्ण सहायता मिली थी जिसके परिणामस्वरूप उसने उन लोगों को यूएरगेटाय (Euergetae) अर्थात् 'उदार सहायक' उपाधि दी थी। इस घटना की चर्चा संक्षेप में स्ट्रेबो (ज्योग्रेफी, 15. 2.10) ने भी की है। ये कथन बलूचिस्तान पर कुरुष के आक्रमण विषयक मत को पर्याप्त आधार प्रदान करते हैं।

कुरुष की 'भारत' में और भारतीय सीमा पर स्थित प्रदेशों की विजय के विषय में सर्वोत्तम साक्ष्य प्रथम दारयवहुष के अभिलेखों का है। जैसा कि हम पीछे कह आए हैं कुरुष की मृत्यु 530 या 529 ई० पू० में हुई। उसके बाद उसके पुत्र द्वितीय कम्बुजिय[2]

1. जैक्सन पूर्वो०, पृ० 267-8; बहुत से विद्वान् इसकी पहिचान दारयवहुष के एक लेख में उल्लिखित कपिशाकानि से, जिसे एरेकोशिया में स्थित कहा गया है, करते हैं।

2. होफमान तथा लेवी ने कम्बुजिय नाम का सम्बन्ध गन्धार के पड़ोस में स्थित 'कम्बोज' प्रदेश के नाम से जोड़ा था। परन्तु यह नितान्त अस्वीकार्य धारणा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(529-22 ई० पू०) ने शासन किया। यद्यपि उसने अपने शासन के 5वें वर्ष मिस्र पर विजय प्राप्त की परन्तु उसका शेष समय विपत्तियों में व्यतीत हुआ। उसने अपने भाई वर्दिय (स्मर्दिस; Smerdis) की गुप्तरूपेण हत्या करवा दी, अपनी पत्नी और पुत्र को मौत के घाट उतरवा दिया और लीडिया नरेश क्रोयसस को, जो कुरुष का अधीन मित्र बन गया था, मृत्यु दण्ड दिया। उसके अन्यायपूर्ण कृत्यों के कारण अनेक स्थलों पर विद्रोह हुए जिनकी चर्चा एक्सनाफन ने भी की है। इसका लाभ उठाकर गौतम नामक एक मागी ने, जिसकी शक्ल वर्दिय से मिलती थी, अपने को वर्दिय घोषित कर दिया। परन्तु इस बीच में ईरानी सरदारों ने साखामनीषी वंश की एक शाखा के राजा विस्तास्प के पुत्र प्रथम दारयवहुष[1] (Darius I Hystaspes) को सिंहासन पर बैठा दिया और नकली वर्दिय को मार डाला। इस वर्णन से स्पष्ट है कि द्वितीय कम्बुजिय के शासन काल में भारत का कोई भी प्रदेश नहीं जीता गया था। परन्तु दारयवहुष (522-486 ई०) के बेहिस्तुन-अभिलेख से जिसकी तिथि 520-18 ई० पू० के मध्य मानी जाती है[2] बताया गया है कि अन्य अनेक प्रान्तों के अतिरिक्त गदार (=गन्धार=पेशावर और रावलपिण्डी प्रदेश), सुगुद (=सोग्डियाना), शक (स्कीथिया), शतगु (सत्तगिडे), वख्त्रि (=वाह्लिक=वल्ख), मक (=मकरान), ज्रंक (=ड्रेन्जियाना), हरैव (=एरिया=हिरात) तथा हरखौवतिश (=एरेकोशिया) भी 'उसके पास आए थे' (आगताः)।[3] क्योंकि प्रथम दारयवहुष के शासन काल के प्रारम्भिक वर्ष भी मिस्र, बैबिलोनिया और लीडिया आदि के विद्रोह और एक अन्य नकली वर्दिय के दमन में व्यतीत हुए थे, इसलिए ये सब प्रान्त साखामनीषियों ने कुरुष के शासन काल में ही जीते होंगे। अतः यह निष्कर्ष कि कुरुष ने बलूचिस्तान और गन्धार तक विजय प्राप्त की थी और ड्रेन्जियाना और सत्तगिडे उसके साम्राज्य में सम्मिलित थे, किसी प्रकार भी निराधार नहीं कहा जा सकता। मजूमदार का आग्रह है कि क्योंकि सोलह महाजन-

1. साखामनीषी अभिलेखों में यह नाम दारयवौष रूप में लिखा है परन्तु इसका उच्चारण दारयवहुष रूप में किया जाता था।

2. जैक्सन इस लेख की तिथि 520-18 ई० पू० के मध्य मानी है और हर्ज्फेल्ड ने 519 ई० पू०। आजकल सामान्यतः हर्ज्फेल्ड का मत माना जाता है।

3. इमाः दस्यवः (=जनपदाः) त्याः (=ताः=याः) मम (=मां) प्रति एयुः (=आगताः), वशना असुरमेधसः अहम् आसांक्षायय्यः आर्सं—पार्सः (Persia), सुवजः (Susiana), बाबेरुः (Babylonia) अशुराः (Assyrians), अरबायः (Arabia), मुद्रायः (Egypt), त्ये ज्रयस्याः (=ते (=ये) समुद्रान्तिकवर्तिनः देशाः), स्वर्दः (Sparda, Sardis), यवनाः (Ionians), मादः (Media), अरमिणः (Armenia) कत्पतुकः (Kappadokia), पर्शवः (पर्थवः ? Parthia), ज्रंकः (Drangiana), सरेवः (सर्यूः ? Aria ; Herat), सुवारजम्यः (Khorasmia), वाख्त्रिः (वाल्हीक; बल्ख, Bactria), सुगुदः (Sogdiana), गन्धारः (Gandaria), शकः (Skythia), शतगुः (Sattagydia), सरस्वती (Arachosia), मकः (Makae)—प्रसवं (=सर्वाः मिलिताः) दस्यवः (=जनपदाः) 23 (=त्रयोविंशतिः)। —दारयवहुष के बेहिस्तुन-लेख (प्रथम स्तम्भ) का संस्कृत रूपान्तर, सरकार, दि० च०, स० इ०, पृ० 5-6।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पदों की बौद्ध ग्रन्थों में प्रदत्त सूची में गन्धार भी सम्मिलित है और उसका राजा पुक्कुसाति बिम्बिसार का समकालीन होने के कारण लगभग 540-30 ई० पू० में शासन कर रहा था, इसलिए कुरुष के शासन काल में, जिसका अन्त 529 ई० पू० में हुआ, गन्धार एक स्वतन्त्र राज्य रहा होगा। परन्तु यह असम्भव नहीं है कि पुक्कसाति ने 540-30 ई० पू० में ही कभी कुरुष के प्रभुत्व स्वीकृत कर लिया हो। कुरुष की गन्धार विजय का अर्थ यह कदापि नहीं है कि उसने वहां के राजा को अपदस्थ कर ही दिया होगा। ऐसा तो स्वयं सिकन्दर ने भी नहीं किया था। अगर तर्क के लिए यह भी मान लिया जाय कि कुरुष ने पुक्कुसाति को अपदस्थ कर ही दिया था तब भी यह कहा जा सकता है कि पुक्कुसाति ने 535 ई० पू० तक शासन किया होगा और इसके बाद परन्तु 529 ई० पू० के पूर्व कुरुष द्वारा अपदस्थ हुआ होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 14

साखामनीषी आक्रमण (२)

प्रथम दारयवहुष

प्रथम दारयवहुष के शासन काल (522-486 ई० पू०) में भारत और ईरान के सम्बन्धों का विश्वसनीय ज्ञान अभिलेखों से होता है। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है 519 ई० पू० में उसके द्वारा शासित प्रान्तों की सूची बेहिस्तुन-अभिलेख में मिलती है। वस्तुतः बेहिस्तुन स्थल से पांच स्तम्भों पर लेख लिखे मिले हैं जिनमें प्रथम स्तम्भ के लेख में, जिसके संस्कृत रूपान्तर का एक अंश हमने पिछले अध्याय में उद्धृत किया है, और तीन अन्य लेखों में सम्भवतः उसके शासन काल के प्रथम वर्ष तक की ही घटनाओं का वर्णन है और पांचवें लेख को शायद तीसरे वर्ष लिखवाया गया था।[1] प्रथम स्तम्भ के लेख में जिन 23 प्रान्तों की सूची है वे दारयवहुष को 'मिले थे' (आगतः) अथवा जैसाकि बैबिलोनी संस्करण में कहा गया है उसका 'आदेश मानते थे'। इस सूची के अन्त में कहा गया है कि ये देश उससे 'दूर हट गये थे' (विद्रोही हो गए थे) परन्तु अहुरमज़्दा की कृपा से फिर उसके करद हो गए। द्वितीय स्तम्भ के लेख में भी ऐसे 9 प्रान्तों की सूची मिलती है जिन्होंने उस समय विद्रोह कर दिया था जब दारयवहुष बैबिलोन में था। इन प्रान्तों में शतगु सम्मिलित है। लेकिन यह विद्रोह भी दबा दिया गया।

दारयवहुष के शासनकाल के अगले दो महत्त्वपूर्ण अभिलेख पर्सिपालिस-प्राचीर-लेख और नाक्शे-रुस्तम-समाधि-अभिलेख कहलाते हैं। इनमें पहला 518-515 ई० पू० के बीच का है और दूसरा 515 ई० पू० के कुछ बाद का। इन लेखों में एक नए प्रान्त 'हि(न्)दु' (=सिन्धु) को सम्मिलित किया है। क्योंकि यह प्रान्त बेहिस्तुन-लेख में परिगणित नहीं है, इसलिए निष्कर्ष निकाला गया है कि दारयवहुष ने इसे 518 ई० पू० के लगभग जीता होगा।[2] इस प्रान्त का उल्लेख दारयवहुष के अन्य परवर्ती लेखों में बराबर मिलता है। उदाहरणार्थ, पर्सिपालिस से प्राप्त रजतपत्र-अभिलेख तथा हमदान सुवर्ण और रजतपत्र-अभिलेख में साम्राज्य की सीमा पश्चिम में सार्डिस से पूर्व में हिन्दु तक बताई गई है तथा सूसा राजप्रासाद-अभिलेख के अनुसार सूसा के राजप्रासाद के निर्माण के लिए लकड़ी गदार (=गन्धार) से मंगाई गई थी और हाथीदांत हिन्दु से। स्वेज-अभि-

1. कै० हि० इ०, पृ० 299; चट्टोपाध्याय, एखियमिनाइड्स इन इण्डिया, पृ० 6।

2. जैक्सन, कै० हि० इ०, पृ० 300; हर्ज्फ़ील्ड, एम० ए० एस० आई०, 34, पृ० 2; दे०, ओम-स्टीड, हिस्टरी ऑव पर्सियन एम्पायर, पृ० 145।

लेख में भी हिन्दु का शतगु के साथ साम्राज्य के प्रान्त रूप में उल्लेख है।

दारयवहुष की भारत-विजय से सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएं हेरोडोटस के 'इतिहास' में मिलती हैं। एक स्थल पर वह सूचना देता है कि 'इण्डिया' साम्राज्य का बीसवां प्रान्त (Satrapy) था (3·94; दे०, 3.89)। इस प्रान्त की समृद्धि और विस्तार विषयक कुछ तथ्य भी उसने उल्लिखित किए हैं जिन पर हम अभी आगे विचार करेंगे। एक अन्य स्थल पर (4.44) वह हमें बताता है कि दारयवहुष ने केरिया (Caria) प्रदेश के नगर केर्यण्डा (Caryanda) के निवासी स्काइलैक्स (Scylax) के नेतृत्व में सिन्धु नदी के मुहाने का अन्वेषण करने के लिए एक अभियान भेजा था। स्काइलैक्स् और उसके साथियों ने पेक्टि्यका (Pactyica) प्रदेश के केस्पेटाइरोस् (Caspatyros) स्थल से अपनी जल-यात्रा प्रारम्भ की थी और पहले पूर्व की ओर बढ़कर अन्त में समुद्र तक जा पहुंचे थे। वहां से कुल मिलाकर ढाई वर्ष यात्रा करने के बाद वे उस स्थल पर पहुंचे जहां से मिस्र के राजा ने फिनीशियनों को लीबिया भेजा था। इस यात्रा की समाप्ति के 'उपरान्त' दारयवहुष ने भारतीयों को जीता[1] और समुद्र का लाभ उठाया।[2]

दारयवहुष के अभिलेखों में उल्लिखित 'हिन्दु' प्रान्त स्पष्टतः हेराडोटस द्वारा उल्लिखित 'इण्डिया' नाम का बीसवां प्रान्त है। नाम साम्य के अतिरिक्त यह तथ्य कि इन दोनों को दारयवहुष ने जीता, इसका प्रमाण है। परन्तु इस प्रान्त की पहिचान और स्थिति के विषय में कुछ मतभेद है। जैसा कि सर्वज्ञात है 'हि(न्)दु' शब्द 'सिन्धु' नाम का ईरानी रूपान्तर है, इसलिए हिन्दु प्रान्त की खोज सिन्धु-उपत्यका में ही की जानी चाहिए। मजूमदार का विचार है कि इस प्रान्त में सिन्धु नदी का मुहाना और निकटवर्ती भूखण्ड रहे होंगे। 'बौधायन धर्मसूत्र' में सिन्धु के मुहाने वाले प्रदेश को 'सिन्धु' कहा ही गया है।[3] इसलिए मजूमदार का सुझाव है कि दारयवहुष ने गेड्रोशिया (बलूचिस्तान) के मार्ग से बोलन दर्रे को पार करके सिन्धु के दाहिने तटवर्ती प्रदेश को जीता और तदुपरान्त स्काइलैक्स से सिन्धु नदी के निचले भाग का अन्वेषण कराया और यह देखकर कि वहां से सीधे मिस्र जाया जा सकता है उसने सिन्धु के बाएं तटवर्ती प्रदेश को भी जीत लिया। मजूमदार को हेराडोटस के साक्ष्य में विशेष श्रद्धा नहीं है परन्तु उनका

1. हेरोडोटस के कथन का यह अंश सही नहीं लगता क्योंकि (1) अभिलेखों से स्पष्ट है कि दारयवहुष ने हिन्दु प्रान्त को अपने शासन काल के शुरु में ही जीत लिया था। (2) पंजाव और सिन्ध प्रान्त को अधिकृत किए बिना ऐसा अभियान सम्भव ही नहीं था। सिकन्दर को सिन्धु नदी के मार्ग से यात्रा करने में जिन-जिन बाधाओं का सामना करना पड़ा वे इस प्रसंग में स्मरणीय हैं (कै० हि० इ०, पृ० 301)। मजूमदार का यह आग्रह कि स्काइलैक्स के अभियान का उद्देश्य वैज्ञानिक अन्वेषण था इसलिए इसका विरोध नही किया गया होगा, स्पष्टतः अस्वीकार्य है। उस युग में विदेशियों की यात्रा से, चाहे उसका उद्देश्य कुछ भी क्यों न रहा हो, उन राज्यों के शासकों के मन में शंका अवश्य ही उत्पन्न होती होगी, जहां से वे गुजरते थे।

2. घिर्शमां (ईरान, पृ० 146) का विचार है कि इस योजना का मूल उद्देश्य समुद्री व्यापार में वृद्धि करना था।

3. मजूमदार, द्वारा आई० एच० क्यू० 25, पृ० 158 पर उद्धृत।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कहना है कि यदि हेरोडोटस का कथन सही है तो उसके द्वारा उल्लिखित केस्पेटाइरोस् की स्थिति, जहाँ से स्काइलैक्स् ने अपनी यात्रा प्रारम्भ की, सिन्ध प्रान्त में आधुनिक शेहवान के निकट मानी जा सकती है जहां सिन्धु नदी का रुख कुछ पूर्व की तरफ हो जाता है। एक विकल्प के रूप में उन्होंने 'हिन्दु' की पहिचान सिन्धु नदी के पश्चिम और काबुल नदी के उत्तर में स्थित भूभाग से करने का प्रस्ताव भी रखा है। उन्होंने ध्यान दिलाया है कि काबुल की घाटी में और उसके उत्तर में काफिरिस्तान में रहने वाली जातियां 'इण्डियन' नाम से विख्यात थीं। लेकिन किसी भी दृष्टि से वह यह मानने के लिए प्रस्तुत नहीं है कि दारयवहुष ने सिन्धु नदी के पश्चिम में पंजाब का कोई भूभाग जीता था। इसके पक्ष में उनका सबलतम प्रमाण यह है कि मेगास्थेनिज़ और एरियन ने स्पष्टतः तथा नियर्कस ने परोक्षतः यह बताया है कि सिकन्दर के पूर्व किसी विदेशी ने भी—स्वयं ईरानी राजाओं ने भी—'भारत' पर (जिनसे उनका आशय सिन्धु के पूर्व में स्थित भारत से था) विजय प्राप्त नहीं की थी।

मजूमदार के उपर्युक्त मत को लगभग अन्य सभी विद्वानों ने अस्वीकृत किया है। आजकल अधिकांश विद्वान् जैक्सन और स्मिथ के इस मत को मानते हैं कि दारयवहुष द्वारा विजित 'हिदु' अथवा 'इण्डिया' प्रान्त में न केवल सिन्धु प्रान्त अर्थात् सिन्धु घाटी का निचला भाग वरन् पंजाब का भी बहुत हिस्सा सम्मिलित था। इस विषय में निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय हैं—

(1) यह सही है कि प्राचीन काल में, साखामनीषी युग में भी, बहुत सी जातियां 'इण्डियन' नाम से विख्यात थीं और इनमें अनेक सिन्धु के पश्चिम में भी रहती थी। हेरोडोटस ने स्वयं ऐसी बहुत सी 'इण्डियन' जातियों का उल्लेख किया है जो दारयवहुष के प्रभावान्तर्गत नहीं थीं। लेकिन दारयवहुष द्वारा विजित 'हिदु' अथवा 'इण्डिया' एक प्रान्त विशेष था। इसलिए इण्डियन, नाम से पुकारी जानेवाली प्रत्येक जाति से 'हिन्दु' प्रान्त की पहिचान करने की चेष्टा करना, जैसी मजूमदार ने की है, उचित नहीं है।

(2) साखामनीषी लेखों से ज्ञात होता है कि 'हिदु' साखामनीषी साम्राज्य के पूर्वी छोर पर स्थित प्रान्त था। यह गदार (=गन्धार) से जिसमें सिन्धु नदी के दोनों ओर का प्रदेश सम्मिलित था (दे०, आगे) भिन्न था। हेरोडोटस ने भी इसे विश्व का पूर्व के अन्त में स्थित देश बताया है। उसके अनुसार 'इण्डिया' के परे पूर्व की ओर रेगिस्तान ही रेगिस्तान है और कोई यह नहीं बता सकता कि वह कैसा है (हिस्टरीज, 4. 40)। स्पष्टतः उसके अनुसार दक्षिणी पंजाब और उत्तरी सिन्ध के पूर्व में स्थित थार रेगिस्तान तक ईरानियों का अधिकार था।[1] कटियस की धारणानुसार ब्यास के पूर्व में विशाल रेगिस्तान था।

(3) हेरोडोटस से हमें ज्ञात होता है कि 'इण्डिया' प्रान्त दुनिया का 'सबसे घना बसा हुआ देश' था और दारयवहुष को 360 टेलेण्ट सुवर्णरेत कर के रूप में देता था (हिस्टरीज, 3. 94)। इतना ही नहीं वह यह भी बताता है कि यह कर 4680 टेलेण्ट चांदी के बरा-

1. ए० न० मो०, पृ० 3।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर था जबकि गन्धाराई, सत्तगिडे, ददिकाई तथा एपराइताई आदि भारतीय जातियों का जो सम्मिलित रूप से 7वां प्रान्त थीं, टैक्स कुल 170 टेलेण्ट चांदी और हिदु के अतिरिक्त साम्राज्य के 19 प्रान्तों का कर कुल मिलाकर 9880 टेलेण्ट चांदी के बराबर होता था[1] (3.95)। 'हिदु' के इस वर्णन को किसी प्रकार भी आधुनिक सिन्धु जैसे उजाड़ और काफिरिस्तान जैसे पहाड़ी भूखण्ड का वर्णन नहीं माना जा सकता चाहे वे प्रदेश ईसा पूर्व की शताब्दियों में कितने भी समृद्ध क्यों न मान लिए जाएं।[2]

(4) 'हिदु' अथवा 'इण्डिया' प्रान्त की पहिचान में स्काइलैक्स की अन्वेषण-यात्रा से भी प्रकाश मिलता है। चूंकि स्काइलैक्स को यह यात्रा प्रारम्भ करते समय पश्चिम से पूर्व की ओर चलना पड़ा था इसलिए केस्पेटाइरोस् नाम का स्थल काबुल नदी पर कहीं स्थित होना चाहिए क्योंकि काबुल नदी ही पूर्व की ओर वह कर सिन्धु में मिलती है।[3] हेरोडोटस ने केस्पेटाइरोस् को पेक्टि्यका प्रदेश में स्थित बताया है जिसकी स्थित मजूमदार ने सिन्धु घाटी के दक्षिण भाग में मानी है। परन्तु दारयवहुष के शासन काल के ही एक यूनानी भूगोलवेत्ता हेकेटेयस (Hecataeus) ने केस्पेपाइरोस् (Caspapyros) स्थल को गन्धाराई (Gandarii) अर्थात् गन्धार में स्थित बताया है। यह स्थल हेरोडोटस द्वारा उल्लिखित केस्पेटाइरोस् हो सकता है।[4] इन तथ्यों के प्रकाश में अब अधिकांश विद्वान् पेक्टि्यका की पहिचान प्राचीन गन्धार अथवा आधुनिक पख्तून प्रदेश से करते हैं। स्वयं मजूमदार ने भी अब यह पहिचान मान ली है।[5]

(5) यह सही है कि एरियन और मेगास्थेनिज़ के अनुसार सिकन्दर के पूर्व कभी किसी विदेशी ने 'इण्डिया' पर विजय प्राप्त नहीं की थी, परन्तु इस उक्ति का कारण सिकन्दर की सफलता को बढ़ा चढ़ाकर दिखाने की इच्छा भी हो सकती है। जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि ईरानियों के 'हिदु' अथवा 'इण्डिया' प्रान्त की स्थिति के विषय में हमें परवर्तीयुगीन मेगास्थेनिज़ और एरियन की तुलना में समकालीन साखामनीषी अभिलेखों और हेरोडोटस के साक्ष्य को अधिक विश्वसनीय मानना चाहिए।

1. 'इण्डिया' द्वारा प्रदत्त सुवर्ण-रेत का मूल्य द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व 12 लाख 90 हजार पाउण्ड आंका गया था।

2. स्मिथ (अ० हि० इ०, पृ० 40-41) उन विद्वानों में से हैं जो यह मानते हैं कि आधुनिक सिन्धु और पंजाब के बहुत से भाग, जो आजकल उजाड़ हैं, सिकन्दर के युग में समृद्ध थे।

3. जैक्सन, कै० हि० इ०, पृ० 301; स्टीन ने केस्पेटाइरोस् की स्थिति काबुल-सिन्धु के संगम से छः मील दूर स्थित जहांगीर स्थल के समीप मानी है और पेक्टि्यका की पहिचान गन्धार से की है (मेमोआयर ऑन दि एन्श्येण्ट ज्योग्रफी ऑव कश्मीर, 1899, पृ० 11-13)। लेकिन अन्यत्र उन्होंने केस्पेटाइरोस् को कश्मीर मान लिया है (राजतरंगिणी, अनुवाद, 2, पृ० 353)। हर्ज्फील्ड का भी यही विचार है। मार्क्वर्ट ने केस्पेटाइरोस् को पुष्कलावती से अभिन्न माना है और फूशे (वूल्नर कॉमे० वाल्यूम, पृ० 89-105) ने मुल्तान से।

4. शास्त्री, नी० क०, ए० न० मो०, पृ० 83।

5. हर्ज्फील्ड, इण्डिया इण्डिक्वा, 1947, पृ० 182; रायचौधुरी, पो० हि० ए० इ०, पृ० 241; मजूमदार, क्ला० ए०, पृ० 4, टि० 2।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन तथ्यों को विचार में रखते हुए स्मिथ का यह निष्कर्ष आज भी स्थूलतः स्वीकार किया जा सकता है : "यद्यपि (दारयवहुष के काल में) भारतीय प्रान्त की सीमाएं पूरी तरह निर्धारित नहीं की जा सकतीं, तथापि हम यह जानते हैं कि यह एरिया (हिरात), एरेकोशिया (कन्धार) तथा गेण्डेरिया (उत्तर पश्चिमी पंजाब, गन्धार) से भिन्न था। इसलिए इसमें सिन्धु नदी का कालाबाग से लेकर समुद्र तक विस्तृत प्रदेश, समस्त सिन्ध और सम्भवतः पंजाब के भी सिन्धु के पूर्व में स्थित पर्याप्त बड़े भूभाग सहित, सम्मिलित रहा होगा।"[1] आजकल अधिकांश विद्वान् इसी मत में श्रद्धा रखते हैं।

इस स्थल पर साखामनीषी साम्राज्य के अन्य प्रान्तों की, जिनका सम्बन्ध भारतीय इतिहास से है, स्थिति पर विचार कर लेना अनुचित न होगा। इन प्रान्तों की जो सूची अभिलेखों में है उनमें बाख्त्री बैक्ट्रिया का नाम है, हरैव हिरात का और ज्रंक ड्रेन्जियाना का। इनका अधिकांश आधुनिक अफगानिस्तान में है। शेष प्रान्तों में हिन्दु के अतिरिक्त पांच प्रान्त—मक, सक, हरखौवतिश, गन्धार तथा शतगु—स्वयं भारत में अथवा भारत की सीमा पर थे। इनमें मक को मकरान माना जाता है। हेरोडोटस ने माइकिनों (Mycians) का उल्लेख 14वें प्रान्त के अन्तर्गत किया है (3.93)। सक नामक प्रान्त की पहिचान हेल्मण्ड की घाटी और हामून झील के आस-पास स्थित सीस्तान (=शकस्थान) प्रदेश से की जाती है। यह हरखौवतिश अथवा एरेकोशिया (=कन्धार प्रदेश) के पश्चिम में स्थित था।

भारतीय ग्रन्थों के अनुसार गन्धार प्रदेश के दो प्रसिद्ध नगर तक्षशिला और पुष्कलावती थे। इसका अर्थ है कि यह सिन्धु के पूर्व और पश्चिम में दोनों ओर फैला था। पूर्व में इसका विस्तार सम्भवतः रावी नदी तक था क्योंकि स्ट्रेबो ने कनीयस् पुरू का गन्धरी राज्य चिनाव और रावी के मध्य स्थित बताया है[2] (ज्यो०, 15.2.30)। लेकिन यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि इस साक्ष्य से यह प्रमाणित नहीं होता कि कुरुष के जमाने में भी गन्धार राज्य रावी-चिनाब दोआब तक विस्तृत था।[3] लेकिन उस युग में यह राज्य पश्चिम में काबुल की घाटी तक अवश्य ही विस्तृत था क्योंकि साखामनीषियों के त्रिभाषीय अभिलेखों में जिस प्रदेश को ईरानी भाषा में गदार (=गन्धार) बताया गया है उसी को बैबिलोनी और एलमी संस्करणों में 'परूपरेयसन्न' कहा गया है जिसका अर्थ होता है 'पर्वत (=हिन्दुकुश) के पार का प्रदेश'। यूनानी और रोमक लेखकों ने इसे पेरोपेमिसदाई (Paropamisadae) कहा है। एरेस्टोस्थनिज और डायोडोरस ने तो स्पष्ट कहा है कि पेरोपेमिसदाई में गेण्डेरीडाई भी सम्मिलित था।

शतगु, थतगु अथवा सत्तगिडे की पहिचान अभी तक सुनिश्चित नहीं हो पाई है। कनिंघम का विचार था कि यह कपिशा के निकट स्थित ओपियन से अभिन्न होना चाहिए जबकि हर्ज्फल्ड ने इसकी पहिचान पंजाब से की है। एक अन्य मतानुसार इसकी पहि-

1. अ० हि० इ०, पृ० 40।
2. मजूमदार, क्ला० एका०, पृ० 259।
3. बेवन (कै०हि०इ०, पृ० 332, टि० 2) ने स्ट्रेबो के इस कथन को विश्वसनीय नहीं माना है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चान गोमती नदी द्वारा सिंचित प्रदेश से की जा सकती है।[1] रॉलिन्सन का विचार था कि सत्तगिडे एरेकोशिया के समीप, आधुनिक अफगानिस्तान के दक्षिण-पूर्वी भाग में, कहीं रहते थे, सारे (Sarre) के अनुसार गजनी और गिल्जई के समीप और दाम (Dames) के अनुसार हजारा प्रदेश में।[2] कुल मिलाकर इस प्रान्त की पहिचान अभी तक अनिश्चित है, लेकिन अनुमानतः यह एरेकोशिया और गन्धार के समीप ही कहीं रहा होगा।

हेरोडोटस ने दारयवहुष के बीस प्रान्तों (satrapies) की जो सूची दी है वह कुछ दृष्टि से अभिलेखों में उपलब्ध सूचियों से, जिनमें प्रायः तेईस या इससे अधिक नाम मिलते हैं, भिन्न हैं। इसलिए यह अनुमान किया गया है कि उसकी सूची उसके अपने समय के साखामनीषी प्रान्तों पर आधृत हो सकती है, यद्यपि उसने इसे दारयवहुष के काल पर आरोपित कर दिया है। वह हमें सूचित करता है (3.91) कि सत्तगिडे (शतगु), गेण्डेरोई (=गन्धार), ददिकाय (Dadicae), तथा एपेराइताई (Aparytai) सम्मिलितरूपेण सातवें प्रान्त के अन्तर्गत थे और 170 टेलेण्ट चांदी कर रूप में देते थे। इस सूची के ददिकाय की पहिचान सिन्धु के उत्तरी भाग में कश्मीर और चित्राल के मध्य दर्दिस्तान में निवास करने वाले दर्दों से की जाती है और एपेराइताई का निवास काबुल के उत्तर में हिन्दुकुश के पर्वतीय प्रदेश में माना गया है।[3] हॉल्डिख ने उनकी पहिचान आधुनिक अफरीदियों से की है। शक, जो अभिलेखों में एक पृथक् प्रान्त हैं, हेरोडोटस के अनुसार (3.93) केस्पियोई के साथ पन्द्रहवें प्रान्त के रूप में संगठित थे जिससे 150 टेलेण्ट चांदी कर लिया जाता था। एफ० डब्ल्यु० टॉमस के अनुसार केस्पियोई का शुद्ध नाम कपिसाई हो सकता है और वे कपिशा प्रदेश के निवासी रहे होंगे, लेकिन इस विषय में सब विद्वान् एक मत नहीं हैं।[4] जैक्सन के अनुसार हेरोडोटस द्वारा 3.93 में उल्लिखित पाक्ट्यका भी, जो 13वें प्रान्त में निवास करते थे, अफगानिस्तान की सीमा के पास रहते थे।[5] परन्तु 13वें प्रान्त के पाक्ट्यकों का उल्लेख क्योंकि आरमीनिया के साथ हुआ है इसलिए हमारा विचार है कि ये पाक्ट्यका उन पाक्ट्यकों से भिन्न थे जिनका उल्लेख उसने 'इण्डिया' के प्रसंग में किया है।

दारयवहुष के साम्राज्य में 'भारत' भी सम्मिलित था, इस तथ्य का उल्लेख 'बुक ऑव एज्रा' के यूनानी संस्करण में भी, जो 'एस्ड्रस' कहलाता है, हुआ है। इसमें कहा गया है कि "राजा दारयवहुष ने अपनी सब प्रजा के लिए, और उन सबके लिए जो उसके घर में पैदा हुए थे, और मीडिया तथा ईरान के सब राजाओं के लिए, और भारत से लेकर इथियोपिया तक अपने अधीन 127 प्रान्तों के सब क्षत्रपों, सेनापतियों और गवर्नरों

1. चट्टोपाध्याय, पूर्वो० पृ० 6।
2. दे०, ए० न० मौ०, पृ० 31।
3. जैक्सन, कै० इ० हि०, पृ० 303।
4. वही, पृ० 303-4; दे०, चट्टोपाध्याय, पूर्वो०, पृ० 13-14।
5. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए एक भोज आयोजित किया।"[1] क्योंकि यह रचना सिकन्दर के समय से बहुत बाद की है, इसलिए इसका बहुत महत्त्व नहीं माना जाता, सिवाय इसके कि इससे साखामनीषी साम्राज्य के विस्तार के विषय में लोकप्रचलित धारणा ज्ञात होती है।

प्रथम दारयवहुष के उपरान्त

दारयवहुष की मृत्यूपरान्त उसके पुत्र क्षयार्षा (Xerxes; नवीन फारसी में खशर्मश) ने शासन किया। उसके शासन काल (486-465 ई० पू०) में ईरान को यूनानियों के हाथों करारी हार खानी पड़ी। सम्भवतः इसी के परिणामस्वरूप उसके समय से साखामनीषी साम्राज्य का प्रसार रुक गया। कम से कम ऐसा कोई भी संकेत उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि प्रथम दारयवहुष के उपरान्त और तृतीय दारयवहुष की 330 ई० पू० में सिकन्दर के हाथों पराजय के पूर्व साखामनीषियों ने भारत के किसी नए प्रान्त को जीता था। जहां तक प्रथम दारयवहुष के समय तक जीते गए प्रान्तों का प्रश्न है, वे उनके अधिकार में कब तक रहे, यह भी एक विवादग्रस्त समस्या है। जैक्सन के मतानुसार ईरानी नरेश भारतीय प्रान्तों पर 330 ई० पू० तक बराबर नियन्त्रण बनाए रहे[2], जबकि मजूमदार के अनुसार यह अनुमान करने के लिए कोई आधार नहीं है कि दारयवहुष द्वारा जीते गए भारतीय प्रदेशों पर ईरानियों का आधिपत्य उसकी मृत्यु के बाद बना रहा था।'[3]

जहां तक प्रथम दारयवहुष के तत्काल बाद की स्थिति का सम्बन्ध है, यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि क्षयार्षा ने भारतीय प्रान्तों पर अपना नियन्त्रण बनाए रखा था क्योंकि उसके एक पर्सिपॉलिस-अभिलेख में प्रदत्त प्रान्तों की सूची में न केवल वाख्त्रि, हरखौवतिश, ज्रंक, हरैव, और सक का उल्लेख है वरन् शतगु, गदार और हिदु को भी गिनाया गया है।[4] इस अभिलेख में यह भी कहा गया है कि क्षयार्षा ने कुछ 'देव' मन्दिरों को ध्वस्त करा दिया था और 'देवों' की उपासना को निषिद्ध घोषित कर दिया था। जहां 'देवों' की पूजा होती थी वहां उसने अहुरमज्दा के साथ ऋत की पूजा की।[5] क्योंकि इस काल में ईरान में देवताओं को 'असुर' और राक्षसों को 'देव'

1. जैक्सन, कै० हि० इ०, पृ० 304। जैक्सन ने इसके प्रसंग में 'जिउइस इण्टिक्वीटिज' 11.3·2 (33) का उल्लेख किया है। चट्टोपाध्याय (पूर्वो०, पृ० 12) ने भी इस रचना का हवाला दिया है परन्तु उनके द्वारा उद्धृत अंश में भोज में सम्मिलित होने वाले अतिथियों में 'मगध के राजा के दूतमण्डल' को भी परिगणित किया है। यह रचना अनुपलब्ध होने से हम इसकी सत्यता की जांच नहीं कर पाए, परन्तु यह उद्धरण अगर सही और विश्वसनीय है तो यह लगभग 500 ई० पू० में मगध के साथ ईरान के सम्बन्ध का एक रोचक प्रमाण होगा।
2. कै० हि० इ०, पृ० 304-5।
3. आई० एच० क्यु०, 25, पृ० 162-65।
4. सरकार, स० इ०, पृ० 13।
5. पश्चादवत् वशना असुरमेधसः अहम् अवं देवधानं व्यखनम् (=अद: देवस्थानम् उत्खातवान्)। उत प्रत्यह्वयम् (=अपि च घोषितवान्। [अहं]—"देवाः मा यज्येषन् (=न इज्येरन्)।" यधायां (=यत्र) पूर्व देवाः अयजि (अयक्षत) अवध (=तत्र) अहम् असुरमेधसम् अयजे ऋतानि च ब्रह्माणि (=पारसिक धर्म सम्मतानि सत्यवचनानि)।...

—क्षयार्षा के पर्सिपालिस-लेख की संस्कृतच्छाया। स० इ०, पृ० 14।

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कहा जाता था तथा भारत में देवताओं को 'देव' और राक्षसों को 'असुर,' इसलिए इस लेख में प्रताड़ित देवोपासकों को भारतवासी माना जा सकता है। लेकिन क्षयार्षा ने यह धर्म-अभियान अपने धर्म का प्रचार करने के लिए जिहाद रूप में आयोजित किया था या किसी विद्रोह का दमन करने के लिए, यह कहना कठिन है। क्षयार्षा के भारतीय प्रान्तों पर नियन्त्रण के प्रमाणस्वरूप हर्ज्फील्ड द्वारा प्रकाशित उन दो फलकों की ओर भी ध्यान दिलाया जा सकता है जिनमें क्षयार्षा के पास भेंट लाने वाले दो व्यक्तियों का चित्रण है। इनमें एक शतगुवासी है जिसे आयुधों और वृषभ के साथ दिखाया गया है और दूसरा एक 'हिदु' है जो सुवर्ण, दोहरे परशुओं और जंगली गधे के साथ चित्रित है।[1]

क्षयार्षा का भारतीय प्रान्तों पर अधिकार हेरोडोटस के इस कथन (7.65) से भी संकेतित है कि उसकी उस सेना में, जो उसने यूनान पर आक्रमण करने के लिए संगृहीत की थी, भारतीय अश्वारोही और पदाति सैनिक भी सम्मिलित थे। हेरोडोटस के अनुसार "सूती वस्त्रधारी भारतीय पदाति बेंत के धनुष और बेंत के ही तीर, जिनमें लोहे की नोंकें लगी थीं, धारण किए हुए थे। इस प्रकार सुसज्जित भारतीय अर्तावितिज़ (Artabates) के पुत्र फर्नजथ्रिज़ (Pharnazathres) नेतृत्व में लड़े थे।" यहां यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि इस सेना का सेनापति एक ईरानी को बताया गया है। भारतीय अश्वारोहियों के विषय में हेरोडोटस (7.86) का कहना है कि वे "उसी प्रकार के आयुध धारण किए हुए थे जैसे पदातियों के थे, लेकिन वे सवारी के घोड़े और घोड़ों तथा जंगली गधों से खींचे जाने वाले रथ भी लाए थे।" हेरोडोटस ने एक स्थल पर क्षयार्षा द्वारा भारी संख्या में लाए गए भारतीय कुत्तों की भी चर्चा की है (7.87)। आनुषंगिक रूप से ध्यान दिलाया जा सकता है कि स्ट्रेबो के अनुसार सिकन्दर के समय सिन्धु नदी अथवा झेलम के पूर्व में शासन करने वाले राजा सौपीथिज़ के राज्य के कुत्ते बहुत प्रसिद्ध थे। भारतीय सैनिक दल का ईरानी साम्राज्यिक सेना में इस प्रकार सम्मिलित होना भारतीय प्रान्तों के ईरानी आधिपत्य में बने रहने का प्रमाण है, विशेषत: अगर हम आभिलेखिक साक्ष्य को भी इस प्रसंग में स्मरण रखें।[2] इसकी व्याख्या केवल इस अनुमान से करना (जैसी कि मजूमदार ने चेष्टा की है)[3] कि भारतीयों ने इस सेना में वेतनभोगी सैनिकों के रूप में भाग लिया होगा, सम्भव नहीं है। हेरोडोटस (7.64-68) द्वारा ईरानी सेना में बैक्ट्रियनों, शकों, एरियोई (Areioi), गेण्डेरोई (गन्धारवासी), ददिकाई (Dadicai; दर्द), केस्पियोई (Caspioi; कपिशा प्रदेश के वासी ?), पक्तिएज़ (Paktyes; पख्तून ?) तथा मिकोई (Mykoi; मकरानवासी) जातियों का उल्लेख, जो भारत-ईरान की सीमा पर निवास करती थीं और प्रथम दारयवहुष के काल में

1. हर्ज्फील्ड, ईरान इन दि नीयर ईस्ट, पृ० 272, फलक 79, तथा 80।
2. जैक्सन, पूर्वो०, पृ० 304-5; रायचौधुरी, ए० न० मौ०, पृ० 32।
3. मजूमदार, आई० एच० क्यु०, 25, पृ० 164।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईरानी साम्राज्य में सम्मिलित थीं, उपर्युक्त निष्कर्ष को अतिरिक्त बल प्रदान करता है।[1]

क्षयार्षा के उपरान्त ईरानी साम्राज्य का अधिपति प्रथम अर्तक्षयार्षा (465-425 ई० पू०) हुआ और उसके बाद द्वितीय दारयवहुष (425-405 ई० पू०) और तदनन्तर द्वितीय अर्तक्षयार्षा (405-359 ई० पू०)। अर्तक्षयार्षा नाम के इन दो नरेशों में से किसी एक के काल में पर्सिपॉलिस से प्राप्त दक्षिण समाधि-अभिलेख लिखवाया गया था। इस समाधि में सम्राट् के सिंहासन के पास भेंट लाने वाले प्रजाजनों की वैसी ही मूर्तियां मिलती हैं जैसी प्रथम दारयवहुष की समाधि पर। इनमें तीन मूर्तियों के नीचे स्पष्टतः 'इयं सतगुदिय' (=यह शतगुवासी है), 'इयं गदरिय' (=यह गन्धारवासी है) और 'इयं हिदुविय' (=यह हिदुवासी है) लेख लिखे हैं।[2] इससे यह सिद्ध लगता है कि कम से कम प्रथम अर्तक्षयार्षा (Artaxerxes) के समय (अथवा द्वितीय अर्तक्षयार्षा (Artaxerxes Mnemon) के काल तक भारतीय प्रान्तों पर ईरानी नियन्त्रण बना हुआ था। इस अभिलेख के साक्ष्य को यह कहकर अस्वीकृत कर देना (जैसा कि मजूमदार ने किया है)[3] कि यह दारयवहुष के लेख की नकल मात्र है, सम्भवतः उचित नहीं है। स्मरणीय है कि इस स्थल पर भारतीय प्रान्तों के न केवल नाम लिखे हैं वरन् उनके प्रतिनिधियों के चित्र भी बने हैं।

कुछ विद्वानों का विचार है कि हेरोडोटस ने अपनी 'हिस्टरीज़' में दारयवहुषकालीन साखामनीषी प्रान्तों की जो सूची दी है वह दारयवहुष के समय की स्थिति का नहीं, उसके अपने समय का अर्थात् प्रथम अर्तक्षयार्षा के शासनकाल (465-425 ई० पू०) की स्थिति का परिचय देती है।[4] अगर ऐसा है तो यह तथ्य प्रथम अर्तक्षयार्षा के समय भारतीय प्रान्तों पर ईरानी आधिपत्य का अतिरिक्त प्रमाण होगा। यहां यह भी ध्यान दिलाया जा सकता है कि टीसियस नामक यूनानी ने, जो 416 से 398 ई० पू० तक ईरानी राजसभा में राजवैद्य के रूप में रहा था, चर्चा की है कि उसने 'इण्डिया' द्वारा द्वितीय अर्तक्षयार्षा को भेजी गई भेंटों की कुछ वस्तुओं को अपनी आंखों से देखा था।[5]

द्वितीय अर्तक्षयार्षा के उपरान्त उसके पुत्र तृतीय अर्तक्षयार्षा (359-336 ई० पू०)

1. परवर्ती यहूदी अनुश्रुतियों में अहसुएरस (=क्षयार्षा) के साम्राज्य को उसी प्रकार 'भारत से इथियोपिया जक विस्तृत' और 127 प्रान्तों में विभाजित बताया गया है जिस प्रकार दारयवहुष के साम्राज्य को (कै० हि० इ०, पृ० 305, टि० 2)।

2. सेन, ओल्ड पर्सियन इन्स्क्रिप्शन्स्, पृ० 172 अ०।

3. मजूमदार, आई० एच० क्यु०, 25, पृ० 164-65।

4. देवेवोआ, ए पालिटिकल हिस्टरी ऑव पार्थिया, पृ० 6 : चट्टोपाध्याय, सु०, पूर्वो०, पृ० 13।

5. टीसियस की 'इण्डिका' नामक पुस्तक, जो आजकल अनुपलब्ध है, अनेक गल्पों से भरी थी। उदाहरणार्थ, वह हमें बताता है कि भारत से आई भेंट की वस्तुओं में शेर के आकार का एक ऐसा मानवमुखी प्राणी भी था जो अपनी जहरीली कांटेदार पूंछ से दूर दूर तक हमला कर सकता था और हाथी के अतिरिक्त सब पशुओं को मार सकता था (दे०, अध्याय 20)। ऐसे वर्णनों से उसका साक्ष्य अविश्वसनीय हो गया है। लेकिन उसका यह कथन सत्य हो सकता है कि उसके जमाने में ईरानी सम्राट् को भारत से भेंट मिला करती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और तदुपरान्त तृतीय दारयवहुष (336-330 ई० पू०) ने शासन किया। तृतीय दारयवहुष (Darius III Codomannus) के काल में सिकन्दर ने ईरान और भारत पर आक्रमण किया और साखामनीषी साम्राज्य का अन्त किया। भारतवर्ष के इतिहास में यह युग नन्द वंश के अभ्युदय का है, परन्तु नन्दों का पश्चिमोत्तर भारत से सम्बन्ध सर्वथा अज्ञात है। स्वयं तृतीय अर्तक्षयार्षा और तृतीय दारयवहुष भारतीय प्रान्तों को अपने नियन्त्रण में रख सके या नहीं, कहना कठिन है। जैसा कि हम देख चुके हैं जैक्सन के मतानुसार ईरानियों का भारत पर प्रभुत्व 330 ई० पू० तक बना रहा था। इस मत का समर्थन रायचौधुरी, मुकर्जी आदि ने किया है[1] जबकि मजूमदार का कहना है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय तक भारत में ईरानी स्वामित्व का चिह्न भी शेष नहीं रह गया था। इस समस्या का समाधान उपलब्ध साक्ष्य की मीमांसा से ही हो सकता है।

जैक्सन का कहना है कि सिकन्दर के विरुद्ध लड़े गये अन्तिम युद्ध में तृतीय दारयवहुष को भारतीय सैनिकों की सहायता मिलना यह प्रमाणित करता है कि उसका भारतीय प्रान्तों पर नियन्त्रण था। इस विषय में एरियन (एनोबेसिस, 3.8.3-6) का साक्ष्य इस प्रकार है : "भारतीय जो बैक्ट्रियनों के पड़ोसी थे, और स्वयं बैट्रियन तथा सोग्डियन, दारयवहुष की सहायता के लिए आए थे और बैक्ट्रिया के वायसराय बेसस (Bessus) के अधीन थे। उनके बाद सेकियन (Sacian) आए जो एशिया में रहने वाले स्कीथियनों की शाखा-जाति थे। वे बेसस के अधीन नहीं थे वरन् उनकी दारयवहुष के साथ मित्रता थी · · · एरेकोशिया के वायसराय बारसेण्टिज़ ने एरेकोशियनों और उनका, जो 'पहाड़ी भारतीय' कहलाते थे, नेतृत्व किया। (इनके अतिरिक्त) सिन्धु के इस तरफ के भारतीयों के हाथी भी थे, जो संख्या में करीब पन्द्रह थे।" इस वर्णन से स्पष्ट है कि दारयवहुष की सहायतार्थ सिन्धु नदी के पूर्व और पश्चिम दोनों ओर के भारतीय आए थे।[2] इसका संकेत एक अन्य तथ्य से भी मिलता है। जैसा कि हम पीछे चर्चा कर आए हैं, प्रथम दारयवहुष ने अपने राजप्रासाद के निर्माण के लिए हिदु प्रान्त से हाथीदांत मंगवाया था। इससे प्रतीत होता है कि हिदु प्रदेश अपने हाथियों के लिए प्रसिद्ध था। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि तृतीय दारयवहुष की सेना में सम्मिलित हाथी हिदु प्रान्त से आए होंगे। इस तथ्य को तृतीय दारयवहुष के काल तक हिदु प्रान्त पर ईरानी प्रभाव का संकेत माना जा सकता है। मजूमदार का आग्रह है कि ये भारतीय सैनिक वेतनभोगी सैनिक रहे हो सकते हैं। पंजाब की आयुधजीवी जातियां वेतन लेकर किसी भी प्रदेश में किसी के पक्ष में भी लड़ने चली जाती थीं, ऐसा हमें अनेक स्रोतों से ज्ञात होता है। मजूमदार के विचार से तृतीय दारयवहुष के भारतीय सैनिकों का बैक्ट्रियायी वायसराय के नेतृत्व में लड़ना भी इस बात का प्रमाण है कि उनका अपना कोई गवर्नर

1. रायचौधुरी, ए० न० मौ०, पृ० 32-33: मुकर्जी, ए० इ० यू०, पृ० 43।

2. रायचौधुरी ने भी सिन्धु के इस तरफ के भारतीयों से आशय 'इण्डिया' नामक बीसवें प्रान्त के निवासियों से माना है (ए० न० मौ०, पृ० 33)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नहीं था ।[1] परन्तु ये तर्क बहुत सबल नहीं हैं । एरियन ने उन सैनिकों का, जो बेसस के नेतृत्व में लड़ते हुए भी उसके अधीन नहीं थे, स्पष्टत: उल्लेख किया है—जैसे शक । अगर भारतीय सैनिक भी इसी प्रकार स्वतन्त्र होते तो उनकी भी स्वतन्त्र मित्रों के रूप में चर्चा होती । भारतीय सैनिकों का अपना गवर्नर न होना भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बात नहीं है क्योंकि ईरानी सैनिक व्यवस्था में एक क्षत्रप कई-कई प्रान्तों के सैनिकों का नेतृत्व कर सकता था । स्वयं बेसस के अधीन भारतीयों के अतिरिक्त सोग्डियन भी थे जो निश्चितरूपेण ईरानियों के अधीन थे । अधिक से अधिक इस तथ्य से यह संकेतित माना जा सकता है कि उस समय तक भारतीय प्रान्तों पर ईरानियों का नियन्त्रण कुछ ढीला पड़ गया था ।[2] वास्तव में ईरानियों ने भारतीय प्रदेशों में कभी भी क्षत्रप नियुक्त किए, ऐसा नहीं लगता । वे भारतीय राजाओं और जातियों से केवल कर लेकर ही सन्तुष्ट रहे थे ।

भारत में ईरानी शासन-व्यवस्था का यह पक्ष स्मरण रखने पर मजूमदार के अन्य तर्क स्वयं निष्प्राण हो जाते हैं । मजूमदार का कहना है कि सिकन्दर को अपने आक्रमण के समय भारत में कोई ईरानी क्षत्रप अथवा ईरानी आधिपत्य का कोई अन्य चिह्न नहीं मिला था और आज भी हमें पंजाब पर ईरानी आधिपत्य की सूचना देने वाले अवशेष नहीं मिलते । लेकिन साखामनीषी सम्राट् अगर भारतीय प्रदेशों से केवल कर लेकर ही सन्तुष्ट रहते थे तो भारत में उनके शासन का कोई चिह्न कैसे तो सिकन्दर को मिल सकता था और कैसे आज हमें उपलब्ध हो सकता है ? और फिर 'क्लासिकल' लेखक इस विषय में सर्वथा मौन हों, ऐसा भी नहीं है । उदाहरणार्थ, स्ट्रेबो (जन्म 63 ई० पू०) ने, जिसके ग्रन्थ 'ज्योग्रेफी' को प्राचीन काल में भूगोल पर लिखा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है, एरेटोस्थिनिज़ (Eratosthenes, 276-195 ई० पू०) के आधार पर, जिसके कथन को वह सर्वाधिक विश्वसनीय बताता है, लिखा है कि जब सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया "सिन्धु नदी 'इण्डिया' और एरियाना के बीच की सीमा थी और एरियाना, जो उस समय ईरानियों के अधिकार में था, 'इण्डिया' के पश्चिम में था" (स्ट्रेबो, ज्योग्रेफी, 15.10) ।[3] इस साक्ष्य से प्रमाणित होता है कि 330 ई० पू० में ईरानी साम्राज्य कम से कम सिन्धु तक अवश्य ही फैला था । इसी प्रकार कर्टियस ने सूचना दी है (9.7) कि सिकन्दर ने क्षुद्रकों और मालवों पर, जो सिन्धु के पूर्व में निवास करते थे, वह कर लगाया था जो वे एरेकोशियनों को (अर्थात् ईरान के एरेकोशिया स्थित वायसराय को) दिया करते थे ।[4] उत्तरापथ के भारतीय शासकों का उल्लेख करते समय सिकन्दर के लेखकों द्वारा उनके लिए अनेकत्र 'हाइपार्क' और 'नोमार्क' उपाधियों का प्रयोग भी उन पर निकटभूत में ईरानी आधिपत्य का प्रमाण माना जा

1. मजूमदार, पूर्वो०, पृ० 164; टार्न का भी यही मत था (कैम्ब्रिज एन्श्येण्ट हिस्टरी, 6, पृ० 403) ।
2. मुकर्जी, ए० इ० यू०, पृ० 43 ।
3. मजूमदार, क्ला० एका०, पृ० 149 ।
4. वही, पृ० 148 ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकता है। इन छिटफुट सूचनाओं से स्पष्ट है कि सिकन्दर को भारत में ईरानी शासन के कुछ चिह्न अवश्य ही मिले थे यद्यपि इतिहासकारों ने उसके गौरव को बढ़ाने के लिए यह दिखाने की चेष्टा की कि उसके पहिले भारत पर कभी किसी विदेशी ने सफल आक्रमण किया ही नहीं था।[1]

साखामनीषी आधिपत्य का प्रभाव

साखामनीपियों का भारत पर प्रभुत्व राजनीतिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं रहा, परन्तु इसके आर्थिक और सांस्कृतिक परिणाम पर्याप्त गम्भीर सिद्ध हुए। इसके परिणामस्वरूप भारत पहली बार विदेशी संस्कृतियों के घनिष्ठ सम्पर्क में आया। भारतीय सैनिकों द्वारा यूनानी युद्धों में भाग लेने से भारतीय जन यूनान से परिचित हुए और यूनानी भारत से। कहा जाता है कि 400 ई० पू० के पहिले एक भारतीय विद्वान् सुकरात से भी मिला था। दूसरे शब्दों में भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व ही भारत और यूनान ईरान में परस्पर मिल चुके थे। साखामनीषी सम्राटों के प्रयत्न से भारत का पश्चिमी देशों के साथ समुद्री मार्ग से सम्बन्ध, जो पहिले भी था, दृढ़तर हुआ। इस प्रसंग में स्काइलैक्स का अन्वेषण विशेषतः उल्लेखनीय है। ऐसे अन्वेषणों का सीधा प्रभाव भारत के विदेशी व्यापार पर भी पड़ा होगा। 'बाबेरु जातक' में जिसकी रचना इस युग में हुई हो सकती है, भारतीय व्यापारियों के बैबिलोन तक जाने का जिक्र है। भारतीय टीक तथा हाथीदांत की बैबिलोनियां में लोकप्रियता की चर्चा पहिले ही की जा चुकी है। नियर्कस (एरियन, 27.1) ने सूचना दी है कि उसे गेड्रोशिया में एक ऐसा पथ-प्रदर्शक मिला था जो 'ओर्मुज की खाड़ी' तक का मार्ग जानता था। इसका अर्थ है कि साखामनीषी युग में भारतीय जलपोत गेड्रोशिया से अरब और फारस की खाड़ी तक की यात्रा किया करते थे। बौधायन द्वारा उत्तरापथ वालों के लिए 'समुद्र संयानम्' के उल्लेख से इसका समर्थन होता है।[2] स्थल-मार्ग से व्यापार तो प्राचीनतर युगों से होता ही आया था। साखामनीषी युग में भारत के तक्षशिला, पुष्कलावती तथा सम्भवतः बेग्राम जैसे स्थल राजनीति के ही नहीं, वरन् व्यापार के भी महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे।[3] इस विवेचन से स्पष्ट है कि यद्यपि ईरानी आधिपत्य के परिणामस्वरूप भारत से प्रतिवर्ष अतुल धन ईरान चला जाता था, लेकिन यह आर्थिक हानि विदेशी व्यापार की वृद्धि के कारण बहुत कुछ पूरी हो जाती होगी।

1. 'नकली केलिस्थेनिज़' और उसके सीरियायी संस्करण तथा फिरदौसी के 'शाहनामा' में सुरक्षित एक अनुश्रुति के अनुसार तृतीय दारयवहुष ने पोरस को पत्र लिखकर सिकन्दर के विरुद्ध सहायता मांगी थी (प्रकाश, स्टडीज़, पृ० 28 अ०)।

2. नियर्कस को सिन्ध में एक बन्दरगाह में 24 दिन ठहरना पड़ा था। यह बन्दरगाह हो सकता है साखामनीषी काल में अस्तित्व में आया हो।

3. ईरानियों ने भारत-ईरान के सीमावर्ती प्रदेश में रक्षा-दुर्ग भी बनाए थे। प्रथम दारयवहुष के काल के भूगोलवेत्ता हेकाटयस ने सिन्धु नदी के समीप निवास करने वाली ओपियायी जाति और उसके प्रदेश में स्थित राजदुर्ग का उल्लेख किया है। इसकी पहिचान कपिशा देश के एक स्थल ओपियन से की गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईरानी आधिपत्य के परिणामस्वरूप भारत के कुछ प्रदेश पहली बार एक 'विश्व-साम्राज्य' का अंग बने और भारतीयों को साम्राज्यिक समस्याओं और उनके समाधान के लिए ईरानियों द्वारा किए गए प्रयोगों का ज्ञान हुआ। उदाहरणार्थ, यद्यपि ईरानियों ने भारत में क्षत्रपों की नियुक्ति या तो बिल्कुल नहीं की अथवा चौथी शती ई० पू० तक छोड़ दी, परन्तु साखामनीषी साम्राज्य का सदस्य होने के कारण भारतीय इस व्यवस्था से और क्षत्रपों के नीचे कार्य करने वाले हाइपार्क (hyparch) तथा नोमार्क (nomarch) नामक पदाधिकारियों से भलीभांति परिचित हो गए थे। सिकन्दर को भारत में ईरानी क्षत्रप तो नहीं मिले परन्तु काबुल की घाटी में उसने अनेक हाइपार्क और नोमार्क देखे थे। साखामनीषियों की क्षत्रपीय प्रान्तीय व्यवस्था का अनुकरण भारत में बाद में स्वयं सिकन्दर ने और उसके बाद शक कुषाणादि विदेशी जातियों ने किया, यद्यपि शकों ने महाक्षत्रप पद का प्रवर्त्तन कर उसे कुछ संशोधित भी किया। साखामनीषी प्रशासन से मौर्यों ने भी बहुत कुछ सीखा था। वस्तुतः मौर्य साम्राज्य की शासन व्यवस्था शक्ति के केन्द्रीयकरण तथा साम्राज्य में सम्राट् की स्थिति एवं अन्य कई दृष्टि से साखामनीषी व्यवस्था के निकटतर और परवर्तीयुगीन भारतीय साम्राज्यों की व्यवस्था से भिन्न थी। अशोक के अभिलेखों पर साखामनीषी प्रभाव सामान्यतः माना ही जाता है। सम्भवतः अशोक का यह विचार ही कि वह अपनी इच्छाओं और आदेशों से जनता को परिचित कराये और उन्हें शिलाओं और पाषाणस्तम्भों जैसी स्थायी वस्तुओं पर लिखवाए, साखामनीषी उदाहरण के प्रभाव का परिणाम था। जैसा कि सेनार्ट ने ध्यान दिलाया है,[1] अशोक के अभिलेखों का प्रारम्भिक अंश 'देवानंपियो पियद सी लाजा एवमाह' भारतीय अभिलेखों के इतिहास में अपने ढंग का अकेला उदाहरण है, लेकिन यह साखामनीषी अभिलेखों के 'थतिये दारयवहुष क्षयथिय' से घनिष्ठ सादृश्य रखता है। इतना ही नहीं इस वाक्यांश के बाद, जो प्रथम पुरुष में है, दोनों ही देशों में शेष आदेश उत्तम पुरुष में लिखे गये हैं। अशोक के लेखों के लिए खरोष्ठी अभिलेखों में 'दिपि' शब्द और लेखों के उत्कीर्ण करने के लिए 'निपिश' शब्द का प्रयोग किया गया है। ये दोनों शब्द इन्हीं अर्थों में दारयवहुष के लेखों में मिलते हैं। अशोक के ब्राह्मी लेखों का 'लिपि' शब्द भी 'दिपि' शब्द का रूपान्तर मात्र है।

साखामनीषी नरेशों ने भारत में ऐरेमाइक लिपि का प्रचलन किया, लेकिन ब्युलर के अनुसार सम्भवतः उस युग में जब भारतीय प्रान्तों का क्षत्रपीय प्रशासन पूर्णतः भारतीयों के हाथ में आ गया, नवीन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ऐरेमाइक लिपि में संशोधन करके खरोष्ठी लिपि का विकास किया गया—कुछ वैसे ही जैसे मुग़ल काल में उर्दू का। गन्धार का तक्षशिला नगर इसका प्रमुख केन्द्र प्रतीत होता है। खरोष्ठी के उदय और विकास विषयक ब्युलर के इस मत का समर्थन इस तथ्य से होता है कि इस लिपि में स्वरों एवं संयुक्त व्यंजनों का रूप ब्राह्मी से, जो बाद में भारतीयों की मुख्य

1. आई० ए०, 20, पृ० 255-56।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लिपि बनी, अप्रभावित है।[1]

भारत में नन्द-मौर्य युग में और सम्भवतः उसके कुछ पूर्व भी आहत सिक्के (Punch-Marked Coins) प्रचलित थे।[2] इनके साथ पश्चिमोत्तर प्रदेश में साखामनीषियों ने अपने सिक्के चलाए। प्रथम दारयवहुष के समय से साखामनीषियों द्वारा प्रचलित सिक्के सामान्यतः दो प्रकार के थे—सुवर्ण के डेरिक (Daric) तथा रजत के सिग्लोई (Sigloi) डेरिक नाम स्पष्टतः दारयवहुष अथवा डेरियस के नाम पर प्रचलित हुआ था और सिग्लोई बैबिलोनियन तौलमान शेकल के नाम पर। इनमें सीधी तरफ सम्राट् को धनुष और भाला धारण किए दिखाया गया है लेकिन ईरानी सिग्लोई पर इसके साथ कुछ चिह्न भी अंकित मिलते हैं जिनमें कुछ को रेप्सन ने आहत सिक्कों पर प्राप्त चिह्नों के सदृश बताया है और कुछ को खरोष्ठी और ब्राह्मी अक्षरों से मिलता-जुलता।[3] मेक्डूनाल्ड ने भी इस तथ्य को विचारणीय माना है।[4] पहिले यह धारणा प्रचलित थी कि ये सिक्के स्वयं भारत में ही ढाले जाते थे, लेकिन मेक्डूनाल्ड का कहना है कि भारत में सोना सस्ता था[5] इसलिए कि भारत के लिए सोने के सिक्कों का ढाला जाना आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद नहीं था—वस्तुतः यहां सोना इतना सस्ता था कि जो डेरिक यहां आ भी जाते होंगे वे चलन से शीघ्र ही विलुप्त हो जाते होंगे। भारत में डेरिकों की अनुपलब्धि और सिग्लोई का प्रायः मिलना इसका प्रमाण है। जे० एन० बनर्जी को भी यह तर्क स्वीकार है।[6] फिर भी, ईरानी मुद्रा-प्रणाली के भारतीय मुद्रा-प्रणाली पर न्यूनाधिक प्रभाव को एकदम अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

साखामनीषियों की भारत को सबसे बड़ी देन कला के क्षेत्र में रही। ईरान में साखामनीषियों का पतन और भारत में मौर्य साम्राज्य की स्थापना लगभग समकालीन घटनाएं थीं और जिस समय चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने साम्राज्य की सीमा ईरान तक बढ़ाई, साखामनीषियों के भव्य राजप्रासाद और अन्य भवन देखे जा सकते थे। लेकिन ईरानी

1. साखामनीषियों ने अपने साम्राज्य में भारतीय ज्ञान-विज्ञान के विकसित होने में कोई बाधा नहीं डाली। उदाहरणार्थ 'अष्टाध्यायी' के रचयिता पाणिनि, जिनका समय अब सामान्यतः पांचवीं शती ई० पू० माना जाता है, पश्चिमोत्तर प्रदेश में शलातूर स्थल के निवासी और स्पष्टतः साखामनीषी नागरिक थे।

2. मोशिए देकूदेमांशे का मत था कि सब नहीं तो अधिकांश आहत सिक्के साखामनीषियों ने चलाए थे (जे० ए०, 1912, पृ० 117-32; कै० ए० हि०, 6, पृ० 402)। डी० आर० भाण्डारकर ने इसका विरोध किया (कारमाइकेल लेक्चर्स, 1921, पृ० 118-22)। एलन के अनुसार पश्चिमोत्तर प्रान्त से प्राप्त चिह्नित मुड़ी रजत शलाकाएं (bent bars) ईरानी तौलमानानुसार जारी की गयी थीं (कैटेलाग ऑव क्वायन्स ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया, 1936, भू०, पृ० 16; 1-3)।

3. जे० आर० ए० एस०, 1892, पृ० 865 अ०।

4. कै० हि० इ०, 1, पृ० 344।

5. हेरोडोटस के अनुसार भारत में सुवर्ण रजत के मूल्य का अनुपात 1 : 8 था और ईरान में 1 : 13।

6. ए० न० मौ०, पृ० 124।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कला-परम्परा शायद इसके पहिले ही सिन्धु की उपत्यका में अपनी जड़ें जमा चुकी थीं। उदाहरणार्थ, तक्षशिला के भीर टीले के प्राक्-यूनानी स्तरों से कुछ ऐसी कलाकृतियां मिली हैं जिन पर साखामनीषी कला की गहरी छाप है।[1] साखामनीषियों के पतनोपरान्त ये परम्पराएं समाप्त न होकर शायद सबलतर हो गयीं। इसका सर्वोत्तम प्रमाण मौर्यों की राजकीय कला है। पाटलिपुत्र के राजप्रासाद के, जिसकी तुलना मेगास्थेनिज़ ने सूसा और एकवटाना के महलों से की थी, उत्खनन में प्राप्त अवशेष दारयवहुप के शतस्तम्भीय कक्ष का स्मरण दिलाते हैं। इसके स्तम्भों की पॉलिश भारत में विदेशी थी और इस देश को निश्चितरूपेण साखामनीषी कलाकारों की देन थी। अशोक के स्तम्भों पर साखामनीषी प्रभाव की सीमा अधिक विवादास्पद प्रश्न है, परन्तु इनकी तकनीक के मूलतः ईरानी होने में विशेष शंका नहीं की जा सकती[2]; यद्यपि इनके अधोमुख कमल को पर्सिपॉलिस स्तम्भों के 'घण्टे' (bell capital) पर आधारित मानने में बहुत से विद्वानों को संकोच है। इन मौर्यकालीन कलाकृतियों की आत्मा निश्चित रूप से भारतीय है, परन्तु इनके निर्माता कलाकार ईरानी कला की तकनीक से परिचित थे। सम्भवतः प्रारम्भिक मौर्य युग में मौर्य सम्राटों ने उन ईरानी कलाकारों को प्रश्रय दिया था जो साखामनीषी साम्राज्य के पतन के कारण संरक्षणहीन हो गये थे।[3] कम से कम इसमें संदेह नहीं किया जा सकता कि ऐतिहासिक युग में भारतीय पाषाण वास्तुकला पूर्णतः नहीं तो मुख्यतः ईरानी प्रभाव की देन थी—यहाँ तक कि पर्वतों को काटकर गुफा बनाने की परम्परा को भी ईरानी सम्राटों की पर्वतों को काट कर बनाई गई समाधियों का एक नए क्षेत्र में और एक नए उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयोग कहा जा सकता है।[4]

1. वही, पृ० 355-56।

2. वही। दे० ह्वीलर, अर्ली इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, पृ० 177। ह्वीलर के अनुसार भारत में लोहे का प्रयोग भी ईरानियों के प्रभाव के परिणामस्वरूप प्रारम्भ हुआ। परन्तु अब यह निश्चित हो गया है कि भारतीय लोहे से छठी शती ई० पू० के पूर्व भी परिचित थे।

3. ह्वीलर, पूर्वो०, पृ० 176, 178।

4. वही। शिलुस्की ने ऐसी बहुत सी जातियों का उल्लेख किया है जो साखामनीषी काल में भारत में बस गई प्रतीत होती हैं (जे० ए०, 1926, पृ० 13 अ०; दे०, चट्टोपाध्याय, सु०, एखि० इन इण्डिया, पृ० 22 अ०)। परन्तु सतीशचन्द्र विद्याभूषण का यह मत कि लिच्छवि जाति ईरानी थी और प्रथम दारयवहुप के काल में बिहार में बस गई थी (आई० ए०, 1908, पृ० 79) आजकल कोई नहीं मानता (दे०, गोयल, प्राचीन नेपाल का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, अध्याय 1; पीछे अध्याय 7)। भारत पर ईरानी प्रभाव के विषय में स्पूनर के अधिकांश निष्कर्षों को भी (जे० आर० ए० एस०, 1915, पृ० 63-89; 405-55) अब कोई नहीं मानता। दे०, कीथ, जे० आर० ए० एस०, 1916, पृ० 138-43; टॉमस, एफ० डब्ल्यु०, वही, पृ० 362-66; 'निमरोद', 'मॉडर्न रिव्यू' 19, पृ० 373-76; 490-8; 597-600। भारत में मग ब्राह्मणों का प्रभाव सम्भवतः शक युग में विशेष फैला अतः हमने यहां उनके प्रभाव का विवेचन नहीं किया है। भारतीय साहित्य में उन्हें शक द्वीप से आया बताया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 15

साखामनीषियों के उत्तराधिकारी

कुनार से रावी तक के राज्य

जैसा कि पिछले अध्याय में कहा जा चुका है ईरान के साखामनीषी सम्राटों का आधिपत्य पश्चिमोत्तर भारत में 330 ई० पू० तक माना जाता रहा। परन्तु इसके बावजूद इसमें सन्देह नहीं कि चौथी शती ई० पू० के प्रारम्भ से ही यह आधिपत्य नाम-मात्र का रह गया था और सम्भवतः मात्र वार्षिक कर दिए जाने तक सीमित था। इस-लिए जब 330 ई० पू० में सिकन्दर ने अन्तिम साखामनीषी सम्राट् तृतीय दारयवहुष को गौगामेला अथवा अर्बेला के युद्ध में निर्णायकरूपेण परास्त किया, पश्चिमोत्तर भारत के स्थानीय राज्य स्वयमेव पूर्णतः स्वतन्त्र हो गए और उन्हें ईरानी सम्राट् को वह कर देने से भी मुक्ति मिल गई जो वे तब तक देते आए थे। हो सकता है उन्होंने उसे कर देना 330 ई० पू० के भी कुछ पहिले बन्द कर दिया हो। एच० सी० रायचौधुरी ने सिकन्दर के आक्रमण के समय पंजाब और सिन्ध के ऐसे अट्ठाइस राज्यों को गिनाया है[1] जिनके पास अपनी-अपनी सेनाएं तथा मैत्री और युद्ध करने का अधिकार था। इन राज्यों की सही संख्या सम्भवतः तीस से भी अधिक थी। इन राज्यों का कुछ विस्तार से वर्णन[2] सिकन्दर के भारतीय अभियान के प्रसंग में क्लासिकल लेखकों ने किया है। उनके साक्ष्य को पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में उपलब्ध तथ्यों की सहायता से परिवर्धित किया जा सकता है।

सिकन्दर के आक्रमण के समय हिन्दुकुश के इस ओर स्थित उत्तरापथ अथवा पश्चि-मोत्तर प्रदेश के भारतीय राज्यों को अध्ययन की सुविधा के हेतु तीन वर्गों में बांटा जा सकता है :—

(अ) कुनार की उपत्यका से लेकर रावी तक के राज्य, जो प्रकृत्या राजाधीन जन-राज्य (tribal monarchies) थे, सिवाय एक के जिसकी शासन व्यवस्था कुलीन-तन्त्रात्मक (oligarchical) थी;

(आ) चिनाब और झेलम के संगम के दक्षिण तथा रावी के पूर्व में स्थित गणाधीन

1. रायचौधुरी, पो० हि० ए० इ०, पृ० 245 अ०; ए० न० मौ०, पृ० 34 अ०।

2. प्राचीन काल की तुलना में पंजाब की नदियों के प्रवाह मार्ग अब बहुत कुछ बदल गए हैं, इस-लिए पंजाब के राज्यों की सही स्थिति का वर्णन उपलब्ध होते हुए भी आधुनिक नक्शों में उनकी पहिचान करना सदैव सम्भव नहीं है। दे०, स्मिथ, अ० हि० इ०, पृ० 95-97।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य (एक अपवाद को छोड़कर); तथा

(इ) मिथनकोट (सिन्धु और सतलज का संगम स्थल) के दक्षिण में सिन्धु की निचली उपत्यका के राजाधीन राज्य जिनमें एक में द्वैराज्य शासन व्यवस्था (diarchy) थी और कुछ में ब्राह्मणों का उल्लेखनीय राजनीतिक प्रभाव था। इनमें हम सर्वप्रथम पहिले वर्ग के राज्यों का वर्णन करेंगे।

प्रथम वर्ग के राज्य

(1) **एस्पेसियन (आश्वायन)**—एस्पेसियनो (Aspasians या Aspasioi) का दुर्गम पहाड़ी राज्य कावुल नदी के उत्तर में खियोस (Kheos=संस्कृत श्वश्व और अवेस्ती ह्वस्प=आधुनिक अलिशांग Alishang) और यूएस्प्ल (Euaspla=कुनार) नदियों द्वारा सिंचित प्रदेश में था। इस जाति का नाम संस्कृत नाम अश्व (=ईरानी अस्प=घोड़ा) से व्युत्पन्न है। वह एस्सकेनियन जाति की पश्चिमी शाखा प्रतीत होती है। इसका राजा, जो 'हाइपार्क' उपाधिधारी था, कुनार के तट पर अथवा उसके समीप एक नगर में रहता था। अन्य प्रसिद्ध एस्पेसियन नगर अन्दक (Andaka) तथा एरिगएम (Arigaeum) थे। वा० श० अग्रवाल ने एरिगएम के पहिचान 'काशिका' के आर्जुनावा से की है।[1] इस जाति की प्रधान सम्पत्ति पशु थे। सिकन्दर ने उसके 2 लाख 30 हजार पशु पकड़े थे।

(2) **गुरियन राज्य**—गुरियन जाति (Guraeans) गौरी (Gauraios=आधुनिक पंजकोर) की घाटी में एस्पेसियनों और एस्सेकेनोस राज्य के मध्य निवास करती थी।

(3) **एस्सेकेनोस राज्य**—एस्सेकेनोस (Assakenos) राज्य (=आश्वकायन)[2] सोआस्तुस् (Soastus=स्वात=स्वास्तु) और बुनेर नदियों की उपत्यकाओं में था[3] और पूर्व में सिन्धु नदी तक विस्तृत था। इसकी राजधानी मस्सग (Massaga) नगर था। वा० श० अग्रवाल का विचार है कि 'काशिका' और 'महाभाष्य' में उल्लिखित मशकावती और पुष्कलावती नाम की नदियों से तात्पर्य स्वात नदी की दक्षिण धाराओं से ही था और मस्सग नगर मशकावती के तट पर बाजौर से कुछ दूर हट कर स्थित रहा होगा।[4] मस्सग-नरेश एस्सेकेनोस् के पास 20,000 अश्वारोही, 30,000 पदाति और

1. अग्रवाल, पाणिनि, पृ० 72, 457।

2. एस्सेकेनोस नाम का संस्कृत रूप आश्वकायन है न कि अश्मक जिनकी चर्चा वराहमिहिर ने पश्चिमोत्तर जातियों में की है। 'आश्वकायन' नाम का समर्थन इस तथ्य से भी होता है कि यूनानियों ने इनका अनुवाद Hippasioi (स्ट्रेबो ने Hypasioi) किया है। आजकल भी पश्तो भाषा में यूसूफजई प्रदेश असिप या इसिप कहा जाता है (ए० न० मो०, पृ० 47)। एस्सेकेनोस् का कोई सम्बन्ध बाण द्वारा उल्लिखित अश्मकराज शरभ से नहीं था क्योंकि बाण द्वारा चर्चित शरभ गोदावरी घाटी के अश्मकों का राजा प्रतीत होता है। बाण के शरभ की पहिचान 510 ई० के एरण-अभिलेख के गोपराज के नाना शरभराज से करना बेहतर होगा।

3. सुवास्तु प्रदेश गुप्त काल में उद्यान या उड्डियान कहलाता था।

4. अग्रवाल, पाणिनि, पृ० 49; 462। वटाश्वक नाम से प्रसिद्ध सिक्कों को कुछ विद्वान् अश्वकों का मानते हैं (जे० आर० ए० एस०, 1900, पृ० 98-106)।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

30 हाथी थे। उसकी राजधानी मस्सग भी प्रकृति और 35 स्टेडिया लम्बी प्राचीर से (जिसकी नींव पत्थर की और दीवार पक्की ईंटों की थी) सुरक्षित नगर था जिसे जीतने के लिए सिकन्दर को विविध यन्त्रों का प्रयोग करना पड़ा था। उसकी मैत्री अभिसार-नरेश के साथ रही प्रतीत होती है क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण के समय उसका भाई इरिक्स (Eryx) अथवा एफ्रिकिज़ (Aphrikes) शरण पाने के लिए अभिसार चला गया था। एस्सेकेनोस् का एक प्रसिद्ध दुर्ग ओर्नोस् (Aornos) नाम से विख्यात था। अग्रवाल[1] ने उसकी पहिचान 'अष्टाध्यायी' के वरणा स्थल से की है। साथ ही उन्हें स्टीन का यह सुझाव भी स्वीकार है कि ओर्नोस् को सिन्धु से कुछ दूर स्थित ऊना स्थल मानना चाहिए।

(4) **न्यसा राज्य**—एस्सेकेनोस् राज्य के पड़ोस में सिन्धु नदी के पश्चिम में 'मेरोस् पर्वत' (Mt. Meros) की तलहटी में न्यसा (Nysa) राज्य था। होल्डिख़ ने मेरोस् की पहिचान स्वात की घाटी में कोह-ए-मोर पर्वत से की है।[2] इसके निवासियों ने सिकन्दर से अपने को उन यूनानियों का वंशज बताया था जो यूनानी परम्परानुसार डायोनाइसस के साथ भारत आए थे। न्यसा वालों के अनुसार उनके नगर को स्वयं डायोनाइसियस ने बसाया था और उसका नाम उसकी नर्स न्यस् के नाम पर रखा गया था। न्यसा के समीप स्थित पर्वत के नाम 'मेरोस' की व्याख्या भी वे यह कहकर करते थे कि मेरोस् का अर्थ 'जांघ' होता है और डायोनाइसियस जन्म के पूर्व जियस की जांघ में पोषित हुआ था। इस प्रसंग में ध्यान दिलाया जा सकता है कि बुद्ध के काल में भारत की सीमा पर एक यूनानी उपनिवेश के अस्तित्व का ज्ञान 'मज्झिम निकाय' में योन जनपद के उल्लेख से भी होता है।[3] न्यसा की शासन-व्यवस्था कुलीनतन्त्रात्मक (oligarchical) और उसकी शासन-सभा के सदस्यों की संख्या 300 थी। सिकन्दर के समय इसका अध्यक्ष अकुफिस (Akuphis) था। सिकन्दर ने न्यसा के कानूनों की प्रशंसा की थी। एरियन ने न्यसा का विस्तार से उल्लेख किया है परन्तु वह उसके अस्तित्व में शंका भी प्रकट करता है।

(5) **प्युक्लाओटिस् (एस्टेकेनोई) राज्य**—प्युक्लाओटिस् (Peuclaotis) अथवा पुष्कला(रा)वती राज्य सिन्धु नदी के पश्चिम में स्थित आधुनिक पेशावर प्रदेश में था। इसमें गन्धार जनपद का पश्चिमी भाग सम्मिलित था। इसकी राजधानी पुष्कलावती (पेशावर से 17 मील उत्तर-पूर्व की ओर स्थित आधुनिक चारसद्दा तथा मीर जियारत) स्वात के तट पर स्थित था। इसके निवासियों को एस्टेकेनोई (Astakenoi = पाणिनि के हास्तिनायन) कहा गया है। उनका राजा अस्टिज़ (= Astes = हस्ती अथवा अष्टक) 'हाइपार्क' उपाधिधारी था और सिकन्दर के सेनापति हेफाइस्शन (Hephaestion) से परास्त हुआ था। मेक्रिण्डल ने अष्टक का सम्बन्ध स्वात के दक्षिणी

1. पाणिनि, पृ० 54, 462। दे०, अ० हि० इ०, पृ० 60।
2. अ० हि० इ०, पृ० 57 पर उद्धृत।
3. योन कम्बोजेसुद्वेववण्णाअय्यो चेव दासोच· · ·।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाग में नदी के पूर्वी तट पर स्थित हष्टनगर से, जिसका अर्थ आठ नगर होता है, जोड़ा है।

(6) **तक्षशिला राज्य**—तक्षशिला (Taxila) सिन्धु और झेलम के मध्य स्थित नगरों में विशालतम और गन्धार जनपद के पूर्वी भाग की, जो चौथी शती ई० पू० में एक स्वतन्त्र राज्य था, राजधानी था। स्ट्रेबो के अनुसार इसके कानून बहुत अच्छे थे और उसके चारों ओर का प्रदेश घनी आबादी वाला तथा बहुत ही उर्वर था। प्राचीनतम तक्षशिला की पहिचान रावलपिण्डी से 20 मील उत्तर-पश्चिम की ओर सरायकाला के पास स्थित भीर टीले से की गई है।[1] प्राचीन काल में यह विद्या और व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र था। छठी शती ई० पू० के सुप्रथित वैद्य जीवक ने तक्षशिला में सात वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की थी। सिकन्दर के समय राज्य करने वाले तक्षशिला नरेश को यूनानियों ने टेक्सिलिज़ (Taxiles) नाम दिया है। प्लुटार्क के अनुसार उसका राज्य मिस्र के बराबर विशाल था और वह अच्छे चरागाहों तथा फलों के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध था। इसकी समृद्धि इस तथ्य से संकेतित है कि टेक्सिलिज़ ने सिकन्दर को 200 टेलेण्ट चांदी, बलि देने के लिए 300 पशु, 30 हाथी तथा 10,000 भेड़ें दी थीं और उसके उत्तराधिकारी आम्भी (Omphis) ने सुवर्ण के अनेक मुकुट और 80 टेलेण्ट रजत सिक्के। तक्षशिला के सम्बन्ध न पुष्कलावती से अच्छे थे और न पड़ोस के अभिसार और पुरु राज्यों से। सिकन्दर के आक्रमण के समय तक्षशिला के राजा की उपाधि एरियन ने 'हाईपार्क' बताई है जो उसके किसी के अधीन होने की सूचक है परन्तु स्ट्रेबो ने उसे बेसिलियस (basileus) अर्थात् 'राजा' कहा है। जैसा कि रायचौधुरी ने ध्यान दिलाया है सम्भवतः वह ईरानी सम्राट् के अधीन रहा था पर साखामनीषी साम्राज्य के पतन का लाभ उठाकर स्वतन्त्र हो गया था।[2]

(7) **अर्सेकिज़ का राज्य**—तक्षशिला के उत्तर में अर्सेकिज़ (Arsakes) और अभिसार राज्य थे। अर्सेकिज़ राज्य आधुनिक हज़ारा जिले में था और संस्कृत में उरशा कहा जाता था। उरशा-नरेश का उल्लेख यूनानियों ने 'हाइपार्क' उपाधि के साथ किया है।

(8) **अभिसार-राज्य**—अभिसार (Abisares) राज्य तक्षशिला के उत्तर में झेलम और चिनाब के मध्य कश्मीर के आधुनिक पूंछ और नौशेहरा जिलों वाले पर्वतीय प्रदेश में स्थित था। जैसा कि स्टीन ने ध्यान दिलाया था, 'महाभारत' (7.91.43) में 'दार्वाभिसार' के अन्तर्गत झेलम और चिनाब के मध्यवर्ती पहाड़ियां सम्मिलित की गई हैं। यूनानियों के वर्णन से लगता है कि इसका राजा अभिसार बड़ा कूटनीतिज्ञ था। पहिले उसने एस्सेकेनोस् को सहायता और उसके भाई को सिकन्दर के विरुद्ध शरण दी। परन्तु बाद में जब सिकन्दर तक्षशिला पहुंचा तो उसने उसे सन्तुष्ट करने के लिए

1, तक्षशिला नगर के कई स्तर मिले हैं। इनमें भीर टीला प्राङ्मौर्य और मौर्ययुग का है, सिर्कप भारतीय-यूनानी, पार्थियन और कडफिसिज़ युग का तथा सिरसुख प्रथम कनिष्क के युग का।

2. ए० न० मौ०, पृ० 36। यहां यह ध्यान देने की बात है कि कौटिल्य ने, अर्थशास्त्र के आम्भीय नामक सम्प्रदाय का उल्लेख किया है (दे०, रायचौधुरी, पो० हि० ए० इ०, पृ० 248)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यूनानियों के प्रति वशवर्तिता का दिखावा किया लेकिन साथ ही सिकन्दर के विरुद्ध पुरु को सहायता देने की योजना भी बनाई। वह स्वयं भी एक शक्तिशाली नरेश था। तक्षशिला से उसके सम्बन्ध अच्छे नहीं थे और कठों पर उसने आक्रमण किया था।

(9) **पोरस का राज्य**—झेलम और रावी के मध्यवर्ती प्रदेश में अर्थात् तक्षशिला के दक्षिण-पूर्व में पुरुओं के दो राज्य थे—वृद्ध अथवा ज्येष्ठ पुरु और कनीयस् अथवा कनिष्ठ पुरु के। ये पुरु अथवा पौरव स्पष्टतः वैदिककालीन पुरुओं के वंशज थे। 'बृहत्संहिता' (14.27) में पौरवों को मद्रकों और मालवों के साथ सम्बद्ध बताया गया है और 'महाभारत' (2.27. 15-17) में पौरवों द्वारा रक्षित एक नगर का (पुरं पौरवरक्षितं), जो कश्मीर के समीप था, उल्लेख है। 'वैदिक इण्डेक्स' के लेखकों के अनुसार पौरव या तो मूलतः झेलम के तट पर निवास करते थे और सिकन्दरकालीन पौरव वे पौरव थे जो अन्य पौरवजनों के पूर्व दिशा की तरफ चले जाने के बाद झेलम प्रदेश में शेष रह गये थे अथवा वे सिकन्दर के समय के पहिले कभी पूर्व से आकर पुनः झेलम प्रदेश में बसे होंगे।[1] वृद्ध पुरु (Elder Poros) का राज्य झेलम और चिनाव की अन्तर्वेदी में आधुनिक गुजरात और शाहपुर जिलों के आस-पास था। स्ट्रेबो के अनुसार यह एक विशाल और उर्वर राज्य था, जिसमें करीब 300 नगर थे। डायोडोरस सूचना देता है कि वृद्ध पुरु की सेना में 50,000 पदाति, 3,000 अश्वारोही, 1,000 रथ तथा 130 हाथी सम्मिलित थे। उसका वर्णन यूनानी इतिहासकारों ने एक ऐसे शेरदिल नरेश के रूप में किया है जिसके सामने अन्य समकालीन राजा नगण्य मालूम होते थे। पश्चिम में तक्षशिला का स्वामी और पूर्व में स्वयं उसका भतीजा अथवा चचेरा भाई कनीयस् पुरु (Younger Poros) उससे डरते थे, कठ आदि स्वतन्त्र जातियां उसकी शक्ति का आदर करती थीं, डायोडोरस के अनुसार एम्बीसारोस् (Embisaros) अर्थात् अभिसार-नरेश के साथ उसकी सन्धि थी और स्पिटासिज़ (Spitaces) नामक 'नोमार्क' ने, जो स्पष्टतः उसके अधीन था, सिकन्दर के विरुद्ध युद्ध में उसे सहायता दी थी।

(10) **कनीयस् पुरु का गन्धरी राज्य**—स्ट्रेबो के अनुसार वृद्ध पुरु के राज्य के पूर्व में रेचना दोआब में अर्थात् रावी-चिनाव नदियों के मध्य कनीयस् पुरु (Younger Poros) का लघु राज्य था, जो गन्धरी कहलाता था। शायद यह प्राचीन विशाल गन्धार महाजनपद का पूर्वी टुकड़ा था।[2] कनीयस पुरु का एरियन ने 'हाइपार्क' उपाधि के साथ उल्लेख किया है। सम्भवतः वृद्ध पुरु उस पर आधिपत्य का दावा करता था।

(11) **सौपीथिज़ का राज्य**—पुरुओं अथवा पौरवों के पड़ोस में सौपीथिज़ (Sopeithes = सौभूति)[3] का राज्य था यद्यपि उसकी सही स्थिति के विषय में कुछ मतभेद है।

1. वैदिक इण्डेक्स, 2, पृ० 12-13; जायसवाल (हिन्दूराज्य-तन्त्र, 1, पृ० 107) को सिकन्दरकालीन पुरु को पौरव मानने में आपत्ति है। ह० च० सेठ ने पोरस का व्यक्तिगत नाम देवापि माना है (दे०, चन्द्रगुप्त मौर्य और एलेक्ज़ेण्डर की भारत में पराजय, पृ० 66-69)।
2. मतान्तर के लिए दे०, कै० हि० इ०, पृ० 332, टि० 2।
3. सिल्वां लेवी ने सौपीथिज का संस्कृत रूपान्तर 'सौभूति' सुझाया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्ट्रेबो लिखता है कि सभी प्राचीन लेखकों के अनुसार सौपीथिज़ का राज्य झेलम अथवा चिनाब के पूर्व में था। लेकिन स्वयं स्ट्रेबो के ही अनुसार (15.30) सौपीथिज़ के राज्य में नमक का एक ऐसा पर्वत था जिससे सारे भारत की नमक की आवश्यकता पूर्ण हो सकती थी। इसके आधार पर स्मिथ का यह मत रहा है कि सौपीथिज़ सिन्धु और झेलम के मध्य अर्थात् झेलम के पश्चिम में 'साल्ट रेंज' वाले प्रदेश का स्वामी था।[1] जो भी हो, स्ट्रेबो ने सौपीथिज़ को एक नोमार्क बताया है जिससे स्पष्ट है कि वह किसी राजा का वायसराय रहा था। हो सकता है वह मूलतः ईरानी सम्राट् के वायसराय के रूप में रहा हो और बाद में स्वतन्त्र होने के बाद भी उसकी वही उपाधि चलती रही हो। पाणिनि ने सुभूत देश की चर्चा की है। कर्टियस (9.1) के अनुसार सौपीथिज़ का राज्य उत्तम कानूनों और परम्पराओं से शासित था और उसके नागरिक बुद्धिमान थे। उनके समाज में बच्चों का लालन-पालन माता-पिता की इच्छानुसार नहीं होता था वरन् बच्चों का निरीक्षण करने वाले पदाधिकारी अगर यह पाते थे कि नवजात शिशु के किसी अंग में दोष है तो उस शिशु को मार डाला जाता था जबकि पूर्णतः स्वस्थ शिशुओं का लालन-पालन राज्य की इच्छानुसार किया जाता था। विवाह-सम्बन्ध स्थिर करते समय भी कुलीनता अथवा दहेज के स्थान पर सौन्दर्य पर बल दिया जाता था।[2]

सौपीथिज़ के कुछ सिक्के भी उपलब्ध बताए जाते हैं। इन सिक्कों के राजा का नाम सौफाइटिज़ (Sophytes) है। इनके पुरोभाग पर राजा का सिर दिखाया गया है और पृष्ठभाग पर मुर्गा। स्मिथ ने इन पर एथेन्स के सिक्कों के 'उल्लू' का प्रभाव माना है। लेकिन बहुत से विद्वान् इन सिक्कों को सिकन्दरकालीन नहीं मानते।[3]

द्वितीय वर्ग के गणाधीन राज्य

(12) **ग्लौगेनीकाई गणराज्य**—पौरवों और सौपीथिज़ के राज्यों के पूर्व और दक्षिण में गणाधीन राज्य थे जिनमें सर्वप्रथम ग्लौसियनों (Glausians; उनके नाम का टॉलेमी द्वारा प्रयुक्त रूप) अथवा ग्लौगेनीकाई या ग्लौगनीसियनों (Glauganikai या Glauganicians, एरिस्टोबुलस द्वारा प्रयुक्त रूप) के राज्य की चर्चा की जा सकती है। उनका राज्य चिनाब के पश्चिम में वृद्ध पुरु के राज्य के पड़ोस में था और बाद में सिकन्दर ने उसे पुरु के राज्य में ही मिला दिया था। इसमें 37 बड़े नगर थे जिनमें ज्यादातर की आबादी 5,000 से और कुछ की 10,000 से ज्यादा थी। इनके अतिरिक्त इसमें बहुत से बड़े-बड़े ग्राम भी थे। सम्भवतः वेबर का अनुसरण करते हुए जायसवाल ने इनकी पहिचान 'काशिका' के ग्लौचुकायनकों से की है।[4] रायचौधुरी को इसमें शंका है।[5]

1. अ० हि० इ०, पृ० 94, टि० 1।
2. स्ट्रेबो के अनुसार सौफाइटिज के राज्य के कुत्ते अपने साहस के लिए प्रसिद्ध थे।
3. ह्वाइट (न्यु० क्रो०, 1943, पृ० 60-72; नारायण, ए० के०, द इण्डो-ग्रीक्स्, पृ० 5। इस समस्या के विवेचन के लिए दे०, ए० न० मौ०, पृ० 126-27।
4. जायसवाल, हिन्दू राज्य-तन्त्र, 1, पृ० 107।
5. पो० हि० ए० इ०, पृ० 250, टि० 1।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(13) **कथइयोई गणराज्य**—कथइयोई (Kathaioi अथवा Cathaeans) जाति का निवास बारी दोआब, व्यास और रावी के मध्यवर्ती प्रदेश में था। स्ट्रेबो के अनुसार कुछ प्राचीन लेखक कथइय और सौपीथिज़ के देश को झेलम और चिनाब के बीच में बताते थे और कुछ चिनाब और रावी के 'उस ओर'। कथइयोई नाम सम्भवतः संस्कृत नाम 'कठ' का यूनानी रूपान्तर है।[1] यह एक पराक्रमी और युद्धप्रिय जाति थी और अपने साहस तथा युद्धकला के लिए सर्वत्र विख्यात थी। इसका प्रमुख स्थल संगल था जिसकी पहिचान कुछ लोग लाहौर से करते हैं, कुछ लोग अमृतसर के पूर्व में स्थित जिण्डयाला से, कुछ ने इसकी स्थिति गुरुदासपुर जिले में फथगढ़ के समीप मानी है और कुछ ने इसे झंग जिले में सांगलावाला तीबा माना है(जिसे अग्रवाल ने पाणिनि द्वारा उल्लिखित संकल बताया है)।[2] कठ जन सौन्दर्य के महान् उपासक थे। ओनेसिक्रिटस (Onesicritus) के आधार पर स्ट्रेबो ने सूचित किया है वे सुन्दरतम पुरुष को अपना राजा चुनते थे और उनके स्त्री-पुरुष अपनी पसन्द से अपना विवाह निर्धारित करते थे।

(14) **एड्रेस्टाई गणराज्य**—रावी के पूर्व में कठों के समीप एड्रेस्टाई (Adraistai या Adrestae) गण जाति रहती थी। उसका प्रधान स्थल प्रिम्प्रम (Primprama) था। कुछ यूरोपियन विद्वानों ने इसकी पहिचान आरट्टों से की है, परन्तु जायसवाल का कहना है कि आरट्ट शब्द से एड्रेस्टाई नाम नहीं बन सकता। उन्होंने इसकी पहिचान पाणिनि द्वारा उल्लिखित अरिष्टों से सुझाई है।[3]

(15) **फेगेलस का राज्य**—बारी दोआब (व्यास और रावी दोआब) में एक लघु-राज्य था जिसके राजा का फगेलस (Phegelas अथवा Phegeus) नाम संस्कृत भगल का, जिसे गणपाठ में क्षत्रियों के एक राजवंश का नाम बताया गया है, याद दिलाता है।

(16) **सिबोई गणराज्य**—झेलम और चिनाब के संगम के दक्षिण में रेचना दोआब (रावी-चिनाब दोआब) के शरकोट प्रदेश में सिबोई (Siboi) गणराज्य था जिसकी पहिचान 'ऋग्वेद' के शिव (7.18.7) और परवर्ती साहित्य के शिवि जनों से[4] की जाती

1. कुछ विद्वानों ने 'कथइयोई' शब्द को 'क्षत्रिय' का यूनानी रूपान्तर माना है। परन्तु यूनानियों ने 'क्षत्रिय' नाम के लिए एक्स्थोई (Xathroi) शब्द का प्रयोग किया है (दे०, आगे)। काठी नाम की जाति पंजाब में अब भी है (विद्यालंकार, जयचन्द्र, भारतीय इतिहास की रूपरेखा, 2, पृ० 618)।

2. अग्रवाल, पाणिनि, पृ० 85।

3. हिन्दू राज्य-तन्त्र, 1, पृ० 86। लेकिन अग्रवाल ने अरिष्टपुर को शिवि राज्य में स्थित बताया है (पाणिनि, पृ० 73)। बेवन तथा शास्त्री ने 'एड्रेस्टाई' का संस्कृत रूपान्तर 'अधृष्ट' किया है(ए० न० मौ०, पृ० 66)।

4. जातकों में शिविदेश और उसके अरिट्ठपुर तथा जेतुत्तर नगरों की चर्चा है। पाणिनि ने भी शिवपुर का उल्लेख किया तथा शरकोट से प्राप्त एक लेख में शिविपुर नाम आया है। फोगल ने इसकी पहिचान स्वयं शरकोट से की है। 'महाभारत' में शिविराष्ट्र के स्वामी उशीनर की चर्चा है और उसका राज्य यमुना के पास में होना संकेतित है। उनके उपनिवेश राजपूताना में चित्तौड़ के पास और दक्षिण में कावेरी के तट पर भी थे। दे०, पो० हि० ए० इ०, पृ० 253।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। इसके सदस्य हेराक्लिज़ (=शिव ?) की तरह पशुचर्म-निर्मित वस्त्र पहिनते थे, गदा को आयुध की तरह धारण करते थे एवं अपने पशुओं के शरीर पर उसका चिह्न अंकित करते थे। उन्होंने सिकन्दर का प्रतिरोध करने के लिए 40,000 सैनिक एकत्र किए थे।

(17) **एगेलेस्सोई गणराज्य**—सिबोई के पड़ोस में एगेलेस्सोई (Agalassoi; Agesinae; Acensoni; Argesinae) गणराज्य था। 'सिन्धु नदी उनके प्रमुख नगर के समीप बहती थी और उसके दक्षिण की तरफ झेलम और चिनाव का संगम था'।[1] एगेलेस्सोई जाति ने सिकन्दर का सामना 40,000 पदातियों और 3,000 अश्वारोहियों से किया था।[2] कुछ विद्वानों ने उनकी पहिचान आर्जुनायनों से की है, परन्तु जायसवाल का कहना है कि उस समय आर्जुनायन जाति का अस्तित्व ही नहीं था। उनका विचार है कि इस जाति की पहिचान कौटिल्य द्वारा उल्लिखित 'अग्रश्रेणी' से की जा सकती है।[3]

(18)-(19) **मल्लोई और ओक्सीड्रेकाई गणराज्य**—रावी के दाहिने तट पर, चिनाव और रावी के मध्य[4] एक अत्यन्त शुष्क प्रदेश के समीप मल्लोई (Malloi) जाति रहती थी। उसका यह नाम संस्कृत नाम 'मालव' का यूनानी रूपान्तर है। पाणिनि ने उनका उल्लेख आयुधजीवी जाति के रूप में किया है। एरियन के अनुसार मल्लोई संख्या में बहुत, स्वतन्त्रता प्रिय तथा पराक्रमी जन थे। बाद में ये लोग ही राजपूताना और अवन्ति में जाकर बसे थे। पूर्वी भारत के मल्लों से इनका सम्बन्ध सर्वथा अज्ञात है।

मल्लोई की पड़ोसी ओक्सीड्रेकाई (Oxydrakai, Oxydracae, Sydracae, Sudracae, Syrakousai) गणजाति वही है जिसे संस्कृत साहित्य में क्षुद्रक कहा गया है। कर्टियस और स्ट्रेबो के कथन से आभास मिलता है कि यह सिबोई और एगेलेस्सोई की भी पड़ोसी थी और स्ट्रेबो के अनुसार उसका शासन छोटे-छोटे राजाओं (basileus) के हाथ में था जिनकी तुलना पूर्वी भारत के लिच्छवि और मल्ल गणराज्यों के 'राजाओं' से की जा सकती है। एरियन ने एक स्थल पर उसके नगरों और प्रान्तों के अध्यक्षों (nomarchai) की चर्चा की है जिन्हें विदेशी राजाओं से सन्धि वार्ता करने का पूर्ण अधिकार होता था। यह जाति भी पंजाब की एक पराक्रमी एवं युद्धप्रिय जाति थी।

मालव और क्षुद्रक जातियों का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ था। सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व वे एरेकोसियनों अर्थात् साखामनीषियों के एरेकोशिया में स्थित गवर्नरों को कर देते थे (दे०, पिछला अध्याय), लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से लगभग पूर्णतः स्वतन्त्र थे। उनका आपस में झगड़ा भी चलता रहता था, परन्तु उन्होंने यूनानी आक्रमणकारी का

1. वर्तमान नक्शों में किसी नगर की ऐसी स्थिति असम्भव है।

2. एगेलेस्सोई और सिबोई की पृथक्ता केवल डायोडरस ने बताई है। इस स्थल पर क्लासिकल लेखकों का वर्णन निश्चित रूप से दोषपूर्ण लगता है।

3. हिन्दू राज्य-तन्त्र, 1, पृ० 80-81।

4. मेगास्थेनिज़ और एरियन का यह कथन कि उनके राज्य में चिनाब नदी सिन्धु से मिलती थी आजकल की भौगोलिक स्थिति के अनुसार गलत है। हो सकता है इन लेखकों ने गलती से चिनाब की जगह सिन्धु नाम लिख दिया हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिलकर सामना करने का निश्चय किया था। स्मिथ ने ध्यान दिलाया है कि 'महाभारत' में (6.59.135) 'मालव-क्षुद्रकों' का सम्मिलितरूपेण उल्लेख कौरव-पक्षधरों के रूप में हुआ है। वेबर के अनुसार अपिशलि ने 'क्षुद्रक-मालव' द्वन्द्व का उल्लेख किया है। पतञ्जलि ने भी इस द्वन्द्व की चर्चा की है। (क्षुद्रकमालवशब्दः खण्डिकादिषु पठ्यते)।[1] कर्टियस के अनुसार क्षुद्रकों और मालवों ने मिलकर सिकन्दर का सामना करने के लिए 90,000 पदाति, 10,000 अश्वारोही तथा 900 रथ एकत्र किए थे और इस सेना का सेनापति एक क्षुद्रक योद्धा को बनाया था। डायोडोरस ने इसका कुछ भिन्न वर्णन करते हुए बताया है कि दोनों जातियों ने पहिले 80,000 पदाति 10,000 अश्वारोही और 700 रथ इकट्ठे किए एवं अपनी मित्रता को अपनी-अपनी 10,000 कुमारियों का विवाह दूसरी जाति के पुरुषों से करके दृढ़ किया, लेकिन बाद में उनमें सेनापतित्व के प्रश्न पर मतभेद हो गया और वे अपने-अपने निकटवर्ती शहरों में चले गए। एरियन के कथन से प्रतीत होता है कि सिकन्दर मल्लोई राज्य में उसे क्षुद्रकों से सहायता पाने के पूर्व ही पहुंच गया था।

(20) **एबेस्टेनोई गणराज्य**—एबेस्टेनोई (Abastanoi) जाति, जिसे कुछ क्लासिकल लेखकों ने सेम्बेस्टाई (Sambastai), सेबर्काई (Sabarcae) अथवा सावग्राई (Sabagrae) नाम से भी पुकारा है, मालवों के दक्षिण में लेकिन चिनाव और सिन्धु के संगम के ऊपर बसी हुई थी। यह वही जाति है जिसका संस्कृत और पालि साहित्य में अम्बष्ठ अथवा आम्बष्ठ नाम से[2] शिवि-क्षुद्रक और मालवों के साथ एक महत्त्वपूर्ण जाति के रूप में उल्लेख है।[3] पतञ्जलि के अनुसार अम्बष्ठ देश का नाम था और उसके निवासी अम्बष्ठ्य कहलाते थे। कर्टियस और डायोडोरस दोनों के अनुसार एबेस्टेनोई एक शक्तिशाली जाति थी और उसकी शासन व्यवस्था प्रजातान्त्रिक थी। उसकी सेना में 60,000 पदाति, 6,000 अश्वारोही और 500 रथ थे।

(21) **एक्स्थोई गणराज्य**—चिनाव नदी के रावी तथा सिन्धु के साथ संगमों के मध्य एक्स्थोई (Xathroi) और ओस्सादिओई (Ossadioi) जातियों का निवास था। मेक्रिण्डल ने एक्स्थोई की पहिचान मनु द्वारा उल्लिखित क्षत्तृ नामक एक संकर जाति से की है। जायसवाल का विचार है कि यह 'क्षत्रिय' नामक एक विशिष्ट राजनीतिक

1. जायसवाल, हिन्दू राज्य-तन्त्र, 1, पृ० 94-5।

2. सूर्यकान्त का विचार है कि अम्बष्ठ जाति का नाम थी और आम्बष्ठ एक स्थान का। रायचौधुरी को यह सुझाव अनुमानाश्रित लगता है (पो० हि० ए० इ०, पृ० 255, टि० 5; पृ० 256, टि० 2 तथा 4)।

3. ऐतरेय ब्रा० में एक आम्बष्ठ नरेश का, जिसका पुरोहित नारद था, उल्लेख है। 'महाभारत' में अम्बष्ठों की चर्चा शिवि, क्षुद्रक, मालव आदि के साथ की गई है। पुराणों में उन्हें शिवियों का सम्बन्धी और आनव वंशी क्षत्रिय बताया गया है। 'बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' में आम्बष्ठ देश का उल्लेख सिन्ध के साथ हुआ है (कश्मीर हूणाम्बष्ठसिन्धवः)। 'अम्बट्ठसुत' में अम्बष्ठों को ब्राह्मण बताया गया है और स्मृतियों में ब्राह्मण-वैश्य से उत्पन्न संकर जाति। इस जाति की चिकित्सा-शास्त्र में बहुत रुचि थी। सन्दर्भों के लिए दे०, पो० हि० ए० इ०, पृ० 255-56।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संघ का, जिसका उल्लेख 'अर्थशास्त्र' में है, नाम था।[1]

(22) **ओस्सादियोई गणराज्य**—इस जाति का उल्लेख एरियन ने किया है। कनिंघम का यह विचार कि ओस्सादियोई 'यौधेय' नाम का ही यूनानी रूप है, भाषा-विज्ञान के आधार पर अस्वीकृत किया जाता है।[2] आजकल, वी० द० सेंत मार्तें का यह सुझाव सामान्यतः स्वीकृत किया जाता है कि ओस्सादियोई 'महाभारत' में उल्लिखित वसाति थे। इस ग्रन्थ में उनका उल्लेख क्षुद्रकों और मालवों के पड़ोसी के रूप में मिलता है। पतञ्जलि और कात्यायन ने भी उनकी चर्चा शिवियों के साथ की है।[3]

(23) **सौद्रै गणराज्य**—पंजाब की पांच नदियों के दक्षिण में मिथनकोट प्रदेश, सिन्ध प्रान्त के उत्तरी भाग और भूतपूर्व बहावलपुर रियासत वाले प्रदेश में सौद्रै (Sodrai या Sogdri) और मस्सानोई (Massanoi) जातियाँ निवास करती थीं। सम्भवतः सिन्धु नदी इन दोनों की मध्यवर्ती सीमा थी। रायचौधुरी आदि कुछ विद्वानों के अनुसार सौद्रै जाति का उल्लेख पतञ्जलि के 'महाभाष्य' और 'महाभारत' में शूद्र नाम से, सरस्वती के तट पर निवास करने वाली आभीर जाति के साथ, हुआ है[4] लेकिन जायसवाल और अग्रवाल ने इसकी पहिचान पाणिनि के गणपाठ में चर्चित शौद्रायणों से की है।[5] कनिंघम के अनुसार दक्षिण-पूर्वी सिंध के आधुनिक सोढा राजपूत सौद्रै के वंशज हैं।[6]

(24) **मस्सानोई गणराज्य**—सौद्रे के पड़ोसी मस्सानोई (Massanoi) को कनिंघम ने टॉलेमी द्वारा उल्लिखित मौसर्नेओई (Mausarnaioi) बताया है और अग्रवाल का विचार है कि ये दोनों पाणिनि के गणपाठ में उल्लिखित मसूरकर्ण होने चाहिए।[7]

सिन्धु की दक्षिणी उपत्यका के राज्य

मिथनकोट के दक्षिण में सिन्धु की निचली उपत्यका (आधुनिक सिन्ध प्रान्त) कई राजाधीन राज्यों में विभाजित थी। इनका वर्णन इस प्रकार है :—

(25) **मूसिकेनोस् का राज्य**—सिन्ध का सबसे महत्त्वपूर्ण राज्य मूसिकेनोस् (Mousikanos) का था। इसकी राजधानी की पहिचान सक्कर जिले के अलोर (प्राचीन रोरुक) स्थल से की गई है। लैसन का अनुकरण करते हुए बेवन ने मूसिकेनोस् नाम का संस्कृत रूप मूषिक माना है और जायसवाल ने मुचुकर्ण।[8] उसके राज्य को भारत का सर्वाधिक समृद्ध राज्य कहा गया है। सिकन्दर ने इसकी राजधानी की बहुत प्रशंसा की थी। ओने-

1. जायसवाल, पूर्वो०, पृ० 80, 101।
2. वही, पृ० 101-102।
3. वही।
4. ए० न० मौ०, पृ० 40।
5. जायसवाल, हिन्दू राज्य-तन्त्र, 1, पृ० 101, टि०; अग्रवाल, पाणिनि, पृ० 65।
6. कनिंघम, एन्श्येण्ट ज्योग्रेफी, पृ० 201।
7. अग्रवाल, पूर्वो०।
8. बेवन, कै० हि० इ०, पृ० 338; जायसवाल, पूर्वो०, पृ० 102-4; भारतीय साहित्य में मूषिक जनों को दक्षिण भारतीय बताया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिक्रिटस (Onesicritus) के आधार पर इसका वर्णन करते हुए स्ट्रेबो (ज्यो०, 15.34) बताता है कि मूसिकेनोस् के राज्य में कुछ उसी प्रकार के सामूहिक भोजन की प्रथा थी जैसी स्पार्टा में। उनकी उम्र प्रायः 130 वर्ष तक की होती थी। उनके भोजन में शिकार में मारे गए पशु रहते थे। यद्यपि उनके राज्य में सोने और चांदी की खानें थीं, लेकिन वे इन धातुओं का उपयोग नहीं करते थे। जैसे स्पार्टा वाले हेलोटों का प्रयोग करते थे वैसे ही मूसिकेनोस् के राज्य में नवयुवकों का किया जाता था। वैद्यक के अतिरिक्त वे किसी विज्ञान की तरफ ध्यान नहीं देते थे। युद्ध आदि कलाओं में बहुत रुचि लेना वे अनुचित समझते थे। हत्या और बलात्कार के अतिरिक्त किसी अन्य मामले में मुकदमेबाजी नहीं होती थी। दूसरों पर विश्वास करके अनुबन्ध करते समय सबको सावधानी रखनी होती थी क्योंकि अगर एक पक्ष समझौते का उल्लंघन करता था तो दूसरे पक्ष को उसका फल भुगतना ही होता था। अदालतों में मुकदमें ले जाकर नगर की शान्ति को भंग करना बुरा समझा जाता था।

एरियन के कथनानुसार मुसिकेनोस् राज्य में ब्राह्मणों (Brachmans) का बहुत प्रभाव था और उन्होंने यूनानियों के विरुद्ध विद्रोह भड़काया था। नियर्कस के अनुसार भी ब्राह्मण राजनीति में भाग लेते थे और राजा के मन्त्रियों के रूप में कार्य करते थे।

(26) **ओक्साइकेनोस् का राज्य**—मूसिकेनोस् के दक्षिण में सिन्ध के पश्चिम में ओक्साइकेनोस् (Oxykanos) का राज्य था जिसे स्ट्रेबो और डायोडोरस ने पोर्टिकेनोस् (Portikanos = संस्कृत 'पार्थ' ?) कहा है। कर्टियस ने ओक्साइकेनोस् की प्रजा को प्राइस्टी (Praesti) कहा है जिनके 'महाभारत' में उल्लिखित प्रौष्ठ होने की सम्भावना प्रायः मानी जाती है। कनिंघम ने इस राज्य की स्थिति सिन्धु के पश्चिम में लरकाना के आसपास मानी है।[1] एरियन ने इसके शासक को 'नोमार्क' कहा है।

(27) **सेम्बोस् राज्य**—सेम्बोस् राज्य (एरियन का Sambos, स्ट्रेबो का Sabus, प्लुटार्क का Sabbas) मूसिकेनोस् राज्य के पड़ोस में था और एरियन के अनुसार दोनों में शत्रुता थी। यह एक 'पर्वतीय प्रदेश' था और इसकी राजधानी सिन्दिमन (Sindimana) थी जिसकी पहिचान कुछ विद्वान् शेहवान के साथ करते हैं, यद्यपि रायचौधुरी के अनुसार यह सुझाव बहुत सबल नहीं है। सेम्बोस् का संस्कृत रूप बेवन ने 'शम्भु' सुझाया है और एक विकल्प के रूप में रायचौधुरी ने 'शाम्ब'। प्लुटार्क के अनुसार सेम्बोस् राज्य में 'नग्न रहने वाले सोफिस्टों' (gymnosophists) का प्रभाव था जो या तो जैन रहे होंगे अथवा ब्राह्मण।[2] उनके भड़काने पर सेम्बोस् ने सिकन्दर की प्रभुता मानने के बाद पुनः विद्रोह कर दिया था। ब्राह्मण प्रभाव की दृष्टि से इसकी स्थिति मूसिकेनोस् राज्य से तुलनीय है।

(28-29) **ब्राह्मण देश और एम्बिगेरुस् का राज्य**—डायोडोरस ने सेम्बोस् के समीप

1. ए० न० मौ०, पृ० 41; महाभारत, 6. 9. 61।
2. एन्श्येण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृ० 300।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्थित एक ब्राह्मण राज्य का उल्लेख किया है। पाणिनि ने भी 'ब्राह्मणक' का उल्लेख किया है जिसे पतञ्जलि ने स्पष्टरूपेण एक जनपद कहा है (ब्राह्मणको नाम जनपदः)। 'काशिका' में इसे आयुधजीवी ब्राह्मणों का देश कहा गया है (यत्रायुधजीविनो ब्राह्मणाः सन्ति)। डायोडोरस (17.102-103) ने इस राज्य के छोर पर स्थित हार्मेतेलिया (Harmatelia) नामक नगर का भी उल्लेख किया है जिसका शासक जस्टिन के साक्ष्यानुसार (12.10) एम्बिगेरुस (Ambigerus) नामक व्यक्ति था। एम्बिगेरुस ने सिकन्दर का सामना करने के लिए विषैले बाणों का प्रयोग किया था।

(30) **पाटलीन राज्य** (Patalene) राज्य सिन्धु के मुहाने वाले प्रदेश में था। इसका उल्लेख पोट्टल (Pottala) नाम से भी हुआ है और डायोडोरस ने सम्भवतः इसी को तउआला (Tauala) कहा है। यह सम्भवतः ब्राह्मणाबाद स्थल के समीप स्थित था।[1] डायोडोरस के अनुसार इसका संविधान स्पार्टा के संविधान से मिलता-जुलता था। इसकी सेना का नेतृत्व दो परिवारों के दो राजा करते थे और वृद्धजनों की एक सभा, जिसे सर्वोच्च सत्ता प्राप्त थी, राज्य का संचालन करती थी। सिकन्दर के काल में इसके एक राजा को मोयरज़ (Moeres) कहा गया है। यह नाम 'मोरिय' या 'मौर्य' नाम का स्मरण दिलाता है।

(31) **आरिइटाई राज्य**—यह राज्य सिन्धु प्रान्त के पश्चिम में था। इसकी जाति को यूनानियों ने भारतीय बताया है। यूनानियों के अनुसार टामेरोस (हिंगाल) नदी पार लेने पर सिकन्दर और रासमलान लांघने पर नियर्कस भारत की सीमा से निकले थे।[2] अग्रवाल ने आरिइटाई जाति की पहिचान पाणिनि द्वारा उल्लिखित वार्तेयों से की है।[3]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जिस समय सिकन्दर ने पश्चिमोत्तर भारत पर आक्रमण किया, यह प्रदेश कम से कम तीस से अधिक लघु राज्यों में विभाजित था। इन राज्यों के विषय में दो तथ्य अत्यन्त रोचक हैं। एक, इनमें कुछ ही शासन व्यवस्था स्पार्टा की शासन व्यवस्था से स्थूल सादृश्य रखती थी जैसे मूसिकेनोस् और पाटलीन की। सम्भवतः समान परिस्थितियां इन सादृश्य का कारण थीं। दूसरे, इनमें सिन्ध के कुछ राज्यों की राजनीति पर ब्राह्मणों का गम्भीर प्रभाव था और एक राज्य तो था ही ब्राह्मणों का। इन राज्यों में कुछ गणाधीन थे और कुछ राजाधीन। ये अधिकांशतः परस्पर संघर्षरत रहते थे यद्यपि इनमें किसी की भी शक्ति इतनी नहीं थी कि वह सबको जीत कर एक साम्राज्य स्थापित कर पाता। ऐसी स्थिति में यह सोचना कि ये मिलकर यूनानी आक्रमणकारी का सामना कर सकते थे, एक कल्पनामात्र है। ये राज्य साखामनीषी सम्राटों के ह्रास काल में अस्तित्व में आये होंगे और इनमें अधिकांश सिकन्दर के आक्रमण के कुछ पहिले तक साखामनीषियों के प्रभुत्व को कम से कम नाम

1. जायसवाल इसे आधुनिक हैदराबाद (सिन्ध) मानते हैं।
2. दे०, विद्यालंकार, जयचन्द्र, भारतीय इतिहास की रूपरेखा, 2, पृ० 624, टि०।
3. अग्रवाल, पाणिनि, पृ० 458।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए मानते आए थे। स्ट्रेबो द्वारा सिकन्दर के आक्रमण के समय ईरानी आधिपत्य के सिन्ध तक होने की चर्चा, मालव-क्षुद्रकों द्वारा एरेकोशियनों को कर देने का उल्लेख, इन राज्यों के नरेशों द्वारा प्रायः हाइपार्क और नोमार्क जैसी पराधीनतासूचक उपाधियां धारण करना तथा तृतीय दारयवहुष को सिकन्दर के विरुद्ध भारतीय सहायता मिलना इसका प्रमाण हैं। लेकिन इस स्थिति का लाभ उठा कर ईरानियों का स्थान लेने और राजनीतिक शून्यता को भरने का प्रयास नन्दों ने बिल्कुल नहीं किया—यह सफल प्रयास किया दूरस्थ यूनान के प्रख्यात विजेता सिकन्दर ने जिसके आक्रमण का अध्ययन अगले अध्याय में किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

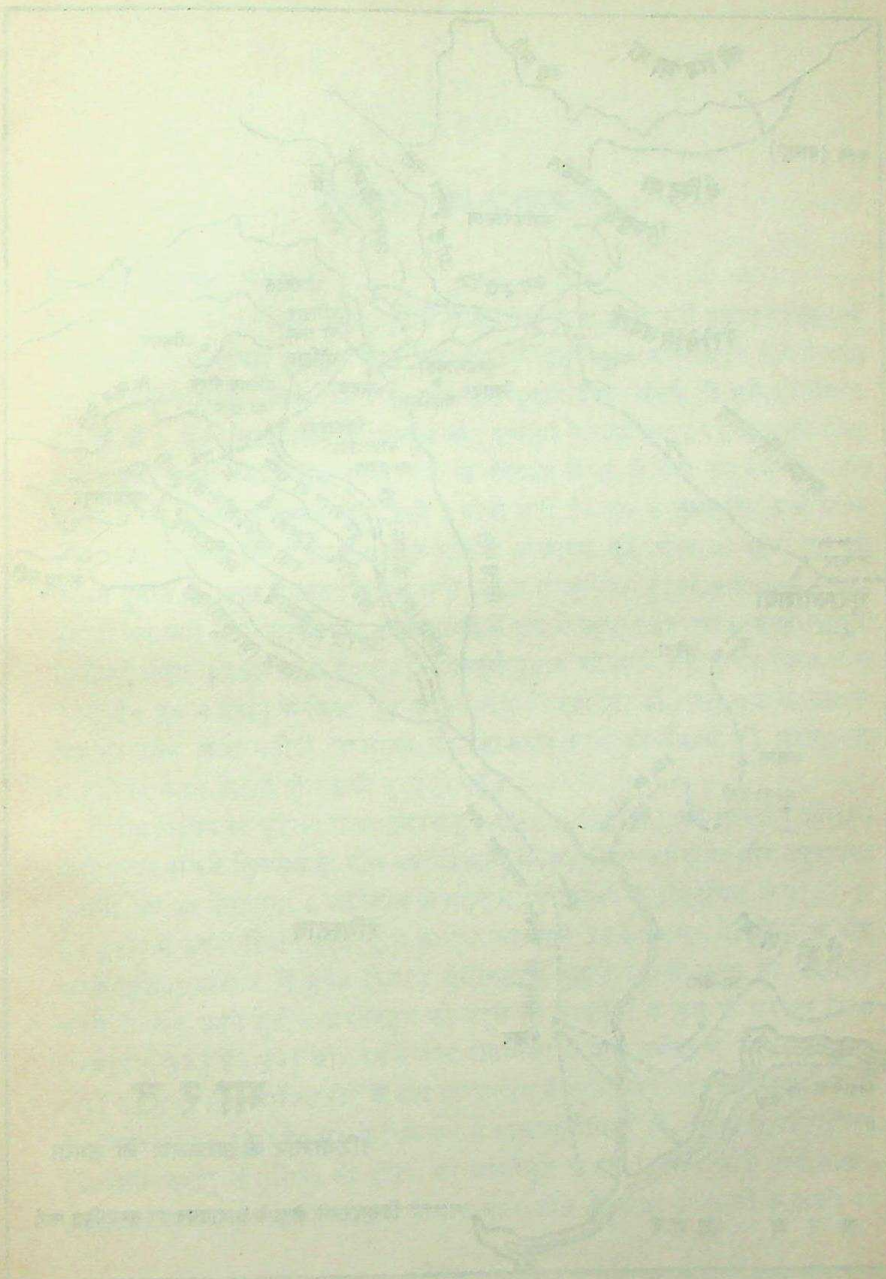

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

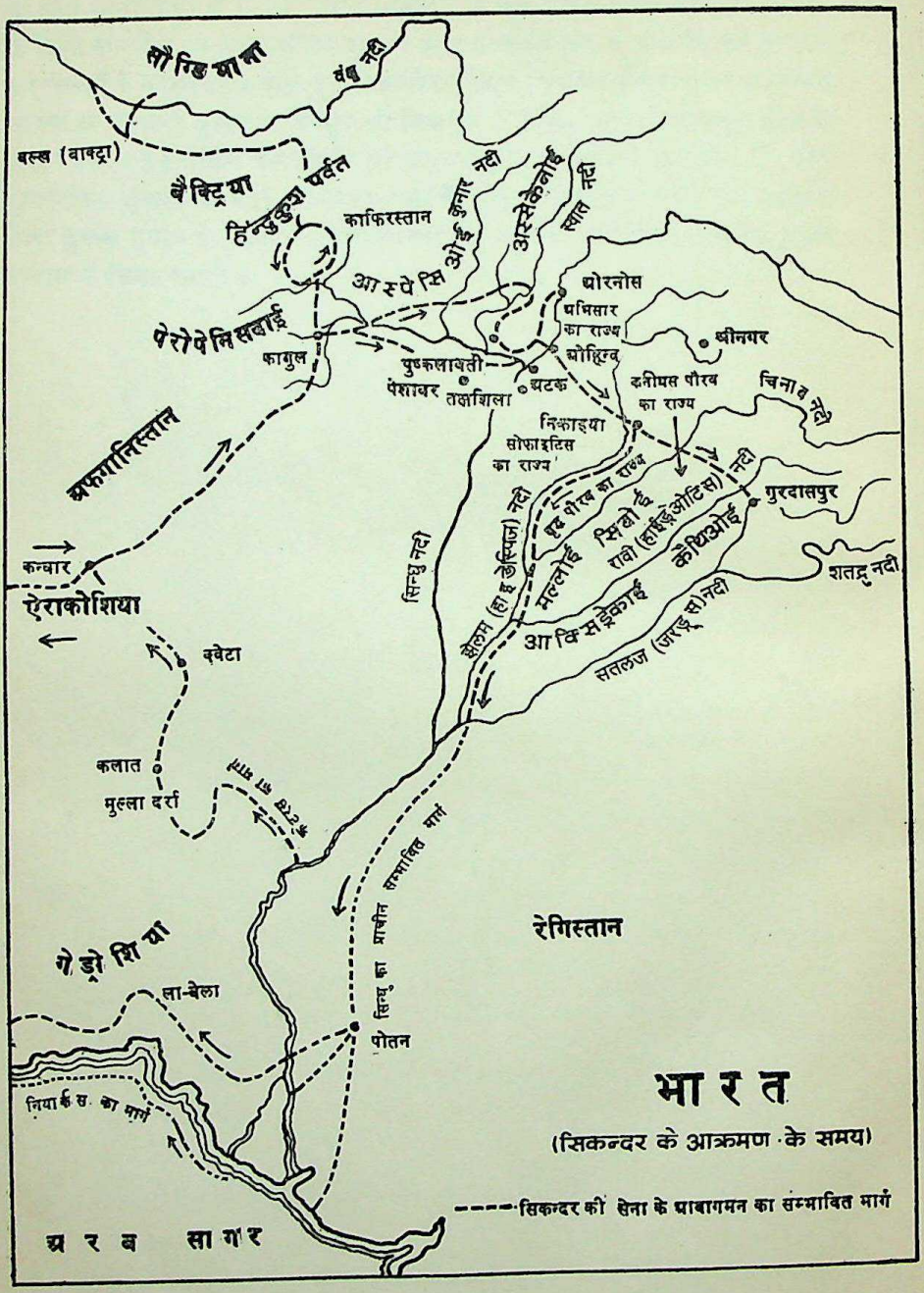

[पृष्ठ 199 के सामने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 16

सिकन्दर का आक्रमण

हिन्दुकुश से सिन्धु नदी तक

साखामनीषी साम्राज्य जिस प्रकार पूर्व में भारत तक विस्तृत था उसी प्रकार पश्चिम में यह यूनानी नगर-राज्यों को छूता था। स्वयं कुरुष महान् ने एशिया माइनर के पश्चिमी तट पर स्थित यूनानी नगर-राज्यों को जीत कर यूनान-ईरान संघर्ष की भूमिका तैयार कर दी थी। उसके बाद प्रथम दारयवहुष और क्षयार्षा ने स्वयं यूनान पर आक्रमण किए और उसके अनेक नगरों और मन्दिरादि का विध्वंस किया, लेकिन उस देश को अपने अधीन करने में उन्हें सफलता नहीं मिली। चौथी शती ई० पू० के मध्य स्थिति में परिवर्तन हुआ, क्योंकि उस समय तक साखामनीषी साम्राज्य की शक्ति तो बहुत घट गई लेकिन यूनान के उत्तर में स्थित अर्ध-यूनानी राज्य मकदूनिया (Macedonia) पूर्णतः यूनानी बन गया और उसका एक सबल राज्य के रूप में उत्थान हो गया। इसके स्वामी द्वितीय फिलिप (359-336 ई० पू०) ने सम्पूर्ण यूनान को अपने अधीन कर लिया और 338 ई० पू० में ईरान के विरुद्ध एक यूनानी संघ की स्थापना की। इस संघ के नेता के रूप में उसने साखामनीषी साम्राज्य पर आक्रमण करने की तैयारी की, परन्तु इसे कार्यान्वित करने के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई।[1]

द्वितीय फिलिप का पुत्र तृतीय अलक्ज़ान्दर (Alexander III), जो भारतीय इतिहास में सिकन्दर नाम से विख्यात है, बीस वर्ष की आयु में मकदूनिया का राजा और तदुपरान्त यूनानी संघ का नेता बना। वह विश्व के महत्तम विजेताओं में परिगणित किया जाता है। यूनान में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के उपरान्त उसने 334 ई० पू० में हेलेस्पोण्ट पार करके एशिया माइनर में प्रवेश किया। ग्रेनिकस के युद्ध में ईरानी क्षत्रप को पराजित करने के बाद उसने तृतीय दारयवहुष को पहले तो आइसिस के युद्ध में परास्त किया (अक्तूबर, 333 ई० पू०) और इसके बाद गौगामेला के पास अर्बेला के युद्ध (अक्तूबर, 331 ई० पू०) में। पराजित होने के बाद दारयवहुष बैक्ट्रिया भाग गया जहां उसकी किसी ने हत्या कर दी। 330 ई० पू० में सिकन्दर ने साखामनीषियों की राजधानी पर्सिपॉलिस (=पार्सों अर्थात् ईरानियों की पुरी) को भस्मीभूत करवा दिया। इसके बाद साखामनीषियों के शेष प्रान्तों को जीतना आसान था। जीते हुए देशों में रास्तों के नाकों पर

1. ईरान-यूनान के संघर्ष एवं मकदूनिया के अभ्युत्थान के लिए दे०, ब्यूरी, हिस्टरी ऑव ग्रीस, अध्याय 6-7, 16; गोयल, श्रीराम, विश्व की प्राचीन सभ्यताएं, पृ० 432 अ०।

किले बनाते और छावनियां स्थापित करते हुए 330 ई० पू० की शीत ऋतु तक वह सीस्तान पहुंच गया और बसन्त ऋतु तक एरेकोशिया में। वहां अपनी नीति के अनुसार उसने एक नगर की स्थापना की जो 'एरेकोशियनों के बीच में बसा सिकन्दरिया या अलक्ज़ान्द्रिया (Alexandria-among-the Arachosians=आधुनिक कन्धार) कहलाया। 329 ई० पू० की शीत ऋतु तक वह काबुल की घाटी के पश्चिमी छोर में प्रविष्ट हो चुका था।

काबुल से पंजाब की तरफ बढ़ने के बजाय सिकन्दर पहले हिन्दुकुश के पार बैक्ट्रिया और सोग्डियाना जीतने गया। सर्वप्रथम उसने हिन्दुकुश (=भारतीय कॉकेशस) के पादमूल में सिकन्दरिया नगर (Alexandria-under-the Caucasus अथवा Alexandria-in-Paropamisadae)[1] बसाया जिसकी पहिचान आधुनिक चरिकर स्थल से की जाती है। इसके समीप ही उसने क्रेटन (Cratana) (जिसकी पहिचान कनिंघम ने आधुनिक बेग्राम से की है), कद्रुसी (Cadrusi) और निकाइया (Nicaea) नगर[2] भी बसाए। इनकी स्थापना यूनानी सैनिक शक्ति और संस्कृति के केन्द्रों के रूप में की गई थी। तदन्तर मई 328 और मई 327 ई० पू०[3] के बीच में उसने हिन्दुकुश पार करके बैक्ट्रिया और सीर दरिया (=Jaxartes नाम की नदी) तक सुग्ध (=सोग्डियाना) पर विजय प्राप्त की। इसी समय उसने बैक्ट्रिया के ओक्सियार्टिज़ (Oxyartes) की पुत्री रुख़साना (Roxana) से विवाह किया। इसके बाद एमिन्तास (Amyntas) को 3,500 अश्वारोहियों और 10,000 पदातियों के साथ बैक्ट्रिया में छोड़कर 327 ई० पू० के मई मास के प्रारम्भ में कुशान अथवा खावक दर्रे के मार्ग से उसने दस दिन में हिन्दुकुश पर्वत को पार किया और उस उपत्यका में पहुंचा जो आजकल कोह-ए-दामन कहलाती है। यहीं से उसकी भारत पर चढ़ाई शुरू होती है। प्लुटार्क के अनुसार उस समय उसके पास 1,20,000 पदाति और 15,000 अश्वारोही थे।[4] स्मिथ ने इस सेना में यूरोपियनों की संख्या करीब पचास-साठ हजार मानी है।[5] इस सेना का एक सबल पक्ष उसके योग्य सेनापति—हेफाइश्शन, टॉलेमी, नियर्कस, लियोनाट्स् आदि थे जो उसके प्रति पूर्णतः निष्ठावान् थे। लेकिन सिकन्दर की सेना की एक बहुत बड़ी दुर्बलता भी थी—इसके सैनिक अनेक जातियों के थे और अनेक भाषायें बोलते थे। इनमें यूरोप से आए भारी शस्त्रधारी, मकदूनी पदाति और अश्वारोही, यूनानी नगर राज्यों के अतंत-

6884

1. 'महावंस' में सिकन्दरिया नाम का रूप अलसंद दिया गया है।

2. निकाइया की पहिचान स्मिथ ने जलालाबाद से की है और होल्डिख़ ने काबुल के साथ। बेवन को ये दोनों मत अस्वीकार्य हैं। दे०, कै० हि० इ०, पृ० 312, टि० 3; अ० हि० इ०, पृ० 53, टि०।

3. हमने सिकन्दर के अभियान की स्मिथ द्वारा प्रदत्त तिथियां दी हैं।

4. मजूमदार, क्ला० एका०, पृ० 203।

5. डेल्ब्रुक़ तथा बेवन ने इस सेना की कुल संख्या 25,000-30,000 आंकी है और आॅस्पाख़ ने 85,000 (दे०, कै० हि० इ०, पृ० 314, टि० 2)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भोगी सैनिक और बल्कान तथा थ्रेस के पहाड़ी योद्धा भी थे तथा अनेक एशियायी जन भी जैसे ईरान के अश्वारोही, हिन्दुकुश के पर्वतीय प्रदेश के लड़ाके, घोड़ों की पीठ से ही अचूक निशाना लगाने वाले मध्य एशियायी धनुर्धर, फिनीशिया के कुशल नाविक और अपनी प्राचीन सभ्यता में गर्व करने वाले मिस्त्री योद्धा। सिकन्दर को इस सेना में अनुशासन बनाये रखना अवश्य ही दुष्कर कार्य लगा होगा।

हिन्दुकुश के इस ओर आ जाने के बाद सिकन्दर ने 'काकेशस की तलहटी वाले अलक्ज़ान्द्रिया' के अयोग्य गवर्नर को अपदस्थ करके उसके स्थान पर निकानोर (Nikanor) को[1] नियुक्त किया तथा युद्धों में थके अपने कुछ सैनिकों को उस नगर में बसाकर उसे सुरक्षित किया। इसी समय उसने हिन्दुकुश और काबुल नदी के मध्यवर्ती प्रदेश का क्षत्रप टाइरियास्पिज़ (Tyriaspes) को बनाया। अपने पृष्ठप्रदेश और संचार-व्यवस्था को सुरक्षित करने के उपरान्त सिकन्दर निकाइया की ओर गया। वहां से उसने तक्षशिला और अन्य प्रदेशों के राजाओं के पास दूतों द्वारा सन्देश भेजा कि अगर वे उसके आक्रमण से बचना चाहते हैं तो उसका प्रभुत्व मान लें और सन्धि की शर्तें तय करने के लिए उससे आकर मिलें। इस बीच में भारत के राजाओं ने उसका प्रतिरोध करने के लिए कुछ कदम उठाये या नहीं, यह अज्ञात है परन्तु इतना मालूम है कि तक्षशिला-नरेश ने उसके पास उस समय ही एक दूतमण्डल भेजकर, जब वह सोग्डियाना (बुखारा प्रदेश) में था, उसका वशवर्ती होना स्वीकार कर लिया था और अपने शक्तिशाली पड़ोसी पोरस के विरुद्ध उससे सहायता मांगी थी। इतिहास में यह पहला उदाहरण है जब किसी भारतीय राजा ने अपने ही देशवासियों के विरुद्ध विदेशियों की सहायता ली। शशिगुप्त (सिसिकोट्टोस) नाम के भारतीय नरेश ने भी, जो सम्भवतः हिन्दुकुश प्रदेश के किसी लघु पर्वतीय राज्य का स्वामी था और सिकन्दर के विरुद्ध बैक्ट्रिया की सहायता करने गया था, बैक्ट्रिया की पराजय के उपरान्त सिकन्दर का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया था।[2] निकाइया में स्वयं तक्षशिला-नरेश (Taxiles) सिकन्दर से बहुत सी बहुमूल्य भेंटों और 25 हाथियों के साथ आकर मिला। तक्षशिला-नरेश और शशिगुप्त से सिकन्दर को भारत की राजनीतिक स्थिति के विषय में महत्त्वपूर्ण सूचनाएं मिली होंगी।

निकाइया में अथवा वहां से काबुल नदी की ओर कुछ दूर बढ़ जाने पर सिकन्दर ने अपनी सेना को दो भागों में बांट दिया—एक भाग उसके अपने नेतृत्व में कुनार अथवा चित्राल और स्वात नदियों की उपत्यकाओं की विजय के लिए गया और दूसरा मकदूनी सेनापति हेफाइस्शन (Hephaestion) तथा पर्डिक्कस (Perdiccas) के नेतृत्व में काबुल नदी के दक्षिण तट के सहारे-सहारे। हेफाइस्शन का मार्ग अपेक्षया सरलतर था।

1. स्मिथ के अनुसार निकानोर सिकन्दर के घनिष्ठ मित्र पार्मेनियन (Parmenian) का पुत्र था। बेवन को इसमें शक है।

2. इस शशिगुप्त की पहिचान चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ करना, जैसी कि कुछ लेखकों ने की है, गलत है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह सम्भवतः खैबर दर्रे के मार्ग से[1] सीधे पूर्व की ओर बढ़ा। मार्ग में केवल एस्टेकेनोई जाति के राजा हस्ती अथवा अष्टक (Astes) ने, जिसकी राजधानी पुष्कलावती थी, उसका गम्भीर प्रतिरोध किया परन्तु तीस दिन के घेरे के उपरान्त पुष्कलावती का पतन हो गया और स्वयं हस्ती मृत्यु को प्राप्त हुआ (अगस्त, 327)। यूनानियों ने विजय प्राप्त करके इस राज्य का स्वामी संग्योस् (Sangaios=संजय ?) को, जो कुछ समय पूर्व हस्ती से झगड़कर तक्षशिला-नरेश से जा मिला था, बना दिया। सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर पहुंचने के बाद हेफाइस्शन ने इस विशाल नदी को पार करने के लिए नावों का एक ऐसा पुल बनाना शुरू किया जिसे जरूरत पड़ने पर तोड़ कर अन्यत्र ले जाया जा सके। इस यात्रा में तक्षशिला-नरेश भी हेफाइस्शन के साथ था।

सिकन्दर की सेना का दूसरा भाग स्वयं उसके नेतृत्वमें काबुल नदी के उत्तर में कुनार, पंजकोर और स्वात की घाटियों को विजय के लिए गया जिससे यूनानियों के मुख्य मार्ग का बायां पक्ष सुरक्षित रहे।[2] इस अभियान का बहुत विस्तार से अध्ययन सम्भव नहीं है परन्तु इतना निश्चित है कि सिकन्दर का सामना सर्वप्रथम कुनार की उपत्यका में बसे एस्पेसियनों अर्थात् आश्वायनों ने किया। उनके साथ स्थल पर हुए संघर्ष में सिकन्दर के कन्धे में घाव लग गया जिसके परिणामस्वरूप विजय पाने के बाद उस नगर के सब निवासियों को, सिवाए उनके जो भाग गये थे, मार डाला गया। इसके बाद उसने अन्दक नगर को जीता और वहां क्रेटेरस (Craterus) को, जो उसके प्रति 'सर्वाधिक निष्ठावान' था, शेष भूभाग जीतने को छोड़ा और स्वयं एस्पेसियनों की राजधानी को, जो यूएस्प्ल नदी के समीप थी, जीतने चला गया। एस्पेसियन उसके आगमन की खबर भाग कर पहाड़ों में जा छिपे, यद्यपि सिकन्दर ने उनमें बहुतों का पीछाकर उन्हें मार डाला। इसके बाद सिकन्दर बाजौर उपत्यका की ओर बढ़ा और एस्पेसियनों के एरिगएम नगर पर, जो उसके निवासियों के भाग जाने के कारण खाली पड़ा था, अधिकार कर लिया। वहां क्रेटेरस उससे आ मिला जिसे उसने उस नगर को सुरक्षित करने और पुनः बसाने का काम सौंपा। इसके बाद उसका एस्पेसियनों से दूसरा महत्त्वपूर्ण युद्ध हुआ जिसमें 40,000 से ज्यादा एस्पेसियन पकड़े गये और विशाल संख्या में मारे गये। उनके 2 लाख 30 हजार पशु भी सिकन्दर को मिले। इनमें से चुने हुए पशुओं को उसने मकदूनिया भेज दिया। यह तथ्य उसकी संचार-व्यवस्था की उत्तमता का प्रमाण है।

कर्टियस के अनुसार एस्पेसियनों पर विजय पाने के उपरान्त सिकन्दर ने न्यसा राज्य पर आक्रमण किया जबकि एरियन आदि कुछ क्लासिकल लेखकों ने न्यसा-विजय को एस्सेकेनोई को जीतने के उपरान्त रखा है। न्यसा नगर पर सिकन्दर का प्रथम आक्र-

1. स्मिथ के अनुसार यह सेना खैबर दर्रे से नहीं आई थी (अ० हि० इ०, पृ० 53) जबकि होल्डिख़ (गेट्स् ऑव इण्डिया, पृ० 94) का कहना है कि उसने खैबर दर्रे का मार्ग ही पकड़ा था।

2. होल्डिख़ के अनुसार इस प्रकार की सावधानी दक्षिण में (दाहिनी तरफ) इसलिए आवश्यक नहीं थी क्योंकि दक्षिण की पहाड़ियों की बनावट ऐसी है कि उनमें बहुत बड़ी सेनाएं एकत्र नहीं हो सकतीं (गेट्स् ऑव इण्डिया, पृ० 95)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मण उसको सुरक्षित करने वाली नदी की गहराई के कारण असफल हो गया और दूसरे की आवश्यकता नहीं पड़ी क्योंकि न्यसा वालों ने उसके पूर्व ही यूनानियों से अपना रक्त सम्बन्ध बताते हुए सिकन्दर की प्रभुता मान ली और अपने कानूनों और शासन-व्यवस्था को यथावत् रहने देने की प्रार्थना की। सिकन्दर ने उनकी प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर लिया, मेरोस् की यात्रा करके और वहां आनन्द मनाकर अपने थके सैनिकों को प्रसन्न किया और न्यसा से 300 अश्वारोही प्राप्त किए जो उसके साथ अक्तूबर 326 ई० पू० तक रहे। उसने न्यसा को काबुल की निचली उपत्यका के साथ मिलाकर एक नया प्रान्त बनाया जिसका क्षत्रप निकानोर को नियुक्त किया गया। बेवन ने इस प्रान्त को अन्य नाम के अभाव में 'सिन्धु के पश्चिम का भारत' नाम दिया है।[1]

न्यसा राज्य के बाद गौरी (पंजकोर) नदी की घाटी में स्थित गुरियन राज को जीत कर सिकन्दर एस्सेकेनोई जाति के मस्सग नगर पहुंचा जो 'उस क्षेत्र का विशालतम नगर' था। इसका घेरा चार दिन तक चला जिसमें सिकन्दर को पैर में घाव लग गया परन्तु अन्त में विविध सामरिक यन्त्रों की सहायता से नगर को जीत लिया गया। नगर की रक्षा करने वालों में 7,000 वेतनभोगी सैनिक भी थे जिन्हें इस शर्त पर जीवनदान दिया गया कि वे सिकन्दर की सेना में काम करेंगे। वे यूनानी सेना से कुछ मील दूर एक पहाड़ी पर जाकर ठहरे लेकिन वहां उन्होंने रात होने पर भाग जाने का निश्चय किया जिससे वे स्वदेश के विरुद्ध विदेशियों को सहायता देने के घृणित काम से बच सकें। इसका पता सिकन्दर को लग गया और उसने रात में उनपर हमला करके सबको मार डाला। इन वीर सैनिकों ने एक खोखला वृत्त बनाकर अपनी स्त्रियों को बीच में रखा और सिकन्दर का डटकर सामना किया और जब तक उनमें एक भी जीता रहा हथियार नहीं डाले। इस लड़ाई में उनकी स्त्रियां भी जी तोड़ कर लड़ीं। डायोडोरस और प्लुटार्क के अनुसार सिकन्दर ने उनके साथ पृथक्‌रूपेण सन्धि की थी लेकिन बाद में उन्हें धोखे से मार डाला जो उसकी 'सैनिक कीर्त्ति पर एक भद्दा धब्बा है'।[2] स्वयं मस्सग-नरेश युद्ध में मारा गया और उसकी माता पुत्री और रानी बन्दी बना ली गईं। कर्टियस के अनुसार (8.10) विधवा रानी क्लियोफिस (Cleophis = कृपा ?) और उसके शिशुपुत्र के साथ सिकन्दर ने रानी के 'रूप के कारण' कृपा दिखाई और बाद में उसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम अलक्ज़ान्दर रखा गया 'चाहे उसका पिता कोई भी क्यों न रहा हो'।[3] जस्टिन के अनुसार (12.7) भारतीय जन इस रानी को 'वेश्या रानी' कहते थे। बाद में उसका पुत्र, 'जिसे वह अलक्ज़ान्दर कहती थी' 'भारतीयों का राजा' बना।

मस्सग नगर को जीतने के बाद सिकन्दर ने कोइनोस् (Koinos) को ओरा अथवा नोरा (Ora or Nora) नगर जीतने भेजा और अन्य तीन सेनापतियों को बजिरा (Bazira) स्थल अधिकृत करने। स्टीन ने इनकी पहिचान स्वात के बाएं तट पर स्थित

1. कै० हि० इ०, पृ० 318।
2. अ० हि० इ० (पृ० 59) में स्मिथ ने इस हत्याकाण्ड को उचित बताया है।
3. दे०, अ० हि० इ०, पृ० 58, टि० 1; कै० हि० इ०, पृ० 316, टि० 6।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधुनिक ऊडेग्राम तथा उससे दस मील दूर स्थित बीरकोट से की है। इनके नागरिक ओर्नोस नामक पर्वतीय दुर्ग में शरण लेने भाग गए। ओरा के पतन के पूर्व अभिसार-नरेश ने उसे सहायता देने का प्रयास किया परन्तु सिकन्दर की जागरुकता के कारण इसके पूर्व ही नगर का पतन हो गया।

जिस समय सिकन्दर एस्सेकेनोस् के राज्य को जीतने में लगा था, हेफाइस्शन और पर्डिक्कस ने काबुल नदी के सहारे-सहारे सिन्धु तक का प्रदेश जीत लिया था और मार्ग में ओरोबातिस (Orobatis) नगर को जीतकर एक सुरक्षित सैनिक-केन्द्र बना दिया था। अब सिकन्दर ने स्वयं पुष्कलावती की यात्रा की और वहां फिलिप के नेतृत्व में यूनानी सैनिकों की चौकी स्थापित की। इसके बाद उसने पुष्कलावती और सिन्धु के मध्य कुछ छोटे-छोटे नगरों को जीता जिसमें उसे कोफेयस (Cophaeus) तथा अस्सा-गेट्स् (Assagets) नामक भारतीय राजाओं ने मदद दी। ऑस्पाख़ का सुझाव है कि ये राजा कोफेन (=काबुल) की घाटी और एस्सेकोनोई जाति के वे नरेश रहे होंगे जिन्होंने क्रमशः पुष्कलावती में हस्ती के और मस्सग में एस्सेकोनेस् के बाद शासन किया होगा।[1] लेकिन नीलकण्ठ शास्त्री ने अस्सागेट्स् का संस्कृत रूप 'अश्वजित्' सुझाया है।[2]

सिकन्दर का अगला लक्ष्य सिन्धु नदी के तट तक पहुंचना था, परन्तु इसके पूर्व एस्सेकेनोई के प्रसिद्ध दुर्ग ओर्नोस को जीतना भी आवश्यक था। ओर्नोस को उस समय एक अजेय दुर्ग माना जाता था और यूनानियों के अनुसार स्वयं हेराक्लिज़ भी उसे नहीं जीत पाया था। एरियन के अनुसार यह एक 660 फुट ऊंचा पर्वत था जिसका घेरा 22 मील था। डायोडोरस ने इसका घेरा इससे आधा बताया है और ऊंचाई 9,600 फुट। इसकी चोटी पर पहुंचने का केवल एक रास्ता था। इस चोटी पर बिल्कुल सीधी कटी चट्टान का एक प्राकृतिक दुर्ग था और पेय जल तथा कृषियोग्य भूमि उपलब्ध थी। इसके अतिरिक्त यह स्थल अन्य अनेक प्राकृतिक बाधाओं से सुरक्षित था। डायोडोरस के अनुसार उसके दक्षिण में सिन्धु नदी गुजरती थी जो उस स्थल पर बहुत गहरी थी। यूनानी परम्परानुसार इसकी इन बाधाओं के कारण इसे स्वयं हर्क्युलिस भी नहीं जीत पाया था। इसीलिए सिकन्दर द्वारा इसकी विजय को यूनानियों ने बहुत महत्त्वपूर्ण माना था। इस अभियान में सिकन्दर को टॉलेमी से बहुत सहायता मिली जिसने कुछ भारतीयों की सहायता से इसके समीप स्थित एक पहाड़ी पर विजय प्राप्त करके इसकी विजय-प्रक्रिया प्रारम्भ की थी। इस दुर्ग पर विजय (दिसम्बर, 327) प्राप्त करने के बाद सिकन्दर ने वहां एक सैन्यदल नियुक्त किया जिसका नेतृत्व शशिगुप्त को सौंपा गया। इसके बाद सिकन्दर ने उन भगोड़ों का पीछा किया जो एरियन के अनुसार एस्सेकेनोस् के भाई एफ्रिकिज़ के नेतृत्व में अभिसार राज्य जा रहे थे। इस दौरान उसने डिर्टा (Dyrta) स्थल को, जिसकी पहिचान अभी तक नहीं हो सकी है, जीत लिया और एफ्रिकिज़ के 13 हाथी पकड़ लिए यद्यपि अधिकांश भगोड़े सिन्धु पार करके अभिसार राज्य पहुंचने

1. कै० हि० इ०, पृ० 319, टि०।
2. ए० न० मौ०, पृ० 51।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में सफल हो गए।

डिर्टा से वनों को पार करता हुआ सिकन्दर अपनी सेना सहित उस स्थल पर पहुंचा (जनवरी, 326) जहां उसे हेफाइस्शन के साथ पुल द्वारा सिन्धु नदी पार करनी थी। पहले इस स्थल की पहिचान अटक से जहां सिन्धु की धारा कम चौड़ी है, की जाती थी परन्तु एम० फूशे के अन्वेषण के बाद यह सिद्ध सा माना जाता है कि यह पुल ओहिन्द स्थल के पास जो अटक से 16 मील उत्तर की ओर है, बनाया गया होगा। यहां सिकन्दर ने देवताओं को बलि और सेना को एक माह का आराम दिया तथा उसके मनोरंजन के लिए खेलकूद प्रतियोगितायें आयोजित कीं। एरियन के अनुसार इस स्थल पर ही उसके पास तक्षशिला से दूतमण्डल 700 अश्वारोहियों, 30 हाथियों, 3000 वृषभों, 10,000 भेड़ों तथा 200 टेलेण्ट चांदी की भेंट के साथ आकर मिला। कर्टियस और डायोडोरस के अनुसार उस समय तक आम्भी के पिता टेक्सिलिज़ की मृत्यु हो गई थी परन्तु आम्भी ने अपना अभिषेक नहीं कराया था जिससे वह सिकन्दर के हाथों, जिसे दूत के कथनानुसार 'उसने अपना राज्य सौंप दिया था,' अपना अभिषेक कराने का गौरव प्राप्त कर सके।[1] यूनानियों के लिए इस उत्साहवर्धक स्थिति में सिकन्दर ने फरवरी या मार्च 326 ई० पू० में एक दिन 'शुभ मुहूर्त' में सिन्धु नदी पार की।[2]

सिन्धु से ब्यास तक

सिन्धु नदी पार करके सिकन्दर अपने मित्र आम्भी की राजधानी तक्षशिला की तरफ बढ़ा। जिस समय वह नगर से चार-पांच मील दूर था, एक विचित्र घटना घटी। आम्भी उसका सामना करने के लिए अपनी सेना के साथ, जिसमें कर्टियस के अनुसार 56 हाथी भी थे, आया जिससे सिकन्दर को यह भ्रम हो गया कि आम्भी ने उसके साथ धोखा किया है। यह सोचकर वह अपनी सेना को युद्ध के लिए सन्नद्ध करने लगा, लेकिन तभी यूनानियों को भ्रम में पड़ा देख कर आम्भी ने अपने कुछ साथियों के साथ आकर निवेदन किया कि वह सैन्य-प्रदर्शन मेहमानों के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए था। इसके बाद उसने सिकन्दर का तक्षशिला में राजकीय सत्कार किया, उसकी सेना के लिए भोजन की व्यवस्था की और यूनान-नरेश से अपना अभिषेक कराया। कर्टियस के अनुसार चौथे दिन उसने सिकन्दर को 80 टेलेण्ट रजत सिक्के और सिकन्दर और उसके साथियों के लिए सुवर्ण-मुकुट भेंट किए, लेकिन सिकन्दर ने इस भेंट को न केवल लौटा दिया वरन् आम्भी को अपनी सम्पत्ति में से 1000 टेलेण्ट रजत तथा रजत और सुवर्ण के पात्र एवं बहुमूल्य वस्त्रादि भेंट में दिए। उसकी इस उदारता से उसके कुछ मकदूनी

1. एरियन के अनुसार यह दूत-मण्डल टेक्सिलिज़ ने भेजा था (क्ला० एका०, पृ० 23)। डायोडोरस के अनुसार राज्याभिषेक के बाद आम्भी ने अपना नाम टेक्सिलिज़ रख लिया था। (वही, पृ० 166)।

2. यह तिथि स्ट्रेबो के साक्ष्य के आधार पर स्मिथ ने निश्चित की है (अ० हि० इ०, पृ० 64, टि० 2) और सामान्यतः स्वीकृत की जाती है। फिर भी दे०, कै० हि० इ०, पृ० 324, टि० 3, 4।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेनापति अवश्य ही असन्तुष्ट हुए परन्तु इससे आम्भी की श्रद्धा उसमें और गहरी हो गई और यूनानियों को तक्षशिला से 5,000 सैनिक भी मिल गये।[1]

तक्षशिला में सिकन्दर ने एक दरबार आयोजित किया। उसी समय उससे अभिसार-नरेश का दूत-मण्डल, जिसका अध्यक्ष अभिसार-नरेश का भाई था, आकर मिला और उसे विश्वास दिलाया कि उसका स्वामी सिकन्दर का प्रभुत्व मानने के लिए प्रस्तुत है। लेकिन डायोडोरस (17.87) के अनुसार अभिसार-नरेश अन्दर ही अन्दर पुरु (=पोरस) की सहायता करने का इरादा रखता था। स्वयं पुरु ने सिकन्दर के सन्देश के उत्तर में कहलाया कि वह सिकन्दर से मिलने अवश्य आएगा परन्तु युद्ध के मैदान में अपनी सेना के साथ। इस उत्तर के बाद सिकन्दर के लिए पोरस का सामना करने की तैयारी करना आवश्यक हो गया। उसने कोइनोस को सिन्धु पर बने पुल को तोड़कर झेलम तक लाने के लिए नियुक्त किया, मचातुश (Machatus) के पुत्र फिलिप को तक्षशिला में यूनानी सैन्यदल का अध्यक्ष और रेजीडेण्ट नियुक्त किया और स्वयं अपनी सेना के साथ दक्षिण-पूर्व दिशा में झेलम की ओर बढ़ा। इसी समय उसके पास कन्धार में असफल विद्रोह करने वाला क्षत्रप और उसे सहायता देने वाला एक भारतीय नरेश सेमेक्सस (Samaxus) जंजीर में बांध कर लाये गये। उनके साथ उनके 30 हाथी भी सिकन्दर के हाथ लगे (कर्टियस, 8.13)। मार्ग में उसने पोरस के भतीजे स्पिटासिज़ (Spitaces) को परास्त किया जो भाग कर पोरस के पास चला गया।

लगभग 100 मील या इससे कुछ ज्यादा लम्बा सफर करने के बाद सिकन्दर झेलम के तट पर पहुंचा (मई, 326) जिसके दूसरी तरफ पोरस ने अपनी सेना एकत्र की हुई थी। जिस स्थल पर सिकन्दर ने अपना पड़ाव डाला उसको एलफिन्स्टन और कनिंघम आदि कुछ विद्वानों ने जलालपुर के समीप माना है और एबट और स्मिथ आदि कुछ लेखकों ने झेलम नामक स्थल के समीप।[2] इसी प्रकार इस युद्ध की सही तिथि के विषय में भी कुछ मतभेद है जिसका कारण प्राचीन लेखकों द्वारा प्रदत्त सूचनाओं का अंशतः अस्पष्ट और अंशतः परस्पर विरुद्ध होना है। एक मत के अनुसार यह युद्ध 326 ई० पू० के जून माह के अन्त या जुलाई के प्रारम्भ में लड़ा गया था और दूसरे मत के अनुसार मई के मध्य।[3]

झेलम के तट पर पहुंचते ही सिकन्दर को यह स्पष्ट हो गया कि पोरस की सजगता और सबलता के कारण वह नदी को आसानी से पार नहीं कर पाएगा। इसलिए, एरियन के कथनानुसार, उसने 'चोरी से' नदी पार करने का निश्चय किया। इसके लिए पहले उसने शत्रु को चकमा देने के लिए अनेक बार नदी पार करने का दिखावा किया और फिर इस प्रकार रसद जुटाना शुरू किया मानों उसे सर्दियों तक वहीं ठहरना हो। उसने

1. तक्षशिला में सिकन्दर ने कुछ भारतीय साधुओं से मिलने का प्रयास किया था और उनमें एक को, जिसका नाम कलानोस (=कल्याण) था, अपने साथ ले गया था।
2. विवेचन के लिए दे०, स्मिथ, अ० हि० इ०, पृ० 81 अ०।
3. दे०, अ० हि० इ०, पृ० 89 अ०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी सेना में इस प्रकार चहल-पहल रखी जिससे पुरु को अनुमान ही नहीं हो पाया कि वह युद्ध की असल तैयारी कब करता है। अन्त में क्रेटेरस के नेतृत्व में एक सबल सैन्य दल अपने पड़ाव में छोड़कर (जिसमें तक्षशिला के 5,000 सैनिक भी थे) और उन्हें निश्चित आदेश देकर तूफान तथा वर्षा वाली एक रात में अपने पड़ाव से 16-17 मील उत्तर की ओर[1] एक स्थल पर, जो नदी में एक मोड़ आ जाने से पोरस के शिखर से दिखाई नहीं देता था और जहां नदी के बीच एक लघु टापू था, नदी को पार कर लिया। इसकी सूचना मिलते ही[2] पोरस ने, टॉलेमी द्वारा प्रदत्त सूचनानुसार, अपने पुत्र को 2,000 अश्वारोहियों और 120 रथों के साथ[3] यूनानियों को रोकने के लिए भेजा लेकिन यह लघु सेना सिकन्दर का सामना नहीं कर सकी और 400 सैनिक सहित राजकुमार युद्ध में काम आया। एरियन के कथनानुसार इस युद्ध में सिकन्दर घायल हो गया और उसका घोड़ा बुकाफेलोस मारा गया।

इसके बाद पोरस और सिकन्दर का खुले मैदान में (स्मिथ के अनुसार करीं नामक स्थल पर) युद्ध हुआ। एरियन के अनुसार उस समय पोरस की सेना में 30,000 पदाति, 4,000 अश्वारोही, 300 रथ और 200 हाथी थे। यह सेना उस लघु सेना के अतिरिक्त थी जो उसने सिकन्दर को रोकने के लिए भेजी थी। एक लघु सैन्य दल उसने अपने मूल पड़ाव में भी छोड़ा था। अपनी सेना में उसने हाथियों को आगे खड़ा किया। उनकी बगल में और पीछे लम्बे-लम्बे धनुष धारण करने वाले पदाति थे जिनकी रक्षा के लिए बगल में रथ और अश्वारोही दल आगे-पीछे खड़े किए गये थे। यह सैन्य-विन्यास उस व्यूह-रचना से मेल खाता है जिसे कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में 'विजय' नाम दिया है (हस्तिनामुरस्यं रथानां कक्षावश्वानां पक्षाविति मध्यभेदी)। सिकन्दर की सूचनानुसार अभिसार-नरेश पुरु की सहायता के लिए शीघ्र ही पहुंचने वाला था परन्तु तब तक आ नहीं पाया था।[4] सिकन्दर की आक्रमक सेना, जिसमें अनेक जातियों के और अनेक भाषाएं बोलने वाले सैनिक थे, कितनी बड़ी थी इस विषय में मतभेद है। जिस समय सिकन्दर भारत आया था उसकी सेना में प्लुटार्क के अनुसार, 120,000 पदाति और 15,000 अश्वारोही थे। 5,000 सैनिक उसे आम्भी से मिले थे—कुछ अन्य फुटकर दलों को छोड़कर जो उसे न्यसा आदि नगरों से प्राप्त हुए। एरियन के अनुसार जिस समय सिकन्दर ने झेलम नदी पार की उसके पास 5,000 अश्वारोही और 6,000

1. यह सामान्यतः स्वीकृत धारणा है। लेकिन कुछ विद्वानों का विचार है कि सिकन्दर ने दक्षिण की ओर जाकर नदी पार की थी। दे०, कै० हि० इ०, पृ० 323, टि० 5।

2. कर्टियस के अनुसार यह सूचना मिलने पर पहले पोरस को यह भ्रम हो गया था कि यह उसके मित्र अभिसार नरेश की सेना है।

3. कर्टियस ने इस सेना में 100 रथ और 4,000 पदाति बताए हैं और इसका सेनापति पोरस के भाई हेजिज (Hages) को।

4. अलमाकिन के 'विश्व-इतिहास' के अनुसार पोरस ने पड़ोसी राजाओं से पत्र लिखकर सहायता मांगी थी और वे उसकी सहायतार्थ सेना लेकर आए थे (प्रकाश, स्टडीज, पृ० 46)। लेकिन इस अनुश्रुति में विश्वास नहीं किया जाता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पैदल थे। 17,000 पदाति और 1,800 अश्वारोही उसने क्रेटेरस के पास छोड़े थे तथा 30,000 पदाति और 2,000 अश्वारोही मेलियेगर (Meleagar) के नेतृत्व में शिविर और उस स्थल के मध्य जहां उसने झेलम नदी पार की। इस प्रकार उसके पास कुल मिलाकर 53,000 हजार पदाति और 8,800 अश्वारोही थे।[1] लेकिन टार्न का अनुमान है कि इस सेना में लड़ाकू सैनिक 35,000 से अधिक नहीं थे—शेष व्यक्ति व्यापारी, वैज्ञानिक, यूनानी सैनिकों की एशियायी पत्नियां और बच्चे आदि थे। जो भी हो, इस विषय में सब साक्ष्य सहमत हैं कि सिकन्दर की अश्वारोही सेना पुरु की अश्वारोही सेना से कहीं अधिक थी।

इस युद्ध में स्थिति प्रारम्भ से ही पोरस के प्रतिकूल रही। क्योंकि पिछली रात में वर्षा हो जाने के कारण मैदान में फिसलन हो गई थी इसलिए पोरस के रथ कीचड़ में धंसने लगे और उसके धनुर्धरों को अपने लम्बे धनुष जमीन पर टिकाना मुश्किल हो गया। सिकन्दर ने युद्ध का प्रारम्भ मध्य एशिया के एक सहस्र धनुर्धर अश्वारोहियों और चुने हुए मकदूनी घुड़सवारों की सहायता से पोरस के वाम पक्ष पर आक्रमण करके किया।[2] इससे पोरस की सेना में जो अव्यवस्था उत्पन्न हुई उसे बढ़ाने के लिए सिकन्दर बाकी सेना लेकर टूट पड़ा। इस गड़बड़ी को दूर करने के लिए पोरस ने अपने दाहिने पक्ष के अश्वारोहियों को बुलाया परन्तु सिकन्दर ने इसका पहले से ही अनुमान करके उसको रोकने के लिए कोइनोस को नियुक्त कर रखा था। भारतीय सैनिक इस दोहरे मोर्चे को न सम्भाल सके और हाथियों की ओट में छिपने की कोशिश करने लगे। इसके बाद पोरस ने हाथियों को आगे बढ़ाया जिससे कुछ समय के लिए यूनानी सेना को कठिनाई हुई परन्तु शीघ्र ही स्थिति पर काबू पा लिया गया और सिकन्दर के आदेश से हाथियों को घेर कर घायल किया जाने लगा और उनके महावतों को मारने की कोशिश की गई। इसपर हाथी बिगड़ खड़े हुए और शत्रु तथा मित्र सब पर समान रूप से हमला करने लगे। क्योंकि यूनानी अपेक्षया कुछ खुले मैदान में थे इसलिए इससे उनकी हानि कम हुई, भारतीयों की ज्यादा। सिकन्दर ने शत्रु को हतोत्साह और स्थिति को अपने पक्ष में देख कर पूर्ण शक्ति से हमला बोल दिया जिसके परिणामस्वरूप भारतीय सेना में भगदड़ मच गई। इसी समय क्रेटेरस ताजी सेना के साथ नदी पार करके आ गया और भारतीयों का भारी संख्या में संहार करके पूर्ण विजय प्राप्त कर ली गई। (जुलाई, 326 का प्रारम्भ)।

इस युद्ध में भारतीय सैनिक भारी संख्या में हताहत हुए, इसमें सन्देह नहीं। पोरस के दो पुत्र, स्पिटासिज़ (जो उसका भतीजा कहा गया है) और सब भारतीय सेनापति मृत्यु को प्राप्त हुए। उनके हाथी या तो मारे गए अथवा पकड़ लिए गए। लेकिन एरियन का यह कथन कि मृत भारतीय पदाति सैनिकों की संख्या 20,000 से और अश्वारोहियों

1. दे०, कै० हि० इ०, पृ० 325, टि० 2.।

2. जस्टिन के अनुसार आक्रमण पहले पोरस ने किया। परन्तु अन्य सभी क्लासिकल लेखकों ने सिकन्दर को यह श्रेय दिया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की 3,000 से कुछ ही कम थी जबकि सिकन्दर के केवल 80 पदाति और कुल मिलाकर 230 अश्वारोही मारे गए, स्पष्टतः अतिरंजित, यूनानियों के प्रति पक्षपातपूर्ण और यूरोपियनों के युद्धकौशल को श्रेष्ठतर सिद्ध करने के लिए किया गया झूठा प्रचार है।[1] झेलम के युद्ध के बाद यूनानी सैनिकों का भारत में युद्ध करने से अनिच्छा प्रकट करना पोरस की सेना द्वारा दिखाई गई बहादुरी का संकेत है। स्वयं पोरस, जो हाथी पर सवार था, दारयवहुष के समान रणक्षेत्र छोड़कर नहीं भागा वरन् मनु के 'संग्रामेष्व निर्वातित्वं' आदर्श (मनुस्मृति, 7.88) के अनुसार अन्तिम समय तक डटा रहा। वह वापिस लौटने को तभी उद्यत हुआ जब उसकी पराजय निश्चित हो गई और वह स्वयं कन्धे पर लगे गम्भीर घाव (अथवा नौ घावों) के कारण अतिशय दुर्बल हो गया। सिकन्दर उसकी वीरता से बहुत प्रभावित हुआ। उसने आम्भी को उसके पास भेजा लेकिन अपने शत्रु को देखते ही पोरस ने अपनी दुर्बल अवस्था में भी वार किया और आम्भी ने भाग कर अपनी जान बचाई। इसके बाद सिकन्दर ने पोरस के 'पुराने मित्र' मेरोस् (Meroes) को भेजा। मेरोस् के समझाने पर पोरस सिकन्दर के पास आया और एक दुभाषिए की सहायता से यह पूछे जाने पर कि उसके साथ कैसा वर्ताव किया जाए उसने स्वाभिमान के साथ उत्तर दिया : "जैसा राजा करते हैं।"[2]

जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि पोरस की पराजय गौरवपूर्ण पराजय थी। निश्चित रूप से वह अपने समय का एक अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी, शक्तिशाली परन्तु स्वाभिमानी नरेश था। सिकन्दर के भारतीय रंगमञ्च पर अवतीर्ण होने के कुछ ही पहिले उसने अपने आक्रमणों से ग्लौगेनीकाई तथा मालव-क्षुद्रकों को आतंकित किया था। तक्षशिला-नरेश तथा कनीयस् पुरु उसके प्रताप से शंकित रहते थे तथा अभिसार-नरेश उसके प्रति मैत्री को व्यावहारिक रूप देते समय संकोच करता था। इस प्रकार चारों ओर से शत्रुओं और प्रतिस्पर्धियों से घिरा होने के बावजूद उसने अपने स्वाभिमानपूर्ण अस्तित्व को बनाए रखा और साथ ही विस्तारवादी नीति का भी अनुसरण किया। सिकन्दर ने भी पोरस को न केवल उसका राज्य लौटा दिया वरन् उसमें उसकी पूर्वी सीमा पर स्थित बहुत से प्रदेश भी मिला दिए। इस प्रकार पोरस ने अपने प्रतिद्वन्द्वी आम्भी के साथ सिकन्दर के विश्व-साम्राज्य में स्थान पाया।[3] शायद सिकन्दर का अनुमान था कि ये दोनों एक दूसरे की महत्त्वाकांक्षा पर नियन्त्रण सिद्ध होंगे। सिकन्दर ने पोरस के ऊपर प्राप्त विजय की स्मृति में सिक्के भी ढाले प्रतीत होते हैं जिनमें पुरोभाग पर उसे घोड़े पर आरूढ़ होकर हाथी पर सवार योद्धा (सम्भवतः पोरस) का पीछा करते दिखाया गया

1. डायोडोरस के अनुसार सिकन्दर के 280 अश्वारोही तथा 700 पदाति मारे गये थे।

2. सूडो-केलिस्थेनिज के इथियोपियायी रूपान्तर तथा फिरदौसी के 'शाहनामा' के अनुसार पोरस की सेना ने सिकन्दर की सेना को खदेड़ दिया था। इस पर सिकन्दर ने युद्ध-विराम और पोरस के साथ द्वन्द्व युद्ध की याचना की जिसमें पोरस मारा गया (प्रकाश, पूर्वो०, पृ० 60)।

3. रोमक सीनेटर सिसेरो और सेनेका ने भी सिकन्दर के पोरस के साथ व्यवहार की प्रशंसा की थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है और उल्टी तरफ सिकन्दर को ही ईरानी शिरस्त्राण और वज्र धारण किए हुए। इन सिक्कों के दो नमूने उपलब्ध हैं। उसने इस विजय की स्मृति में दो नगर भी बसाए थे। युद्धक्षेत्र वाले स्थल पर निकाइया (अर्थात् विजयनगर=आधुनिक सुखचैनपुर ?) नाम का नगर और उस स्थल पर जहां उसने झेलम नदी पार की थी बुकेफाला नगर (Boucephala=आधुनिक झेलम नगर) क्योंकि उस स्थल पर उसके प्रिय अश्व बुकेफालोस् (Boucephalos) की मृत्यु हो गई थी।

झेलम के युद्ध के बाद देवताओं को बलि देकर और सैनिकों का क्रीड़ा-प्रतियोगिताओं द्वारा मनोरंजन करके सिकन्दर ने क्रेटेरस को नगरों की सुरक्षा और संचार-व्यवस्था की देख-भाल के लिए छोड़ कर स्वयं चिनाब के पश्चिमी तट पर बसी ग्लौगेनीकाई जाति पर आक्रमण किया और उसके आत्मसमर्पण कर देने पर उसके राज्य को पोरस के राज्य में मिला दिया। इसके पूर्व ग्लौगेनीकाई जाति को पोरस प्रयास करके भी अपने अधीन नहीं कर पाया था। यहां से तक्षशिला-नरेश अपने राज्य को लौट गया। इसी समय अभिसार-नरेश ने, जो पोरस की मदद के लिए नहीं आ पाया था, अपने भाई को 40 हाथियों और धनादि की भेंट के साथ भेजा और अपने आपको और अपने राज्य को सिकन्दर को समर्पित करने की घोषणा की। लेकिन सिकन्दर ने मांग की कि वह स्वयं आकर आत्मसमर्पण करे वरना उसे अपनी सेना लेकर उसे 'खोजने' जाना पड़ेगा। कनीयस् पोरस के, जो वृद्ध पोरस का भतीजा परन्तु शत्रु था, पास से भी एक दूत-मण्डल सिकन्दर से आकर मिला और यूनान-नरेश से अनुग्रह की याचना की। कुछ अन्य लघु जातियों ने भी ऐसा ही किया। लगभग इसी समय उसको ईरान से थ्रेसवासी सैनिकों के एक ताजे सैन्यदल के आने से भी बहुत राहत मिली। लेकिन एक अन्य सूचना उतनी सुखद नहीं थी। एरियन (5.20.7) के कथनानुसार ओर्नोस् के भारतीय दुर्गरक्षक शशिगुप्त ने उसके पास 'अर्जेण्ट' सूचना भेजी कि एस्सेकोनोई जाति ने विद्रोह कर दिया है और अपने यूनानी गवर्नर निकानोर को मार डाला है। सिकन्दर ने हिन्दुकुश-काबुल प्रदेश के क्षत्रप टाइरियस्पिज़ (Tyriaspes) तथा तक्षशिला के क्षत्रप फिलिप को कुमुक भेजकर इस विद्रोह को दबाने का आदेश दिया।

सिकन्दर ने जिस अगली नदी को पार किया वह चिनाब थी। लेकिन इसके पूर्व उसने कोइनोस को व्यवस्था करने के लिए पीछे छोड़ा और पोरस को ताजे सैनिक तथा हाथी लाने के लिए वापिस भेज दिया। इसके बाद वह शीघ्रता से रावी की तरफ बढ़ा और चिनाब से लेकर रावी तक विस्तृत प्रदेश को जीतने में सफल हो गया। इसे भी उसने ज्येष्ठ पोरस के राज्य में मिला दिया। लेकिन तभी उसे सूचना मिली कि उसके द्वारा ज्येष्ठ पुरु के साथ किए गए सम्मानपूर्ण व्यवहार से असन्तुष्ट होकर कनीयस् पुरु अपने कुछ साथियों सहित गेण्डेरेडाई (गंगा की घाटी) की ओर चला गया है (डायोडोरस 17.91)। रावी के पास पहुंचने पर सिकन्दर हेफाइस्शन को एक सैन्य दल के साथ कनीयस् पोरस के राज्य और निकटवर्ती जातियों को जीतने तथा चिनाब के तट पर एक नगर बसाने (अथवा एक पुराने नगर को प्राचीर से सुरक्षित करने) के लिए भेज

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिया। ये प्रदेश भी वृद्ध पोरस के राज्य में मिला दिये गए।

रावी पार करने के बाद दो दिन के अन्दर ही एड्रेस्टाई (अरिष्ट जाति ?) के नगर प्रिम्प्रस ने सिकन्दर के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया, लेकिन कथइयोई (=कठ) जाति ने, जिसने सिकन्दर के आक्रमण के कुछ ही पहले वृद्ध पोरस और अभिसार-नरेश के संयुक्त आक्रमण को विफल कर दिया था, अपनी दो लघु सहायक जातियों के साथ[1] अपने नगर संगल के बाहर एक पहाड़ी की तलहटी में रथों की तिहरी पंक्ति का शकट-व्यूह बनाकर डट कर मुकाबला किया। अश्वारोहियों के असफल हो जाने पर सिकन्दर ने पदातियों से सफल आक्रमण किया और कठों द्वारा नगर में शरण ले लेने पर उसका घेरा डाल दिया। इसी समय पोरस 5,000 भारतीय सैनिकों और कुछ हाथियों के साथ उससे आ मिला। भयंकर युद्ध के उपरान्त नगर का पतन हुआ। इस युद्ध में कठ तो भारी संख्या में मारे (17,000) या पकड़े (70,000) ही गए, आक्रमणकारी सैनिक भी अत्यधिक संख्या में हताहत हुए (1300)। संगल नगर को पूर्णतः ध्वस्त कर दिया गया। कठों के दो सहायक नगरों के निवासी सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व ही जान बचाकर भाग गए (अगस्त, 326)।

कठ राज्य की रक्षा और व्यवस्था का भार पोरस पर छोड़कर अर्थात् इस प्रदेश को भी उसके राज्य में मिलाकर सिकन्दर ब्यास नदी की तरफ बढ़ा। मार्ग में उसके प्रभुत्व को फेगेलस राज्य ने स्वीकृत किया।[2] ब्यास के परे, फेगेलस द्वारा उसे प्रदत्त सूचनानुसार, बहादुर कृषकों का एक अत्यन्त उर्वर देश (कुरु-पंचाल) था। उसकी उत्कृष्ट शासन-व्यवस्था एक कुलीन वर्ग के हाथ में थी जो अपनी शक्ति का उदारता और न्याय के साथ उपयोग करता था। पोरस ने इस सूचना का समर्थन किया। लेकिन सिकन्दर ब्यास नदी तक ही पहुंच पाया इसको पार नहीं कर पाया, क्योंकि उसके सैनिकों ने इसके आगे बढ़ने से इङ्कार कर दिया[3] (सितम्बर, 326)।

1. मतान्तर के लिए दे०, कै० हि० इ०, पृ० 332, टि० 6।

2. कुछ विद्वानों के अनुसार सौपिथीज ने भी सिकन्दर का प्रभुत्व इसी समय माना था (दे०, कै० हि० इ०, पृ० 333; ए० इ० यू०, पृ० 50)।

3. इस मत के लिए कि सिकन्दर ब्यास तक नहीं पहुंचा, झेलम के युद्ध के बाद ही लौट गया था, दे०, चट्टोपाध्याय, सु०, एखि० इन इण्डिया, पृ० 15-18।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 17

सिकन्दर का प्रत्यावर्त्तन

प्रत्यावर्त्तन के कारण

सिकन्दर के ब्यास से वापिस लौट जाने का कारण उसके सैनिकों की स्वदेश लौटने की आकांक्षा थी । बहुत से भारतीय इतिहास-लेखकों का विचार है कि यूनानी सैनिकों की ज़िद के आवरण में प्राचीन यूरोपियन इतिहासकारों ने इस सत्य को छिपाने की चेष्टा की है कि सिकन्दर पोरस के हाथों परास्त होकर भारत से लौटने के लिए बाध्य हो गया था ।[1] सुधाकर चट्टोपाध्याय जैसे अपेक्षया संयत इतिहासकार का भी अनुमान है कि सिकन्दर पोरस से युद्ध करने के बाद, जिसमें दोनों पक्ष बराबर रहे थे, वापिस लौट गया था और उसकी झेलम से लेकर ब्यास तक की विजय-यात्रा का वर्णन यूनानी लेखकों की कल्पना की देन है ।[2] बुद्धप्रकाश के अनुसार इस युद्ध का अन्तिम निर्णय होने के पहले ही दोनों पक्षों में सन्धि हो गई थी ।[3] परन्तु ये अनुमान सभी प्राचीन साक्ष्य के विरुद्ध होने के कारण त्याज्य हैं । डायोडोरस, एरियन, कर्टियस, प्लुटार्क तथा जस्टिन, (जिनके ग्रन्थ सिकन्दर के सेनापति नियर्कस, उसके सेनाध्यक्ष ओनेसिक्रिटस, उसी के एक अन्य साथी एरिस्टोबुलस तथा क्लीटार्कस और मेगास्थेनिज़ आदि के ग्रन्थों पर आधृत हैं) इस विषय में सहमत हैं कि सिकन्दर ब्यास नदी तक अवश्य ही पहुंचा था । यह तर्क कि अगर सिकन्दर को पोरस के विरुद्ध सफलता मिली होती तो वह उसे उसका राज्य न लौटाता, चट्टोपाध्याय जैसे लेखकों द्वारा सिकन्दर की नीति को न समझे जाने का प्रमाण है । सिकन्दर ने सर्वत्र योग्य व्यक्तियों को अगर वे उसके प्रभुत्व को मान लेते थे, अपने अधीन उच्च पद प्रदान किए थे चाहे उन्होंने पहले उसका विरोध ही क्यों न किया था । उदाहरणार्थ शशिगुप्त को, जिसने बैक्ट्रिया में सिकन्दर के शत्रुओं को सहायता दी थी, सिकन्दर ने ओर्नोस् जैसे महत्त्वपूर्ण दुर्ग का रक्षक बनाया था ।

'क्लासिकल' इतिहासकारों के वर्णन से यह सर्वथा स्पष्ट है कि सिकन्दर ब्यास नदी

1. दे० सेठ, एच० सी०, पी० आई० एच० सी०, इलाहाबाद, 1939, पृ० 85-91 । सेठ का मत 'लाइफ एण्ड एक्स्प्लोयट्स् ऑव अलेक्जान्दर' (इ० ए० डब्ल्यू बैज का अनुवाद, पृ० 123) के इथियोपियायी संस्करण पर आधृत हैं परन्तु इस ग्रन्थ की तिथि अज्ञात है और यह सभी क्लासिकल लेखकों के साक्ष्य के विरुद्ध है ।
2. एखि० इन इण्डिया, पृ० 15-18 ।
3. प्रकाश, पूर्वो०, 62 ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के पार स्थित भूप्रदेश को भी जीतना चाहता था। उसकी आकांक्षा समस्त सभ्य विश्व को जीतने की थी और उसके भौगोलिक ज्ञान के अनुसार जिस समय वह ब्यास के तट पर पहुंचा वह दुनिया के पूर्वी छोर के करीब आ पहुंचा था। उसे दक्षिण भारतीय प्रायद्वीप का बिल्कुल ज्ञान नहीं था और चीन तथा साइबेरिया आदि के अस्तित्व का तो अनुमान तक भी न था। उसका विचार था कि जैसे अटलांटिक समुद्र विश्व का पश्चिमी छोर है वैसे ही वह समुद्र, जिसमें गंगा नदी गिरती है विश्व का पूर्वी सिरा है। इतना ही नहीं, उसके ज्ञानानुसार यह समुद्र हिन्दुकुश, तथा पामीर के परे उत्तर में भी फैला था और कैस्पियन से जाकर मिल जाता था।[1] नियर्कस के अनुसार सिकन्दर की धारणा थी कि चिनाव नदी ही आगे जाकर मिस्र की नील नदी बन जाती है। ऐसी स्थिति में ब्यास तक पहुंचने के वाद वहां से अपनी ही सेना द्वारा वापिस लौटने का आग्रह किए जाने पर उसे जो निराशा हुई, उसका क्लासिकल लेखकों द्वारा प्रदत्त वर्णन हमें बड़ा ही स्वाभाविक और विश्वसनीय प्रतीत होता है।

सिकन्दर ने अपने सैनिकों को आगे वढ़ने से इंकार करते देख एक ओजस्वी भाषण देकर उनमें फिर से उत्साह जगाने की चेष्टा की। उसने उन्हें उनकी शानदार सफलताओं की, जो उन्होंने हेलेस्पोण्ट से लेकर ब्यास तक पाई थीं, याद दिलाई और सारे विश्व के स्वामी वनने से उनको कितना यश प्राप्त होगा इसके सब्ज़बाग दिखाए। लेकिन उसके जोशीले भाषण का सैनिकों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और अपने स्वभाव के विपरीत पूर्णतः खामोश रहकर उन्होंने उसके साथ असहमति प्रकट की। यह खामोशी काफी देर तक वनी रही। अन्त में एरियन के अनुसार कोइनोस ने, जो अश्वारोही सेना का अध्यक्ष और सिकन्दर का विश्वासपात्र था, हिम्मत करके 'सेना की तरफ से' सिकन्दर से विनती की कि आखिर सेना द्वारा उठाए जाने वाले खतरों और किए जाने वाले श्रम की कोई तो सीमा होनी चाहिए। उसने सिकन्दर को याद दिलाया कि उन यूनानी और मकदूनी सैनिकों में से, जो उसके साथ आठ वर्ष पहले चले थे, 'बहुत से घर लौट चुके हैं, बहुत से घायल और अपंग होकर पड़े हैं, बहुतों को उनकी इच्छा के विपरीत नए देशों में वसना पड़ा है और सवसे ज्यादा संख्या तो उन लोगों की है जो युद्ध में अथवा बीमारी से मर चुके हैं। जो बचे हैं उनका भी स्वास्थ्य खराब हो गया है, वे यूनानी वस्त्रों के स्थान पर भारतीय वस्त्र पहनने को बाध्य हो गए हैं और उनके हथियार भोंथरे हो चुके हैं तथा मन निराशा से भरा हुआ है। उनकी यह स्वाभावित इच्छा है कि वे घर लौटें, अपने माता-पिता तथा स्त्री-बच्चों से मिलें और स्वदेश का दर्शन करें जहां से चलते समय वे गरीव थे लेकिन लौटते समय अमीर होंगे।' कोइनोस ने सिकन्दर से आग्रह किया कि वह सैनिकों को उनकी इच्छा के विपरीत आगे न ले जाये, वरन् यूनान वापिस लौट चलें। वाद में अगर चाहे तो फिर एक नई सेना खड़ी करे और शेष विश्व को जीतने निकले।[2]

1. दे०, क्ला० एका०, प० 52।

2. कोइनोस के इस भाषण का कम से कम सार ऐतिहासिक सत्य लगता है। दे०, स्मिथ, अ० हि० इ०, पृ० 79, टि०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोइनोस के इस भाषण का सैनिकों ने तुमुल हर्षध्वनि और तालियों की गड़गड़ाहट से स्वागत किया। इस पर सिकन्दर ने नाराज होकर सभा भंग कर दी। अगले दिन उसने फिर सभा बुलाई और घोषणा की कि वह आगे अकेला ही जाएगा। जो उसका साथ देना चाहें दें, जो न देना चाहें वे वापिस लौट जाएं और स्वदेश जाकर बता दें कि वे अपने राजा को शत्रु देश में अकेला छोड़ आए हैं। इसके बाद वह अपने तम्बू में चला गया और तीन दिन तक बाहर नहीं निकला। परन्तु सैनिकों का हृदय फिर भी परिवर्तित नहीं हुआ। इस पर उसने देवताओं को बलि दी और ज्योतिषियों के यह कहने पर कि शकुन आगे बढ़ने के विपरीत हैं, उसने प्रत्यावर्त्तन की घोषणा कर दी जिसका सैनिकों ने हर्षध्वनि से स्वागत किया। कुछ तो खुशी से रो तक पड़े।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सिकन्दर के सैनिकों को वापिस लौटने की इच्छा का कारण उनका स्वदेश से दीर्घ काल से बिछुड़ा होना था। लेकिन यहां इतना अवश्य ही माना जा सकता है कि भारतीय सैनिकों के शौर्य से, जो उन्होंने झेलम के तट पर और अन्यत्र देखा, यूनानियों की स्वदेश जाने की इच्छा में अवश्य ही वृद्धि हुई होगी। भारतीयों की बहादुरी देखकर उसके मन में गंगा की घाटी को जीतने की, जहां के निवासी 'समृद्ध' थे और 'जिनके हाथी पोरस के हाथियों से बड़े और संख्या में अधिक थे' कोई इच्छा नहीं रह गई। प्लुटार्क के अनुसार पोरस से लड़ने के बाद मकदूनी सैनिक अत्यन्त हतोत्साह हो गए और उनमें आगे बढ़ने की इच्छा खत्म हो गई। उन्होंने पोरस को ही, जिसकी सेना में (प्लुटार्क के अनुसार) कुल 20,000 पदाति और 2000 अश्वारोही थे, मुश्किल से हराया था; इसलिए जब सिकन्दर ने उनसे और आगे बढ़ने को कहा तो उन्होंने उसका दृढ़तापूर्वक विरोध किया। ब्यास की तरफ बढ़ते समय उन्होंने गंगा घाटी के राजाओं के बारे में जो अफवाहें सुनीं उनसे उनका भय बढ़ गया। फेगेलस द्वारा प्रदत्त सूचनानुसार गेण्डेरेडाई और पारसाई (=नन्द साम्राज्य) के स्वामी के पास 20,000 अश्वारोही, 2 लाख पदाति, 2,000 रथ तथा 3,000 हाथी थे। प्लुटार्क के अनुसार वह राजा 80,000 अश्वारोहियों, 2,00,000 पदातियों 8,000 रथों तथा 6,000 हाथियों के साथ यूनानियों की प्रतीक्षा में था। क्योंकि इसके कुछ बाद ही चन्द्रगुप्त मौर्य सेल्युकस को 500 हाथी दे सका और 6 लाख सेना एकत्र कर भारत जीत सका, इसलिए नन्दों की सेना के बारे में प्लुटार्क की यह सूचना बहुत गलत नहीं होनी चाहिए। इन अफवाहों से सिकन्दर को विजय-लालसा बढ़ी जबकि उसके सैनिक भयभीत हो उठे। उनके इस प्रकार भयभीत हो जाने से सिकन्दर के लिये लौटने का निश्चय करने के अतिरिक्त कोई चारा न था।[1] लेकिन यह निश्चय करते समय भी सिकन्दर ने अपनी विजि-

1. सिकन्दर को उसके सैनिक आगे बढ़ने देते तो वह गंगा की घाटी पर आक्रमण करता या नहीं और अगर वह आक्रमण करता तो उसका क्या परिणाम होता, इन प्रश्नों के अनुमानाश्रित उत्तर ही हो सकते हैं। टार्न का विचार है कि सिकन्दर शायद मगध पर, जिससे वह परिचित नहीं था, कदापि आक्रमण नहीं करता। लेकिन सिकन्दर का परिचय तो पंजाब से भी न था जिस पर उसने आक्रमण किया था। यह मत चाहे सही है या नहीं, लेकिन स्मिथ का यह कथन निश्चय ही सही लगता है कि कोइनोस और उसके साथियों को, जिन्होंने आगे बढ़ने के विरुद्ध आवाज उठाई, 'मकदूनी सेना को पूर्ण विनाश से बचाने का श्रेय दिया जा सकता है' (अ० हि० इ०, पृ० 116-17)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गीषा का एकदम दमन नहीं किया। उसने तय किया कि वह जिस मार्ग से आया है उससे न लौटकर सिन्धु के मुहाने वाले प्रदेश और गेड्रोशिया को जीतता हुआ लौटेगा जिससे उसका प्रत्यावर्त्तन भी विजय-यात्रा बन जाये।

वापिस लौटने के पूर्व सिकन्दर ने व्यास के तट पर क्रीड़ा प्रतियोगिताएं कीं और बारह प्रमुख देवताओं के लिए चौकोर पाषाण खण्डों की 50 क्युबिट ऊंची बारह वेदियां बनवाईं जो उसके व्यास तक विजय प्राप्त करने का स्मारक भी थीं। प्लिनी के अनुसार इन्हें व्यास के 'इस ओर' (पूर्वी तट पर) बनवाया गया था। परन्तु यह सम्भव नहीं लगता क्योंकि कोई भी क्लासिकल लेखक सिकन्दर द्वारा व्यास को पार करने का उल्लेख नहीं करता। इनका कोई चिह्न आजकल शेष नहीं है। प्लुटार्क का कथन कि इन वेदिकाओं पर चन्द्रगुप्त मौर्य भी यूनानी विधि से पूजा किया करता था, अन्य लेखकों द्वारा समर्थित नहीं होता। फिलोस्ट्रेटस के अनुसार इन वेदियों के समीप धातु का एक स्तम्भ भी स्थापित किया गया था जिस पर 'सिकन्दर यहां रुका था' यह लेख उत्कीर्ण था।

व्यास के तट से सिकन्दर की सेना चिनाब के तट पर वापिस लौटी जहां हेफाइस्शन ने एक नया नगर बसाया था। सिकन्दर ने वहां कुछ नए सैनिक बसाए। इसी समय उसके पास अभिसार-नरेश का दूत-मण्डल आया जिसने अभिसार-नरेश की वशवर्तिता प्रकट की और उसके स्वयं न आने का कारण उसकी बीमारी को बताया। सिकन्दर के दूत ने भी, जो अभिसार से लौटा था, इसकी पुष्टि की। सिकन्दर ने अभिसार-नरेश को उसके अपने राज्य का क्षत्रप नियुक्त किया और उरश-नरेश अर्सेकिज़ को, जो स्वयं सिकन्दर की सेवा में उपस्थित हुआ था, आदेश दिया कि वह अपने को अभिसार-नरेश के अधीन समझे। झेलम से चिनाब तक का सम्पूर्ण प्रदेश जिसमें सात 'राष्ट्र' और 2,000 नगर थे, (एरियन; स्ट्रेबो के अनुसार 9 राष्ट्र और 500 नगर) पोरस को, और पश्चिम में सिन्धु तक का भूखण्ड आम्भी को वह पहले ही दे चुका था। इस प्रकार जीते गये भारतीय राज्यों को उसने तीन क्षत्रपों में बांट दिया—सिन्धु से झेलम तक आम्भी, झेलम से व्यास तक पोरस और उत्तर के पर्वतीय प्रदेश में अभिसार-नरेश। पुरु और आम्भी में मित्रता बढ़ाने के लिए उसने दोनों में विवाह-सम्बन्ध भी कराया।

इसी समय सिकन्दर को बैबिलोन के क्षत्रप द्वारा प्रेषित 5,000 थ्रेसी अश्वारोहियों और 7,000 पदातियों की कुमुक मिली जिसके साथ रजत-सुवर्ण खचित 25,000 नवीन कवच भी थे जो सेना में तत्काल बांट दिये गये।[1] इसके बाद वह चिनाब पार करके झेलम के तट पर आया जहां निकाइया और बुकेफाला नगरों की मरम्मत और झेलम के मार्ग से सेना ले जाने की तैयारी करवाई। इसी समय उसके पास सोपीथिज़ ने स्वयं आकर उसका प्रभुत्व स्वीकृत किया। कर्टियस ने दीर्घाकार सुन्दर सोपीथिज़ और सिकन्दर की भेंट का रोचक वर्णन किया है।

1. कर्टियस (9.3)। डायोडोरस ने पदातियों की संख्या 30,000 और अश्वारोहियों की 6,000 बताई है तथा 100 टेलेण्ट दवाओं के आने का भी उल्लेख किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

झेलम के तट पर सिकन्दर ने अपनी सेना की यात्रा के लिए 800 जलपोत बनवाए।[1] अब उसने अपनी सेना के चार भाग किए—एक भाग उसके साथ नदी के मार्ग से जल-पोतों पर चला, दूसरा दाहिने तट से क्रेटेरस के नेतृत्व में, तीसरा (जिसमें हाथी भी थे) हेफाइस्शन के नेतृत्व में बाएं तट से और चौथा फिलिप के नेतृत्व में हेफाइस्शन के पीछे-पीछे तीन दिन की यात्रा के अन्तर से। न्यसा के सैनिकों को उसने यहीं से वापिस भेज दिया। जलपोतों का नेतृत्व नियर्कस के हाथ में था और स्वयं सिकन्दर के पोत को ओने-सिक्रिटस चला रहा था। इस प्रकार यह सेना नवम्बर 326 के शुरू (अथवा अक्टूबर के अन्त) में दक्षिण दिशा में समुद्र की ओर बढ़ी।[2]

झेलम की धारा से यात्रा करती हुई यूनानी सेना दस दिनों में झेलम और चिनाब के संगम पर पहुंची जहां तेज जल प्रवाह के कारण दो पोत डूब गये। यहां से उसने सिवोई और एगेलेस्सोई जातियों पर शीघ्रता से आक्रमण किया जिससे वे मालवों और क्षुद्रकों से न मिल पाएं। सिबोई ने तो सिकन्दर की सेना को अपनी राजधानी के नज-दीक आते देखकर ही उसका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया लेकिन एगेलेस्सोई ने डटकर प्रतिरोध किया जिसमें बहुत से मकदूनी सैनिक मारे गये। इससे खीज कर सिकन्दर ने एक नगर पर विजय पाने के बाद उसके 20,000 में से केवल 3,000 व्यक्ति छोड़े, शेष की या तो हत्या करवा दी या दास बना लिया।

सिकन्दर को मिली सूचनानुसार उसका मार्ग अवरुद्ध करने के लिए रेचना और बारी दोआबों में बसी जातियां बड़ी जोर-शोर से मिलकर तैयारी कर रही थीं। सिकन्दर ने उनकी तैयारियां पूर्ण होने के पूर्व ही उनपर आघात करने का निश्चय किया। उसने अपनी समस्त जल सेना और थल सेना के अधिकांश को दक्षिण की ओर बढ़कर झेलम और रावी (अथवा चिनाब और रावी) के संगम के पास एकत्र होने का आदेश दिया और स्वयं चुने हुए अश्वारोहियों (जिनकी संख्या स्मिथ ने 7,000 आंकी है) और टॉलेमी, पीथोन तथा पर्डिक्कस को साथ लेकर मल्लोई जाति पर तेजी से आक्रमण किया और इसके पूर्व कि क्षुद्रक जाति अपने मित्रों की सहायता कर पाती उसकी शक्ति तोड़ डाली। उसका आक्र-मण इतने अप्रत्याशित रूप से हुआ कि बहुत से मल्लोई तो खेतों में काम करते समय गाजर-मूली की तरह काट डाले गए। परन्तु मल्लोई नगरों के रक्षकों ने इसके बावजूद उसका वीरता से सामना किया। एक नगर में जो, ब्राह्मणों का था, ब्राह्मणों ने कलम की जगह तलवार उठा ली और लगभग सभी ने लड़ते-लड़ते प्राण दे दिये। एक बार तो मकदूनी सेना फिर घबड़ाकर सिकन्दर के विरुद्ध हो गई। इस स्थिति को उसने मुश्किल से सम्भाला। एक नगर पर हमले के समय अपने सैनिकों को हिम्मत खोता देख सिकन्दर स्वयं बुर्ज पर जा चढ़ा और अन्दर कूद गया। इस साहसपूर्ण कृत्य के परिणामस्वरूप उसकी छाती में

1. एरियन (6.2)। कुछ क्लासिकल लेखकों ने यह संख्या 2,000 तक बताई है जिसे स्मिथ ने सही माना है। बीमारी से कोइनोस की मृत्यु इसी समय हुई थी।

2. यहां से आगे सिकन्दर की यात्रा का अध्ययन करने में नदियों के मार्ग परिवर्तन से बहुत बाधा पड़ती है। दे० पिछला अध्याय; अ० हि० इ०, पृ० 96-97।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गहरा घाव लगा और उसके प्राण मुश्किल से बचाये जा सके। यूनानियों ने इससे क्रोधित होकर विजय पाने के बाद उस नगर के आबाल-वृद्ध सभी व्यक्तियों को मार डाला। इसके बाद मल्लोई जाति ने आत्म-समर्पण कर दिया (जनवरी, 325)।

मल्लोई के आत्मसमर्पण के बाद क्षुद्रकों ने भी विविध प्रकार की भेंटादि देकर सिकन्दर के साथ सन्धि कर ली। कर्टियस के अनुसार उनके विशालकाय गौरवशाली सौ दूत जो सुवर्ण खचित वस्त्र धारण किए हुए थे रथों पर चढ़कर आए। उन्होंने सिकन्दर को बताया कि उन्होंने कभी किसी मनुष्य के प्रभुत्व को नहीं माना था, परन्तु वह असाधारण मनुष्य है इसलिए उसके आधिपत्य को स्वीकार करने को प्रस्तुत है। सिकन्दर ने उनके द्वारा दी गई सफाई को मान लिया और उनका बहुत सम्मान करके उन्हें लौटा दिया। कर्टियस के अनुसार कुछ दिन उपरान्त वे 300 अश्वारोहियों, चार घोड़ों वाले 1030 रथों, 1,000 भारतीय ढालों, 100 टेलेण्ट स्टील, कुछ पालतू शेर-चीते, विशालकाय मगरों की खाल और लिनन के असंख्य बहुमूल्य वस्त्रों (=दुकूल)[1] की भेंट लेकर लौटे। सिकन्दर ने उनके 1,000 सर्वोत्तम पुरुषों को बन्धक रूप में रखने की भी मांग की थी परन्तु जब वे आए तो उन्हें लौटा दिया।

मल्लों और क्षुद्रकों की पराजय के उपरान्त सिकन्दर ने एबस्टेनाई (=अम्बष्ठ), एक्स्थ्रोई (=क्षतृ अथवा क्षत्रिय) तथा ओस्सादियोई (=वसाति) जातियों पर प्रभुत्व स्थापित किया और क्षुद्रक, मालव तथा उपर्युक्त जातियों का क्षत्रप फिलिप नामधारी एक अन्य व्यक्ति को नियुक्त किया। इस प्रान्त में सिन्धु और पंजाब की नदियों के संगम तक, जहां सिकन्दर ने एक नया नगर बसाया, अथवा इससे कुछ दक्षिण तक का विस्तृत प्रदेश रखा गया और फिलिप की सहायतार्थ पर्याप्त सेना छोड़ दी गई। सम्भवतः शौद्रे (शौद्रायण) और मस्सानोई (=मसूरकर्ण ?) जातियां, जिनकी चर्चा डायोडोरस ने की है, इसी प्रान्त में सम्मिलित की गई थीं। इसी समय सिकन्दर ने काबुल घाटी के क्षत्रप टाइरियस्पिज़ के स्थान पर, जिसके विरुद्ध बहुत शिकायतें आई थीं, अपने बैक्ट्रियायी श्वसुर ओक्सियार्टिज़ (Oxyartes) को नियुक्त किया।

सिन्धु के संगम से दक्षिण की ओर बढ़ने पर सिकन्दर सिन्धु की दक्षिणी उपत्यका (आधुनिक सिन्ध राज्य) में प्रविष्ट हुआ जहां स्वतन्त्र जातियों के बजाय राजाधीन राज्य थे। इनमें मूसिकेनोस् (=मुचुकर्ण या मुचकर्ण) का राज्य विशालतम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था, लेकिन उसने सिकन्दर के आते ही उसके प्रभुत्व को मान लिया। सिकन्दर ने उसकी राजधानी (=अलोर ?) में एक सैन्य दल छोड़ा और क्रेटेरस को नगर को सुरक्षित करने का भार दिया। ओक्साइकेनोस् ने सिकन्दर का सामना किया लेकिन बन्दी बना लिया गया। सेम्बोस् राज्य का स्वामी अपने शत्रु मुचुकर्ण के साथ सिकन्दर की मित्रता के कारण सिकन्दर से असन्तुष्ट होकर अपनी राजधानी सिन्दिमन छोड़ कर चला गया जिससे उसे सिकन्दर का स्वागत न करना पड़े। उसके पीछे उसके सम्बंधियों ने सही स्थिति बताकर और भेंटादि देकर सिकन्दर को सन्तुष्ट किया। इस प्रदेश में सिकन्दर के सबसे बड़े शत्रु

1. दे०, स्मिथ, पूर्वो०, पृ० 102, टि० 1; एरियन ने रथों की संख्या 500 बताई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्राह्मण सिद्ध हुए।[1] उनके एक नगर पर सिकन्दर ने आक्रमण किया और उसके सब नागरिकों को मार डाला। इसी समय मुचुकर्ण ने अपने ब्राह्मण मन्त्रियों के भड़काने पर विद्रोह कर दिया। सिकन्दर ने पीथोन को इस विद्रोह को दबाने भेजा। पीथोन ने अनेक नगर ध्वस्त कर दिए तथा मुचुकर्ण को बन्दी बना लिया। सिकन्दर के आदेश से उसका वध कर दिया गया।

सिन्धु के मुहाने वाले प्रदेश में पाटलीन राज्य (पोट्टल = पाटल = पत्तल = पातनप्रस्थ) था जिसमें द्वैराज्य शासन-व्यवस्था थी। इसका एक राजा आत्मनिवेदन द्वारा सिकन्दर को सन्तुष्ट करने आया। सिकन्दर ने उसे यूनानी सेना के स्वागत की तैयारी करने के लिए वापिस भेज दिया। यहां से सिकन्दर ने सेना के एक भाग को सब हाथियों सहित क्रेटेरस के नेतृत्व में मूला या मुल्ला दर्रे, कन्धार और सीस्तान के मार्ग से वापिस भेजा और स्वयं शेष सेना के साथ जुलाई 325 ई० पू० में पोट्टल जा पहुंचा। वहां उसने पाया कि उसके निवासी यूनानियों का स्वागत करने के बजाय नगर छोड़ कर भाग गये हैं। यूनानियों ने किसी प्रकार थोड़े बहुत नागरिकों को, जो उन्हें मिल पाए, दम-दिलासा देकर फिर से कृषिकर्म में लगने के लिए प्रेरित किया। सिकन्दर ने पीथोन को सिन्धु प्रान्त के इन सब राज्यों का क्षत्रप नियुक्त किया।

पाटल में सिन्धु नदी दो प्रमुख धाराओं में बंट जाती है। सिकन्दर ने कुछ जलपोतों के साथ पहले पूर्वी धारा की छानबीन की और फिर पश्चिमी धारा की। पश्चिमी धारा को उसने अपने जलपोतों की यात्रा के लिए सुविधाजनक पाया। इसमें उसने एक बड़ी झील देखी थी जो या तो उमरकोट के पश्चिम में स्थित समार्रा झील थी अथवा कच्छ के रन में घुसा हुआ समुद्र। उस जमाने में समुद्र पाटल से शायद बहुत दूर नहीं था। पाटल की उत्तम स्थिति देखकर सिकन्दर ने वहां एक दुर्ग और बन्दरगाह बनवाया। इसके बाद उसने अपनी सेना को दो भागों में बांटा। इसमें एक भाग समुद्र के मार्ग से नियर्कस के नेतृत्व में लौटा और दूसरा स्वयं सिकन्दर के नेतृत्व में स्थल मार्ग से गेड्रोशिया होते हुए। इनमें पहले यात्रा सिकन्दर ने प्रारम्भ की (सितम्बर, 325 ई० पू०) जिससे वह जलपोतों से आने वाली सेना के लिए तट पर कुएं खोदता और भोजन का प्रबन्ध करता चले। अरबियोस् (हाब) नदी को पार करके उसने ओरिइताई (Oreitai = वार्तेय) जाति के प्रदेश को जीता और रम्बकिया स्थल पर एक नगर बसाया। इसका क्षत्रप उसने एपोलोफेनिज़ (Appolophanes) को नियुक्त किया। इसके बाद गेड्रोशिया के रेगिस्तानी प्रदेश की कठोर यात्रा करने के बाद मार्ग में क्रेटेरस की सेना को, जो उससे आ मिली थी, साथ लेता हुआ वह बैबिलोन की ओर चला गया।

नियर्कस को भारत से अक्टूबर 325 में चलना था, परन्तु पाटल निवासियों की ओर

1. प्राचीन काल में संकट के समय ब्राह्मणों का शस्त्रधारण करना उचित माना जाता था। मनु (8.348) के अनुसार :

शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते।
द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से खतरा उत्पन्न होते देख वह सितम्बर माह में ही चल पड़ा। प्रतिकूल हवाओं के कारण 'सिकन्दर के बन्दरगाह' में उसे करीब 24 दिन ठहरना पड़ा। वहां से चलने पर अनेक कठिनाइयां सहने के बाद वह फारस की खाड़ी से होते हुए सिकन्दर से जा मिला। 324 ई० पू० की बसन्त तक सारी सेना सूसा पहुंच गई। लेकिन इसके अगले ही वर्ष (जून, 323 ई० पू०) बैबिलोन में सिकन्दर की असामयिक मृत्यु से उसकी विश्व-साम्राज्य की योजना भी समाप्त हो गई।

भारतीयों की पराजय के कारण

सिकन्दर भारत में मई 327 ई० पू० के प्रारम्भ से लेकर अक्टूबर 325 ई० पू० तक अर्थात् कुल करीब तीस माह रहा। इस बीच में उसने हिन्दुकुश से लेकर ब्यास तक तथा दक्षिण में सिन्धु के मुहाने तक विस्तृत विशाल भूखण्ड को जीता। भारतीय राज्यों ने उसका प्रतिरोध लगभग सर्वत्र बड़ी बहादुरी से किया। मस्सग के पतन के बाद जब सिकन्दर ने 7,000 वेतनभोगी सैनिकों पर रात में धोखे से हमला किया था तो उनकी स्त्रियों ने भी आक्रमणकारियों से लोहा लिया था। झेलम के युद्ध में पोरस मैदान में अन्तिम समय तक डटा रहा था और पकड़े जाने के बाद भी उसका स्वाभिमान बना हुआ था। सिन्धु की निचली उपत्यका के राज्यों में ब्राह्मणों ने सिकन्दर का प्रत्यावर्त्तन अत्यन्त कष्टकर कर दिया था। मल्लोइयों के तो प्रत्येक नगर में यूनानियों को लड़ना पड़ा था और एक बार तो स्वयं सिकन्दर के प्राण लेने में वे करीब-करीब सफल हो गये थे। वस्तुतः सिकन्दर भारत के उस प्रदेश में आया था जिसके निवासी अपनी बहादुरी के लिए हमेशा प्रख्यात रहे हैं और उस समय भी युद्धकर्म उनका प्रमुख उद्यम था। यद्यपि स्मिथ का यह कथन निश्चित रूप से गलत है कि इस संघर्ष से यह तय हो गया कि एशिया की बड़ी से बड़ी सेनाएं भी यूरोपियन युद्ध-कौशल और अनुशासन के सम्मुख नहीं ठहर सकतीं[1], क्योंकि जैसा कि स्वयं स्मिथ ने कहा है[2] अगर सिकन्दर ने मगध पर आक्रमण किया होता तो मकदूनी सेना का पूर्णतः विनाश हो जाता। लेकिन इसके साथ ही हमें मुकर्जी की यह धारणा भी अशुद्ध लगती है कि भारत में सिकन्दर का बड़े-बड़े राज्यों से संघर्ष हुआ ही नहीं, इसलिए उसके अभियान को न तो एशियायी और यूरोपियन युद्ध-कौशल की सही परीक्षा माना जा सकता है और न उसके भारतीय अभियान को 'शानदार' कहा जा सकता है।[3] संख्या की दृष्टि से भारतीय सेनाएं यूनानी सेना से बहुत दुर्बल नहीं थीं। अपेक्षया बड़े भारतीय राज्य सिकन्दर का सामना करते समय चालीस-पचास हजार सैनिक एकत्र कर लेते थे। क्षुद्रक-मालव तथा पोरस के राज्यों की सेनाएं तो निश्चित रूप से सिकन्दर की सेनाओं से बड़ी थीं। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि यूनानी सेना एक अपरिचित देश में लड़ रही थी जबकि भारतीय स्वयं अपने

1. अ० हि० इ०, पृ० 117।
2. वही, पृ० 116-17।
3. ए० इ० यू०, पृ० 51।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देश में थे। यूनानी सेना में प्रजातीय और भाषात्मक एकता का भी अभाव था जबकि ये कठिनाइयां भारतीयों के सम्मुख नहीं थीं। और फिर ठीक ऐसी ही परिस्थिति में डेढ़ शती पहले यूनान की सेनाएं अगर अपने देश में ईरान के प्रथम दारयवहुष तथा क्षयार्षा जैसे नरेशों को परास्त कर सकती थीं तो वैसी ही सफलता की आशा भारतीयों से क्यों नहीं की जानी चाहिए ? लेकिन शौर्य और संख्या इन दोनों बातों के होते हुए भी भारतीय परास्त हुए। इसका सबसे बड़ा कारण भारतीयों के मन में देशप्रेम की तुलना में प्रदेश प्रेम, जातीय अभिमान तथा आत्मसम्मान का सबलतर होना था। चौथी शती ई० पू० में गंगा-घाटी के नरेश सैन्धव उपत्यका के राज्यों को या तो अपने देश का अंग ही नहीं मानते थे अथवा यह भावना होते हुए भी इस ओर ध्यान नहीं देते थे। स्वयं उत्तरापथ के राज्य भी आपस में लड़ रहे थे—गणाधीन राज्य राजाधीन राज्यों से और राजाधीन राज्य परस्पर। इस दृष्टि से उस युग के उत्तरापथ की स्थिति छठी शती ई० पू० के पूर्वी भारत की स्थिति से तुलनीय है। आम्भी ने अपने शत्रु पोरस के खिलाफ सिकन्दर की तरफ मैत्री का हाथ तभी बढ़ा दिया था जब यूनानी विजेता सोग्डियाना में था। स्वयं पोरस भी, जिसे आजकल सामान्यतः देशभक्ति का आदर्श माना जाता है, सिकन्दर के विरुद्ध हथियार लेकर देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर नहीं वरन् इसलिए खड़ा हुआ था क्योंकि वह आम्भी जैसे राजाओं की तुलना में अधिक स्वाभिमानी था और स्वाभिमान के लिए जान देना जानता था। दूसरे, उसका शत्रु आम्भी सिकन्दर के साथ मिल गया था इसलिए उसके लिए सिकन्दर का प्रतिरोध करना स्वाभाविक था। वह स्वयं उन पड़ोसी राज्यों को, जिन पर सिकन्दर की दृष्टि थी, जीतना चाहता था। इसीलिए उसे बाद में कठ आदि जातियों के विरुद्ध सिकन्दर को सहायता देने में कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। सिकन्दर के आगमन के पूर्व भी वह अभिसार-नरेश के साथ मिलकर कठों पर आक्रमण कर चुका था। यह सही है कि वह इतना बहादुर था कि अपनी सेना के हारने पर उस प्रकार मैदान छोड़ कर नहीं भागा जिस प्रकार ईरानी सम्राट् भागा था, परन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि जबकि दारयवहुष ने एक बार परास्त होने पर हिम्मत नहीं हारी और सेना एकत्र कर बार-बार सिकन्दर का सामना करता रहा, पोरस ने एक बार परास्त होने के बाद फिर यूनानियों के विरुद्ध हथियार नहीं उठाए, उल्टे उनकी मदद की। हो सकता है कि उसके दोबारा प्रयास करने पर यूनानी परास्त हो ही जाते। व्यक्तिगत शौर्य की दृष्टि से पोरस दारयवहुष से बड़ा माना जा सकता है, परन्तु देशहित की दृष्टि से दारयवहुष की ही प्रशंसा की जाएगी।

पोरस में मिलने वाला यह संकुचित दृष्टिकोण अन्य भारतीयों में भी था। उदाहरणार्थ कनीयस् पुरु सिकन्दर से रुष्ट हुआ लेकिन अपने देश-प्रेम के कारण नहीं वरन् सिकन्दर द्वारा उसके शत्रु वृद्ध पोरस के साथ अच्छा व्यवहार किया जाने से। इसी प्रकार सिन्धु की दक्षिणी उपत्यका में सेम्बोस् ने सिकन्दर के प्रति असन्तोष इसलिए व्यक्त किया था क्योंकि सिकन्दर ने उसके शत्रु मुचुकर्ण के साथ सन्धि कर ली थी। सिकन्दर का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिल कर सामना करने का विचार केवल क्षुद्रक और मालव जातियों में आया था।[1] परन्तु उनमें भी जातीय सम्मान की भावना देशप्रेम से सबल सिद्ध हुई और उनका प्रस्तावित संघ सेनापतित्व के प्रश्न पर धराशायी हो गया।

भारतीयों की पराजय का दूसरा प्रमुख कारण सिकन्दर का युद्ध-कौशल और शासन प्रबन्ध था। कहने की आवश्यकता नहीं कि सिकन्दर जैसा कुशल सेनानायक तत्कालीन भारत में क्या शायद प्राचीन विश्व के सम्पूर्ण इतिहास में नहीं हुआ। उसकी सेनाएं कितनी तेज़ी से बढ़ती थीं इसका अन्दाज़ इसी बात से लग सकता है कि उनके एक स्थान से कूच करने का समाचार भारतीय जासूसों द्वारा दूसरे स्थान पर पहुंचाने के पूर्व ही पूरी यूनानी सेना वहां जा धमकती थी। आगे बढ़ते समय विजित राज्यों को अपने अधिकार में बनाए रखने की भी सिकन्दर में अद्भुत क्षमता थी। 334 ई० पू० से 323 ई० पू० तक उसने जितने प्रदेश जीते उनमें हुए विद्रोहों की संख्या आश्चर्यजनक रूप से कम है। उसकी संचार और रसद-प्रणाली का तो कहना ही क्या! जबकि भारतीय राज्यों में एक स्थान की खबरें भी दूसरे स्थान तक मुश्किल से पहुंचती थीं सिकन्दर अपने साम्राज्य के दूरस्थ राज्यों से हजारों मील की दूरी तय करके लोहे के 25,000 कवच एक साथ मंगवा सकता था। अगर एक कवच का भार 10 किलोग्राम भी माना जाए तो उनकी कुल तौल 2,500 क्विंटल रही होगी। भारत से लाखों की संख्या में पशुओं को यूनान भेज सकना भी उसकी सम्पर्क-व्यवस्था की उत्तमता का प्रमाण है। और यह सब किया उसने उन देशों में जिन पर यूनानियों ने कभी न शासन किया था और न जिनके बारे में उनको कुछ ज्ञान था। कुल मिलाकर इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि उत्तरापथ के भारतीय राज्य राजनीतिक दूरन्देशी और युद्ध-कौशल में यूनानियों के बराबर नहीं थे। उनमें शौर्य था और वे अपनी आन के लिए मर मिटना जानते थे, परन्तु शत्रु के प्राण लेने में कुशल नहीं थे। यह बात विचित्र होते हुए भी पूर्णतः सत्य है कि उनमें से हरेक ने हजारों मील दूर से आने वाले विदेशी आक्रमणकारी का प्रतिरोध तभी किया जब उसने उन पर आक्रमण कर दिया। दूसरे शब्दों में वे लड़े लेकिन केवल आत्मरक्षा के लिए। इस दृष्टि से उनमें और परवर्ती राजपूतों में कोई विशेष अन्तर नहीं था। हमारे पूर्वज इस बात को प्रायः भूल जाते थे कि विशाल अनुशासित सेना के साथ आने वाले आक्रमणकारी का सामना केवल अपने देश, प्रदेश अथवा कबीले के लिए मर मिटने की भावना से नहीं किया जा सकता।

सिकन्दर के आक्रमण की राजनीतिक विफलता

लेकिन उपर्युक्त विवेचन का अर्थ यह नहीं है कि सिकन्दर को अपना लक्ष्य प्राप्त करने में पूर्ण सफलता मिली थी। सिकन्दर का उद्देश्य, जैसा कि सर्वज्ञात है, यूनान के प्रभुत्व में समस्त सभ्य विश्व को एक ऐसे साम्राज्य के रूप में परिणत करना था जिसमें यूनानी संस्कृति प्रधान हो परन्तु जिसमें मिस्री और एशियायी संस्कृतियों के अच्छे तत्त्व यूनानी

1. अभिसार-नरेश ने भी पोरस का साथ देने का विचार किया था, पर दिया नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृति के साथ घुल-मिल जाएं। इस प्रकार वह एक नवीन सबलतर 'यूनानीसम' (Hellenistic) विश्व-संस्कृति का निर्माण करना चाहता था। जिस समय वह 334 ई० पू० में यूनान से चला था, उसका लक्ष्य ईरानियों से अपने देश के परम्परागत वैर का प्रतिशोध लेना मात्र था, परन्तु 327 ई० पू० में भारत में प्रवेश करने तक उसके मन में विश्व-साम्राज्य की स्थापना का आदर्श न केवल जन्म ले चुका वरन् बहुत कुछ साकार होता दिखाई देने लगा था। इस दृष्टि से उसका भारत पर आक्रमण लूट-पाट के लिए किया गया धावा मात्र नहीं, वरन् भारत को विश्व-साम्राज्य का अंग बनाने के लिए किया गया प्रयास था। विजित भारतीय राज्यों का प्रान्तों (satrapies) के रूप में पुनर्गठन इसी उद्देश्य से किया गया था।

सिकन्दर ने भारत में निम्नलिखित प्रान्त बनाए थे :—

(1) पेरोपेमिसेदाई या हिन्दुकुश से लेकर काबुल नदी तक का प्रदेश—इसकी राजधानी हिन्दुकुश के पादमूल में बसा सिकन्दरिया नगर था। इसका क्षत्रप पहले टाइरियस्पिज़ को बनाया गया और उसके विरुद्ध शिकायतें आने पर ओक्सियार्टिज़ को।

(2) सिन्धु के पश्चिम का प्रदेश—इसका क्षत्रप निकानोर को नियुक्त किया गया। जिस समय सिकन्दर रावी की तरफ बढ़ा उसे शशिगुप्त से सूचना मिली कि भारतीयों ने निकानोर का वध कर दिया है। तब उसने टाइरियस्पिज़ और तक्षशिला के क्षत्रप फिलिप की सहायता से इस विद्रोह को दबवाया और इस प्रदेश का क्षत्रप मचातुस (Machatus) के पुत्र फिलिप को नियुक्त किया गया। इस फिलिप को बाद में सिकन्दर के साथ झेलम के सहारे-सहारे दक्षिण की ओर आने वाली यात्रा में भाग लेना पड़ा था।

(3) सिन्धु और पंजाब की नदियों के संगम वाला प्रदेश—इसका क्षत्रप सिकन्दर ने फिलिप को नियुक्त किया। फिलिप का यह प्रांत उसके पुराने प्रान्त के साथ मिला दिया गया अथवा उसे पुराने प्रान्त को छोड़कर नए प्रान्त में आना पड़ा था, यह स्पष्ट नहीं है। शायद यह एक नया प्रांत ही था क्योंकि इन प्रदेशों के मध्य आम्भी का राज्य था जिसका स्वामी स्वयं आम्भी को मान लिया गया था।

(4) एरियन ने सिसिकोट्टोस को एस्सेकेनियनों का क्षत्रप लिखा है।

(5) आम्भी का राज्य—इसकी राजधानी तक्षशिला थी और यह सिन्ध से झेलम तक विस्तृत था।

(6) पोरस का राज्य—इसमें झेलम से ब्यास तक का सम्पूर्ण प्रदेश था।

(7) अभिसार-राज्य—इसमें उत्तर का पर्वतीय प्रदेश था। अर्सेकिज़ को भी अभिसार-नरेश के अधीन कर दिया गया था।

(8) सिन्धु की दक्षिणी उपत्यका—यह सिन्धु और पंजाब की नदियों के संगम के कुछ दक्षिण से लेकर सिन्धु के मुहाने तक और पश्चिम में हाब नदी तक विस्तृत था। इसका क्षत्रप एगेनोर (Agenor) के पुत्र पीथोन को नियुक्त किया गया।[1]

1. एरियन ने पीथोन के साथ ओक्सियार्टिज़ का भी उल्लेख किया है परन्तु जैसा कि बेवन ने कहा है यहां किसी लिपिक द्वारा ओक्सियार्टिज़ का नाम भूल से लिख दिया गया है।

CC-0. Agamnigam Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(9) ओरिइटाई प्रदेश—यह पीथोन के प्रान्त के पश्चिम में था। इसका गवर्नर एपोलोफेनिज़ को नियुक्त किया गया।

विश्व-साम्राज्य की अपनी कल्पना को व्यावहारिक रूप देने के लिए सिकन्दर ने विजित प्रान्तों में अपने यूनानी और मकदूनी सैनिकों का विवाह एशियायी स्त्रियों से करने तथा विजित प्रान्तों में महत्त्वपूर्ण स्थलों पर यूनानी संस्कृति तथा सैन्य शक्ति के केन्द्र स्वरूप नए नगर और छावनियां स्थापित करके वहां यूनानी और मकदूनी सैनिकों को बसाने की नीति अपनाई। इनमें विवाह-सम्बन्ध की नीति, जिसका पालन उसने बैक्ट्रियायी राजकुमारी रुख्साना से विवाह करके स्वयं भी किया, जाति प्रथा के देश भारत में बहुत सफल नहीं हो सकती थी, परन्तु नए नगर बसाने में कोई बाधा नहीं थी। नए नगरों के लिए उपयुक्त स्थलों का चुनाव करने की उसमें अद्भुत क्षमता थी। पेरोपेमिसेडाई में 'हिन्दुकुश के पादमूल में स्थित सिकन्दरिया', झेलम के तट पर बुकेफाला[1] और निकाइया, चिनाब के तट पर हेफाइस्शन द्वारा बसाया गया अथवा प्राचीर द्वारा रक्षित किया गया नगर (जिसका नाम नहीं मिलता), पंजाब की नदियों और सिन्धु के संगम पर बसाया गया नगर और नावांगन (dockyard) तथा सौद्रै राज्य में बसाया गया सिकन्दरिया नगर तथा उसका नावांगन इसके प्रमाण हैं। इनके अतिरिक्त उसने कुछ पुराने नगरों को भी प्राचीर आदि से सुरक्षित करके और वहां यूनानी सैनिक बसाकर नया रूप दिया। बाजौर की घाटी में एरिगएम, मूसिकेनोस् राज्य के अनेक नगर, पाटल तथा ओरिइटाई की राजधानी ओरा इसके उदाहरण हैं। ओर्नोस्, तक्षशिला, पुष्कलावती तथा अन्य अनेक नगरों में उसके द्वारा यूनानी सैनिकों की छावनियां स्थापित किए जाने की चर्चा यथास्थल की ही जा चुकी है। क्रेटेरस, पीथान, हेफाइस्शन तथा पोरस से उसे इन छावनियों को स्थापित करने में बहुत सहायता मिली थी। पाटल तथा उसके दक्षिण में सिंन्धु की पूर्वी धारा के बीच उसने बन्दरगाह भी स्थापित किए अथवा पुराने बन्दरगाहों का पुनर्निर्माण कराया।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सिकन्दर का इरादा जीते गये भारतीय प्रदेशों को अपने विश्व-साम्राज्य में बनाए रखने का था। लेकिन इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसने जो कदम उठाये उनकी प्रभावशीलता का पता चलने के पूर्व ही, बत्तीस वर्ष कुछ माह की आयु में, जून 323 ई० पू० में उसकी मृत्यु हो गई। अल्पायु में तथा अप्रत्याशित रूप से मरने के कारण वह अपने पीछे कोई स्पष्ट उत्तराधिकारी नहीं छोड़ गया, यद्यपि उस समय उसकी रानी गर्भवती थी। इस स्थिति के परिणामस्वरूप उत्पन्न हो सकने वाले संकट को रोकने के लिए उसके सेनापतियों ने बैबिलोन में तत्काल एक समझौता किया जिसमें भारत की स्थिति यथावत् छोड़ दी गई। परन्तु यह समझौता सेनापतियों की महत्त्वाकांक्षा पर बन्धन सिद्ध नहीं हुआ। इस पर पर्डिक्कस ने, जो ज्येष्ठ हाइपार्क था और जिसे अश्वारोही तथा हस्ती सेना का समर्थन प्राप्त था, प्रस्ताव

1. प्लुटार्क के अनुसार सिकन्दर ने एक नगर अपने कुत्ते पेरिटास (Peritas) की स्मृति में भी स्थापित किया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रखा कि अगर रुख्साना के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हो तो उसे सम्राट् घोषित कर दिया जाय। लेकिन मेलियगर (Meleager) के भड़काने पर पदाति सेना ने सिकन्दर के पिता द्वितीय फिलिप के जारज पुत्र तृतीय फिलिप का समर्थन किया। इस मतभेद के परिणामस्वरूप हुए झगड़े में पर्डिक्कस की हत्या कर दी गई। 321 ई० पू० में त्रिपार्डिसस में साम्राज्य का दूसरा विभाजन हुआ जिसकी नए रीजेण्ट एण्टिपेटर (Antipater) द्वारा की गई घोषणा का डायोडोरस द्वारा प्रदत्त भारत विषयक अंश इस प्रकार है : "तब एण्टिपेटर ने प्रान्तों का पुनर्विभाजन किया और···'इण्डिया', जो पेरोपेमिसेडाय से लगा था, एगेनोर के पुत्र पीथोन को दिया, तथा पड़ोस के राज्यों में उसको जो सिन्धु के किनारे-किनारे था उसने पोरस को दिया एवं झेलम के तट वाला राज्य टेक्सिलिज़ (अर्थात् आम्भी) को, क्योंकि किसी योग्य सेनापति के नेतृत्व में निष्ठावान सैनिकों को भेजे बिना इन राजाओं को हराना असम्भव था" (डायोडोरस, 18.39)। इस अवतरण में पोरस का उल्लेख सिन्धु के साथ और आम्भी का झेलम के साथ समस्यामूलक हैं। स्मिथ का विचार है कि डायोडोरस की गलती से यहां पोरस और आम्भी के नाम अदल-बदल गए हैं।[1] उस अवस्था में मानना पड़ेगा कि इस घोषणा में सिन्ध प्रान्त को, उसका उल्लेख न करके, स्वतन्त्र मान लिया गया है। परन्तु एफ० डब्ल्यु० टॉमस, मार्शल और रायचौधुरी आदि की धारणा है कि एण्टिपेटर ने पीथोन को सिन्ध से पेरोपेमिसेदाय भेजने के बाद सिन्ध प्रान्त को भी पोरस को ही सौंप दिया था।[2] इस दृष्टि से 'झेलम के तटवर्ती प्रदेश का राजा' रूप में आम्भी का उल्लेख भी सही है क्योंकि आम्भी झेलम से सिन्धु तक विस्तृत भूभाग का स्वामी था और स्वयं तक्षशिला नगर झेलम नगर से बहुत दूर नहीं था। एण्टिपेटर द्वारा सिन्ध प्रान्त पोरस को दिये जाने का एक विशेष कारण ज्ञात है। भारत से लौटते समय गेड्रोशिया पार करने के बाद कार्मेनिया में सिकन्दर को सूचना मिली थी कि फिलिप को, जो सिन्धु और पंजाब की नदियों के संगम वाले प्रदेश का क्षत्रप था, यूनानी सैनिकों ने मार डाला है यद्यपि फिलिप के मकदूनी अंगरक्षकों ने हत्यारों का भी वध कर दिया है। तब सिकन्दर ने यूडेमस (Eudemos), जो थ्रेसी सेना का कमाण्डर था, तथा आम्भी को नए क्षत्रप के नियुक्त किए जाने तक उस प्रान्त की देखभाल का भार सौंप दिया था। इस यूडेमस ने सत्ता-संघर्ष में एण्टिपेटर के प्रतिद्वन्द्वी यूमीनिज़ (Eumenes) का साथ दिया। इससे रुष्ट होकर एण्टिपेटर ने सिन्धु के क्षत्रप पद पर उसे नियुक्त करने के बजाय पोरस को वह प्रान्त सौंप दिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

त्रिपार्डिसस की सन्धि (321 ई० पू०) के बाद किसी साक्ष्य में भारतीय प्रान्तों पर यूनानी आधिपत्य की चर्चा नहीं मिलती। लेकिन इतना ज्ञात है कि 321 ई० पू० के कुछ ही बाद में एण्टिपेटर के विरुद्ध यूमीनिज़ को सहायता देने के लिए यूडेमस भारत छोड़कर चला गया था। डायोडोरस के अनुसार उस समय उसके साथ 3,000 पदाति,

1. अ० हि० इ०, पृ० 115, टि० 2।
2. मार्शल, टैक्सिला, 1961, 2, पृ० 18; रायचौधुरी, ए० न० मौ०, पृ० 149-50।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

500 अश्वारोही तथा 120 हाथी थे और इन हाथियों को उसने एक भारतीय राजा को (एक पाठ के अनुसार पोरस) को धोखे से मार कर प्राप्त किया था। जो भी हो, यूडेमस 316 ई० पू० में यूमीनिज़ के वध के पूर्व अवश्य ही भारत से जा चुका था। इसी प्रकार पीथोन भी, जो पेरोपेमिसेदाय का क्षत्रप नियुक्त हुआ था, लगभग 316 ई० पू० में अपने मित्र एण्टिगोनस को, जो उत्तराधिकार के युद्ध में एक प्रत्याशी था, सहायता देने चल गया और 312 ई० पू० में गाजा के युद्ध में मारा गया। इन घटनाओं के दौरान भारतीय प्रदेश में गम्भीर परिवर्तन हुए और चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिन्धु के इस ओर (पूर्व) के प्रदेश अधिकृत कर लिया। जिस समय (लगभग 305 में) सेल्युकस, जो अन्ततोगत्वा सिकन्दर के एशियायी प्रान्तों का अधिपति बना, और चन्द्रगुप्त मौर्य का संघर्ष हुआ सिन्धु नदी ही मौर्य और सेल्युसी साम्राज्यों के बीच सीमा रेखा थी।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सिकन्दर द्वारा विजित सिन्धु पार के भारतीय प्रदेश 321 ई० पू० तक यूनानी आधिपत्य को मानते रहे। इसके कुछ ही वर्षों के उपरान्त सिन्धु के इस पार के प्रदेशों पर चन्द्रगुप्त मौर्य का अधिकार हो गया। सेल्युकस को परास्त करने के बाद चन्द्रगुप्त ने उससे हिन्दुकुश और एराकोशिया तक विस्तृत भूभाग भी छीन लिया। इस प्रकार सिकन्दर की मृत्यु के उपरान्त बीस वर्ष से कम समय में ही न केवल भारत वरन् भारत-ईरान के मध्यवर्ती प्रदेश भी यूनानी आधिपत्य से मुक्त हो गये।

भारत में सिकन्दर का साम्राज्य अस्थायी सिद्ध होने का सबसे बड़ा कारण उसकी अप्रत्याशित मृत्यु थी। अगर वह जीवित रहता तो शायद भारत और ईरान का ही नहीं विश्व का इतिहास बहुत कुछ बदल जाता। उसकी मृत्यु के परिणामस्वरूप भारत में बसाये गये यूनानी और मकदूनी सैनिक घर लौटने के लिए बेचैन हो उठे। सिकन्दर के जीवित रहने पर दस-बीस साल में भारत में उनकी जड़ें शायद जम जातीं, लेकिन भारत विजय के तत्काल बाद सिकन्दर के मर जाने से उनको भारत में रहने को विवश करना सम्भव नहीं था।[1] दूसरे, सिकन्दर ने भारत में जो सैनिक बसाए थे उनमें भी दलबन्दी थी। उनमें कुछ यूनानी थे और कुछ मकदूनी। उनमें परस्पर झगड़ा रहता था। फिलिप की मृत्यु का कारण उसके यूनानी सैनिक ही थे जो स्वयं फिलिप के अंगरक्षकों द्वारा मारे गये थे। यह दलबन्दी भारत में यूनानी आधिपत्य के लिए दुर्बलता का स्रोत थी। तीसरे, भारत में बसे मकदूनी सैनिक और सेनापति भी उपदलों में विभाजित थे जिनमें सत्ता के लिए खूब संघर्ष हुआ। ऐसी स्थिति में चन्द्रगुप्त मौर्य के लिए यूनानी आधिपत्य के विरुद्ध सफल युद्ध करना कोई कठिन काम न था।

1. यूनानी और मकदूनी सैनिक हमेशा इसी ताक में रहते थे कि कब मौका मिले और वे इन उपनिवेशों को छोड़कर भाग निकलें। मालवों से युद्ध करते समय जब सिकन्दर घायल हुआ और उसकी मृत्यु की अफवाह फैली तो बैक्ट्रिया से करीब 3000 यूनानी प्रवासी अपने देश को भाग निकले (डायोडोरस, 17.99)। सिकन्दर स्वयं इन उपनिवेशों को दण्डित यूनानियों को बसाने के लिए उपयुक्त बस्तियां समझता था (जस्टिन, 12.5,8,13)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिकन्दर के आक्रमण के प्रभाव

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सिकन्दर का आक्रमण सैनिक दृष्टि से तो शानदार था, परन्तु राजनीतिक दृष्टि से यह असफल रहा। इस असफलता का कारण स्वयं सिकन्दर की नीति नहीं वरन् उसकी अप्रत्याशित मृत्यु थी। उसके आक्रमण का भारतीय इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है। नीख़ (Niese) जैसे कुछ विद्वानों के अनुसार सिकन्दर का भारत पर आक्रमण एक अत्यन्त प्रभावशाली घटना थी और भारत का आगामी विकास इसके अनुसार ही हुआ।[1] इसके विपरीत स्मिथ का विचार है कि यह आक्रमण, जो स्थायी विजय के लिए किया था, सिकन्दर की अप्रत्याशित मृत्यु के परिणामस्वरूप एक ऐसा शानदार धावा मात्र रह गया जिसका भारत पर सिवाय युद्ध-जनित उथल-पुथल के कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इस मत के अनुसार सिकन्दर का आक्रमण भारतीय इतिहास में 'मात्र एक घटना' था जिसके भारत पर प्रभाव को एम० आर्नाल्ड नामक कवि का यह कथन भलीभांति व्यक्त करता है :

उसने विजयघोष करती सेनाओं को गुजर जाने दिया,
और फिर विचार में डूब गया।

"भारत अपरिवर्तित रहा, युद्ध के घाव शीघ्र भर गए, उजाड़ गए खेत फिर मुस्कराने लगे..... भारत का यूनानीकरण नहीं हुआ, वह अपने 'शानदार एकान्त' (splendid isolation) में रहता रहा तथा मकदूनी तूफान को शीघ्र भूल गया। कोई भी भारतीय लेखक—हिन्दू, बौद्ध या जैन—सिकन्दर या उसके कार्यों की जरा भी चर्चा नहीं करता।"[2] लेकिन सिकन्दर का आक्रमण ऐसी मामूली घटना नहीं थी कि उसके बाद भारत फिर वैसा ही हो जाता जैसा पहले था। एक, इस आक्रमण से भारतीयों के सम्मुख यह स्पष्ट हो गया कि सबल अनुशासित सेना के साथ आने वाले आक्रमणकारी का सामना खोखले स्वतन्त्रता-प्रेम से नहीं किया जा सकता। इसके लिए उसी के समान शक्तिशाली अनुशासित सैनिक शक्ति की आवश्यकता होती है।[3] दूसरे, सिकन्दर के आक्रमण के परिणामस्वरूप उत्तरापथ के छोटे-छोटे राजा दुर्बल हो गए जिससे मौर्य साम्राज्य की स्थापना में सहायता मिली। एक प्रकार से चन्द्रगुप्त मौर्य का कार्य अगर पूर्व में नन्दों ने आसान किया तो पश्चिम में सिकन्दर ने। सिकन्दर के आक्रमण से चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने प्रत्यक्ष रूप से भी बहुत कुछ सीखा होगा क्योंकि वे उस समय पंजाब में ही थे, यद्यपि स्वयं चन्द्रगुप्त मौर्य पर सिकन्दर के जीवन और सफलताओं का कितना गहरा प्रभाव पड़ा इसकी आज केवल कल्पना ही की जा सकती है। तीसरे, यह सही होते हुए भी कि भारत का ईरान की तरह यूनानीकरण नहीं हुआ इतना निश्चित है कि सिकन्दर के आक्रमण के कारण परवर्ती युग में बैक्ट्रियायी यूनानियों के

1. अ० हि० इ०, पृ० 118, टि० 1 में उद्धृत।
2. अ० हि० इ०, पृ० 117-18; मुकर्जी का भी यही विचार है।
3. लेकिन इस पाठ को भारतीयों ने आत्मसात किया या नहीं, यह सर्वथा भिन्न प्रश्न है। उन्होंने यूनानी युद्ध कला से भी स्पष्टतः कुछ नहीं सीखा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आक्रमण हुए और उसके परिणामस्वरूप भारतीय कला (विशेषत: गन्धार कला), मुद्रा-प्रणाली तथा खगोल-विद्या पर न्यूनाधिक यूनानी प्रभाव पड़ा। सिकन्दर के द्वारा स्थापित नगर भी यद्यपि ईरान में बसाए गए नगरों की तरह स्थायी सिद्ध नहीं हुए, परन्तु इनमें कुछ की चर्चा परवर्ती इतिहास में मिलती है। उदाहरणार्थ, 'महावंश' में अलसंद (सिकन्दरिया) नगर का उल्लेख है तथा 'पेरिप्लस ऑव एरिथ्रीयन सी' में बुकेफाला का। अशोक ने भी पश्चिमोत्तर भारत में स्थित 'योनों' (यवनों) का उल्लेख अपने अभिलेखों में किया है। उसने एक यवन राजा को, जिसका नाम तुषास्फ था, उच्च पद पर नियुक्त किया था।

सिकन्दर के आक्रमण का सबसे गहरा प्रभाव परोक्ष रूप से पड़ा। एक, उसके आक्रमण से भारत और यूनान में पहली बार प्रत्यक्ष और घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हुआ। इससे यूनानियों के भारत विषयक ज्ञान में इतनी वृद्धि हुई कि बहुत से विद्वान् तो इसे यूरोप वालों के लिए उसी प्रकार एक नई दुनिया की खोज मानते हैं जैसे कोलम्बस ने बाद में अमरीका की खोज की थी। यह तुलना अतिरंजित हो सकती है क्योंकि भारत और यूनान ईरान के माध्यम से पहले से ही परस्पर परिचित थे, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भारत के विषय में जितना विश्वसनीय ज्ञान यूनानियों को अब हुआ उतना पहले नहीं था। इसी प्रकार सिकन्दर द्वारा सिन्धु नदी का अन्वेषण तथा फारस की खाड़ी के मार्ग से अपने जलपोतों को लौटाना भौगोलिक ज्ञान तथा व्यापारिक सम्बन्धों में वृद्धि का कारण सिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त सिकन्दर के आक्रमण से भावी विजेताओं को प्रेरणा मिली। उदाहरणार्थ, सेल्युकस ने सिकन्दर की मृत्यु के तत्काल बाद ही उसके अधूरे स्वप्न को चरितार्थ करने की चेष्टा की। उसका तथा बैक्ट्रियायी यूनानियों का भारत पर आक्रमण एक प्रकार से सिकन्दर के आक्रमण का परिशिष्ट थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 18

जनपदयुगीन सामाजिक एवं आर्थिक अवस्था

जनपदयुगीन संस्कृति का स्वरूप

जनपदयुगीन सांस्कृतिक जीवन का समष्टिगत चित्र प्रस्तुत करना दुष्कर है। इस युग की संस्कृति का स्वरूप इन्द्रधनुषी है जिसमें नाना रंग बिखरे पड़े हैं। प्रायः प्रत्येक जनपद सांस्कृतिक जीवन की एक इकाई था। यद्यपि विभिन्न जनपदों के सांस्कृतिक जीवन में न्यूनाधिक समानता थी, तथापि जनपदों ने अपनी पृथक् सांस्कृतिक परम्पराओं का भी विकास किया जिन पर वे गर्व करते थे तथा जिन्हें जीवित रखने के लिए वे प्रयत्नशील थे। इन स्थानीय संस्कृतियों के विकास के पीछे अनेक प्रेरक तत्त्व थे जिनमें जनपदविशेष के निवासियों का जातीय स्वाभिमान, नदियों एवं वनों की दुर्गमता के कारण जनपदों में गहरे पारस्परिक सम्पर्क का अभाव तथा प्रत्येक जनपद का विशिष्ट भौगोलिक-आर्थिक पर्यावरण आदि प्रमुख माने जा सकते हैं। देश में राजनीतिक, धार्मिक अथवा भाषा-सम्बन्धी एकता के सूत्र का अभाव था। परिणामतः विभिन्न जनपदों की सांस्कृतिक परम्पराएं परस्पर निमज्जित होकर देशव्यापी संस्कृति को जन्म नहीं दे सकी थीं। यह कार्य आंशिक रूप से मौर्य साम्राज्य की स्थापना के बाद सम्पन्न हुआ।

ऐतिहासिक सामग्री के अप्रचुर होने के कारण जनपदों के सांस्कृतिक जीवन का पृथक्-पृथक् विवरण देना कठिन है। ऐसी स्थिति में नाना जनपदों की संस्कृति में परस्पर सूक्ष्म-भेद को स्वीकार करते हुए भी स्थूलतः जनपदयुगीन संस्कृति को दो प्रमुख सांस्कृतिक क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है। वैदिक सांस्कृतिक परम्परा से प्रभावित जीवन पद्धति उदीच्य भारत और मध्यदेश के जनपदों में दिखाई देती है। यहां की संस्कृति मुख्यतः ब्राह्मण धर्म से प्रभावित प्रवृत्तिमूलक संस्कृति थी। इनमें उदीच्य भारत की संस्कृति का चित्र पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में सुरक्षित है[1] तथा मध्यदेश के जनपदों की संस्कृति का स्वरूप उत्तर वैदिक साहित्य[2] एवं 'महाभारत' के प्राचीन अंशों में प्रतिबिम्बित है। इससे सर्वथा भिन्न पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार की मुनि-श्रमण परम्परा से प्रभावित निवृत्तिमूलक संस्कृति थी।[3] इस प्रदेश में शाक्यादि गणों तथा निर्ग्रन्थादि श्रमणों का बाहुल्य था। इस प्राच्य संस्कृति का चित्र हमें प्राचीन बौद्ध एवं जैन साहित्य

1. अग्रवाल, वासुदेव शरण, पाणिनिकालीन भारतवर्ष।
2. राव, विजय बहादुर, उत्तर वैदिक समाज एवं संस्कृति।
3. द्र०, पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र, बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृ० 22।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में उपलब्ध होता है ।[1] भौगोलिक दृष्टि से काशी और कोसल के जनपदों को ब्राह्मण एवं श्रमण संस्कृतियों का संगम माना जा सकता है । इस युग में विरोधी जीवन-मूल्यों के बीच समन्वय एवं सामंजस्य का महत्त्वपूर्ण प्रयत्न हुआ जिसके परिणामस्वरूप पुरुषार्थ तथा चतुराश्रम जैसी नवीन अवधारणाएं विकसित हुईं ।

आर्थिक जीवन

जनपद युग की अर्थ-व्यवस्था में आरण्यक, ग्राम्य एवं नागर तत्व साथ-साथ दिखाई देते हैं । एक ओर आखेटक निषादों और कैवर्तों का आरण्यक जीवन था जिसमें आदिम अनुत्पादकता की झलक मिलती है, तो दूसरी ओर पशुपालन, कृषि तथा सम्बद्ध व्यवसायों पर आधृत ग्राम्य अर्थ-व्यवस्था का विकास हो रहा था । इन दोनों से भिन्न वाणिज्य और व्यापार पर अवलम्बित उदीयमान नागर अर्थ-व्यवस्था थी जो द्रव्य युग के आविर्भाव के साथ समृद्ध हो रही थी तथा नये जीवन-मूल्यों का निर्माण कर रही थी ।

आर्थिक विकास की उपर्युक्त तीनों स्थितियों के होते हुए भी जनपद युग की अर्थ-व्यवस्था प्रधानतः ग्राम्य ही थी । ग्राम के केन्द्र में 'वास्तु' (आवास) होते थे जो प्रायः मिट्टी, ईंट-पत्थर और लकड़ी की सहायता से बनाये जाते थे । 'वास्तु' के चतुर्दिक् कृषियोग्य भूमि होती थी जिसे 'क्षेत्र' कहते थे तथा क्षेत्र के आगे गोचर भूमि होती थी, जिसे 'व्रज' कहा जाता था । 'व्रज' के आगे प्रायः अरण्यों का विस्तार होता था । वास्तु और क्षेत्र पर व्यक्तिगत स्वत्व स्वीकृत था ।[2] प्राचीन बौद्ध साहित्य में व्यक्तियों द्वारा भूमि का दान और विक्रय अनेकत्र उल्लिखित हैं । इस संदर्भ में श्रावस्ती के राजकुमार जेत द्वारा जेतवन का विक्रय तथा वैशाली की नगरवधू आम्रपाली द्वारा बुद्ध को आम्रकानन का उपहार उद्धरणीय हैं । तथापि कतिपय जनपदों में प्राचीनतर सामुदायिक स्वत्व का आंशिक प्रभाव भी शेष था । ऐसे जनपदों में 'वास्तु' और 'क्षेत्र' का क्रय-विक्रय ग्राम-सभा की अनुमति के बिना सम्भव नहीं था ।[3] गोचर भूमि पर ग्रामवासियों का संयुक्त स्वामित्व माना जाता था जहां ग्रामवासियों के पशु निर्बाध चरते थे ।[4] आरण्यक भूमि पर किसी का स्वत्व नहीं था । आखेटकों के अतिरिक्त अरण्यों में चोरों और डाकुओं के निवास का उल्लेख भी मिलता है । बहुधा विशाल पशु-यूथों के साथ गोपालक भी इन जंगलों में घूमते थे । पुराने ग्रामों के आकार में वृद्धि तथा नये ग्रामों की स्थापना के साथ वनों का विस्तार कम हो रहा था । गंगाघाटी के दीर्घारण्यों को जलाकर ग्रामों तथा नगरों की स्थापना हो रही थी । इस संदर्भ में 'शतपथ ब्राह्मण' में उल्लिखित गौतम राहूगण और विदेघ माथव द्वारा अग्निवैश्वानर का अनुसरण करते हुए सदानीरा के तट तक आगमन

1. द्र०, फिक (अंग्रेजी अनुवाद) सोशल ऑर्गेनाइजेशन इन नॉर्थ-ईस्टर्न इण्डिया इन दि एज ऑव बुद्ध; लाहा, बी० सी०, इण्डिया इन अर्ली बुद्धिस्ट एण्ड जैन लिटरेचर; डेविड्स, टी० डब्ल्यु० रीज, बुद्धिस्ट इण्डिया; इत्यादि ।
2. बोस, ए० एन०, सोशल एण्ड रूरल एकॉनमी ऑव नॉर्दर्न इण्डिया, पृ० 40-42 ।
3. डेविड्स, बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० 34 ।
4. द्र०, बोस, पूर्वो, पृ० 48 ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा 'महाभारत' में उल्लिखित खाण्डव-वन-दहन उल्लेख्य हैं। पूर्वी भारत में शाक्यों और कोलियों के गणराज्य भी वनों के उच्छेद द्वारा ही स्थापित हुए थे।

बौद्ध साहित्य में कतिपय व्यावसायिक ग्रामों का उल्लेख मिलता है। ये ग्राम बढ़इयों, कुम्हारों, शिकारियों और चाण्डालों आदि के थे।[1] किन्तु अधिकांश ग्रामों की जनसंख्या मिश्रित थी वहां पशुपालक, कृषक एवं शिल्पी साथ-साथ निवास करते थे। आर्थिक दृष्टि से प्रत्येक ग्राम एक आत्म-निर्भर इकाई था। ग्रामवासी सहकारिता एवं वस्तु-विनिमय के माध्यम से सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए संतोषपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। यद्यपि ग्राम्य जीवन में कृषि-सम्बन्धी यन्त्रों तथा घरेलू उपयोग में आने वाले उपकरणों के उत्पादन हेतु कुछ शिल्प एवं उद्योग विकसित हो रहे थे तथापि ग्राम्य अर्थ-व्यवस्था का मूल आधार पशुपालन एवं कृषि ही थे।

यायावर जीवन के अन्त तथा कृषि की महत्ता में वृद्धि के परिणामस्वरूप जीविका के स्वतन्त्र साधन के रूप में पशुपालन का महत्त्व अपेक्षाकृत कम हुआ। फिर भी जनपद युग में विशाल पशु वैभव से युक्त ऐसे समृद्ध गोपाल अज्ञात नहीं थे, जिनका एकमात्र व्यवसाय पशुपालन ही था। कृषि कार्य में पशुबल की सहायता अपेक्षित थी। अतः कृषि और पशुपालन की एक मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का भी विकास हो रहा था। एक प्राचीन बौद्ध संदर्भ में, जो बुद्ध वचन माना जाता है, कहा गया है : "माता-पिता एवं अन्य सम्बन्धियों की भांति ही गाय एवं बैल हमारे बन्धु हैं, क्योंकि इन्हीं पर खेती निर्भर है। वे हमें भोजन, बल, मुख की कान्ति और सुख प्रदान करते हैं। यही जानकर प्राचीन काल के ब्राह्मण गोधन की हत्या नहीं करते थे।"[2]

जनपद युग में पशु स्पृहणीय धन समझे जाते थे। दान, दक्षिणा और उपहार में प्रायः गायें प्रदान की जाती थीं। विनिमय के माध्यम के रूप में भी इनका उपयोग अभी अंशतः प्रचलित था। पशुपालन न्यूनाधिक रूप से समाज के प्रायः सभी वर्गों में लोकप्रिय था। जातकों से ज्ञात होता है कि राजा लोग भी पशु रखते थे।[3] 'धूमकार जातक' एक अजपालक ब्राह्मण का उल्लेख करता है।[4] राजगृह के समीप कुछ ऐसे ब्राह्मण परिवार थे, जिनकी जीविका का एकमात्र साधन पशुपालन था।[5] प्राचीन बौद्ध साहित्य में धनिय नामक श्रेष्ठिपुत्र का उल्लेख मिलता है जिसके पास तीस सहस्र पशु थे। इनमें 27 सहस्र तो केवल दूध देने वाली गायें थीं।[6] अंग के श्रेष्ठि मंडक ने अपने पशुओं की देखभाल के लिए 1250 चरवाहे नियुक्त किये थे।[7] पशुओं के स्वामित्व को लेकर किसी प्रकार

1. वही, पृ० 86।
2. सुत्त निपात, पृ० 295-96।
3. जातक, 1.240।
4. जातक, 3.401।
5. चीनी धम्मपद (बील का अनुवाद), पृ० 64।
6. द्र०, सुत्त निपात।
7. महावग्ग, 34-19।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

का कलह न हो इसलिए पशुओं को लांछित कर दिया जाता था। विशाल पशु-यूथों को चरवाहे व्रज और वन में चराते थे। जंगलों में चरवाहों को हिंस्र पशुओं से अपने पशु यूथों की रक्षा तो करनी ही पड़ती थी, उन्हें चोरों से भी सावधान रहना पड़ता था। पशुओं की चोरी इतनी अधिक बढ़ गई थी कि कौटिल्य को पशु चुराने वालों के लिए मृत्युदण्ड की व्यवस्था करनी पड़ी।[1]

पालित पशुओं में गाय, बैल, भेड़, बकरी, घोड़ा और गधा विशेष रूप से चर्चित हैं। 'महाभारत' में इन्हें ग्राम्य पशु कहा गया है। इनके अतिरिक्त भैंस, ऊंट, हाथी, कुत्ता और सूअर पालने का भी उल्लेख मिलता है। युद्ध में सहायक तथा वाहन के रूप में विशेष उपयोगी होने के कारण हाथी और घोड़े राजकीय आकर्षण के विषय बन चुके थे।[2] पशुओं से दूध और उससे बनने वाले पदार्थ, मांस और वस्त्र-निर्माण के लिए ऊन तो प्राप्त होते ही थे, साथ ही कृषि, वाणिज्य और युद्ध में भी पशु-शक्ति का महत्त्व-पूर्ण उपभोग होने लगा था। पशु-धन की इस वर्धमान उपयोगिता को दृष्टि में रखते हुए उनके संहार को रोकने का भी यत्न प्रारम्भ हो गया था।[3] गाय को वैदिक युग में ही 'अघ्न्या' घोषित कर दिया गया था, किन्तु वैदिक कर्मकाण्डों एवं यज्ञों के प्रचलन तथा मांसाहार की प्रवृत्ति के कारण पशु वध होता रहा। यद्यपि अहिंसावादी बौद्ध और जैन धर्मों के उदय के साथ धार्मिक कार्यों में पशुहिंसा का तीव्र विरोध हुआ तथापि पशु-वध का पूर्ण निषेध नहीं हो सका। बौद्ध साहित्य में गोघातकों का अनेकत्र उल्लेख मिलता है।[4] गाय, वृषभ तथा अन्य अनेक पालतू एवं वन्य पशुओं का मांस आहार रूप में ग्रहण किया जाता था। मांसाहार बौद्ध भिक्षुओं के लिए भी अज्ञात नहीं था। 'महापरिनिब्बानसुत्त' से ज्ञात होता है कि स्वयं तथागत को महापरिनिर्वाण के कुछ पूर्व पावा में चुन्दकम्मार के यहां आतिथ्य में 'सूकरमद्दव' ग्रहण करना पड़ा था। कालान्तर में सम्राट् अशोक ने पशुबलि को रोकने के लिए राजाज्ञायें प्रसारित कीं, किन्तु वे भी पशु वध का पूर्ण निषेध नहीं कर सके।

कृषि कर्म

जनपदयुगीन समाज के भरण-पोषण का मुख्य आधार खाद्यान्न था। उपनिषदों में अन्न को 'ब्रह्म' कहा गया है। वस्तुतः अन्न ही ऐसा खाद्य था जिसे लम्बी अवधि तक सुरक्षित रखा जा सकता था। कृषि के क्षेत्र में अतिरिक्त उत्पादन ने वाणिज्य और व्यापार के विकास एवं नागरिक पुनरुत्कर्ष को प्रेरणा दी तथा अतिरिक्त उत्पादनजनित अवकाश ने उद्योगों, शिल्पों एवं सूक्ष्म सांस्कृतिक तत्त्वों के विकास को तीव्रता प्रदान की।

इस युग में वर्ष में तीन फसलें पैदा की जाती थीं। बसन्त में बोई जाने वाली फसल

1. अर्थशास्त्र, 2 29।
2. जातक, 3.322।
3. सुत्त निपात, पृ० 295-96।
4. जातक, 4.361; 2.50; 6.111; दीघ निकाय 22.6; मज्झिम निकाय 3.91।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वासन्तक कही जाती थी। ग्रीष्मावसान के समय बोई जाने वाली फसल ग्रैष्मक तथा आश्विन में बोई जाने वाली फसल आश्वयुजक कहलाती थी। किन्तु खरीफ और रबी की ही फसलें मुख्य थीं। खरीफ की फसलों में चावल मुख्य था जिसकी विभिन्न जातियों का उल्लेख ब्राह्मण और बौद्ध साहित्य में मिलता है। पूर्वी भारत के गणराज्यों में, जो अधिकांशतः हिमालय की तराई में बसे हुए थे, वर्षा के आधिक्य के कारण चावल का उत्पादन ही मुख्य रूप से होता था। रबी की फसल में जौ, गेहूं, तिल, उड़द, मूंग, अलसी आदि विविध अन्नों का उत्पादन होता था। जौ तथा गेहूं उदीच्य भारत तथा मध्यदेश के निवासियों का मुख्य खाद्य था। फलों में विल्व, कपित्थ, आम, जामुन, नारिकेल आदि का विशेष उल्लेख मिलता है। जातकों में गन्ना और कपास की खेती का भी वर्णन अनेकत्र उपलब्ध है।[1]

खेतों को जोतने के लिए हल का प्रयोग होता था जिन्हें बैल खींचते थे।[2] खेत खोदने के लिए कभी-कभी फावड़े का भी प्रयोग होता था। लौह विज्ञान के विकास ने कृषि को पहले की अपेक्षा अधिक सुकर एवं लाभप्रद बना दिया। साधारणतः कृषि वृष्टि पर निर्भर थी। किन्तु कभी-कभी वर्षा के अभाव में सूखा पड़ जाता था और अकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी, अतः कृषकों ने सिंचाई के कृत्रिम साधनों का विकास कर लिया था। सिंचाई के साधनों के रूप में नदियों, नहरों, तालाबों एवं कूपों के जल का उपयोग होता था। बौद्ध साहित्य से सूचना मिलती है कि शाक्यों और कोलियों के बीच रोहिणी नदी के जल को लेकर एक बार संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। वन्य पशुओं के अतिरिक्त पक्षी, टिड्डी और कीड़े फसलों को क्षति पहुंचाते थे।[3] प्राकृतिक प्रकोप और वानस्पतिक रोगों से भी कभी-कभी फसलों को गहरी क्षति पहुंचती थी।[4] यदा-कदा अकाल और दुर्भिक्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। अकाल की स्थिति में राजकीय कोष्ठागारों में संगृहीत अन्न का उपयोग होता था। संकटकाल में उपयोग के लिए इस प्रकार के कोष्ठागारों की व्यवस्था का उल्लेख बौद्ध साहित्य में तो मिलता ही है, सोहगौरा-ताम्रपत्र में भी आपत्काल में उपयोग हेतु दो ग्रामों में राज्य द्वारा कोष्ठागारों की स्थापना का उल्लेख है।[5]

नागर पुनरुत्कर्ष

सैंधव नगरों के पतन के शताब्दियों बाद सातवीं शती ई० पू० में पुनः नगर-सभ्यता का उन्मेष हुआ। 'दीघनिकाय' चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और वाराणसी का उल्लेख प्रमुख नगरों के रूप में करता है। इनके अतिरिक्त बौद्ध साहित्य

1. जातक, 5.37।
2. सुत्त निपात, 295-96।
3. जातक, 4.277; 5.336।
4. अंगुत्तर निकाय, 4.279।
5. सरकार, सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शंस, पृ० 85। (लेकिन यह लेख मौर्यकालीन है—सम्पादक)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में मिथिला, वैशाली, काम्पिल्य, उज्जैन, साकल आदि नगरों का उल्लेख भी मिलता है। ये नगर व्यापार मार्गों पर—अधिकांशतः नदियों के तट पर स्थित थे। नदियों की घाटियों की उर्वर भूमि ने इन नगरों की विशाल जनसंख्या के भरण-पोषण हेतु अन्न भण्डार प्रस्तुत किया तथा नदियों ने उद्यमी सार्थवाहों को व्यापार के लिए सुगम जल-पथों की सुविधा प्रदान की। समृद्ध नगरों की संख्या उत्तरी एवं पश्चिमी भारत की तुलना में पूर्वी भारत में अधिक थी। इसका एक अतिरिक्त कारण यह प्रतीत होता है कि लोहे और तांबे के श्रेष्ठतम भण्डार गांगेय प्रदेश के पूर्वी छोर पर दक्षिणी-पूर्वी बिहार में थे। निश्चय ही इस धातु के सम्भरण ने पूर्वी भारत के सार्थवाहों तथा नगरों के वैभव का विस्तार किया होगा। मगध जनपद, जो बाद में भारत का प्रथम सार्वभौम राजतन्त्र तथा साम्राज्य बना, विशाल खनिज भण्डारों का नियन्त्रण करता था।[1] राज-गृह के समीप की पहाड़ियों पर ऐसी भूगर्भीय रचना है जिसमें लोहा सरलता से मिल जाता है। यहां लौह ऑक्साइड की तहें यथेष्ट मात्रा में मिलती हैं जिन्हें तनिक भी खुदाई के बिना चट्टानों से खुरचा जा सकता है। इन्हें लकड़ी के कोयले से शुद्ध करके और फिर श्वेत ताप में पीटकर आसानी से औजार, आयुध और बर्तन बनाये जा सकते हैं। बिम्बिसार द्वारा अंगविजय के साथ मागध साम्राज्य का जो निर्बाध विस्तार प्रारम्भ हुआ तथा जिसकी चरम परिणति भारतव्यापी साम्राज्य के रूप में हुई, उसकी पृष्ठभूमि में निहित नाना कारणों में एक प्रबल कारण मागध सैनिकों द्वारा प्रचुर मात्रा में लोहे के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग रहा होगा। लौहायुधों के उपयोग से मगध की सामरिक शक्ति और दक्षता बढ़ी जो शताब्दियों तक स्थिर रही। कालान्तर में मगध के प्रमुख नगर पाटलिपुत्र को भारत की राजधानी होने का गौरव प्राप्त हुआ।

जनपदयुगीन नगर उद्योग एवं वाणिज्यजनित वैभव के कारण सुन्दर और शोभन थे। नगरों में श्रेष्ठियों के आवास थे जिनके पास अपार धन था। अंग के मेण्डक, कोशल के अनाथपिण्डक तथा कौशाम्बी के घोषक अपने युग के विख्यात धनपति थे। नगरों में पक्के भवनों का बाहुल्य था जो प्रायः कई मंजिल ऊंचे होते थे। बड़े भवनों में स्तम्भ, गवाक्ष, वातायन, नालियां, कुएं, पाकशालायें, स्नानगृह, शौचालय, कक्ष आदि होते थे। बहुधा दीवारों पर प्लास्तर भी होता था, तथा कभी-कभी दीवारों को चित्रों से सज्जित किया जाता था। नगरों की श्रीवृद्धि के लिए सुन्दर भवन, उद्यान, जलाशय, सड़क एवं वीथी आदि का निर्माण किया जाता था तथा सुरक्षा के लिए परिखा और प्राकार निर्मित थे। जातकों के अनुसार वैशाली नगर में अगणित विशाल भवन, केलिवन तथा कमल तडाग बने हुए थे।[2] सुरक्षा की दृष्टि से यह नगर परिखा एवं प्राकार के द्वारा परिवेष्टित था। 'महाउमग्ग जातक' से ज्ञात होता है कि मिथिला नगर के चतुर्दिक् तीन परिखाएं विद्यमान थीं—जलपरिखा, पंक परिखा एवं रिक्त परिखा। इस नगर

1. बौद्ध-साहित्य के अनुसार अजातशत्रु द्वारा लिच्छवियों पर आक्रमण का एक कारण गंगा के तट पर स्थित एक खान थी जिस पर मागध नरेश अपना नियन्त्रण चाहता था। (दे०, अध्याय 11, परिशिष्ट 2—सम्पादक)।

2. द्र०, उदयनारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर-जीवन।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में भी सुन्दर राजमार्ग, उपवन एवं सरोवर विद्यमान थे।[1]

यद्यपि ग्रामवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ग्राम्य अर्थ-व्यवस्था में भी बढ़ई, लुहार, बुनकर, कुम्हार आदि अनेक व्यवसायी निवास करते थे, तथापि वाणिज्य और क्रय-विक्रय के महत्त्वपूर्ण केन्द्र होने के कारण नगरों में उद्योगों और शिल्पों का विकास बड़े पैमाने पर और द्रुतगति से हुआ। जातकों से ज्ञात होता है कि नगरों में सोने, चांदी, तांबे, कांसे और लोहे आदि से विविध वस्तुओं का निर्माण होता था।[2] विभिन्न प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों तथा अनुलेपों का भी उत्पादन नगरों में प्रचलित था।[3] कताई और बुनाई के कार्य में तन्तुवायों ने विशेष दक्षता प्राप्त कर ली थी। कपड़े सूती ऊनी और रेशमी सभी प्रकार के होते थे। गन्धार में ऊनी वस्त्रों का व्यवसाय अधिक समृद्ध था और वाराणसी में रेशमी वस्त्रों का। शिविदेश अपने सूती वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था। लोहे का काम करने वाले कम्मार कहलाते थे। ये हल, कुदाल, फावड़े, हथौड़े, हंसिया, छुरे, चाकू तथा आयुधों का निर्माण करते थे। नगरों की समृद्धि ने विलास और शृङ्गार को प्रोत्साहन दिया जिससे आभूषण बनाने का व्यवसाय समुन्नत हुआ। बौद्ध साहित्य माला, मेखला, कुण्डल, केयूर, मुद्रिका, चूड़ामणि आदि आभूषणों का उल्लेख करता है। आभूषण सोने, चांदी, मोती, हीरे, हाथीदांत आदि के बनते थे। लकड़ी की सहायता से गाड़ियां, दरवाजे, खिड़कियां तथा विविध प्रकार के फर्नीचर बनाने वाले लोग वर्धकी (बढ़ई) कहलाते थे। हस्तिदन्तकार, मालाकार, नलकार, चर्मकार आदि व्यवसायियों का भी अनेकत्र उल्लेख है। मृद्भाण्ड निर्माण के क्षेत्र में कृष्णवर्णी चमकदार मृद्भाण्डों का आविष्कार विशेषतः उल्लेख्य है।[4] नगरों में प्रायः व्यवसायियों एवं शिल्पियों की अपनी वीथियां होती थीं। ये वीथियां क्रय-विक्रय का केन्द्र होने के कारण जनाकीर्ण रहती थीं।

बौद्ध साहित्य व्यवसायियों एवं शिल्पियों के संगठनों का भी उल्लेख करता है। इन संगठनों को पालि ग्रन्थों में 'श्रेणी' कहा गया है। प्रत्येक श्रेणी का एक प्रधान होता था जिसे 'ज्येष्ठक' कहते थे।[5] एक जातक में पांच सौ बढ़ई परिवारों के एक ज्येष्ठक का उल्लेख है। दूसरा जातक सौ कम्मार परिवारों के ज्येष्ठक का उल्लेख करता है। श्रेणियां अपने सदस्यों के उत्पादन, क्रय-विक्रय, लाभ-हानि आदि के विषय में अनेक प्रकार के नियम बनाती थीं तथा व्यावसायिक हितों के संवर्धन के लिए सचेष्ट रहती थीं।[6] झगड़ों के निर्णय के लिये श्रेणियों के अपने न्यायालय थे। व्यवसाय बहुधा वंशानु-

1. जातक, 3.365।
2. जातक, 3.281।
3. वही, 5.282।
4. कृष्णवर्णी चमकदार मृद्भाण्ड (एन० बी० पी०) भारत के विभिन्न पुरातात्त्विक स्थलों से प्राप्त हुए हैं। इनका प्रारम्भ छठी शताब्दी ई० पू० के लगभग हुआ। बनावट तथा पॉलिश दोनों ही दृष्टियों से ये अत्यन्त आकर्षक हैं।
5. जातक, 2.128।
6. श्रेणियों पर, द्र०, मजूमदार, कॉरपोरेट लाइफ इन एन्श्येण्ट इण्डिया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गत होते थे। पिता द्वारा प्रशिक्षित पुत्र वयस्क होते-होते पैतृक व्यवसाय में सहज दक्षता प्राप्त कर लेता था।

नागर पुनरुत्कर्ष के साथ श्रेष्ठियों के एक नये आर्थिक वर्ग का आविर्भाव हुआ। ये श्रेष्ठि अपने व्यापारजनित वैभव के कारण बौद्ध साहित्य में बहुचर्चित हैं। इनकी वैभवजनित सामाजिक प्रतिष्ठा 'श्रेष्ठि' शब्द की व्युत्पत्ति से स्पष्ट है। समकालीन राजनीति एवं धर्म में श्रेष्ठियों की प्रभावशाली भूमिका अप्रत्याख्येय है। श्रेष्ठिगण प्रसिद्ध व्यापारी थे। व्यापार स्थल एवं जल-पथों से होता था।[1] देश के प्रमुख नगर इन पथों द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुए थे। बौद्ध साहित्य से तीन प्रमुख स्थल-पथों की सूचना मिलती है। इनमें एक मार्ग श्रावस्ती से कौशाम्बी होता हुआ प्रतिष्ठान को जाता था, दूसरा श्रावस्ती से राजगृह और चम्पा होता हुआ पूर्व को, तथा तीसरा मिथिला से श्रावस्ती एवं कौशाम्बी होता हुआ गन्धार तक जाता था। गंगा और यमुना नदियों के जलमार्ग का उपयोग भी व्यापारियों द्वारा होता था जिससे होते हुए वे पूर्वी समुद्र तक पहुंच जाते थे। व्यापारी वस्तुओं को उत्पादन केन्द्रों से एकत्र करते थे तथा विक्रय के लिए सुदूरस्थ प्रदेशों को भेजते थे। स्थल-मार्गों पर व्यापारिक वस्तुओं का वहन बैलगाड़ियों द्वारा होता था। चोरों और डाकुओं के भय से पथ असुरक्षित थे अतः विभिन्न व्यापारी संघ-बद्ध होकर सहस्त्रों गाड़ियों का काफिला (सार्थ) एक साथ भेजते थे तथा कभी-कभी काफिले के साथ सशस्त्र सैनिक भी रखते थे। काफिले का नेता 'सार्थवाह' कहा जाता था। नदियों से होने वाला व्यापार नावों द्वारा होता था। जातकों में समुद्र मार्ग से होने वाले विदेशी व्यापार का भी उल्लेख मिलता है। पूर्व के व्यापारी ताम्रपर्णि से सुवर्णभूमि को जाते थे तथा पश्चिमी भारत के व्यापारी भृगुकच्छ और सुपारक के बन्दरगाहों से बैबीलोन की ओर। मुद्राओं के प्रचलन एवं उपयोग ने व्यापारिक गतिविधि को एक नयी स्फूर्ति प्रदान की।

बुद्ध से समय में भारतीय संस्कृति सर्वप्रथम 'द्रव्य के युग' में अवतीर्ण हुई। क्रय-विक्रय के माध्यम के रूप में मुद्राओं का उपयोग प्रचुरता से होने लगा। पालि ग्रन्थों में सोने, चांदी तथा ताम्र की मुद्राओं का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। स्वर्णमुद्राओं के लिए निष्क[2], सुवर्ण[3], सुवर्णमासक[4], तथा हिरण्य[5] शब्दों का प्रयोग मिलता है। ताम्र-मुद्राओं को कार्षापण कहते थे।[6] रजत कार्षापण भी प्रचलित थे। कार्षापण के अतिरिक्त अर्ध कार्षापण तथा पाद कार्षापण का भी उल्लेख 'अष्टाध्यायी' में मिलता है।[7] पाणिनि ने आहत

1. व्यापार पथों एवं सार्थवाहों पर द्र०, डेविड्स, बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ०103-105; मोतीचन्द्र, सार्थवाह।
2. जातक, 4.460।
3. वही, 6.69।
4. वही, 4.106।
5. वही, 5.164।
6. वही, 1.7।
7. अष्टाध्यायी, 5.1.34; 5.1.48।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुद्राओं का भी उल्लेख किया है।[1] ये रूपांकित आहत मुद्रायें देश के विभिन्न भागों से उपलब्ध हुई हैं।* ये मुद्रायें सुनिश्चित तौल की हैं। उल्लेखनीय है कि इन मुद्राओं का आविष्कार व्यापारियों ने किया था। इनका प्रचलन और नियन्त्रण भी वे ही करते थे।

सामाजिक जीवन

जनपद युग की सामाजिक व्यवस्था समकालीन आर्थिक और धार्मिक क्रान्ति से प्रभावित तथा आन्दोलित थी। द्रव्य के आविर्भाव तथा नागरिक जीवन के उत्कर्ष ने समाज को पहले की अपेक्षा अधिक गतिशीलता और परिवर्तनशीलता प्रदान की। सामाजिक चिन्तन अमूर्त और पुरुषनिरपेक्ष होने लगा तथा सामाजिक सम्बन्धों का वस्तुसात्करण प्रारम्भ हो गया। वाणिज्य के विकास के साथ नव-धनाढ्य श्रेष्ठि वर्ग का उदय हुआ जो परम्परागत सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से सम्मान्य न होते हुए भी धर्म, अर्थ, और राज्य—तीनों को प्रभावित कर रहा था तथा वर्ण-व्यवस्था की प्रचलित मान्यताओं के सम्मुख प्रश्नचिह्न बन कर खड़ा था** । महावीर और बुद्ध जैसे प्रभावशाली धर्म-प्रचारकों द्वारा जन्म के स्थान पर कर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन तथा सामाजिक समानता के सिद्धान्त का समर्थन भी पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था पर एक गहरा आघात था। इस प्रकार सामाजिक संस्थाओं तथा सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूप के औचित्य के विषय में स्वतन्त्र चिन्तन प्रारम्भ हुआ। इसके परिणामस्वरूप उदीच्य भारत और मध्यदेश के परम्परागत समाज ने अपनी सामाजिक मान्यताओं की तर्कसंगति ढूंढ़नी प्रारम्भ की। सामाजिक चिन्तन की इस प्रक्रिया में ही ब्राह्मण समाजशास्त्रियों ने पुनर्जन्म और कर्मवाद के सिद्धान्त को वर्ण व्यवस्था के साथ जोड़ दिया तथा यह प्रतिपादित किया कि मनुष्य का वर्ण उसके पूर्वजन्म के कर्मों के आधार पर निर्धारित होता है। इसके विपरीत वैदिक धर्म और वर्ण व्यवस्था से अप्रभावित पूर्व के गणतान्त्रिक जनपदों में वर्ण-व्यवस्था की स्वीकृत मान्यताओं का व्यापक विरोध हुआ। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि बौद्ध और जैन धर्मोपदेशकों ने वर्ण व्यवस्था का विरोध तो किया किन्तु अपने उपासकों को कोई नयी और विस्तृत सामाजिक व्यवस्था नहीं दे सके। अतएव श्रौतकर्म का तिरस्कार करते हुए भी बौद्ध एवं जैन उपासकों ने गृह्यकर्म को स्वीकार कर लिया।[2] ब्राह्मणों और श्रमणों के परस्पर विरोधी प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गों का समन्वय भी सामाजिक चिंतन के धरातल पर न्यूनाधिक रूप से सम्पन्न हुआ।

वर्णव्यवस्था का स्वरूप

उत्तरवैदिक साहित्य, पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' तथा 'महाभारत' के उद्धरणों से यह

1. वही, 5.2.120।

* दे०, अध्याय 11 का परिशिष्ट 1—सम्पादक।

** प्राचीन भारत में सामाजिक गतिशीलता के अध्ययन के लिये द्र०, जयमलराय, द रूरल एण्ड अर्बन इकोनोमी एण्ड सोशल चेञ्जिज इन एन्श्येण्ट इण्डिया, वाराणसी, 1974—सम्पादक।

2. आत्मतत्व विवेक, (चौखम्भा संस्कृत ग्रन्थमाला), पृ० 417।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिद्ध है कि वर्ण-व्यवस्था समाज में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। वर्ण-व्यवस्था की कटु आलोचना करने वाले जैन एवं बौद्ध ग्रन्थ भी चार वर्णों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रायः वर्ण व्यवस्था का आदर्श रूप ही प्रतिबिम्बित है। इसके विपरीत बौद्ध एवं जैन साहित्य वर्ण व्यवस्था के यथार्थ स्वरूप को उद्घाटित करते हैं। जनपदयुगीन सामाजिक इतिहास की संरचना में इन दोनों ही प्रकार के साक्ष्यों का तुलनात्मक विवेचन अनिवार्यतः कर्तव्य है। ब्राह्मण ऋषियों की दृष्टि से जहां वर्ण व्यवस्था अपौरुषेय, अतः श्रद्धेय थी, वहीं बौद्ध और जैन विचारक इसका मूल्यांकन धर्मनिरपेक्ष नैतिक मानदण्डों पर करने के लिए प्रयत्नशील थे। इन दोनों नवोदित धर्मों ने जन्म के आधार पर मनुष्य की श्रेष्ठता अथवा निम्नता के निर्धारण का विरोध किया तथा कर्म को मनुष्य के मूल्यांकन का आधार घोषित किया। तथागत का कहना था कि जिस प्रकार आग जलाने के लिए लकड़ी का भेद नहीं किया जा सकता उसी प्रकार निर्वाण के लिए भी मनुष्यों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जा सकता। बुद्ध अपने आपको ब्राह्मण भी कहते थे। उनके अनुसार जो भी व्यक्ति ज्ञान, सदाचार और निःस्पृहता आदि से युक्त है, वही ब्राह्मण है।

जनपद युग के ब्राह्मण अपना सामाजिक श्रेष्ठत्व प्रख्यापित करते थे तथा पुरोहित और आचार्य के जीवन को अपना आदर्श मानते थे। धर्मशास्त्रों के अनुसार ब्राह्मणों के 6 प्रधान कर्तव्य थे—यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह। पर यथार्थ में अनेक ब्राह्मण न पुरोहित थे न आचार्य। आर्थिक विषमता के कारण बहुसंख्यक ब्राह्मण वर्ण विरोधी कर्मों में लगे हुए थे। इनमें कुछ प्रशासकीय कार्यों में संलग्न थे और कुछ भूमिधर थे। कुछ ब्राह्मण साधारण कृषक और पशुपालक थे तथा कुछ दरिद्र कर्मकार।[1] शासन की बागडोर क्षत्रियों के हाथ में थी। बौद्ध एवं जैन साहित्य में उनकी श्रेष्ठता प्रतिपादित है—तथापि ब्राह्मणों की भाँति वे भी वर्ण-विरुद्ध कर्मों का अनुसरण करते हुए मिलते हैं।[2] जातकों में मालाकार, नलकार, कुम्भकार आदि का काम करते हुए क्षत्रियों का उल्लेख है। अनेक क्षत्रिय कृषि और वाणिज्य में भी लगे हुए थे। वैश्य वर्ण बहुसंख्यक और समृद्धिशाली था। बौद्ध साहित्य में इनके लिए वणिक, श्रेष्ठि, कुटुम्बिक आदि संज्ञाओं का प्रयोग है। जातकों में वैश्य भी दर्जी, कुम्भकार आदि के निम्न व्यवसायों का अनुसरण करते हुए दिखाये गये हैं। नगरों के अपेक्षाकृत रूढ़िमुक्त सामाजिक परिवेश में आर्थिक कारणों से यह वर्ग प्रतिष्ठित एवं सम्मानित था। शूद्रों की दशा शोचनीय थी। 'अष्टाध्यायी' में निरवसित और अनिरवसित इन दो प्रकार के शूद्रों का उल्लेख मिलता है।[3] निरवसित शूद्र अस्पृश्य एवं त्याज्य समझे जाते थे। जातकों से ज्ञात होता है कि अस्पृश्यता की भावना बलवती होती जा रही थी। बौद्ध साहित्य हीन जातियों और हीन शिल्पों का भी उल्लेख करता है। चाण्डाल और पुक्कुस जैसी अनेक जातियां अभी वर्ण व्यवस्था में स्थान नहीं पा सकी थीं। इस युग में दास वर्ग का भी

1. तु०, फिक, पूर्वो०, पृ० 222।
2. द्र०, रीज डेविड्स, बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० 41-42।
3. अष्टाध्यायी, 2.4.10।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अस्तित्व मिलता है किन्तु दास प्रायः पारिवारिक भृत्य होते थे तथा सामान्यतः उनके साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जाता था।[1]

आश्रम व्यवस्था का उदय

जनपदयुगीन सामाजिक चेतना ब्राह्मणों एवं श्रमणों के परस्पर विरोधी जीवन-दर्शन के बीच उलझ कर अंशतः दिग्भ्रमित हो गई थी। ब्राह्मण धर्म में ऐहिक एवं आमुष्मिक सुख मुख्य पुरुषार्थ था। इसके विपरीत मुनि-श्रमण दृष्टि के अनुसार प्रवृत्ति-मूलक कर्म बन्धनात्मक और हेय था तथा ब्रह्मचर्य, तपस्या, योग आदि निवृत्तिपरक क्रियाएं ही उपादेय थी।[2] श्रमण आदर्शों से प्रभावित अनेक व्यक्ति सामाजिक जीवन का तिरस्कार करते हुए संन्यास ग्रहण कर रहे थे। 'ऐतरेय ब्राह्मण' के एक सन्दर्भ में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के विरोधी आदर्शों का उल्लेख करते हुए प्रवृत्ति को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया गया है।[3] इस सन्दर्भ में नारद हरिश्चन्द्र को समझाते हुए कहते हैं : 'भस्म (मल) धारण करने, मृगचर्म पहनने और जटाजूट रखने से क्या लाभ है ? ब्राह्मण ! पुत्र की कामना करो। वही कल्याणकर है।' सायण इस सन्दर्भ को चार आश्रमों का सूचक मानते हैं। काणे महोदय ने भी इसे वैदिक साहित्य में चार आश्रमों का प्राचीन-तम अस्फुट उल्लेख माना है।[4] यह भ्रम 'मल' शब्द को गार्हस्थ्य का सूचक मानने के कारण उत्पन्न हुआ है। वस्तुतः मल, अजिन और श्मश्रु निवृत्तिमूलक श्रमण जीवन-दर्शन के सूचक हैं और 'पुत्र की कामना' प्रवृत्तिमूलक ब्राह्मण जीवन-दर्शन की। इन दोनों के बीच समन्वय का प्रयत्न उपनिषद्-युग में प्रारम्भ हुआ तथा बुद्ध के युग तक चतुराश्रमों की अवधारणा स्पष्ट हुई। उल्लेख्य है कि वैदिक संहिताओं और ब्राह्मणों में आश्रम शब्द का उल्लेख नहीं मिलता। प्राचीन वैदिक काल में ब्रह्मचर्य एवं गार्हस्थ्य सुविदित थे। उत्तर वैदिक काल में आरण्यक जीवन के प्रचार के साथ वानप्रस्थ का उदय हुआ तथा उपनिषद् काल में श्रमण प्रभाव के कारण संन्यास की महत्ता स्वीकृत हुई। प्रकृति और निवृत्ति के समन्वय की दृष्टि से चारों आश्रमों को आदर्श जीवन-पद्धति का अनिवार्य अंग घोषित किया गया जिससे लोक और परलोक दोनों की प्राप्ति हो सके। पर आश्रम व्यवस्था व्यावहारिक जीवन में लोकप्रिय न हो सकी। कुछ धर्मसूत्र-कार भी चतुराश्रम व्यवस्था के विरुद्ध दिखाई देते हैं। बौधायन का कथन है कि 'आचार्य एक ही आश्रम बताते हैं क्योंकि अन्य आश्रम सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य हैं। कहते हैं कि प्रह्लाद के पुत्र कपिल नामक असुर ने देवताओं की प्रतिस्पर्धा में आश्रम सम्बन्धी भेदों की स्थापना की। अतः मनीषी को चाहिए कि उनका आदर न करें'।[5] यह अंश आश्रम व्यवस्था पर अवैदिक प्रभाव भी सूचित करता है।

1. द्र०, डेविड्स, बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० 40।
2. द्र०, पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ० 6।
3. ऐतरेय ब्राह्मण, 33.1।
4. काणे, हिस्टरी ऑव धर्मशास्त्र, जिल्द 2, भाग 1, पृ० 418।
5. बौधायन, 2-6. 29-30।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवाह एवं परिवार

बौद्ध साक्ष्य से प्रकट होता है कि विवाह अधिकांशतः वयस्कावस्था में ही होते थे। शाक्यादि पूर्वी गणों में निकट सम्बन्धियों के साथ विवाह सम्बन्ध अज्ञात नहीं थे, किन्तु सामान्यतः इस प्रकार के विवाह अलोकप्रिय होते जा रहे थे। युवक-युवतियों के विवाह प्रायः माता-पिता द्वारा नियोजित होते थे, किन्तु यत्र-तत्र गान्धर्व विवाह के भी उदाहरण मिलते हैं। वत्सराज उदयन और वासवदत्ता का विवाह इस विवाह पद्धति का सुविदित ऐतिहासिक उदाहरण है। स्वयंवर विवाह के प्रचलन का भी संकेत मिलता है। 'उच्च जातक' तथा 'कुलाल जातक' कन्याओं के स्वयंवर का उल्लेख करते हैं। जनपद युग में यद्यपि सजातीय विवाहों की ही प्रधानता थी किन्तु अन्तरजातीय विवाह सर्वथा अज्ञात नहीं थे।[1] जातकों में अनुलोम और प्रतिलोम दोनों ही प्रकार के विवाहों के उदाहरण मिलते हैं।

जनपदयुगीन ग्राम्य परिवार प्रधानतः कृषि और पशुपालन पर अवलम्बित होने के कारण संयुक्त थे। बौद्ध साहित्य अनेक विशाल परिवारों के अस्तित्व की सूचना देता है। परिवार के कृषि क्षेत्रों पर भाइयों के संयुक्त स्वामित्व तथा कृषि कर्म में सामूहिक श्रम की आवश्यकता ने संयुक्त परिवारों को स्थिरता प्रदान की। इसके विपरीत नागरिक जीवन में शिल्प, उद्योग और वाणिज्य के विकास के कारण व्यक्तिगत श्रम तथा कौशल द्वारा सम्पत्ति उपार्जन का अवसर मिला तथा स्वार्जित सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वत्व की अवधारणा का विकास हुआ। परिणामतः नगरीय संयुक्त परिवारों में विघटन के लक्षण स्पष्टतर होने लगे।

स्त्रियों की दशा

जनपदयुगीन समाज में स्त्रियों की दशा ह्रासोन्मुख थी। आर्थिक प्रगति तथा सामाजिक परिवर्तनों ने जिन समृद्ध एवं कुलीन वर्गों को जन्म दिया, उनकी दृष्टि में नारी का कामिनी रूप ही सर्वाधिक आकर्षक था। ऐसी स्थिति में स्त्री उपभोग और विलास की वस्तु समझी जाने लगी।[2] पुरुषों में बहुपत्नीकता बढ़ने लगी। स्त्रियों को बहुमूल्य निधि के रूप में घर में छिपाकर रखा जाने लगा। पाणिनि ने ऐसी कुलीन स्त्रियों का वर्णन किया है जिन्हें सूर्य भी नहीं देख सकता था। 'महाभारत' और 'रामायण' में भी पर्दे में रहने वाली सम्भ्रान्त स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। निश्चय ही ये उदाहरण विरल हैं तथापि इनसे स्पष्ट है कि स्त्रियों को व्यापक सामाजिक जीवन से हटाकर संकीर्ण पारिवारिक सीमाओं में स्थिर करने का प्रयत्न प्रारम्भ हो गया था। वस्तुतः जनपद युग भारतीय नारी के इतिहास में संक्रान्ति का युग है। पूर्ववैदिक युग की महिमामयी नारी, जो पुरुष की 'सखा' थी, उत्तर वैदिक युग तक अनेक धार्मिक एवं सामाजिक अधिकारों से वंचित हो चली थी।[3] छठी सदी ई० पू० तक पुरुषपेक्षी समाज द्वारा

1. द्र०, डेविड्स, वही, पृ० 42-43।
2. द्र०, वेदालंकार, हरिदत्त, हिन्दू परिवार-मीमांसा, पृ० 157।
3. द्र०, राव, विजय बहादुर, उत्तर वैदिक समाज एवं संस्कृति।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्धारित बन्धनों का कसाव और अधिक बढ़ गया था। वैदिक यज्ञों से स्त्रियों के बहिष्कार का प्रयत्न तो हो ही रहा था। स्त्रियों के प्रति सामाजिक दृष्टि का अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि क्रान्तिकारी विचारक महात्मा बुद्ध ने भी स्त्रियों को संघ प्रवेश की अनुमति देने में संकोच किया था। आनन्द के आग्रह पर उन्होंने स्त्रियों को संघ प्रवेश की अनुमति तो दी किन्तु उनके लिए आठ कठोर प्रतिबन्धों की व्यवस्था की। उन्होंने यह शंका भी व्यक्त की थी कि स्त्रियों के प्रवेश से धर्म चिरस्थायी नहीं रह सकेगा।[1]

लेकिन नारी शिक्षा की परम्परा अभी विलुप्त नहीं हुई थी। बौद्ध साहित्य खेमा, सुभद्रा जैसी विदुषी भिक्षुणियों का उल्लेख करता है। श्रेष्ठिकन्या भद्रा कुण्डकेशा भी एक विदुषी भिक्षुणी थी। जातक साहित्य में अनेक विदुषी स्त्रियों का उल्लेख है। 'थेरीगाथा' में बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा रचित मार्मिक गीतों का संग्रह है।

जनपदयुगीन नारी के इतिहास के सन्दर्भ में वैशाली की गणिका का उल्लेख आवश्यक है। लिच्छवियों में सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी को विवाह का अधिकार नहीं था। उसे गणिका पद से सम्मानित किया जाता था। यद्यपि उस स्त्रीरत्न का जीवन समृद्ध और प्रतिष्ठित था, तथापि गण-भोग्या होना उसकी विवशता थी। कालान्तर में 'गणिका' शब्द 'वेश्या' का पर्यायवाची बन गया।

शिक्षा

जनपद युग में तक्षशिला एवं वाराणसी शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे।[2] यहां वेदों तथा अठारह शिल्पों की शिक्षा दी जाती थी। जातकों से ज्ञात होता है कि तक्षशिला में चिकित्सा-शास्त्र, धनुर्विद्या, राज-विद्या, पशुभाषा विज्ञान, आखेट तथा अनेक शिल्पों की शिक्षा की व्यवस्था थी। कुछ विद्यार्थी आचार्यकुल में निवास करते थे तथा कुछ अपने घरों से आते थे। सम्पन्न परिवारों के विद्यार्थी गुरु को शुल्क देते थे तथा निर्धन विद्यार्थी शुल्क के बदले गुरु की सेवा करते थे। विद्यालयों को यदा-कदा राजकीय सहायता भी मिलती थी। छात्रों का जीवन सरल एवं अनुशासित था। जातकों में यत्र-तत्र ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा राजपुत्रों के लिए पृथक्-पृथक् शिक्षा-संस्थाओं का उल्लेख भी मिलता है। शैक्षणिक सुविधाएं अधिकांशतः ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों को तथा अंशतः वैश्यों को उपलब्ध थीं। शूद्र इस अधिकार से वंचित थे। शैक्षिक पाठ्यक्रम की अवधि के विषय में निश्चित रूप से कुछ कह पाना कठिन है। 'महावग्ग' से ज्ञात होता है कि जीवक ने तक्षशिला में 7 वर्ष तक चिकित्सा-शास्त्र का अध्ययन किया था।

बौद्धधर्म के अभ्युदय तथा बौद्ध संघ की स्थापना के साथ बौद्ध विहार भी शिक्षा केन्द्र बन गये।[3] किन्तु प्रारम्भिक बौद्ध विहारों में नवागत भिक्षुओं को ही केवल धर्म एवं विनय की शिक्षा दी जाती थी। बौद्ध विहारों में शिक्षकों को 'उपाध्याय' कहते थे। जो भिक्षु दस वर्ष तक भिक्षु जीवन व्यतीत कर चुके होते थे, वही उपाध्याय हो सकते थे।

1. द्र०, पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ० 150।
2. द्र०, बैशम, दि वण्डर दैट वाज इण्डिया, पृ० 164।
3. द्र०, मुकर्जी, आर० के०, एन्श्येण्ट इण्डियन एजुकेशन।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 19

धार्मिक आन्दोलन

आध्यात्मिक गवेषणा का युग

जनपद युग आध्यात्मिक गवेषणा और सत्यानुसन्धान का काल था। इस युग में सम्पूर्ण प्राचीन विश्व में बौद्धिक एवं आध्यात्मिक चेतना का आश्चर्यजनक प्रस्फुरण हुआ। भारतीय मनीषियों की जिज्ञासा तर्क एवं विवेक के सहारे इहलोक तथा परलोक सम्बन्धी गहनतम रहस्यों के उद्घाटन में दत्तचित्त दिखाई देती है। ऐसी स्थिति में प्राचीन धार्मिक विश्वासों एवं मान्यताओं के प्रति संशय तथा नवीन विचारों का जन्म अनिवार्य था। जनपदयुगीन भारत में आध्यात्मिक क्षेत्र में हुए विचार मन्थन के परिणामस्वरूप नाना दार्शनिक मतों की उद्भावना तथा नवीन धार्मिक सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ। धार्मिक चिन्तन की विविध सारणियों का उद्गम इस युग की विशेषता है। व्यापक स्तर पर मानवीय चेतना के इस आकस्मिक विस्फोट का कारण भौतिकवादी दृष्टि समकालीन आर्थिक सामाजिक धरातल में खोजती है। इसके विपरीत अध्यात्मवादी दृष्टि चेतनागत क्रान्ति को ज्ञान के स्वाधीन विकास अथवा अतिमानवीय प्रेरणा से उत्पन्न मानती है। वस्तुतः ये दोनों ही दृष्टियां परस्पर सापेक्ष हैं। किसी भी आध्यात्मिक परम्परा के प्ररोह के लिए जहां प्रतिभा बीजस्वरूपा है, वहीं भौतिक-सामाजिक पर्यावरण अनुकूल एवं उर्वर भूमि सदृश है।[1] जनपद युग के आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन ने नवीन चिन्तन की अपेक्षा को जन्म अवश्य दिया, किन्तु उसके स्वरूप का निर्धारण तत्कालीन विचारकों एवं धर्म उपदेशकों ने अपनी पृथक्-पृथक् दृष्टियों एवं अनुभूतियों के आधार पर किया। यही कारण है कि आध्यात्मिक चिन्तन की अभिव्यक्ति किसी एक मार्ग से न होकर नाना मतों एवं सम्प्रदायों के उदय के रूप में हुई।

उत्तर वैदिक युग में वैदिक धर्म का स्वरूप अन्तःविकास तथा बाह्य प्रभाव के कारण परिवर्तनशील था। पुरोहितों की स्वार्थ बुद्धि ने यज्ञ विधान को विपुल, जटिल एवं रहस्यात्मक बना दिया था। यज्ञों में होने वाले अपव्यय ने जहां साधनहीन सामान्यजन को धार्मिक अनुष्ठानों से बहिष्कृत किया वहीं श्रौतयज्ञों में होने वाली निरीह पशुओं की हिंसा ने विवेकशील पुरुषों को यज्ञों से उदासीन किया। ब्राह्मण साहित्य में ही यज्ञ वेदिका की तुलना अरण्य से, यजमान की पथिक से तथा पुरोहितों की डाकुओं से की गई

1. द्र०, पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ० 16-17।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। आरण्यकों और उपनिषदों के काल में धार्मिक चिन्तन देवयजन से आत्मयजन की ओर उन्मुख हो गया। ब्रह्मविद्या एवं आत्मविद्या के विकास के पीछे निवृत्तिमूलक श्रमण परम्परा का प्रबल प्रभाव देखा जा सकता है।[1] संसारवाद, पुनर्जन्मवाद तथा निवृत्ति-वाद का प्रभाव उपनिषदों के चिन्तन में स्पष्ट है, जो मूलतः वैदिक न होकर मुनि-श्रमण परम्परा से सम्बद्ध है। कठ, मुण्डक एवं श्वेताश्वतर उपनिषदों से सांख्य-योग का परिचय मिलता है। सांख्य दर्शन की निरीश्वरवादिता, निवृत्तिपरायणता और श्रुति विरोध से इस बात का संकेत मिलता है कि इसका उद्गम भी श्रमण परम्परा से ही हुआ।[2] सांख्य-दर्शन अपना मूल कपिल मुनि के उपदेश में मानता है। कपिल मुनि के नाम से पिसंग वस्त्रधारी ऋग्वैदिक मुनियों की स्मृति साकार हो उठती है। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेख्य है कि 'मुण्डकोपनिषद्' किसी मुण्डित-शिर भिक्षु की रचना प्रतीत होता है। 'मुण्डक' शब्द का साधारण अर्थ श्रमण होता है। 'ईशोपनिषद्' के प्रारम्भिक अंशों तथा छांदोग्य के घोरांगिरश के उपदेश में गीता के निष्काम कर्म के उपदेश का आभास मिलता है जिसे आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के समन्वय के प्रारम्भिक प्रयास के रूप में देखा जा सकता है। जनपद युग के बौद्धिक व आध्यात्मिक आन्दोलन का सूत्र-पात उपनिषद्-युग में ही हुआ। उपनिषद्-युग की धार्मिक चेतना स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर थी तथा अनेक नूतन दार्शनिक मतों के प्रतिपादन में संलग्न थी। ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, संसार, कर्म और निवृत्ति आदि अनेक जटिल विषयों पर इस समय अनेक ब्राह्मण, श्रमण एवं शासक विचार-विमर्श करते दिखाई देते हैं। 'श्वेताश्वतर उपनिषद्' में मोक्ष के साधन के रूप में भक्ति का प्रथम बार उल्लेख हुआ। वासुदेव सम्प्रदाय के उदय का भक्ति के उदय से गहरा सम्बन्ध है। 'अष्टाध्यायी' में वासुदेव की उपासना के प्रचलन का संकेत मिलता है।[3]

वैदिक धर्म के प्रभाव से मुक्त मगध, विदेह, वज्जि, मल्ल, शाक्य आदि जनपदों में भी अनेक धार्मिक, दार्शनिक सम्प्रदायों का जन्म हो रहा था। पूर्वी भारत के चिन्तकों एवं धर्मोपदेशकों ने वैदिक धार्मिक-सामाजिक मान्यताओं का मुखर विरोध किया तथा वैदिक परम्परा से सर्वथा अप्रभावित नये धार्मिक विचारों का प्रचार किया। इस दृष्टि से पूर्वी भारत में जैन एवं बौद्ध धर्मों का अभ्युदय जनपद युग के धार्मिक इतिहास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। यद्यपि ये नवोदित धर्म मुनि-श्रमण परम्परा के प्रभावा-न्तर्गत विकसित हुए, तथापि इनके विकास में भौगोलिक एवं प्रादेशिक प्रभाव का सर्वथा तिरस्कार नहीं किया जा सकता। गणों एवं श्रमणों के बाहुल्य से युक्त पूर्वी प्रदेशों में निवृत्तिपरक धार्मिक सम्प्रदायों को जो लोकप्रियता मिली वह पश्चिमी प्रदेशों में नहीं मिल सकी। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रमण संस्कृति का जन्म पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार एवं हिमालय की उपत्यका में स्थित जनपदों में ही हुआ था। वैदिक धर्म पूर्वाभिमुख

1. वही, पृ० 10।
2. पाण्डेय, स्टडीज इन दि ओरिजिन्स ऑव बुद्धिज्म, पृ० 305-9।
3. अष्टाध्यायी, 4-3-98।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रसार की प्रक्रिया में ही श्रमण परम्परा से सुपरिचित एवं प्रभावित हुआ। पूर्व में वैदिक संस्कृति के प्रसार का अवरोध, वैदिक ब्राह्मणों द्वारा इन प्रदेशों के निवासियों की निन्दा तथा बौद्ध और जैन धर्मों का इन्हीं प्रदेशों में उदय अकारण और आकस्मिक नहीं माने जा सकते। सुविदित है कि जैन परम्परा में महावीर के पूर्ववर्ती तेईस जैन तीर्थंकरों का उल्लेख मिलता है जिनमें पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता असन्दिग्ध है। उनका आविर्भाव महावीर से ढाई सौ वर्ष पूर्व नवीं सदी ई० पू० में हुआ था। इससे सिद्ध है कि श्रमण सेवित निवत्तिमूलक धार्मिक परम्पराएं पूर्व में बहुत पहले से विद्यमान थीं।

कतिपय विद्वानों ने जनपदयुगीन धार्मिक आन्दोलन को ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के विरुद्ध क्षत्रिय प्रतिक्रिया के रूप में देखने का प्रयत्न किया है।[1] यह सत्य है कि उपनिषद् युग के अनेक क्षत्रिय राजाओं ने बौद्धिक आन्दोलन का नेतृत्व किया। इनमें पांचाल राज प्रवाहण जैवलि, केकयराज अश्वपति, काशिराज अजातशत्रु एवं विदेहराज जनक के नाम सुप्रथित हैं।[2] ये नरेश प्रबुद्ध ब्राह्मणों को भी उपदेश देते हुए पाये जाते हैं। गीता में ज्ञान की एक राजन्य परम्परा का संकेत है जिसकी तुलना प्रवाहण जैवलि द्वारा निर्दिष्ट क्षत्रिया-विद्या से की जा सकती है।* छठी शती ई० पू० की धार्मिक क्रान्ति के प्रमुख सूत्रधार बुद्ध और महावीर भी क्षत्रिय उपदेशक थे। इस प्रकार जनपदयुगीन आध्यात्मिक एवं बौद्धिक आन्दोलनों में क्षत्रियों का महत्त्वपूर्ण योगदान निर्विवाद है, किन्तु इसे वर्गसंघर्ष से जोड़ना तर्क-संगत नहीं है। सत्य तो यह है कि पुरोहितों के कर्मकाण्डों का इस युग में अनेक दिशाओं में विरोध हुआ, जिसका नेतृत्व श्रमणों, प्रबुद्ध क्षत्रियों तथा आध्यात्मवादी ब्राह्मणों ने किया।[3]

विविध मत एवं सम्प्रदाय

धार्मिक आन्दोलन के फलस्वरूप छठी सदी ई० पू० तक अनेक धार्मिक-दार्शनिक सम्प्रदायों का उदय हो चुका था। बौद्ध एवं जैन साहित्य में नाना मतवादों का उल्लेख है। इनमें प्रमुख मतों की मीमांसा आवश्यक है। कुछ मत नितान्त भौतिकवादी थे। उच्छेदवादियों का विश्वास था कि मृत्यु के बाद कुछ भी शेष नहीं रहता। 'सामञ्जफल सुत्त' में अजित केशकम्बली का उच्छेदवाद उल्लिखित है। उनके अनुसार सत्कर्म और दान से मनुष्य को कुछ प्राप्त नहीं होता। मरने के बाद शरीर मूल तत्त्वों में विलीन हो जाता है और कुछ भी शेष नहीं रहता। पाप और पुण्य, दान और करुणा मनुष्य की चरम परिणति के लिए अप्रासंगिक हैं। अहेतुवादियों के अनुसार सांसारिक वस्तुओं की उत्पत्ति का कोई हेतु अथवा कारण नहीं है। प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति आकस्मिक एवं अकारण है। तत्त्व की अज्ञेयता के प्रचारक संजय बेलट्ठि पुत्त थे। पुव्वेकतावादी यह

1. वैदिक एज, पृ० 468-69।
2. बृहदारण्यक उपनिषद् 6-2; छान्दोग्य उपनिषद् 5-3; 5-11 आदि।
* दे० अध्याय 1—सम्पादक।
3. द्र०, बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृ० 20।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानते थे कि प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्यत: पूर्वजन्म के कर्मफल का भोग करना पड़ता है। इस्सरकारणवादियों का विश्वास था कि ईश्वर ही प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति का कारण है। खग्विज्जावादी स्वार्थसिद्धि को ही जीवन का परम लक्ष्य मानते थे। अक्रिया-वादियों के अनुसार मनुष्य के अच्छे-बुरे कर्मों का कोई फल नहीं होता। इस मत के प्रमुख प्रचारक पूरण कस्सप अकर्तृत्व और असंगता के उपदेशक थे। पकुधकच्चायन के मतानुसार संसार की सात वस्तुएं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सुख, दुख और जीवन अकृत, अचल और अवध्य हैं। वे आध्यात्मिक और नैतिक जीवन की आवश्यकता स्वीकार नहीं करते थे। मक्खलिपुत्त गोसाल का उल्लेख नियतिवादी विचारक के रूप में मिलता है। इन्होंने आजीवक सम्प्रदाय की स्थापना की थी।[1] इनकी दृष्टि में पुरुषार्थ सर्वथा तुच्छ और हेय है। व्यक्ति के भोक्तव्य सुख-दुख की मात्रा नियत है। संसरण के द्वारा ही सब जीवों के दु:खों का अन्त होगा। आजीवकों का निगण्ठों से घनिष्ठ सम्बन्ध था। आजीवकों के अनेक सिद्धान्त निगण्ठों में भी स्वीकृत हुए किन्तु जहां आजीवक अक्रिया-वादी थे तथा जीव को रूपी मानते थे वहीं निगण्ठ क्रियावादी थे तथा जीव को अरूपी मानते थे।

जैन धर्म

श्रमणों में कदाचित् प्राचीनतम सम्प्रदाय निगण्ठों अथवा जैनों का था।[2] जैन परम्परा में महावीर के पूर्ववर्ती तेइस तीर्थंकरों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि पार्श्वनाथ के पूर्व-वर्ती तीर्थंकरों की ऐतिहासिकता संदिग्ध है, तथापि यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि जैनों की मुनि-परम्परा अत्यन्त प्राचीन और अवैदिक थी। जैनों की दृष्टि में संसार एक अनादि दु:ख प्रवाह है जिसमें कर्म के बन्धन में विवश अज्ञान के वशीभूत असंख्य जीव बहे जा रहे हैं। कर्मबन्धन को भंग करके ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। उनके अनुसार जीव अरूपी अर्थात् अभौतिक सत्ता है। जीव असंख्य हैं और नाना अवस्थाओं में उपलब्ध होते हैं। जीव स्थावर भी हैं और जंगम भी। कुछ संज्ञी हैं और कुछ असंज्ञी। सिद्ध जीव सर्वज्ञ हैं, किन्तु ज्ञानातिरिक्त अनुभव अथवा संवेदन नहीं करते। जीवों की साँसारिक गति कर्म के अधीन है। कर्म स्वयं एक द्रव्यात्मक और पौद्गलिक पदार्थ है जिसका आधार अज्ञान और रागद्वेषादि कषाय है। कर्म से आत्मा का स्वभाव आच्छन्न हो जाता है और वह अपने को अज्ञान, अशक्ति और दु:ख में निमग्न पाती है। जैन दर्शन में संसार से मुक्ति के लिए नये कर्मों के आस्रव का विरोध तथा पूर्व कर्मों का अपसारण आवश्यक माना गया। इनमें पहली प्रक्रिया संवर कहलाती है और

1. आजीवकों पर सामान्यत: द्र०, पाण्डेय, ऑरिजिन्स ऑव बुद्धिज्म पृ० 342-46; बरुआ, प्रि-बुद्धिस्टिक इण्डियन फिलासफी, जर्नल ऑव दि डिपार्टमेण्ट ऑव लेटर्स, 2; बैशम, हिस्टरी एण्ड डाक्ट्रिंस ऑव दि आजीविकाज।

2. निगण्ठों पर द्र०, विण्टरनित्स, हिस्टरी ऑव इण्डियन लिटरेचर, जिल्द 2, पृ० 524; जैनी, आउटलाइन्स् ऑव जैनिज्म; पाण्डेय, ऑरिजिन्स ऑव बुद्धिज्म, पृ० 353-68; जैन, हीरालाल, भारतीय संस्कृति को जैन धर्म का योगदान।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरी निर्जरा। संवर में मुख्यतया पांच महाव्रत संगृहीत हैं। पार्श्वनाथ ने संवर के लिए चातुर्याम की व्यवस्था की थी। महावीर ने चतुर्विध संवर को पंचविध किया। निर्जरा तप और काया-क्लेष है जिसके द्वारा पूर्व कर्मों के कषाय नष्ट होते हैं। तप के पांच बाह्य और पांच आभ्यन्तर भेद बताये गये हैं। अनशन, अवमौदर्य, भिक्षाचर्या, रसपरित्याग, कायाक्लेश और सन्तीरणा—ये पांच भेद बाह्य तप के हैं। प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्यवसर्ग ये पांच भेद आभ्यन्तर तप के हैं। निर्ग्रन्थों के अन्य बहुत से सिद्धान्त उत्तरकाल में विकसित हुए। प्राचीन निर्ग्रन्थों में जीव, कर्म और तपस्या इन तीन पर ही विशेष आग्रह था।[1]

बौद्ध धर्म

छठी सदी ई० पू० के धर्मोपदेशकों में सर्वाधिक आकर्षक एवं प्रतिभाशाली व्यक्तित्व गौतम बुद्ध का था। वह शाक्य कुलोत्पन्न थे तथा उनका जन्म लुम्बिनी में हुआ था। वर्षों तक आर्य-पर्येषणा के पश्चात् उन्हें बोधगया में 'सम्बोधि' की प्राप्ति हुई और सारनाथ में उन्होंने 'धर्मचक्र प्रवर्त्तन' किया। इसके बाद मुख्यतः पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं विहार के ग्रामों और नगरों में धर्म प्रचार करते हुए अस्सी वर्ष की अवस्था में कुशीनारा के शालवन में उन्होंने 'महापरिनिर्वाण' प्राप्त किया।*

बुद्ध के उपदेशों का सामान्य जनों से लेकर राजाओं और श्रेष्ठियों तक ने समान रूप से स्वागत किया। वे 'मध्यम मार्ग' के उपदेशक थे। अनियन्त्रित योग तथा तपमूलक कायाक्लेश—इन दोनों अतियों का बुद्ध ने निषेध किया। बुद्ध देशना की समुचित अवधारणा के लिए भी तद्विषयक दो प्रचलित 'अन्तों' से बचते हुए मध्यम मार्ग का सहारा लेना आवश्यक है। एक मत के अनुसार बुद्ध ने एक नवीन दर्शनशास्त्र का प्रतिपादन किया, दूसरे के अनुसार उन्होंने दार्शनिक तत्त्वों का शास्त्रीय निरूपण न कर केवल दुःख निवृत्ति के लिए आचरणीय मार्ग का उपदेश किया। ये दोनों ही मत केवल आंशिक सत्य उद्घाटित करते हैं। बुद्ध के उपदेशों की सुविचारित दार्शनिक पृष्ठभूमि अप्रत्याख्येय है, किन्तु वह कोरे पण्डितवाद के पक्ष में नहीं थे और अपने समय की बहुमीमांसित दार्शनिक समस्याओं को लेकर बुद्धिविलास को व्यर्थ मानते थे। इसीलिए वह जीव, आत्मा, आदि विषयों पर प्रायः मौन रहे। उन्होंने लोककल्याण को दृष्टि में रखते हुए मुख्यतः मार्ग और गन्तव्य को ही यथासम्भव निरूपित किया। वह न शुष्क तर्कवादी थे और न ज्ञानरहित व्यवहारवादी। वह जानते थे कि परमार्थ अगोचर है। अतः उन्होंने हेतु समुत्पन्न धर्मों के हेतु का उपदेश किया तथा निरोध का मार्ग बताया।

तथागत ने जीवन में व्याप्त अपरिहार्य दुःख का अनुभव किया। दुःख की प्रवृत्ति समझ कर उसकी निवृत्ति के लिए प्रयत्न ही धर्मचर्या है—यह बात बुद्ध ने चार आर्य सत्यों के माध्यम से स्पष्ट की। सम्पूर्ण बुद्ध देशना इन चार आर्य सत्यों में समाहित है। ये चार

1. द्र०, पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ० 40।

* बुद्ध की तिथि के लिये द्र०, पीछे, पृ० 148 अ०—सम्पादक।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आर्य सत्य क्रमशः दुःख, दुःख समुदय, दुःख निरोध और दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा हैं। चार आर्य सत्यों की अवधारणा चिकित्सा-शास्त्र के चतुर्व्यूहों से प्रभावित प्रतीत होती है। विनय एवं निकायों में पहले सत्य के अन्तर्गत दुःख को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया गया है, दूसरे सत्य में प्रतीत्य समुत्पाद अथवा निदानों का उल्लेख किया गया है, तीसरे सत्य में निर्वाण अथवा निरोध का और चौथे सत्य में नाना बोधिपाक्षिक धर्मों का, विशेषतः आर्याष्टांग मार्ग का।

बुद्ध ने संसार में दुःख की सत्ता के विस्तार को स्वीकार करते हुए प्रतीत्य समुत्पाद के द्वारा दुःख का निदान प्रस्तुत किया। प्रतीत्यसमुत्पाद अविद्या कुण्डलित जीवन के अन्दर दुःख का चक्राकार विकास प्रदर्शित करता है। प्रारम्भ में अविद्या, तृष्णा और कर्म को ही विश्वव्यापी दुःख का कारण माना गया[1] किन्तु कालान्तर में प्रतीत्य-समुत्पाद के अन्तर्गत द्वादश-निदानों की शृंखला परिकल्पित हुई।

बुद्ध ने बताया कि दुःख का निरोध निर्वाण में है। बुद्ध देशना में एक ओर दुःखमग्न प्रतीत्यसमुत्पन्न संसार का चित्र है तो दूसरी ओर शान्त, ध्रुव, अशोक निर्वाण का। निर्वाण अतर्क्य और नित्य सत्य है, जिसमें प्रपंचों का उपशम हो जाता है तथा संसार का निरोध।[2] निरोध अथवा निर्वाण को विनाश अथवा उच्छेद नहीं समझना चाहिए। शाश्वत और उच्छेद, सत् और असत् में न समाता हुआ निर्वाण अनिर्वचनीय पद है, जिसे समझने के लिए मध्यम प्रतिपदा का स्वीकार आवश्यक है। निर्वाण को विनाश अथवा उच्छेद मानने का दुराग्रह इस विश्वास पर आधृत है कि बुद्ध ने आत्मा का सर्वथा निषेध किया। इस सन्दर्भ में यह उल्लेख्य है कि बुद्ध ने केवल मिथ्यात्मवाद का ही खण्डन किया। तथागत द्वारा उपनिषदों के अनिर्वचनीय ब्रह्मात्मवाद का खण्डन नहीं पाया जाता।[3]

बुद्ध ने निरोधगामिनी प्रतिपदा के अन्तर्गत संसार के तट से निर्वाण के तट तक ले जाने वाले मार्ग का उपदेश किया। यह मार्ग अष्टांगिक था। आठ मार्गों के रूप में सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि का उल्लेख है। बौद्ध व्यवस्था में इन आठों को प्रज्ञा, शील और समाधि, इन तीन स्कन्धों के अन्तर्गत रखा गया है। जहां प्रज्ञा से दृष्टि संक्लेश की शुद्धि होती है और समाधि से तृष्णा संक्लेश की, वहीं शील से दुश्चरित संक्लेश की शुद्धि होती है। बोधिपाक्षिक धर्मों पर विचार से ज्ञात होता है कि बुद्धोपदिष्ट मार्ग में संयम, पुरुषार्थ, जागरूकता एवं एकाग्रता का विशेष महत्त्व था। बुद्ध ने मार्ग के रूप में मुख्यतः एक ऐसी आचार-संहिता का उपदेश किया जो मनुष्य के उन्नयन के लिए नितान्त उपादेय थी।

प्रचलित लोकधर्म

भारतीय समाज में प्रत्येक युग में धार्मिक उपासना के अनेक स्तर रहे हैं। बौद्ध एवं

1. द्र० पाण्डेय, ऑरिजिन्स ऑव बुद्धिज्म, पृ० 434-35।
2. मज्झिम निकाय, 3, पृ० 245; संयुत्त निकाय, 1, पृ० 15।
3. द्र०, बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृ० 104।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जैन धर्मग्रन्थों से ज्ञात होता है कि जनपद युग में एक ओर जहां वैचारिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप अनेक दार्शनिक मतों एवं सम्प्रदायों का विकास हो रहा था, वहीं लोक जीवन में रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों पर आधृत अपेक्षाकृत हीन स्तर की उपासनाएं भी प्रचलित थीं। इनके अन्तर्गत देवपूजा के अतिरिक्त यक्षपूजा[1], प्रेतपूजा,[2] पशुपूजा[3] एवं वृक्ष पूजा[4] आदि विशेषतः उल्लेख्य हैं। गीता में यक्षपूजा को राजसिक कहा गया है तथा भूत-प्रेत की उपासना को तामसिक। साधारण जनता में यक्ष पूजा सुप्रचलित थी। यक्षों को अलौकिक सत्त्व माना जाता था जो वृक्षों में निवास करते थे तथा प्रसन्न होने पर नाना सांसारिक कामनाओं की पूर्ति करते थे। वे अनेकत्र स्थान-देवता एवं कुल-देवता के रूप में प्रतिष्ठित थे। कभी-कभी वे अनिष्टकारी भी बन जाते थे। यक्षियों में अप्सराओं का सादृश्य देखा जा सकता है। कुछ यक्ष बाद में ब्राह्मण और बौद्ध देवताओं में रूपान्तरित पाये जाते हैं। उनका प्रभाव आंशिक रूप से प्रतिभा-विधान की परम्परा और तान्त्रिक पद्धतियों पर देखा जा सकता है।

भूत, प्रेत, पशुओं एवं वृक्षों की तामसपूजा का भी वर्णन समकालीन साहित्य में अनेकत्र मिलता है। भूतों को प्रसन्न करने के लिए बहुधा बलिकर्म होता था। बौद्ध साहित्य में भूतों की कोटि में पिशाचों, दानवों, राक्षसों आदि का उल्लेख है। पिशाच मांसाहारी माने जाते थे तथा प्रचलित विश्वास के अनुसार श्मशानों में निवास करते थे। पशुपूजा में नागपूजा एवं सुपर्णपूजा का विशेष प्रचलन था। वृक्षों की उपासना के पीछे यह विश्वास निहित था कि वृक्षों पर देवता निवास करते हैं जो अभीप्सित फल प्रदान करने की सामर्थ्य रखते हैं। जैन और बौद्ध साहित्य में विद्याधरों की उपासना के प्रचलन का भी संकेत है। ये प्रकृत्या अतिकामी होते थे तथा यदा-कदा युवतियों का अपहरण करते थे।[5] इस युग में नाना देवियों की उपासना भी लोकप्रिय हो चुकी थी। इनमें आशा, श्रद्धा, श्री, ह्री, लक्ष्मी, चण्डी आदि का नाम उल्लेख्य है। इनकी प्रसन्नता के लिए हिंसात्मक बलि दी जाती थी। इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, मुकुन्द, यक्ष, प्रेत, नाग आदि के अनेक उत्सव भी मनाये जाते थे इन उत्सवों में जनसम्मर्द एवं मद्यपान अविदित नहीं थे। इनकी तुलना बौद्ध ग्रन्थों में उल्लिखित समज्जा से भी की जा सकती है।[6]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि समाज के वर्ग, जो सांस्कृतिक दृष्टि से अविकसित थे, युगीन बौद्धिक क्रान्ति से सर्वथा अप्रभावित थे तथा बहुदेववाद, यक्षवाद, रूढ़िवाद एवं अन्धविश्वासों में ग्रस्त थे। उनके धार्मिक विश्वासों में अनेक आदिम तत्त्व अविकल रूप से विद्यमान थे।*

1. जातक, 1.228; 4.491; 6 207।
2. जातक, 1.303; 2.397; 3.527।
3. जातक, 6.167; 6.270; 3.91।
4. जातक, 4.152।
5. उत्तराध्ययन टीका, 9.137।
6. ऑरिजिन्स ऑव बुद्धिज्म, पृ० 318-19।

* तत्कालीन लोकधर्म पर द्र०, वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राचीन भारतीय लोकधर्म—सम्पादक।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 20

'क्लासिकल' ग्रन्थों में जनपदयुगीन भारत का वर्णन

महत्त्व और विश्वसनीयता

यूनानी और रोमक लेखकों, राजदूतों तथा इतिहासकारों के विवरण प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण में बहुत उपयोगी हैं। प्राचीन काल से ही भारत पर अनेक विदेशी जातियों के आक्रमण होते रहे हैं। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में फारस के सम्राट् कुरुष तथा दारयवहुष आदि ने तथा चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में मकदूनिया के सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किये थे। तदुपरान्त बाह्लीक-यवन, शक, पह्लव, कुषाण तथा हूण जातियों के आक्रमण हुए। इन जातियों ने न केवल भारत को आक्रान्त किया वरन् दीर्घकाल तक यहां शासन भी किया। इन विदेशी जातियों के कारण भारत के एशिया तथा यूरोप के देशों से सांस्कृतिक एवं व्यापारिक सम्पर्क घनिष्ठतर हुए। प्राचीन काल में अनेक विदेशी यात्री, व्यापारी तथा लेखक भारत में आये। उन्होंने भारत में जो कुछ देखा और सुना, उसे लिपिबद्ध किया। परवर्ती काल में इस क्षेत्र में विशेष कार्य चीनी यात्रियों ने किया। फा-शिएन, युवान-च्वाङ् तथा ई-चिङ् जैसे चीनी यात्री बौद्ध तीर्थ स्थानों की यात्रा व बौद्ध धर्म-दर्शन के अध्ययन के लिए भारत आते थे। उनके विवरण भारतीय राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। यद्यपि उनके विवरणों में अनेक त्रुटियां भी हैं तथापि इनसे उनकी उपादेयता कम नहीं होती।

जनपदकाल में भारत का विवरण विशेषतः यूनानी लेखकों ने लिखा। सिकन्दर महान् का आक्रमण भारत व पश्चिम के मध्य सम्पर्क वृद्धि के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। उसके साथ आये हुए लेखकों ने उसकी सैनिक विजयों का उल्लेख करते समय भारत के विषय में भी बहुत कुछ लिखा। उसके पूर्व और उपरान्त भी बहुत से 'क्लासिकल' लेखकों ने अपने-अपने ग्रन्थों में भारत का विवरण लिखा। उनके द्वारा लिखे गये ये वृत्तान्त प्राचीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक स्थिति पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं।

भारत व यूनान का मिलाप फारसी साम्राज्य में सिकन्दर से दो शताब्दी पूर्व हुआ था। इससे भी पूर्व भारतीय विचार पश्चिम में पहुंच कर पाइथेगोरस व उसके समर्थकों को प्रभावित कर चुके थे। यह सम्पर्क कैसे सम्भव हो सका, इसे निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परन्तु उपनिषदीय दर्शन तथा पाइथेगोरस के विचारों में पर्याप्त साम्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिखाई पड़ता है ।[1] इसी प्रकार प्राचीन भारतीय संन्यास-व्यवस्था व पाइथेगोरस के अनुयायियों के संगठन में भी समानता दृष्टिगत होती है। इस समानता को मात्र संयोग अथवा समानान्तर विकास कहना युक्तिसंगत नहीं होगा। विख्यात यूनानी दार्शनिक सुकरात के शिष्य व यूनानी लेखक एरिस्टोक्सिनस (Aristoxenus) ने किसी भारतीय दार्शनिक की एथेन्स यात्रा तथा सुकरात से उसकी भेंट व दार्शनिक समस्याओं पर किए गए वार्तालाप का उल्लेख किया है। सर्प और रज्जु नामक सुप्रसिद्ध उपमा, जो सेक्सटस इम्पिरिकस (Sextus Empiricus) के ग्रन्थ में मिलती है, यूनानी तथा लातानी (Latin) साहित्य में कहीं अन्यत्र उपलब्ध नहीं होती। इसका स्रोत पाइर्रो (Pyrrho) में खोजा जाता है, जो सन्देहवादी दर्शन का जन्मदाता था और सिकन्दर के साथ भारत आया था।[2]

किसी भी देश के आधुनिक इतिहासकार के लिए, उस देश व उसके लोगों के सम्बन्ध में विदेशी पर्यटकों के द्वारा लिखे गये विवरण अत्यन्त रुचिकर होने के साथ ही महत्त्व-पूर्ण भी होते हैं। इनसे न केवल इतिहासकार को इस बात का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिलती है कि उन पर्यटकों के मस्तिष्क को उस देश ने किस सीमा तक प्रभावित किया, वरन् वह विश्व इतिहास में उस देश की भूमिका का मूल्यांकन भी अधिक विश्वास के साथ कर सकता है। प्राचीन भारतीय इतिहास के कुछ क्षेत्रों में, जहां भारतीय स्रोत पथ-प्रदर्शन नहीं कर पाते, विदेशी लेखकों के विवरण अधिक उपयोगी हैं। लेकिन विदेशी लेखकों के विवरणों को उनकी उपयोगिता एवं विश्वसनीयता को ध्यान में रखते हुए ही महत्त्व दिया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, बहुत से यूनानी लेखकों ने तथ्यों को देखने व समझने में निश्चित ही प्रशंसनीय दिलचस्पी ली थी। किन्तु बहुधा वे जो कुछ भी किस्से व कहानियां सुनते थे उन सभी को सत्य समझ कर ग्रहण कर लेते थे। इन लेखकों के विवरणों से इस बात का आभास कम मिलता है कि उन्होंने जो कुछ लिखा है वह स्वयं देखने व अनुभव करने अथवा सुनी हुई बातों पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करने के उपरान्त लिपिबद्ध किया था। विशेषतः प्राक्-सिकन्दरयुगीन लेखकों ने भारत के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा सुनी हुई बातों के आधार पर लिखा है, और वह भी प्रायः अनालोचनात्मक ढंग से। उनके विवरण स्वयं उनके अनुभवों पर आधारित नहीं थे।

सिकन्दर के साथ भारत आने वाले अधिकांश वैज्ञानिकों व लेखकों का उद्देश्य भारत-यात्रा वर्णन लिखना था ही नहीं; वे यहां युद्ध करने आए थे और इसी काम में उनका ज्यादातर समय व्यतीत हुआ। परन्तु बाद में कुछ ने अपनी रुचिवश और कुछ ने सरकारी इतिवृत्त लेखकों के रूप में सिकन्दर के अभियानों का वृत्तान्त भी लिखा। इसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली और वे अपने देशवासियों को भारत के विषय में काफी जानकारी दे सके। परन्तु भारत के जिस भूभाग में सिकन्दरयुगीन यूनानी आये थे वह इस विशाल देश का एक छोर मात्र था। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अन्य मुख्य केन्द्रों तक, जो

1. शास्त्री, नीलकान्त, के० ए०, एज ऑव दि नन्दज़ एण्ड मौर्यज़, पृ० 81।
2. गार्ब, आर०, दि फिलासाफी ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया, पृ० 39-46।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देश के मध्य भाग में स्थित थे, वे पहुंच नहीं सके। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक था कि उनके द्वारा दिया गया विवरण एकांगी होता।

प्राक्-सिकन्दरयुगीन लेखक

हेरोडोटस को छोड़कर शेष लगभग सभी प्राचीन यूनानी लेखकों के ग्रन्थ नष्ट हो चुके हैं। हमें उनके द्वारा लिखित जो कुछ सामग्री उपलब्ध है वह प्राचीन लेखकों के ग्रन्थों में उद्धरणों के रूप में मिलती है। इन उद्धरणों का सावधानी से अध्ययन करके भारत के भूगोल एवं सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक स्थिति का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

जिन यूनानी लेखकों ने भारत का विवरण लिखा उनमें प्रथम था कैरयाण्डा निवासी स्काइलैक्स (Scylax)।[1] इस समुद्रान्वेषक को साखामनीषी सम्राट् दारयवहुष ने 509 वर्ष ईसा पूर्व में यह खोज करने के लिए भेजा था कि सिन्धु नदी समुद्र में कहां जाकर मिलती है। उसने भारत के विषय में अपने अनुभवों को एक ग्रन्थ में लिपिवद्ध किया। स्काइलैक्स की पुस्तक के सम्बन्ध में हमें अधिक जानकारी नहीं है। कहा जाता है कि 30 माह की यात्रा के पश्चात् वह उस स्थान पर पहुंचा था जहां से मिस्र के राजा नीको ने फिनीशिया के लोगों को लीबिया के चतुर्दिक् समुद्री यात्रा के लिए भेजा था। हेरोडोटस ने भी स्काइलैक्स की यात्रा के सम्बन्ध में लिखा है। उसके अनुसार इस यात्रा की समाप्ति के पश्चात् साखामनीषी सम्राट् दारयवहुष ने भारतीयों पर विजय पाई और समुद्र के उन भागों का उपयोग किया जिनका ज्ञान स्काइलैक्स से प्राप्त हुआ था। लेकिन इस वात का भी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि सिकन्दर ने स्काइलैक्स की पुस्तक में प्रदत्त ज्ञान का उपयोग अपने भारत-अभियान में किया था। इतना निश्चित है कि स्काइलैक्स के अभियान के कारण प्रारम्भ हुए भारत विषयक किस्सों ने भारतीयों के सम्बन्ध में यूनानियों के परम्परागत विश्वासों को नवीन रंग दिया। प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक अरस्तु ने एक स्थान पर स्काइलैक्स के इस कथन का कि 'भारतीय राजा शासितों से अत्यधिक श्रेष्ठ होते हैं,' उद्धरण दिया है और फिलॉस्ट्रेटस ने अपने ग्रन्थ में लम्वे सिर वाले लोगों का उल्लेख किया है।[2]

मिलेटस के हिकैटेयस (Hecataeus) नामक भूगोलवेत्ता ने सम्भवतः अपनी लेखनी में स्काइलैक्स के विचारों का उपयोग किया था।[3] अपने एक ग्रन्थ 'इनक्वॉयरीज़' का प्रारम्भ वह इस वाक्य से करता है, 'जो कुछ मैंने लिखा है वह मेरे विचार में सत्य है। यूनानियों की कहानियां मेरी समझ से बहुत अधिक होने के साथ ही हास्यास्पद भी हैं।' हिकैटेयस के एक अन्य ग्रन्थ 'जिओग्रैफी' में अनेक भारतीय नाम सुरक्षित हैं। इसमें

1. पुरी, बैजनाथ, इण्डिया इन क्लासिकल ग्रीक राइटिंग्ज़, पृ० 1।
2. स्काइलैक्स के सम्बन्ध में जानकारी का प्रमुख स्रोत हेरोडोटस (4.44) है। फिलॉस्ट्रेटस, दि लाइफ ऑव अपोलोनियस ऑव टयाना (3.47) तथा अरस्तु, पालिटिक्स, (7.14.3) भी देखिए।
3. हिकैटेयस के लिए देखिए, कैम्ब्रिज एन्श्येण्ट हिस्टरी, भाग 4, पृ० 518-519।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिन्धु नदी के अतिरिक्त दो नगरों, अर्गन्ते व कैस्पैपिरॉस का नाम भी मिलता है। इनमें प्रथम नगर सिन्धु-घाटी में स्थित था। द्वितीय नगर एक मतानुसार गान्धार में था और एक अन्य सुझाव के अनुसार मुल्तान नगर से अभिन्न था। सम्भवतः इसकी पहचान हेरोडोटस द्वारा उल्लिखित कैस्पैटिरस नामक नगर से की जानी चाहिए।[1] इसके साथ ही हिकैटेयस ने कुछ ऐसे जनों का भी उल्लेख किया है जो भारतीय माने जाते हैं यथा ओपिआई (Opiai), कलातिआई (Kalatiai), सियापोडिज़ (Sciapodes) तथा पिग्मी (Pygmy)। वह सिन्धु नदी के बाद रेतीले भूखण्ड अर्थात् थार के रेगिस्तान का उल्लेख भी करता है। हेरोडोटस ने हिकैटेयस के इस वक्तव्य को दोहराया है। परन्तु इन यूनानी लेखकों का ज्ञान स्पष्टतः मात्र उस भूभाग तक सीमित था जिस पर फारसी राजाओं का आधिपत्य स्थापित हुआ। वे भारत के अन्तर्वर्ती क्षेत्रों से सर्वथा अपरिचित थे।

भारत के विषय में लेखनी उठाने वाले प्राक्-सिकन्दरयुगीन यूनानी लेखकों में हेरोडोटस प्रमुख है।[2] यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस को 'इतिहास का जनक' माना जाता है। उसका जन्म एशिया माइनर के दक्षिण-पश्चिमी तट पर कैरिया के हेलिकारनेस्सस (Halicarnassus) नामक एक नगर में 490 से 480 ई० पू० के मध्य कभी हुआ था। यह प्रदेश उस समय साखामनीषी साम्राज्य का अंग था। उसके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दि हिस्टरी' (अथवा 'दि हिस्टरीज़') की रचना की थी। उसका उद्देश्य फारस और यूनान के युद्धों का इतिहास लिखना था। इसको भली भांति समझने और समझाने के लिए उसने इन देशों के प्राचीन इतिहास का अध्ययन किया और इन देशों के प्राचीन इतिहास का अध्ययन करने के लिए इनके पड़ौस में स्थित एशियायी, अफ्रीकी और योरोपीय देशों का। घटनाओं के मूल कारण या कारणों की खोज की यह प्रवृत्ति उसकी इतिहास-जिज्ञासा का प्रमाण है। अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए उसने अनेक देशों की यात्रा भी की थी। परन्तु उसका भारत विषयक ज्ञान सुनी सुनाई बातों पर आधृत था। भारत के विषय में लिखते हुए वह कहता है कि भारत आबादीयुक्त विश्व के पूर्व में स्थित दूरस्थ प्रदेश है। 'भारतीय सूर्योदय के निकटस्थ प्रदेश में रहते हैं।' दारयवहुप के साम्राज्य में रहने वाले भारतीयों के सम्बन्ध में उसने कहा है कि वे संख्या में अधिक थे—इतने अधिक कि उसकी जानकारी में इतनी जनसंख्या वाला अन्य कोई राष्ट्र नहीं था। वे ईरानी सम्राट् को सबसे अधिक कर देते थे (360 टैलेण्ट स्वर्ण-धूलि)। वह इस बात से परिचित था कि भारत के अन्तर्वर्ती प्रदेश में अनेक जातियों के लोग रहते थे जो सभी काले रंग के थे। वे फारस से बहुत दूर दक्षिण की ओर रहते थे। इन पर दारयवहुष का आधिपत्य नहीं था। वे अनेक भाषाओं का प्रयोग करते थे। भारतीयों की कुछ जातियां खानाबदोश भी थीं। इनमें

1. फूशे ने कैस्पैपिरॉस को मुल्तान नगर माना है (ऊलनर कॉमेमोरेशन वॉल्यूम, पृ० 89-105)।
2. मजूमदार, आर० सी०, दि क्लासिकल एकाउण्ट्स ऑव इण्डिया, पृ० 1।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक पेडेएन्स (Padaens) थी जिसके सदस्य कच्चा गोश्त खाते थे।[1] वे अपनी जाति के रोगी अथवा वृद्ध पुरुषों की बलि चढ़ाकर उनका मांस भी खा जाते थे। कुछ अर्द्ध-सभ्य जातियों में यह परम्परा आधुनिक काल में भी प्रचलित थी। साखामनीषी साम्राज्य के अन्तर्गत रहने वाली कलातिआई नामक जाति में भी इस प्रकार की प्रथा प्रचलित थी। एक अन्य जाति कछार प्रदेश में रहती थी। इस जाति के लोग मछली का कच्चा मांस खाते थे। हेरोडोटस का ज्ञान फारसी साम्राज्य के इस ओर रहने वाली असभ्य जातियों तक ही सीमित नहीं था। वह यह भी जानता था कि भारत में ऐसे लोग भी रहते हैं जिनके रीति-रिवाज भिन्न प्रकार के थे। वे किसी जीवित प्राणी की हत्या नहीं करते थे। वे न तो अनाज की खेती करते थे और न उनके पास रहने के लिए घर थे। वे केवल शाक-भाजी पर जीवन यापन करते थे। वे पर्याप्त उत्पन्न होने वाले एक जंगली पौधे के बीजों को उबाल कर खाते थे। यदि कोई व्यक्ति रोग से पीड़ित हो जाता था तो वह जंगल में चला जाता था। किसी भी रोगी अथवा मृत व्यक्ति की लोग परवाह नहीं करते थे। शास्त्री के अनुसार यहां हेरोडोटस का संकेत सम्भवतः अरण्यों में रहने वाले संन्यासियों की ओर है जो जंगली चावल (नीवार) का भोजन करते थे।[2]

हेरोडोटस के अनुसार साखामनीषी साम्राज्य के अन्तर्गत रहने वाली एक अन्य भारतीय जाति थी पक्तियिक (Paktiyika), आधुनिक पश्तु, जो अन्य भारतीयों से कुछ उत्तर की ओर रहती थी। यह अपने जीवन के तौर-तरीकों में बाह्लीक के लोगों से साम्य रखती थी। इस जाति के लोग युद्ध प्रेमी थे। ये लोग रेतीली भूमि से स्वर्ण प्राप्त करने के लिए रखे जाते थे। हेरोडोटस ने 'स्वर्ण खोदने वाली चीटियों' का अत्यन्त विस्तार से उल्लेख किया है। उसके अनुसार ये चीटियां आकार में कुत्ते के समान होती थीं। ये स्वर्ण धूलि को खोदकर उसके टीले बना देती थीं जिन्हें भारतीय उस समय एकत्र करके ऊंटों में लादकर ले जाते थे जब 'चीटियां' दिन के समय धूप से बचने के लिए छाया में कहीं छिप जाती थीं। यह कहानी परवर्ती यूनानी लेखकों में बड़ी लोकप्रिय हुई। भारत का विवरण लिखने वाले अधिकांश यूनानी लेखकों ने इसका उल्लेख किया है। नियर्कस ने दावा किया है कि उसने इन चीटियों की खाल को देखा था। उसने इसे तेंदुए की खाल के सदृश बताया है।[3] मेगास्थेनिज़ ने चीटियों द्वारा खनिज स्वर्ण एकत्र करने का सम्बन्ध दर्दाई जाति (Derdai) से स्थापित किया है। वह आगे कहता है कि ये लोग चीटियों का ध्यान बंटाने के निमित्त जंगली जानवरों का मांस अनेक स्थानों पर रख देते थे ताकि उनके द्वारा एकत्र स्वर्ण-धूल आसानी से ले सकें। स्वर्ण खोदने वाली चीटियों से यूनानियों का क्या तात्पर्य है, यह विवादग्रस्त है। कुछ विद्वान् कहते हैं कि इस प्रकार की चीटियों का नाम स्वर्ण 'पिपीलिका' से विकसित हुआ है।[4] उनके विचार में

1. मजूमदार, आर० सी०, वही, पृ० 21।
2. शास्त्री, नीलकान्त, के० ए०, पूर्वो०, पृ० 84।
3. वही, पृ० 85।
4. शास्त्री, नीलकान्त द्वारा उद्धृत, वही, पृ० 85।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थानीय खानों के स्वामी खानों में स्वर्ण की सुरक्षा के लिए कुत्ते रखते थे। ये कुत्ते स्वर्ण चुराने वाले लोगों का पीछा करते थे। डॉ० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार इस सुझाव से समस्या का समाधान नहीं होता।[1] 'स्वर्ण खोदने वाली चीटियों' का यूनानी ग्रन्थकारों द्वारा दिया गया यह विवरण भारत में प्रचलित किंवदन्तियों पर आधारित प्रतीत होता है। हेरोडोटस आगे कहता है कि भारत को स्वर्ण की आवश्यकता का एक छोटा भाग ही खानों से प्राप्त होता था। हेरोडोटस व मेगास्थेनिज़ दोनों के विचार में नदियों के तट से भी कुछ स्वर्ण प्राप्त होता था।[2]

हेरोडोटस के मतानुसार घोड़ों को छोड़कर भारत में पाये जाने वाले अन्य पशु व पक्षी आकार में बहुत बड़े थे। उसके अनुसार इन आकारों के पशु-पक्षी अन्यत्र नहीं मिलते। वह एक स्थान पर बैबिलोन के साखामनीषी गवर्नर की चर्चा करते हुए कहता है कि उसने भारतीय शिकारी कुत्ते बहुत अधिक संख्या में पाल रखे थे। इन कुत्तों के भोजन के लिए उसने चार बड़े ग्रामों को सभी प्रकार के करों से मुक्त कर रखा था। आगे वह कहता है कि नील नदी के अतिरिक्त सिन्धु नदी ही एक ऐसी नदी थी जहां मगर मिलते थे।[3] वह भारत में पाए जाने वाले एक वृक्ष का उल्लेख भी करता है जिससे ऊन निकाला जाता था जो भेड़ों से प्राप्त होने वाले ऊन से सुन्दर एवं अच्छा होता था। हेरोडोटस की यह खोज यूनानियों के लिए अत्यन्त मनोरंजक एवं रुचिकर रही होगी।* हेरोडोटस के कथनानुसार भारत के लोग इस वृक्ष से निकलने वाले ऊन के वस्त्र पहनते थे। क्षयार्षा नामक साखामनीषी सम्राट् की सेना के भारतीय सैनिक सूती वस्त्र ही पहने हुए थे। उनके हाथों में बेंत के धनुष तथा लौह फलक वाले बेंत के बाण थे। कुछ भारतीय इसी प्रकार के सामान से सज्जित होकर घोड़ों पर सवार थे तथा कुछ अन्य जंगली गधों अथवा घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले रथों पर।

लीडिया के नीडिया (Cnidia) नगर का निवासी टीसियस (Ctesias) एक अन्य प्राक्-सिकन्दरयुगीन लेखक था जिसने भारत के विषय में एक ग्रन्थ लिखा। वह हेरोडोटस से एक पीढ़ी बाद का लेखक था। टीसियस ने अपने जीवन के 17 वर्ष साखामनीषी दरबार में व्यतीत (416-398 ई० पूर्व) किये थे। वह साखामनीषी सम्राट् अर्तक्षयार्षा का वैद्य था। साखामनीषी दरबार में रहने के कारण उसे फारसी कर्मचारियों से भारत के विषय में अनेक बातें सुनने व स्वयं भारतीयों से भेंट करने के अवसर प्रायः मिले। फारसी कर्मचारी भारत जाते थे तथा भारतीय राजदूत व व्यापारी साखामनीषी दरबार में आते थे। इस प्रकार के लोगों से भारत के विषय में उसे पर्याप्त जानकारी मिली। इसके साथ उसने साखामनीषी सम्राट् से राज्य के अभिलेख संग्रहालय का उपयोग करने की आज्ञा भी प्राप्त की थी। टीसियस का मूल ग्रन्थ

1. वही, पृ० 85।
2. वही, पृ० 85 एवं टिप्पणी 2।
3. मजूमदार, आर० सी०, वही, पृ० 4।

* 'वृक्ष पर उगने वाले ऊन' की चर्चा असीरियन अभिलेखों में भी मिलती है। —सम्पादक।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अब नहीं मिलता, इसका कुस्तुन्तुनिया के फोटियस (Photius) द्वारा सुरक्षित संक्षिप्त रूप (9वीं शताब्दी) मात्र मिलता है।[1] इसके अतिरिक्त इसके कुछ उद्धरण प्लिनी (Pliny) तथा एलियन (Aelian) नामक लेखकों ने भी दिए हैं। टीसियस का विवरण हेरोडोटस के विवरणों से अधिक विश्वसनीय नहीं माना जा सकता।[2] नीलकान्त शास्त्री ने उसके विवरणों की विश्वसनीयता पर सन्देह व्यक्त किया है। उसके विवरण के ऐसे अंश—यथा सभी भारतीय काले नहीं थे, उसने कुछ श्वेत भारतीयों को देखा था, भारतीय लोग अपनी न्याय-बुद्धि के लिए प्रसिद्ध थे, उनमें मृत्यु के प्रति घृणा व राजभक्ति थी, आदि—रोचक हैं और इन्हें मूलतः सही माना जा सकता है। परन्तु कुल मिलाकर टीसियस एक 'झूठा कहानीकार' माना जाता है।[3] उसका ग्रन्थ श्वानमुखी और श्वानशीर्ष मानवों और बौनों की कथाओं से भरा हुआ है।[4] उसने नरभक्षी मार्तिखोरा नामक एक नरभक्षी दैत्य का भी उल्लेख किया है जो आकार में शेर के समान था। इस जन्तु का मुंह मनुष्य के समान था और यह अपनी लम्बी पूंछ से, दूर स्थित जानवरों को जहरीले डंक द्वारा मार डालता था। हाथी को छोड़कर वह सभी जानवरों को मारने में समर्थ था। टीसियस की कल्पना का अन्त यहीं नहीं है। वह दावा करता है कि उसने भारत द्वारा साखामनीषी सम्राट् को भेंट में दिए गये एक ऐसे दैत्याकार जन्तु को फारस में अपनी आंखों से देखा था।[5] शायद टीसियस को इसलिए क्षमा कर देना उचित नहीं होगा कि उसके ग्रन्थ को संक्षिप्त रूप देने वाले फोटियस की विशेष रुचि कहानियों में थी और उसने ग्रन्थ के संक्षिप्त अंश में गल्प कहानियों पर आधारित जातियों व टीसियस द्वारा उल्लिखित भारत की अद्भुत उपजों पर अनावश्यक रूप से अधिक बल दिया है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि टीसियस के विवरण के अधिक महत्त्वपूर्ण अंशों की उपेक्षा की गई है, क्योंकि किसी लेखक ने उसके विवरण में सारपूर्ण तथ्यों को खोजने का प्रयत्न ही नहीं किया है।

वास्तव में हेरोडोटस व सिकन्दर के बीच के काल में यूनानियों का भारत विषयक ज्ञान बड़ा अस्पष्ट था। साखामनीषी सम्राटों के हाथ से कुछ समय बाद भारतीय प्रदेश निकल गये थे*। सिकन्दर का सामना हिन्दुकुश पर्वत के पूर्व में किसी फारसी कर्मचारी से नहीं हुआ था। हेरोडोटस का भी लोगों को अधिक ज्ञान नहीं था।[6] इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं है कि स्काइलैक्स की हेरोडोटस द्वारा वर्णित यात्रा का ज्ञान सिकन्दर को था। सिन्धु नदी के किनारे पहुंचने पर उसने सोचा कि वह नील नदी के

1. मैक्रिण्डल, एन्श्येण्ट इण्डिया ऐज़ डेस्क्राइब्ड बाई टीसियस दि नीडियन, कलकत्ता, 1882।
2. शास्त्री, नीलकान्त, के० ए०, एज ऑव दि नन्दज़ एण्ड मौर्यज़, पृ० 86।
3. वही, पृ० 86।
4. वही, पृ० 87।
5. देखिए, शास्त्री, नीलकान्त, के० ए०, एज ऑव दि नन्दज़ एण्ड मौर्यज़, पृ० 87; पुरी, बैजनाथ, इण्डिया इन क्लासिकल ग्रीक राईटिंग्ज़, पृ० 217।

* मतान्तर के लिए द्र०, पीछे, अध्याय, पृ० 177 अ०—सम्पादक।

6. वही, पृ० 87।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्रोत पर पहुंच गया है तथा व्यास के किनारे पर पहुंचने पर उसने अपने सिपाहियों को वताया था कि अब वे पूर्वी छोर तक पहुंचने वाले हैं।[1] इस वात में भी सन्देह किया गया है कि सिकन्दर को गंगा नदी का ज्ञान था। गंगा पर स्थित प्रासायी (Prasii) विजय की सिकन्दर की इच्छा वाली कहानी वाद में गढ़ी गई थी। सम्भवतः वह केवल सतलज व उसके पार के गण्डेरिडाय (Gandaridae) साम्राज्य मात्र के विषय में जानता था जिस पर विजय प्राप्त करने पर पूर्वी समुद्र तट तक पहुंचा जा सकता था।[2]

सिकन्दर के इतिहासकार

सिकन्दर के भारत-अभियान से यूनानियों को भारत के विषय में विश्वसनीय और विस्तृत जानकारी प्राप्त करने का प्रथम अवसर प्राप्त हुआ। इस समय तक यूनानियों ने वैज्ञानिक अध्ययन में रुचि लेनी प्रारम्भ कर दी थी। सिकन्दर स्वयं मानवीय ज्ञान के महान् पंडित अरस्तु का शिष्य था। यह स्वाभाविक था कि उसके युद्धों व अभियानों में प्राथमिकता सामरिक तत्त्वों को दी जाती तथापि उसने अन्य वातों को भी समुचित महत्त्व दिया था। उसके सहायकों व साथियों में अनेक वैज्ञानिक व साहित्यकार थे। इनमें वहुतों ने अपने भारतीय प्रवास के समय जो कुछ देखा व सुना, उसको लिपिबद्ध किया। सिकन्दर के साथ भारत आने वाले लेखकों ने सर्वप्रथम विश्व को भारत की भौगोलिक विशेषताओं, फसलों, भारतीय लोगों की सामाजिक व राजनीतिक संस्थाओं आदि के विषय में वहुत कुछ आंखों देखी तथा न्यूनाधिक मात्रा में सही जानकारी दी। सिकन्दर के लेखकों में चार का नाम परवर्ती यूनानी लेखकों ने अपने ग्रन्थों में विशेष रूप से लिया है। इनमें प्रथम नियर्कस (Nearchus) था।[3] उसने फारस की खाड़ी की यात्रा विवरण के प्रसंग में उन तमाम विषयों पर साधारणतः विश्वसनीय सूचना दी जिनके विषय में उसे जानने का अवसर प्राप्त हुआ था। नियर्कस का मकदूनिया के दरवार में ही पोषण हुआ था।[4] सिकन्दर के साथ उसे भी शिक्षा प्राप्त हुई थी। उसके संस्मरण अब नहीं मिलते, केवल स्ट्रेवो व एरियन के ग्रन्थों में इनके उद्धरण उपलब्ध हैं।

सिकन्दर का द्वितीय समकालिक लेखक ओनेसिक्रिटस (Onesicritus) था जो नियर्कस की सैनिक टुकड़ी का मुख्य कमाण्डर था। उसने सिकन्दर की जीवनी लिखी थी जो अव तक विलुप्त हो गई है। वह निराशावादी दार्शनिक डायोगिनिज़ (Diogenes) का समर्थक था। इसी कारण सिकन्दर ने उसे तक्षशिला के भारतीय ऋषियों के साथ वातचीत करने के लिए चुना था।[5] उसकी सवसे वड़ी कमजोरी यह थी कि उसे जो वातें अच्छी लगती थीं उनका अतिरंजित वर्णन करता था। उसके विषय में

1. एरियन, अनावेसिस, 6, 1 तथा 5,26 : स्ट्रेवो, 15, 1, 25 (नीलकान्त शास्त्री द्वारा पूर्वनिर्दिष्ट ग्रन्थ में उद्धृत)।
2. देखिए, टार्न कैम्ब्रिज एन्श्येण्ट हिस्टरी, 6, पृ० 410-11।
3. शास्त्री, नीलकान्त, के० ए०, पूर्वो०, पृ० 88।
4. वही, पृ० 88; पुरी, वैजनाथ, पूर्वो०, पृ० 167।
5. मजूमदार, आर० सी०, पूर्वो०, पृ० 201-202।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्ट्रेबो ने लिखा है कि, 'जिस प्रकार उसे सिकन्दर का एक कुशल सेनापति कहा जा सकता है उसी प्रकार उसे एक कुशल कहानीकार भी माना जा सकता है।[1] आधुनिक लेखकों में उसके विवरणों की विश्वसनीयता को लेकर पर्याप्त मतभेद है।

सिकन्दर के साथ भारत आने वाले लेखकों में एरिस्टोबुलस (Aristobulus) भी महत्त्वपूर्ण है। उसने सिकन्दर के युद्धों का इतिहास लिखा था। उसकी पुस्तक एरियन के 'अनाबेसिस' तथा सिकन्दर की प्लुटार्क द्वारा लिखित जीवनी का आधार थी।[2] उसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसकी रुचि मुख्यतः भौगोलिक क्षेत्र में थी। उसने अपना ग्रन्थ बहुत बाद में लिखना प्रारम्भ किया था। उसके ग्रन्थ का ऐतिहासिक भाग उसके काल में सिकन्दर के विषय में प्रचलित हो रही गाथाओं से भी बहुत प्रभावित हुआ था।

सिकन्दर के इतिहासकारों में अग्रणी था क्लिटार्कस (Kleitarchus)। वह डिनॉन (Deinon) नामक इतिहासकार का पुत्र था। सिकन्दर के भारत अभियान के समय वह भी साथ आया था। उसके द्वारा लिखा गया इतिहास खोजपूर्ण तथा रोमांचित कर देने वाले कथानकों से पूर्ण था। उसके बाद के लेखकों ने उसके ग्रन्थ को अपेक्षित सम्मान नहीं दिया। सिकन्दर के अभियान से सम्बन्धित एक रोचक संस्मरण जिसका उसने वर्णन किया है, एलियन व स्ट्रेबो के ग्रन्थों में भी मिलता है। इसके अनुसार एक बार जब सिकन्दर की सेना जंगल से होकर जा रही थी तो मार्ग में विशालकाय लंगूरों के झुण्ड को दुश्मन की सेना समझकर यूनानी सैनिक भयभीत हो गये थे।[3]

सिकन्दर के समकालिक लेखकों के पश्चात् हेलेनिस्टिक साम्राज्य के राजदूतों के विवरण महत्त्वपूर्ण हैं। मौर्य साम्राज्य के दरबार में आने वाले हेलेनिस्टिक राजदूतों को भारत के विषय में अधिक निकट से जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिला। इन राजदूतों में मेगास्थेनिज़ का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसके साक्ष्य का विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थमाला के अगले खण्ड में किया गया है।

1. शास्त्री, नीलकान्त, के० ए०, वही, पृ० 88।
2. वही, पृ० 88।
3. मैक्रिण्डल, एन्श्येण्ट इण्डिया एज डेस्काइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर, पृ० 148-149।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तिथिक्रम तालिका

(ये सभी तिथियां इस ग्रन्थ में स्वीकृत निष्कर्षों के अनुसार हैं)

ई० पू० में तिथि	घटना
563	बुद्ध व प्रसेनजित् का जन्म
558	महावीर का जन्म; बिम्बिसार का जन्म
553-529	प्रथम कुरुष—साखामनीषी नरेश
543	बिम्बिसार का राज्यारोहण
530	प्रसेनजित् का राज्यारोहण
529-522	द्वितीय कम्बुजिय—साखामनीषी नरेश
522 के पूर्व कभी	बिम्बिसार की अंग-विजय
522-486	प्रथम दारयवहुष—साखामनीषी नरेश
518	प्रथम दारयवहुष की 'हिन्दु'-विजय
517	स्काइलैक्स का अभियान
507-486	चण्ड प्रद्योत महासेन—अवन्ति-नरेश
505	बिम्बिसार का बन्दीकरण
503	अजातशत्रु का कोसल से प्रथम युद्ध
503-483	अजातशत्रु का लिच्छवियों से युद्ध
502	मक्खलि गोसाल की मुक्ति
495-490	उदयन की मृत्यु व अवन्ति की वत्स-विजय
491	बिम्बिसार की हत्या और अजातशत्रु का अभिषेक
486	महावीर की मुक्ति; अजातशत्रु का द्वितीय कोसल-युद्ध
486-465	क्षयार्षा—साखामनीषी नरेश
486-462	अवन्ति-नरेश पालक
483	प्रसेनजित् की मृत्यु; बुद्ध का परिनिर्वाण; विडूडभ का राज्यारोहण; वज्जिसंघ का पतन; शाक्यों का विडूडभ द्वारा विनाश; प्रथम बौद्ध संगीति
465-425	प्रथम अर्तक्षयार्षा—साखामनीषी नरेश
462-441	अजक (आर्यक)—अवन्ति-नरेश
459-443	मगधराज उदायिभद्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

443-435	मगधराज अनुरुद्ध व मुण्ड
441-411	नन्दिवर्द्धन—अवन्ति-नरेश
435-411	नागदासक—मगध-नरेश
425-405	द्वितीय दारयवहुष—साखामनीषी नरेश
411-393	शिशुनाग—मगध नरेश
405-359	द्वितीय अर्तक्षयार्षा नेमोन—साखामनीषी नरेश
393-365	कालासोक—मगध नरेश
383	द्वितीय बौद्ध संगीति
365-343	कालासोक के दस पुत्र और महापद्मनन्द का संरक्षक रूप में शासन
359-336	तृतीय अर्तक्षयार्षा—साखामनीषी नरेश; द्वितीय फिलिप—मकदूनिया नरेश
356	सिकन्दर का जन्म
343-321	महापद्मनन्द और उसके उत्तराधिकारी
336-330	तृतीय दारयवहुष—साखामनीषी नरेश
336	सिकन्दर का राज्यारोहण
334	सिकन्दर का एशिया माइनर में प्रवेश
333 (अक्टूबर)	आइसिस का युद्ध
331 (अक्तूबर)	अर्बेला का युद्ध
330	पर्सिपॉलिस का भस्मीकरण
329	सिकन्दर का काबुल-प्रवेश
329 (मई)	सिकन्दर का हिन्दुकुश पार करना
329 (अगस्त)	सिकन्दर की पुष्कलावती-विजय
329 (दिसम्बर)	सिकन्दर की अर्नोस-विजय
326 (फरवरी या मार्च)	सिकन्दर का सिन्धु पार करना
326 (जुलाई)	झेलम का युद्ध और पोरस की पराजय
326 (अगस्त)	सिकन्दर के हाथों कठों का पराभाव
326 (सितम्बर)	सिकन्दर का ब्यास के तट पर पहुंचना और वहां से उसका प्रत्यावर्तन
325 (जनवरी)	मल्लोई का पतन
325 (जुलाई)	सिकन्दर का पोतल पहुंचना
325 (सितम्बर)	सिकन्दर का स्थल मार्ग से व नियर्कस का समुद्री मार्ग से पश्चिमी एशिया को प्रस्थान
324	सिकन्दर का सूसा पहुंचना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

323 (जून)	सिकन्दर की मृत्यु; बैबिलोन का समझौता
321	त्रिपार्डिसस की सन्धि; नन्दों का पतन; चन्द्रगुप्त मौर्य का अभिषेक
317 तक	यूडेमस की भारत में विद्यमानता
316	पीथोन का भारत से जाना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

(अ) मूल ग्रन्थ

अंगुत्तर निकाय : (सम्पा०) आर० मोरिस तथा इ० हार्डी, पी०टी०एस०, लन्दन, 1885-1900।

अथर्ववेद संहिता : (सम्पा०) डब्ल्यु० डी० ह्विटने, हारवर्ड विश्वविद्यालय, 1905।

अर्थशास्त्र : (सम्पा०) वाचस्पति गैरोला, वाराणसी, 1962।
: (सम्पा०) आर० शामशास्त्री, मैसूर, 1919।
: (सम्पा०) आर० पी० कांगले, बम्बई, 1960।

आचारांग : (सम्पा०) एच० जैकोबी, पी०टी०एस०, लन्दन, 1882।

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प : (सम्पा०) टी० गणपतिशास्त्री, त्रिवान्द्रम, 1925।
: (सम्पा०) के० पी० जायसवाल, एन इम्पीरियल हिस्टरी ऑव इण्डिया, लाहौर, 1934।

आवश्यक सूत्र : जिनदासगणि की चूर्णि सहित, रतलाम, 1928-29।

उपनिषद् : विविध उपनिषदों के गीता प्रेस, गोरखपुर, द्वारा प्रकाशित संस्करण।

कथाकोष : (सम्पा०) टोनी, लन्दन, 1895।

कथासरित्सागर : ले० सोमदेव; बम्बई, 1903।

कल्पसूत्र : ले० भद्रबाहु; अंग्रेजी अनुवादक एच० जैकोबी, एस० बी० इ०, ऑक्सफोर्ड, 1892; पुनमुद्रण दिल्ली, 1964।

कामसूत्र : ले० वात्स्यायन; (सम्पा०), देवदत्त शास्त्री, वाराणसी, 1964।

कालिदास ग्रन्थावली : (सम्पा०) सीताराम चतुर्वेदी, अलीगढ़, 1950।

जातक : (सम्पा०) वी० फॉसबॉल, 6 भाग, लन्दन, 1877-97
: इ० बी० कॉवेल (अंग्रेजी अनुवादक), कैम्ब्रिज, 1895-1913।

जैनसूत्र : (सम्पा०), एच० जैकोबी एस० बी० इ०, 22 तथा 45, ऑक्सफोर्ड, 1884-1895।

दशकुमारचरित : ले० दण्डी, (सम्पा०) विश्वनाथ झा तथा सुबोधचन्द्र पन्त, वाराणसी, 1974।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिव्यावदान : (सम्पा०) इ० बी० कॉवेल तथा आर० ए० नील, कैम्ब्रिज, 1886।
: (सम्पा०) प० ल० वैद्य, दरभंगा, 1959।
दीघनिकाय : (सम्पा०) भिक्षु राहुल सांकृत्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप, 3 भाग, नालन्दा-देवनागरी-पालि सिरीज़।
दीपवंस : (सम्पा०) एच० ओल्डनबर्ग, लन्दन, 1879।
निरयावलिकासूत्र : (सम्पा०) ए० एस० गोपानी तथा वी० जे० चोकशी, अहमदाबाद, 1935।
परिशिष्टपर्वण : ले० हेमचन्द्र; (सम्पा०) एच० जैकोबी, कलकत्ता, 1932।
प्रियदर्शिका : ले० हर्ष, (सम्पा०) वी० डी० गार्डर, बम्बई, 1884।
बौधायन धर्मसूत्र : (सम्पा०) एल० श्रीनिवासाचार्य, मैसूर, 1907।
बृहत्कथाकोष : ले० हरिषेण; (सम्पा०) ए० एन० उपाध्ये, बम्बई, 1943।
बृहत्कथामञ्जरी : ले० क्षेमेन्द्र; बम्बई, 1901।
भगवती सूत्र : अभयदेव की टीका सहित, 3 भाग, बम्बई, 1910-12।
भागवत पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर, वि० सं० 2010।
मत्स्य पुराण : आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, पूना, 1907।
मनुस्मृति : अंग्रेजी अनुवादक पं० गंगानाथ झा, 5 भाग, कलकत्ता, 1922-29।
: अंग्रेजी अनुवादक केशव प्रसाद शर्मा, बम्बई, 1923।
महाबोधिवंस : एस०ए० स्ट्रांग, पालि टैक्स्ट सोसायटी, लन्दन, 1891।
महाभारत : गीता प्रेस, गोरखपुर।
महाभाष्य : ले० पतंजलि; (सम्पा०) एफ० कीलहॉर्न, 3 भाग, बम्बई, 1880-85।
महावंस : (सम्पा०) डब्ल्यु० गीगर, पी०टी०एस०, लन्दन, 1908
महावंसटीका : पालि टैक्स्ट सोसायटी संस्करण।
मिलिन्दपञ्हो : (सम्पा०) आर० डी० बडेकर, बम्बई विश्वविद्यालय, 1940।
: अंग्रेजी अनुवादक टी० डब्ल्यु० रीज़ डेविड्स, एस० बी० इ०, ऑक्सफोर्ड, 1890-94।
मुद्राराक्षस : ले० विशाखदत्त; (सम्पा०) सत्यव्रतसिंह, वाराणसी, 1968।
मृच्छकटिक : (सम्पा०) रामानुज ओझा, वाराणसी, 1966।
रत्नावली : ले० श्री हर्ष; (सम्पा०) के०पी० परब, बम्बई, 1895।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजतरंगिणी : ले० कल्हण; (सम्पा०) रामतेजशास्त्री, वाराणसी, 1950।
रामायण : गीता प्रेस, गोरखपुर।
लंकावतार : अंग्रेजी अनुवादक डी० टी० सुजूकी, लन्दन, 1932।
ललित विस्तर : (सम्पा०) आर० मित्रा, कलकत्ता, 1877।
विष्णुपुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर।
: अंग्रेजी अनुवादक एच० एच० विल्सन, 3रा संस्करण, कलकत्ता, 1961।
स्वप्नवासवदत्ता : ले० भास;(सम्पा०) तरिणीश झा, इलाहाबाद, 1973।
स्थविरावलिचरित : दे०, परिशिष्टपर्वण, ले० हेमचन्द्र।
हरिवंश पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर।

(ब) **सहायक-ग्रन्थ**

अग्रवाल, वी० एस० : पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वाराणसी, 1969।
: प्राचीन भारतीय लोकधर्म, वाराणसी, 1964।
अल्तेकर, ए० एस० : स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन एन्श्येण्ट इण्डिया, वाराणसी, 1955।
आयंगर, एस० के० : बिगिनिंग्स् ऑव साउथ इण्डियन हिस्टरी, मद्रास, 1918।
आयंगर, कृष्णस्वामी : एन्श्येण्ट इण्डिया, लन्दन 1911।
उपाध्याय, बी० एस० : बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, इलाहाबाद, वि० सं० 2018।
एगरमोन्त, पी० एच० एल० : द क्रोनोलॉजी ऑव द रेन ऑव अशोक मोरिय, लीडेन, 1956।
ओझा के०, सी० : हिस्टरी ऑव फोरेन रूल इन एन्श्येण्ट इण्डिया इलाहाबाद, 1968।
ओमस्टीड, ए० टी० : हिस्टरी ऑव पर्शियन एम्पायर, शिकागो, 1949।
कनिंघम, ए० : द एन्श्येण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, कलकत्ता, 1924।
काणे, पी० वी० : हिस्टरी ऑव धर्मशास्त्र, भाग 1-3, पूना, 1930-46।
कौसाम्बी, डी० डी० : एन इण्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑव इण्डियन हिस्टरी, बम्बई, 1956।
गाइल्स, एच० ए० : द ट्रैवेल्स ऑव फा-ह्यान ऑर रिकार्ड ऑव द बुद्धिस्ट किंगडम्स्, 399-414 ए० डी०, लन्दन, 1956।
गोयल, एस० आर० : ए हिस्टरी ऑव इम्पीरियल गुप्तज़, इलाहाबाद, 1967
: प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास (गुप्त एवं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समकालीन राजवंश), भाग 3, इलाहाबाद, 1968
: प्राचीन नेपाल का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, वाराणसी, 1973।
: विश्व की प्राचीन सभ्यताएं, भाग 1, गोरखपुर, 1963।
घिर्शमां, आर० : ईरान, लन्दन, 1951।
घोषाल, यू० एन० : ए हिस्टरी ऑव इण्डियन पॉलिटिकल आइडियाज़, बम्बई, 1959।
: ए हिस्टरी ऑव इण्डियन पब्लिक लाइफ, बम्बई, 1966।
चट्टोपाध्याय, एस० : एख़ियमिनाइड्स् इन इण्डिया, कलकत्ता 1950।
जायसवाल, के० पी० : हिन्दू पोलिटी, बंगलौर, 1955।
जैन, जे० सी० : लाइफ इन एन्श्येण्ट इण्डिया एज़ डिपिक्टिड इन जैन केनन्स, बम्बई, 1947।
जैन, हीरालाल : भारतीय संस्कृति को जैन धर्म का योगदान।
जैनी, जे० आर० : आउटलाइन्स ऑव जैनिज़्म, कैम्ब्रिज, 1940।
टार्न, डब्ल्यु० डब्ल्यु० : ग्रीक्स इन बैक्ट्रिया एण्ड इण्डिया, कैम्ब्रिज, 1938।
ठाकुर, उपेन्द्र : हिस्टरी ऑव मिथिला, दरभंगा, 1956।
डेविड्स, आर० : बुद्धिस्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1955।
: डायलॉग्स् ऑव द बुद्ध, लन्दन।
ड्रेख़्मीर, सी० : किंग्डम एण्ड कम्युनिटी इन अर्ली इण्डिया, कैलीफोर्निया, 1962।
तारानाथ : हिस्टरी ऑव बुद्धिज़्म इन इण्डिया, आई० एच० क्यु० में प्रकाशित अनुवाद; लामा चिम्पा व अल्का चट्टोपाध्याय द्वारा अनूदित।
त्रिवेद, डी० एस० : प्राङ-मौर्य बिहार, पटना, 1954।
थापर, आर० : ए हिस्टरी ऑव इण्डिया, 1, लन्दन, 1966।
: अशोक एण्ड द डेक्लाइन ऑव द मौर्यज़, आक्सफोर्ड, 1961।
दत्त, एन० : अर्ली मोनेस्टिक बुद्धिज़्म, भाग 1, कलकत्ता, 1941; भाग 2, कलकत्ता, 1945।
दत्त, नलिनाथ, एवं बाजपेयी, के० डी० (सम्पा०) : उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, लखनऊ, 1956
दिवाकर, आर० आर० : बिहार थ्रू द एजिज़, कलकत्ता, 1959।
पाठक, वी० एस० : एन्श्येण्ट हिस्टोरियन्स ऑव इण्डिया, बम्बई, 1966।
पाण्डेय, आर० बी० : गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इति-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हास, गोरखपुर, वि० सं० 2003।
: अशोक के अभिलेख, वाराणसी, वि० सं० 2022।
पाण्डेय, जी० सी० : स्टडीज़ इन द ओरिजिन्स ऑव बुद्धिज़्म, इलाहाबाद, 1957।
: बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, 1963।
पार्जिटर, एफ० इ० : एन्श्येण्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन, लन्दन, 1922
: द पुराण टैक्स्ट्स ऑव द डयनेस्टीज़ ऑव कलि एज, दूसरा संस्करण, वाराणसी, 1962।
पुरी, बी० एन० : इण्डिया इन क्लासिकल ग्रीक राइटिंग्ज़, अहमदाबाद, 1963।
प्रधान, एस० एन० : क्रोनोलॉजी ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1927।
फिक, आर० : द सोशल ऑर्गनाइजेशन ऑव नार्थ-ईस्ट इण्डिया इन बुद्धज़ टाइम, कलकत्ता, 1920।
फुलर, जे० एफ० सी० : द जेनरलशिप ऑव अलेक्जेण्डर, नई दिल्ली, 1977।
वज, इ० ए० डब्ल्यु० : द लाइफ एण्ड एक्सप्लोयट्स ऑव अलेक्जेण्डर द ग्रेट (सीरियाइक वर्ज़न), कैम्ब्रिज, 1889।
बनर्जी, आर० डी० : हिस्टरी ऑव उड़ीसा, भाग 2, कलकत्ता, 1930-31।
बनर्जी, एन० आर० : आयरन एज इन इण्डिया, दिल्ली, 1965।
बन्द्योपाध्याय, एन० सी० : डेवलपमेण्ट ऑव हिन्दू पोलिटी एण्ड पोलिटिकल थ्योरीज़, कलकत्ता, 1927।
बरुआ, : प्रि-बुद्धिस्टिक इण्डियन फिलोसोफी।
बागची, पी० सी० : इण्डिया एण्ड सेण्ट्रल एशिया, कलकत्ता, 1955।
बील, एस० : बुद्धिस्ट रिकार्ड्स ऑव द वैस्टर्न वर्ल्ड, 2 भाग, लन्दन, 1906।
बी० सी० लाहा वॉल्यूम, : दो भाग में।
बुद्ध प्रकाश : पोलिटिकल एण्ड सोशल मूवमेण्ट्स इन एन्श्येण्ट पंजाब, दिल्ली, 1964।
बेनी प्रसाद : द स्टेट इन एन्श्येण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, 1928।
बैशम, ए० एल० : हिस्टरी एण्ड डॉक्ट्रिन्स् ऑव द आजीवकज़, लन्दन, 1951।
: द वण्डर दैट वाज़ इण्डिया, लन्दन, तीसरा संस्करण, 1967।
: स्टडीज़ इन इण्डियन हिस्टरी एण्ड कल्चर, कलकत्ता, 1964।
बोस, एस० एन० : सोशल एण्ड रूरल इकोनोमी ऑव नॉर्थ इण्डिया,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

2 भाग, कलकत्ता, 1945।

बोंगार्ट लेविन : एन्श्येण्ट इण्डिया एण्ड सेण्ट्रल एशिया, कलकत्ता, 1971।

ब्यूरी, जे० बी० : हिस्टरी ऑव ग्रीस, न्यूयार्क, 1913।

भाण्डारकर कोमेमोरेशन वॉल्यूम

भाण्डारकर, डी० आर० : लैक्चर्स ऑन एन्श्येण्ट हिस्टरी ऑव इण्डिया (कार्माइकेल लैक्चर्स), कलकत्ता, 1918।

: सम आसपैक्ट्स ऑव एन्श्येण्ट इण्डियन पोलिटी, वाराणसी, 1929।

भारत कौमुदी, 2 भाग, इलाहाबाद 1945-47

मजूमदार, आर० सी० : एन्श्येण्ट इण्डिया, वाराणसी, 1952।

: कोरपोरेट लाइफ इन एन्श्येण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1922।

: द क्लासिकल एकाउण्ट्स ऑव इण्डिया, कलकत्ता, 1960।

मजूमदार, रायचौधुरी, तथा दत्त : एडवान्स्ड हिस्टरी ऑव इण्डिया, लन्दन, 1950।

मार्शल, सर जॉन : गाइड टु टैक्सिला, दिल्ली, 1936।

मिश्र, योगेन्द्र : एन अर्ली हिस्टरी ऑव वैशाली, दिल्ली, 1962।

मिश्र, जी० एस० पी० : द एज ऑव विनय, दिल्ली, 1972।

मुकर्जी, आर० के० : हिन्दू सभ्यता (अनु०, वा० श० अग्रवाल), दिल्ली, 1958।

: अशोक, लन्दन, 1938।

: चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल (अनु०, मुनीश सक्सेना), दिल्ली, 1962।

: लोकल गवर्नमेण्ट इन एन्श्येण्ट इण्डिया, ऑक्सफोर्ड, 1920।

: एन्श्येण्ट इण्डियन एजुकेशन दिल्ली, 1962।

मेक्रिण्डल, जे० डब्ल्यु० : एन्श्येण्ट इण्डिया एज डैस्क्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर, वेस्टमिनस्टर, 1901।

: एन्श्येण्ट इण्डिया एज डेस्क्राइब्ड बाई टीसियस द नीडियन, कलकत्ता, 1883।

मेहता, आर० एन० : प्रि-बुद्धिस्ट इण्डिया, बम्बई, 1939।

मोतीचन्द्र : काशी का इतिहास, बम्बई, 1962।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मजूमदार, आर० सी० तथा
पुसाल्कर, ए० डी० (सम्पा०) : द एज ऑव इम्पीरियल यूनिटी, बम्बई, 1960।
: द वैदिक एज, बम्बई, 1965।
याजदानी, जी० (सम्पा०) : द अर्ली हिस्टरी ऑव डकन, 2 भाग, लन्दन।
रॉकिहल, डब्ल्यु० डब्ल्यु० : द लाइफ ऑव द बुद्ध, लन्दन, 1884।
राय, उ० ना० : प्राचीन भारतीय नगर और नागरिक जीवन, इलाहाबाद, 1965।
रायचौधुरी, एच० सी० : पोलिटिकल हिस्टरी ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1953।
रायचौधुरी, पी० सी० : जैनिज़्म इन विहार, पटना, 1956।
राव, वि० ब० : उत्तर वैदिक समाज और संस्कृति, वाराणसी।
रेग्मी, डी० आर० : एन्श्येण्ट नेपाल, कलकत्ता, 1960।
रेप्सन, ई० जे० (सम्पा०) : कैम्ब्रिज हिस्टरी ऑव इण्डिया, खण्ड 1, कैम्ब्रिज, 1922।
: एन्श्येण्ट इण्डिया, कैम्ब्रिज, 1935।
लाहा, एन० एन० : आस्पेक्ट्स ऑव एन्श्येण्ट इण्डियन पोलिटी, ऑक्सफोर्ड, 1921।
लाहा, बी० सी० : ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़्म, लन्दन, 1932।
: ए हिस्टरी ऑव पालि लिटरेचर, 2 भाग, लन्दन, 1933।
: सम क्षत्रिय ट्राइब्स ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया, कलकत्ता 1923।
: क्षत्रिय क्लान्स इन बुद्धिस्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1932.
: ट्राइब्स् इन एन्श्येण्ट इण्डिया, पूना, 1943।
वाटर्स, टी० : ऑन युवान् च्वांग्स ट्रैवल्स इन इण्डिया, लन्दन 1904-5।
वाल्श : पञ्च मार्क्ड क्वायन्स् फ्रॉम तक्षशिला।
विण्टरनिट्ज, एम० : ए हिस्टरी ऑव इण्डियन लिटरेचर, भाग 1, कलकत्ता, 1927।
विद्यालंकार, जयचन्द्र : भारतीय इतिहास का उन्मीलन, इलाहाबाद, 1956-57।
वैडेल, एल० ए० : रिपोर्ट ऑन द एक्सकेवेशन्स् ऐट पाटलिपुत्र, कलकत्ता, 1903।
वेदालंकार, ह० द० : हिन्दू परिवार मीमांसा।
शर्मा, आर० एस० : आस्पेक्ट्स ऑव पोलिटिकल आइडियाज़ एण्ड इन्स्टिट्यूशन्स् इन एन्श्येण्ट इण्डिया, वाराणसी, 1968।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: द शूद्रज़ इन एन्श्येण्ट इण्डिया, दिल्ली, 1958।
शर्मा, जे० पी० : रिपब्लिकन ट्राइब्स इन एन्श्येण्ट इण्डिया, लीडेन, 1968।
शास्त्री, के० ए० एन० (सम्पा०) : एज ऑव नन्दज़ एण्ड मौर्यज़, दिल्ली, 1967।
शाह, शा० ला० : द ट्रेडीशनल क्रोनोलोजी ऑव द जैनज़।
शाह, सी० जे० : जैनिज़्म इन नॉर्थ इण्डिया, लन्दन तथा बम्बई, 1932।
सरकार, एस० सी० : सम आस्पेक्ट्स् ऑव अर्लिएस्ट सोशल हिस्टरी ऑव इण्डिया, लन्दन, 1928।
सरकार, डी० सी० : सलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स् वीयरिंग ऑन इण्डियन हिस्टरी एण्ड कल्चर, भाग 1, कलकत्ता, 1942।
सांकृत्यायन, रा० : बुद्धचर्या, सारनाथ, 1952।
सिनहा, एच० एन० : सावरेण्टी इन एन्श्येण्ट इण्डियन पोलिटी, लन्दन, 1938।
सिंह, एम० एम० : लाइफ इन नॉर्थ-ईस्टर्न इण्डिया इन प्रि-मौर्यन टाइम्स, दिल्ली, 1967।
: बुद्धकालीन समाज और धर्म, पटना, 1972।
सेन, एस० : ओल्ड पर्शियन इन्स्क्रिप्शन्स्।
स्टीन, ओ० : अलेक्ज़ेण्डर्स कैम्पेन ऑन द इण्डियन नॉर्थ-वैस्टर्न फ्रण्टियर, ज्योग्रेफिकल जर्नल, 1927।
स्टीन, ओ० : ऑन अलेक्ज़ेण्डर्स ट्रेक टु द इण्डस, लन्दन, 1927।
स्पेलमान, जे० डब्ल्यु० : पोलिटिकल थ्योरी ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया, लन्दन, 1964।
स्मिथ, वी० ए० : अर्ली हिस्टरी ऑव इण्डिया, ऑक्सफोर्ड, 1924।
हर्ज़फ़ील्ड : ईरान एण्ड द नीयर ईस्ट।
हार्डी, एस० : मैन्वल ऑव बुद्धिज़्म, 1880।
होल्डिख़ : द गेट्स ऑव इण्डिया, लन्दन, 1910।

(स) पठनीय शोध-निबन्ध

अय्यर गोपाल : द डेट ऑव द बुद्ध, आई० ए०, 1908, पृ० 341 अ०।
उन्वल, जे० एम० : पोलिटिकल एण्ड कल्चरल रिलेशन्स बिटविन ईरान एण्ड इण्डिया, ए० बी० ओ० आर० आई०, 28, खण्ड 3-4, पृ० 174।
एबट : ऑन द साइट्स ऑव निकाइया एण्ड बुक्केफाला, जे० ए० एस० बी०, 1852, पृ० 231।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोसाम्बी, डी० डी० : एन्श्येण्ट कोसल एण्ड मगध, जे० बी० बी० आर० ए० एस०, 27।

कैनेडी, जे० : द अर्ली कोमर्स ऑव बैबिलोन विद इण्डिया, 700-300 बी० सी०, जे० आर० ए० एस०, 1898, पृ० 241-88।

कोनो, एस० : सम प्रोबलम्स रेज़्ड बाइ द खारवेल इन्स्क्रिप्शन, एक्टा आरियण्टालिया, 1, पृ० 12-42।

गोयल, श्रीराम : ब्राह्मी स्क्रिप्ट : एन एन्वेंशन ऑव अर्ली मौर्य पीरियड, द ओरिजिन ऑव ब्राह्मी (सम्पा० गुप्त एवं रामचन्द्रन), नई दिल्ली, 1979, पृ० 1-531।

: द रिडल ऑव चाणक्य एण्ड कौटिल्य, जिज्ञासा, जयपुर, 1 अंक 3-4, पृ० 32-51।

चटर्जी, सी० डी० : अर्ली लाइफ ऑव चन्द्रगुप्त मौर्य, बी० सी० लाह वॉल्यूम, 1, पृ० 590 अ०।

: सम आब्जरवेशन्स ऑन द बृहत्कथा एण्ड इट्स अलीज़्ड रिलेशन टु द मुद्राराक्षस, आई० सी०, 1, पृ० 221 अ०।

चट्टोपाध्याय, एस० : द रूल ऑव एख़ियेमिनाइड्स इन इण्डिया, आई० एच० क्यु, 25, नं० 3, पृ० 200 अ०।

चट्टोपाध्याय, के० : द किंग्स ऑव मगध फ्रॉम द बृहद्रथज़ टिल द मौर्यज़, पी० आई० एच० सी०, 4, पृ० 140-147।

जायसवाल, के० पी० : हाथिगुम्फा इन्स्क्रिप्शन ऑव द एम्परर खारवेल, जे० बी० ओ० आर० एस०, 3, खण्ड 3-4, पृ० 240 अ०।

: द शैशुनाग एण्ड मौर्य क्रोनोलॉजी, जे० बी० ओ० आर० एस०, 1, पृ० 67-116।

टॉमस, एफ० डब्ल्यु : शकस्थान, जे० आर० ए० एस०, 1906, पृ० 181-216, 597-600।

टॉमस, इ० जे० : थेरवादी एण्ड सर्वास्तिवादी डेट्स ऑव निर्वाण, बी० सी० लाहा वॉल्यूम, 2, पृ० 18 अ०।

ट्रॉटमान, टॉमस, आर० : अलेक्ज़ेण्डर एण्ड नेण्ड्रम इन जस्टिन 15.4.16, ए० बी० ओ० आर० आई०, 1971, 51, पृ० 240-3।

डेम्स, एम० एल० : एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, 1, में 'अफगानिस्तान' नामक लेख, पृ० 146-73।

डेविड्स् आर० : सेजिज़ एण्ड किंग्स इन कोसल संयुक्त, भाण्डारकर कॉमे० वॉल्यूम, पृ० 134 अ०।

त्रिपाठी, आर० एस० : अलेक्ज़ेण्डर्स इन्वेजन ऑव इण्डिया, पी० आई० एच०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सी०, 1939, पृ० 348 अ०।

नारायण, ए० के० : अलेक्ज़ेण्डर एण्ड इण्डिया, ग्रीस एण्ड रोम, द्वितीय सीरिज़, 12, अंक 2, पृ० 155 अ०।

पाचाओ : ए स्टडी ऑव डॉटिड रिकार्ड, जे० ए० ओ० एस०, 85 (सितम्बर 1965) पृ० 342-49।

पीयर्सन, सी० : अलेक्ज़ेण्डर, पोरस एण्ड द पञ्जाब, आई० ए० 1905, पृ० 253 अ०।

पाई, गो० : डेट ऑव बुद्धज़ परिनिर्वाण, जे० ओ० आर०, 1954।

फ्लीट, जे० एफ० : द ओरिजिन ऑव द बुद्ध वर्ष, जे० आर० ए० एस०, 1909, पृ० 323-356।

: द डे ऑन ह्विच बुद्ध डाइड, जे० आर० ए० एस०, 1909, पृ० 9 अ०।

बरुआ, बी० एम० : द आजीवकज़, जे० डी० एल०, 2, पृ० 67 अ०।

बुद्ध प्रकाश : न्यू लाइट ऑन द अर्ली हिस्टरी ऑव चन्द्रगुप्त मौर्य, एन० आई० ए०, 7, 1944-45, पृ० 196 अ०।

बैशम, ए० एल० : अजातशत्रुज़ वार विद द लिच्छविज़, पी० आई० एच० सी०, 1951, पृ० 37-41।

मजूमदार, आर० सी० : एख़िमीनियन रूल इन इण्डिया, आई० एच० क्यु०, 25, नं० 3, पृ० 153 अ०।

मित्र, ए० के० : ओरिजिन ऑव बैल-कैपिटल, आई० एच० क्यु०, 7, पृ० 213 अ०।

मोदी, जे० जे० : द कण्ट्री ऑव मकरान—इट्स पास्ट हिस्टरी. ईस्ट एण्ड वैस्ट, 3, खण्ड 1, पृ० 494-505।

राघवन, वी० : द बृहत्कथा, द मुद्राराक्षस एण्ड द अवलोक ऑव धनिक ऑन द दशरूपक, आई० सी०, 1, पृ० 491 अ०।

वेंकटेश्वर, एस० वी० : द डेट ऑव वर्द्धमान, जे० आर० ए० एस०, 1917, पृ० 122-30।

शंकर, के० जी० : सम प्राबलम्स ऑव एन्श्येण्ट इण्डियन क्रोनोलॉजी, ए० वी० ओ० आर० आई०, 12, पृ० 301-61।

शार्पेन्तियर : द डेट ऑव महावीर, आई० ए०, 1914, पृ० 175-7।

शास्त्री, के० ए० एन० : द प्लेस ऑव द अर्थशास्त्र इन द हिस्टरी ऑव इण्डियन पोलिटी, ए० वी० ओ० आर० आई०, 28 (1941)।

सेठ, एच० सी० : ऑन द आइडेण्टिफिकेशन ऑव पोरस एण्ड पर्वतक, आई० एच० क्यु०, जून 1941, पृ० 173 अ०।

: गान्धार ओरिजन ऑव द मौर्य डायनेस्टी एण्ड द

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आइडेण्टिफिकेशन ऑव चन्द्रगुप्त विद शशिगुप्त, आई० सी०, 10, पृ० 32 अ० ।

: महावीर निर्वाण एण्ड सम अदर इम्पोरटेण्ट डेट्स् इन एन्श्येण्ट इण्डियन हिस्टरी, भारत कौमुदी, 2, पृ० 817-838 ।

: बुद्ध निर्वाण एण्ड सम अदर डेट्स इन एन्श्येण्ट इण्डियन क्रोनोलॉजी, आई० सी०, 5 (1938-9), पृ० 305-17 ।

: बिगिनिंग ऑव चन्द्रगुप्त मौर्यज़ रेन, पी० आई० एच० सी०, 1939, पृ० 371 अ० ।

सेनगुप्त, पी० सी० : डेट्स ऑव प्रिन्सीपल इवेन्ट्स इन बुद्धज़ लाइफ, आई० एच० क्यु०, 39, पृ० 359-362 ।

स्पूनर, डी० बी० : द ज़ोरोआस्ट्रियन पीरियड ऑव इण्डियन हिस्टरी, जे० आर० ए०एस०, 1915, पृ० 63-89, 405-55 ।

स्मिथ, वी० ए० : पर्शियन इन्फल्यूएन्स ऑन मौर्यन इण्डिया, आई० ए०, 1905, पृ० 201-3 ।

: द पोजीशन ऑव ओटोनोमस ट्राइब्स इन द पंजाब कोन्फर्ड बाई अलेक्ज़ेण्डर द ग्रेट, जे० आर० ए० एस०, अक्टूबर 1903 ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नामानुक्रमणिका*

अंग 2, 7, 18, 19, 20, 22, 26, 28, 37, 38, 39, 42-4, 68, 86, 87, 90, 91, 92, 93, 94, 95, 96, 103, 108, 131, 135, 146, 163
अंगद 81
अंगदीया 81
अंग वैरोचन 43, 92
अंगार स्तूप 79, 82
'अंगुत्तर निकाय' 7, 10, 18, 20, 21, 23, 29, 40, 50, 64, 68, 76, 78, 84, 113
अंगुत्तरावाप प्रदेश 94
अंगुलिमाल 28, 35, 63
अकबर 102
अकुफिस 188
अक्खरिका, खेल का नाम 6
'अग्गञ्ञसुत्त' 30
अग्गासनिय 35
अग्गिदत्त 35
अग्नि वैश्वानर 2, 229
अग्रवाल, वा०श० 9, 17, 18, 52, 53, 110, 187, 188, 192, 195, 197, 228
अग्रश्रेणी 193
अचिरावती 28,36,72
अचेल, साधुजन 32
अच्छ, जनपद 20
अच्युतगामी 25
अजक, राजा 27
अजातशत्रु, काशी-राज 4, 243
अजातशत्रु, मगध-नरेश 3, 6, 22, 26, 27, 29, 30, 31, 35, 36, 40, 41, 55, 60, 63, 64, 65, 67, 69, 83, 89, 90, 91, 93, 95, 97, 98, 99-111, 112, 113, 114, 115, 129, 135, 146, 147, 148, 153, 156, 157, 233
अजाद, जनपद 17
अजित केसकम्बली 109
अजित मानव 35
अजित सेनापति 64
अञ्जनवनिय 64
अटक 159, 205
'अट्ठकथा' 10, 11, 39, 45, 47, 48; 53, 56, 65, 66, 67
'अट्ठकथा', सिंहली 12

* इस नामानुक्रमणिका को तैयार करने में डॉ० दि० च० शुक्ल, डा० सोहन कृष्ण पुरोहित तथा श्री शंकर गोयल ने सहायता की है। इसके लिये ये धन्यवाद के पात्र हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अट्ठकुलिक 54, 67
'अथर्ववेद' 42, 87, 163
अनन्त कवि 11
अनन्तनेमि 25
अनरुधवां 82
अनाथपिण्डक 2, 32, 34, 233
अनाम 92
अनिरुद्ध 113, 114
अनिरुद्धपुर 12
अनु, जन का नाम 1
अनुराधपुर 12
अनुरुद्ध 30, 156
अन्दक नगर 187, 202
अन्धक 48
अन्धक-वृष्णि संघ 53
अन्ध्र 17
अन्सान 164
अपरान्त 51
अपिशलि 194
अपोलोनियस 250
अफगानिस्तान 163, 165, 167, 175, 176
अफरीदी, जाति 176
अफसड़-अभिलेख 121
अभय 64
अभयकुमार 27, 90, 94, 100
'अभिधानप्पदीपिका' 85
'अभिधान राजेन्द्र' 121, 123
अभिरूप नन्दा 77
अभिसारिज़ 123
अमरपुरी 54
अमित्रघात 123
अमित्रोखेटिज़ 123
अमूर्तरथ 87
अभिसार, राज्य/राजा 188, 189, 204, 206, 207
अम्बट्ठ/अम्बष्ठ 17, दे० एबेस्टेनोई जाति
'अम्बट्ठ सुत' 194
अम्बसण्ड 97
अम्बपाली, दे० आम्रपाली
अमृतसर 192
अय्यर, वेंक्टेश्वर 133
अयोध्या 28, 61, 81, 129
अरंजरा, जनपद 19
अरमिण 169
अरवाय (अरब) 169
अरस्तु 250, 255
अरिट्ठपुर 50, 192
अरिष्ट जाति 211
अरिष्टपुर 192
अर्काट 142, 143
अर्जुन पाण्डव 37, 45
अर्तक्षयार्षा, प्रथम 179
अर्तक्षयार्षा, द्वितीय 15, 179, 253
अर्तक्षयार्षा, तृतीय 179, 180
अर्तज़क्सीज नेमोन 166
अर्तावेतिज 178
'अर्थशास्त्र' 5, 7, 8, 35, 46, 55, 61, 65, 83, 119, 120, 142, 146, 189, 195, 207, 231
अर्बेला 186, 199
अर्सेकिज 189, 215
अलक, जनपद 47, 51
अलमाकिन 207
अलसंद, दे० सिकन्दरिया
अलवर 47
अलेक्जाण्ड्रिया 200, 201

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दे०, सिकन्दरिया
अलेक्जान्दर 203
अलेक्जेण्ड्रम 119
अलोर 195
अल्तेकर, अ० स०, 16, 66, 142, 143
अल्लकप के बुलि 72, 84
अवध 128, 129
अवन्ति 10, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23-24, 27, 36, 37, 38, 40, 41, 44, 47, 48, 49, 87, 88, 89, 90, 91, 109, 113, 114, 115, 116, 121, 135, 145, 193
अवन्ति दक्षिणापथ 24
अवन्तिवर्द्धन 27, 116
अवन्तिसेन 40, 116
अवाह, जनपद 20
अवेस्ता 162, 163
अशुरा 169
अशोक 5, 6, 7, 11, 12, 34, 49, 75, 76, 91, 93, 122, 131, 134, 143, 145, 148, 149, 150, 153, 183, 185, 227, 231
अशोकचन्द 100
अश्मक 17, 18, 47, 48, 129, 132, 133, 135, 144, 187
अश्वक 50, 167
अश्वघोष 61, 75, 88
अश्वपति 4, 203
अश्वसेन 43
अष्टक 167, 188, 202
अष्टकुल 55, 67
'अष्टाध्यायी' 3, 7, 9, 17, 53, 55, 160, 184, 186, 188, 228, 235, 236, 237, 242
असिप दे० यूसूफजई प्रदेश
अस्टिज़ 188
अस्सक 18, 19, 23, 47, 48
अस्सपुर 42
अस्सागेट्स 204
'अस्सलायन सुतन्त' 49, 50
असि नदी 43
असीरिया/असीरियन 161, 162, 164, 167
'अहनानुरु' 127
अहसुएरस 179
अहिच्छत्रा 44, 46
अहुरमज़्दा 162, 171, 177

आइसिस 199
आजीवक सम्प्रदाय 64, 101, 139
आनन्द 33, 39, 69, 78, 81, 83, 103, 154, 240
आन्ध्र जाति/जनपद 48, 51, 143
आभीर जाति 195
आमलकप्पा 84
आम्भी 90, 189, 205, 206, 207, 209, 215, 220, 222
आम्रपाली 63, 64, 94, 100, 229
आम्बष्ठ, दे० एबैस्टेनोई जाति
आरट्ट 17, 192
आरण्यका 38
आरमीनिया 176
आरा 73
'आराधना कथाकोश' 13
'आराधना सत्कथाप्रबन्ध' 13
आरिइटाई राज्य 197

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आरोहन्त 34
आर्जुनायन जाति 193
आर्जुनावा 187
आर्नाल्ड, मैथ्यु 226
आर्यक 116
'आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प' 12, 108, 120, 121, 123, 125, 126, 127, 133, 135, 139
आर्सेसिज़ 164
आलवी 46
'आलारकालाम' 84
'आवश्यक कथानक' 26, 40, 116
'आवश्यक निर्युक्ति चूर्णि' 120
'आवश्यक वृत्ति' 120
'आवश्यक सूत्र, चूर्णि 108
'आवश्यक सूत्र' 12, 98, 113, 138, 139, 144
'आवश्यक सूत्र वृत्ति' 13, 124
'आवस्सय चूण्णि' 13
'आवस्सय निज्जूति' 120
'आवस्सय सुत' 12
आश्वकायन 187
आश्वायन 187, 202
आस्पाख़ 200, 204

इंग्लैण्ड 145
इक्ष्वाकु 36, 57, 61, 80, 129
इक्ष्वाकु वंश 74, 75, 77
'इण्डिका (टीसियस कृत) 179
'इण्डिका' (मैगास्थने कृत) 161, 166, 167
इण्डो-ग्रीक 18
'इण्डिया' प्रान्त 172, 173, 174,176, 181; दे० 'हिन्दु' प्रदेश
'इतिहास' दे० 'हिस्टरीज़'
इथियोपिया 176, 179
इन्दपत 44
इन्दर 162
इन्दौर 25
इन्द्र 108, 162
इन्द्रदत्त 6, 120
इन्द्रप्रस्थ 45
'इन्द्रिय जातक' 19
इरिक्स 188
इर्वी चाक्यर 11
इलाहाबाद 37, 45, 85
इलियट, डब्ल्यु० 142
इश्तवेगु 164, 165
इषुकार, राजा 46
इषुकार नगर 45
इसिगिलि पहाड़ी 86
इसिडोर 163
इसिदत्त 27, 33
इसिदासी 27
इसिप, दे० यूसूफजई प्रदेश
इसिपतन मिगदाय 85

ई-चिङ् 248
ईरान 5, 8, 9, 14, 22, 26, 49, 56, 111, 159, 198, 199, 201
ईशानवर्मा 121,
'ईशोपनिषद् 242

उई, प्रोफेसर 148
उक्कट्ठा 28, 32, 33
उग्ग 34
उग्रसेन-महापद्मनन्द 119-133, 134; दे० महापद्मनन्द

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'उच्चजातक' 239
उज्जैनी, दे० उज्जैन
उज्जेन 24, 25, 37, 40, 116
उड्डियान, दे० सुवास्तु
उड़ीसा 51, 131, 132, 141, 142, 143
उत्कल 50, 51
उत्तरकुरु 162
'उत्तरज्झयणसुत' 13, 120
उत्तर पञ्चाल 44, 46
'उत्तर पुराण' 14
उत्तर मथुरा 47
उत्तरमद् 162
'उत्तर विहार अट्ठकथा' 12
'उत्तराध्ययन सूत्र' 12, 13, 45, 46, 96
'उत्तराध्ययन टीका' 247
उत्तरापथ 20, 22, 23, 45, 48, 49, 140
उदयन 25, 27, 36, 37, 38, 39, 40 41, 62, 63, 85, 92, 93, 112 115, 239
'उदानट्ठकथा' 54
उदायि 110, 111, 112, 113, 116 156, 157
उदायिभद् (उदायिभट्), दे० उदायि
उदुम्बर 17
उदेन, दे० उदयन
'उदेनवत्थु' 25, 37
उद्दालक 4
उद्यान, दे० सुवास्तु
उपधौलिया 80
उपरिचर 44
उपलगन्ध 31
उपवत्तन 82
उपवर्ष 138
उपाध्याय, भ० सिं०, 19, 24, 38, 40, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48, 49, 74, 86, 92, 93, 96, 97
उपालि 77, 83, 151
उप्पतिस्स 12
उरश/उरशा 17, दे० असेंकिज़ राज्य
उरुवेल कस्सप 42
उरुवेला 42, 97
उरुव्न (वरुण) 162
उवक्षत्र 164
'उवासगदसाओ' 104
उशीनर 17, 192
उस-हिन्दव 162

ऊड़ेग्राम 204
ऊना स्थल 188

ऋक्षवी 54
'ऋग्वेद' 45, 50, 86, 87, 163, 192
ऋत 177
ऋषिगिरि पहाड़ी 86

एकनाला 95
एकबटाना 161, 164, 185
'एकपणजातक' 54, 64, 65
'एकराज जातक' 43
एकसाटक साधु, 32
एक्सनाफन 160, 166, 169
एक्स्थोई, जाति 194, 217
एगेनोर 222, 224
एगेलेस्सोई, जाति 193, 216
एग्रेम्मिज़ 117, 118, 121, 122,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

123, 124, 126, 130, 133, 134, 136
एण्ड्रोकोट्टोस 124, 134, दे० सेण्ड्रोकोट्टोस
एण्टिपेटर 224
एण्टिगोनस 225
एड्रेस्टाई, गणराज्य 192, 211
एथेन्स 66, 191
'एनाबेसिस' 161, 168, 180
एपराईताई, जाति 174, 176
एपोलोफेनिज़ 218, 223
एफ्रिक़ीज 204
एबट 206
एवेस्टेनोई, जाति 194, 217
एमिन्तास 200
एम्बिगेरुस का राज्य 196, 197
एम्बीसारोस 190
एरच 50
एरण-लेख 187
एरिग्एम नगर 187, 202
एरिथ्रियन समुद्र 166
एरिस्टोक्सिनस 249
एरियन 15, 136, 161, 164, 167, 168, 173, 174, 180, 181, 182, 188, 189, 190, 193, 194, 195, 196, 202, 204, 205, 206, 207, 208, 210, 212, 213, 215, 216, 217, 222, 255
एरिस्टोबुलस 15, 160, 191, 256
एरिया/एरियाना 169, 175, 281
एरियोई 178
एरेकोशिया/एरेकोशियन 163, 175, 176, 180, 181, 193, 198, 200
एरेटोस्थेनिज़ 175, 181
एरेमाइक 8, 183
एलन 141, 184
एलफिन्स्टन 206
एलियन 254, 256
एशिया माइनर 165, 199
एस्ट्रूस्कन 105
एस्टेकेनोई 167, 187, 188, 202
'एस्ड्रस' 176
एस्सेकेनोस (नोई) 123, 167, 168, 188, 189, 202, 203, 204, 210, 222
एस्सकेनियन, जाति 187
एस्पेसियन, जाति 187, 202

ऐक्ष्वाकु 18, 55, 61
'ऐतरेय ब्राह्मण' 85, 92, 121, 145, 162, 194, 238

ओक्काक 74
ओक्कामुख 74
ओक्साइकेनोस 196, 217
ओक्सियार्टिज़ 200, 217, 222
ओक्सीड्रेकाई, राज्य 193
ओडियान 50
ओड्र 51
ओनेसिक्रिटस 16, 160, 192, 196, 212, 216, 255
ओपिआई 251, 182
ओपियन 175, 182
ओमस्टीड 161, 171
ओरा, स्थल 203, 204
ओरिइताई, जाति 218

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओरोबातिस 204
ओर्नोस 188, 204
'ओल्ड टेस्टामेण्ट' 107
ओल्डनबर्ग 87
ओस्सादियोई जाति 194, 195, 217
ओहिन्द, स्थल 205

औग्रसेन्य 117, 121, 122, 134
औदुम्बर विषय 50
'औपपातिक सूत्र' 100, 109
औरई 143
औलिकर 88

कंस 29
ककरपत 78
ककरहवा बाजार 78
ककुत्थ, नदी 81
ककुध कच्चायन 109; दे० पकुध कच्चायन
कच्छ 17, 20
कठ, जाति 190, 192, 220
'कठोपनिषद्' 242
कडफिसिज़ 189
कण्डदिन्न 48
कण्णकुज्ज 46
कण्णवेणा, नदी 51
कत्पतुक 160
कथइयोई 192, 211
'कथाकोष' 13, 19, 100, 112,
'कथासरित्सागर' 11, 38, 42, 112, 116, 120, 127, 129, 132, 138, 140
कद्रुसी नगर 200
कनक 133
कनिंघम, अलेक्जेण्डर 37, 42, 73, 82, 142, 175
कनिष्क 83, 189
कन्धार 161, 163, 175, 200, 206
कपिनह्य चैत्य 64
कपिल, दानवराज 238
कपिल ब्राह्मण 74, 75
कपिल, मुनि 242
कपिलपुर 75
कपिलवस्तु 30, 36, 72, 73, 74, 75, 76, 80, 84
कपिशा 168, 175, 176, 178, 182
कपिशाकानि 168
कपिसाई 176
कमल सागर 74, 78
कम्बुजिय, प्रथम 164, 167, 168,
कम्बुजिय, द्वितीय 168, 169
कम्बुज 165
कम्बोडिया 12,
'कम्बोडियायी महावंश' 133
कम्बोज 17, 18, 20, 48, 49, 50, 160, 168
कम्मासदम्म 45, 46
करकण्ड 74
कराल जनक 61
करौली 47
कर्टियस 15, 117, 124, 125, 126, 127, 130, 133, 134, 136, 175, 181, 191, 193, 194, 196, 202, 203, 205, 206, 207, 212, 215, 217
कर्ण 43
कर्री स्थल 207
कलकता 91, 113

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कलकूट, जनपद 17
कलातिआई 251, 252
कलानोस, साधु 206
कलिंग 17, 18, 19, 38, 39, 45, 48, 51, 93, 129, 131, 132, 136, 138, 144, 145, 156
'कलिंगर सुत' 55
कलिंगारण्य 86
कल्कि 127
कल्पक, मंत्री 139
कल्पवृक्ष 138
'कल्पसूत्र' 108
कल्याण, दे० कलानोस
कल्हण 5
कश्मीर 5, 17, 48, 175, 189, 190
कसिया 73, 82
'कहावली' 26, 40, 154
काकवर्णी, दे० कालाशोक
काकेशस 201
कांगड़ा 131
काठमाड़ौ 129
काठियावाड़ 50
काठी, जाति 192
काणे, पी० वी० 125, 138
कात्यायन 138, 143, 195
कान्यकुब्ज 46
काफिरिस्तान 173, 174
काबुल 50, 164, 165, 167, 168, 173, 174, 175, 176, 183, 187, 200, 201, 202, 203, 204
'कामसूत्र' 8
काम्पिल्य 46
काम्बोज, दे० कम्बोज
कारुपथ 81
कार्लाइल 78, 80, 82
काल 34
कालाबाग 175
कालाम 28, 30, 63, 72, 73, 84
'कालिका पुराण' 116
कालिदास 28, 38, 81
कावेरी 192
'काव्यमीमांसा' 116, 138
'काशिका' 137, 187, 191, 197
काशी 3, 17, 18, 19, 20, 22, 26, 28, 29, 30, 31, 43, 44, 48, 62, 63, 65, 66, 74, 86, 90, 93, 100, 101, 102, 103, 105, 115, 129, 130, 135, 136, 145
काश्यप 97
किया-वी-लो-वी 75
किरात 58, 59
किर्थर 159
किष्किन्धा 17
कीकट 1, 86
कीटागिरि 28
कीथ, ए० बी० 8, 185
'कुंभकार जातक' 48
कुकुर 65
कुक्कुट जनपद 51
कुक्कुटाराम 113
'कुक्कुरवतिकसुतन्त्र' 78
'कुणाल जातक' 43
कुणिक, दे० अजातशत्रु
कुण्डग्राम 45, 60, 61, 78
कुण्डदन 17
कुण्डपुर 64

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुण्डिकेर 25
कुनार 186, 201, 202
कुन्तल देश 132, 133, 144
कुन्ति 17
कुमार कलश 12
कुमारपाल 13
कुमार वेसन्तर 44
कुमार शाक्य 74
कुम्भवती 19
'कुम्पासपिण्डजातक' 100
कुररधर 25
कुरल 143
कुरु 17, 18, 19, 22, 37, 38, 45, 46, 47, 55, 65, 129, 130, 135, 136
कुरुक्षेत्र 45, 46
कुरुष महान् 111, 164, 165, 166, 167, 168, 169, 170, 175, 199, 248
कुलक/कुण्डक, राजा 36
'कुलाल जातक' 239
कुश 28, 81
कुशान दर्रा 200
कुशाग्रपुर 86, 95
कुशावती 28, 81, 82
कुशीनगर, दे० कुसीनगर
कुशीनारा, दे० कुसिनारा
कुषाण 183, 248
कुसनगर 82
कुसिनारा 72, 73, 82, 83, 110,
कूसीनगर 30, 79, 80, 81, 82, 83
कुसुमपुर 113
कुसमपुरी विहार 117
कूटदन्त ब्राह्मण 96
'कूटदन्त सुत्त' 96
कृष्ण 87
कृष्ण सम्प्रदाय 47
कृष्ण वेणा 51
कृष्णा 129, 141, 142
केकय 4, 17, 50
केपिसीन 168
केरिया 172
केर्यण्डा 172
केशी 85
केसपुत 30, 72, 84, 85
केसपुत नगर 84
'केसियसुत्त' 84
कैस्पियोई, जाति 176, 178
कैण्टन 149, 150, 151, 152
कैनेडी 161
कैरी, एम० 165
कैल्डिया 164
कैवर्त्त 133
कैस्पेटाइरोस 172, 173, 174
कैस्पेपाइरोस 48, 174
कोइनोस 203, 206, 210, 213, 214, 216
कोकनद, जनपद 51
कोकनद, प्रासाद 40, 85
कोचीन-चाइना 92
कोच्छ 20
कोटुम्बर रट्ठ 50
कोडगु 114
कोनो, स्टीन 134, 144
कोफेयस 204
कोफेन घाटी 204
कोयम्बटूर 142
कोरण्डवर्ण 117

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोरव्य 45, 46, 117
कोलनगर 7, 4, 78
कोलम्वस 227
कोलिय 28, 30, 59, 72, 73, 74, 75, 77, 78, 79, 80, 83, 230, 232
कोसम 37
'कोसम्बी जातक' 43
कोसल 2, 3, 10, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 24, 26, 27, 36, 37, 43, 44, 46, 48, 49, 53, 58, 63, 65, 66, 73, 75, 76, 83, 84, 89, 90, 99, 102, 103, 105, 115, 129, 130, 136, 145, 176
'कोसल संयुत' 33
कोसलादेवी 44, 90, 99, 100, 102
कोसाम्बी, डी० डी० 141, 142
कोसा नदी 42, 54
कोह-ए-दामन 200
कोह-ए-मोर पर्वत 188
कौटिल्य 5, 35, 46, 55, 61, 65, 78, 83, 119, 146, 147, 189, 193, 207, 231
कौरव 55, 61, 194
कौशाम्बी 2, 8, 25, 26, 27, 36, 37, 38, 39, 40, 41, 44, 45, 61, 81, 85, 92, 113
क्षतृ जाति 194
क्षयार्षा 177, 178, 179, 199, 220, 253
क्षुद्रक 36, 167, 193, 194, 195, 198, 216, 217, 219, 221
क्षेत्रोजा 89
क्षेमाजित 89
क्षेमेन्द्र 120
क्युनेक्सा 160
क्रेटन नगर 200
क्रेटेरस 202, 207, 208, 210, 216, 217, 218, 223
क्रोयसस 169
क्लिटार्कस 15, 212, 256
क्लियोफिस 203
क्लेस्थेनिज़ 66

खरोष्ठी लिपि 8, 183
खशर्मश 177
खस 58
खानुमत 95, 97
खारवेल 45, 120, 131, 132, 134, 139, 144
खावक, दर्रा 200
खियोस नदी 187
खुज्जुत्तरा 39
खुलू जनपद 51
'खुद्क पाठ' 57, 59
खेमा 50, 90, 91, 96, 99, 240
खैबर दर्रा 202
खैरी, स्थल 141
खोमदुस्स 76

गग्ग 35
गग्घरा 42
गजनी 176
गण्डक 54, 83
गदार 169, 171, 173, 175, 177
गन्धरी/गन्धारी/गन्धाराई 87, 163 174, 175, 190

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गन्धार 17, 18, 19, 20, 21, 22, 26, 48, 49, 50, 90, 91, 110, 160, 161, 163, 168, 169, 170, 171, 173, 174, 175, 176, 178, 179, 183, 188, 189, 190
गय, राजा 87
गया काश्यप 97
गयासीस पर्वत 109
गर्दभिल्ल 152
गाइल्स, एच० ए० 75
गाब्दिका, जनपद 17
'गार्गी संहिता' 113
गार्ब, आर० 249
गॉल 105
गिज्झकूट 86
गिरिव्रज 86, 87, 96, 115, 117, 146
गिलगित 94
गिल्जई 176
गीगर 80, 89, 98, 112, 116, 150
गीता 4, 242, 243, 247
गुइरिनो 152
गुणाढ्य 11
गुजरात 131, 190
'गुतिल जातक' 44
गुप्तवंश 159, 187
गुप्त, एस० पी० 6
गुरियन राज्य/जाति 187, 203
गुरुदासपुर 192
गुर्रा नदी 80
गृध्रकूट 89, 105
गेंगेरिडाई/गेण्डेरीडाई/गेण्डेरोई 124, 130, 133, 134, 136, 175, 176, 178
गेड्रोशिया 168, 172, 182
गेण्डेरिया 175
गैरोला, वा० 5, 119
गोतमक, चैत्य 63
गोदावरी 47, 48, 132, 134, 144, 187
गोनद्धपुर 25
'गोपथ ब्राह्मण' 42
गोपराज 85, 176
गोमती 85, 176
गोपाल, मन्त्री 94
गोपाल, राजा 116
गोपाल माता 38
गोपाल, लल्लनजी 143
गोयल श्रीराम 6, 8, 11, 21, 46, 57, 129, 134, 136, 159, 162, 164, 165, 185, 199
गोरखपुर 74, 75, 78, 80, 137
गोविषाणक 133
गोसाल, मक्खलिपुत्त 244
गौगामेला 186, 199
गौतम तीर्थ 107
गौतम द्वार 107
गौतम बुद्ध, लगभग सर्वत्र
गौतम, मागी 169
गौतम, स्मृतिकार 7
गौरी नदी 187, 203
ग्रेनिकस का युद्ध 199
ग्लौगमीसियन 191
ग्लौगेनीकाई 191, 209, 210
ग्लौचुकायन 191
ग्लौसियन 191

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'घट जातक' 43
घिर्शमां 172
घोरबन्द 168
घोषक 2, 38, 233
घोषिताराम विहार 37, 39

चंकी 32
चटर्जी, सी० डी० 4, 120, 141, 150, 155
चट्टोपाध्याय, क्षेत्रेशचन्द्र 121, 122
चट्टोपाध्याय, सु० 165, 171, 176, 177, 179, 185, 211, 212
चण्ड प्रद्योत महासेन दे०, प्रद्योत
चण्डाशोक 146
चन्दनदास 138
चन्दना 44
चन्दा, आर० पी० 163
चन्द्रकान्ता 81
चन्द्रकेतु 81
चन्द्रगुतिक 133
चन्द्रगुप्त मौर्य 5, 6, 11, 12, 13, 80, 89, 119, 120, 122, 124, 125, 131, 133, 134, 135, 138, 147, 150, 151, 153, 154, 158, 165, 168, 184, 201, 214, 225, 226
चन्द्रबाला 44
चन्द्रमस् 133
चन्द्रवज्जी 151
चम्पा, नगर/नदी 19, 42, 43, 81, 88, 92, 93, 97, 103, 109, 112
चम्पारन 53, 73, 84
चम्बल 46, 47
चरिकर 200
चांगुनारायण अभिलेख 57
चाओ-पी-शियु 151
चाणक्य 10, 12, 13, 14, 120, 138, 139, 140, 147, 226; दे० कौटिल्य
चाणक्य-कथा 133
चातुमा, नगर 76
चानन, देवराज 105, 106
चापाल, चैत्य 64
चारसद्दा 188
चार्ल्स, पञ्चम 147
चिंग-शियु, भिक्षुणी 151
चिंग्लेपुत 142
चित्तौड़ 44, 50, 192
चित्राल 176, 201
चिनाब 50, 159, 175, 186, 189 190, 191, 192, 193, 194
चीन 39
चुन्द 82, 83, 154, 231
'चुल्लकलिंग जातक' 65
'चुल्लनिद्देस' 10, 19
'चुल्लवग्ग' 40, 50, 85, 94, 117
चेटक, लिच्छवि अध्यक्ष 30, 37, 40, 60, 61, 62, 63, 64, 65, 67, 94, 96, 99, 100, 104, 105, 108
चेत रट्ठ 44, 45
चेति/ चेतिय/चेदि जनपद 18, 19, 22 28, 36, 42, 44, 45
'चेतियजातक' 44, 45
चेर 143
चेरेक्स 163
चेल्लना 60, 62, 93, 94, 95, 98,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

99, 100, 109
चैत्य पहाड़ी 86
चैत्य ग्राम 82
चोल 143

छत्रावती 46
'छान्दोग्य उपनिषद् 242, 243
छी वंश 151
'छुसन-त्जांग-ची-ची' 151

जगन्नाथ 144
जगन्नाथपुरी 51
जटिल, साधु 32
जनक 4, 80, 129, 243
जनकपुर 60, 129
'जनवसभसुत्त' 10, 19, 45, 47, 96
जम्बुद्वीप 19, 24, 44
जलालपुर 206
जलालाबाद 200
जयदेव, द्वितीय 57, 58
जयधवला 14
जयपुर 8, 46, 47
जयसेन 100
जरासंघ 87, 146
जर्मनी 145
जस्टिन 119, 134, 161, 197, 203, 208, 212, 225
जहाँगीर 131
जहाँगीर स्थल 174
जायसवाल, का० प्र० 6, 34, 55, 57, 58, 61, 69, 71, 110, 113, 117, 120, 125, 132, 144, 190, 191, 192, 193, 194, 195, 197
जॉली 8
जिण्डियाला 192
जिनप्रभसूरि 13, 124
जियस 188
जीवक 22, 26, 48, 50, 109, 115, 189
जुन्ह 34
जेण्ड्रेमिज 124, 130, 133, 134
जेत, राजकुमार 34, 35
जेतवन 32, 33, 34, 103
जेतवन विहार 35
जेतुत्तर नगर 44, 50, 192
जेथरिया ब्राह्मण 61
जैकोबी 116, 153, 154
जैक्सन, डब्ल्यु० 162, 163, 165, 166, 168, 169, 171, 173, 174, 176, 177
जैन, हीरालाल 244
जैनी, जे० एल० 44
ज्ञात्रक 55, 61, 62
ज्ञात्रि 55
ज्ञातृ 80
'ज्योग्रेफी' 167, 168, 175, 181, 196
ज्रङ्क 169, 175, 177

झेलम 48, 128, 159, 178, 186, 190, 191, 192, 193, 206, 207, 208
झंग प्रदेश 50, 192

टर्नर 56, 115
टाइबेरियस 143
टाइरियास्पिज 201, 210, 217,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

222
ट्रॉटमान, टॉमस आर० 120
टॉमस, इ० जे० 20, 75, 148
टॉमस, एफ० डब्ल्यु० 133, 148, 176, 185, 224
टामेरोस, नदी 197
टार्न, डब्ल्यु० डब्ल्यु० 161, 181, 208 214, 255
टलेमी, इतिहासकार 90, 164, 191, 195
टालेमी, सेनापति 200, 204, 207, 216
टीसियस 15, 160, 166, 168, 179, 253, 254
टेक्सिलिज़ 123, 124, 189, 205

ठाकुर, उपेन्द्र 61

डर्मेस्टेटर 163
डायोगिनिज़ 255
डायोडोरस 124, 127, 130 133, 136, 160, 175, 190, 193, 194, 196, 197, 203, 204, 205, 206, 209, 210, 212, 215, 217, 224, 225
डायोनाइसियस 167, 188
डिनोन 256
डिमिट्रियस 132
डिर्टा, स्थल 204, 205
डेरियस 15, 184; दे० दारयवहुष
डेबिकिज़ 165
डेल्ब्रुक 200
डेविड्स, आर० 26, 44, 49, 98, 237, 238, 239
डेविड्स, टी० डब्ल्यु० 229
ड्रेन्जियाना 169, 175

तउआला 197
तक्षशिला, राज्य/नगर 29, 48, 57, 63, 68, 83, 111, 141, 142, 175, 182, 183, 185, 189, 190, 201, 205, 206, 207
'तच्छसूकर जातक' 100, 103
'तण्डुलनालि जातक' 44
तथागत 6, दे० गौतमबुद्ध
तनसुलियबाट 131
ताकाकुसु 149, 150, 151
तामलुक, दे० ताम्रलिप्ति
ताम्रलिप्ति 50
तारक्विन 62
तारानाथ 117, 157
तालजंघ 25
'तित्थोगाली पइण्णा' 127
तिन्नेवेल्ली 141, 143
तिब्बत देश/जाति 12, 56, 92, 159
तिब्बती 'दुल्व' 29, 54, 92, 99; दे० 'दुल्व'
तिरहुत 60
तिरुनेल्वली 142
तिलखल 17
'तिलोयपण्णति' (त्रिलोक प्रज्ञप्ति) 14, 152, 153
तिलौराकोट 73, 75
तिस्स 77
तीरभुक्ति 60
तीर्थंकर 13
'तीर्थोद्धार प्रकीर्णक' 152
तुण्डिकेर 25

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुम्बव 25
तुर्वश 1
तुलकुचि 117
तुषास्फ 227
तुषित लोक 19
'तेपागच्छ पट्टावली' 152
'तेसकुन जातक' 43
तोकुम्यो मत्सुमोतो 148
तोण्डमनत्तम, स्थल 143
त्रिगर्त 17
त्रिचनापली 142
त्रिपुरी 44
'त्रिलोक सार' 14, 53
त्रिशला 60, 61, 62
'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' 13, 96

थतगु 163, 165
थानेसर 45, 129
थुलु जनपद 51
थुल्लकोट्ठित ग्राम 45, 46
'थुस जातक' 99
'थेरगाथा' 75, 94
थेरासन 110
'थेरीगाथा' 68, 77, 94, 96
'थेरीगाथा अट्ठकथा' 27, 90
थ्रेस 201

दक्षिणापथ 3, 17, 19, 23, 132, 135, 142, 143, 144; दे० दक्षिण भारत
दण्डक 19
दत्त, एस० 69
दत्त, महामात्य 34
ददिकाई 176
दद्दरपुर, नगर 44
दधिवाहन 37, 38, 43, 92
दन्तपुर 19, 51
दब्ब, मल्ल 83
दरभंगा 93, 129
दरद 17
दर्द/दर्दाई/ददिकाई 174, 176, 178, 252
दर्दिस्तान 176
दर्शक 38, 104, 112, 114, 156
'दशब्राह्मण जातक' 45
दशरथ 61
'दशवैकालिक सूत्र' 12, 13
दशार्ण 25, 49, 50
दससिद्धक 133
दस्यव 169
'दहर सुत्त' 32
दाम, एक इतिहासकार 176
दारयवहुष, प्रथम 14, 160, 165, 168, 169, 171-77, 178, 179, 180, 182, 184, 185, 199, 209, 220, 248, 250, 251
दारयवहुष, द्वितीय 179
दारयवहुष, तृतीय 177, 180, 182, 186, 198, 199
दारयवौष, दे० दारयवहुष
दार्वाभिसार 189
दाशराज्ञ 1
दास, शरतचन्द्र 50, 56
दासक 151
दिल्ली 45, 129
दिवाकर, ऐक्ष्वाक 28, 87
दिवाकीर्ति, नाई 123
'दिव्यावदान' 10, 12, 46, 54, 77,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

80, 99, 114, 117, 133, 148
दीघकारायण 35, 76
'दीघजानुसुत' 78
'दीघनिकाय' 10, 19, 24, 30, 47 51, 74, 77, 79, 80, 93, 94, 96, 97, 103, 106, 107, 154, 231, 232
'दीपवंस' 10, 12, 25, 92, 113, 120, 149, 150
दुम्मुख/दुमुर्ख 64
दुर्गाप्रसाद 141, 142
दुर्धरा 120
दुर्योधन 43
'दुल्व' 36, 92, 93; दे० तिब्बती 'दुल्व'
दे, एस० के० 11
देकू देमांशे, मोशिए 184
देवेवोआ 179
दे, नन्दलाल 44, 48
देवदत्त 83, 97, 109
देवदह 76, 78, 79
देवरिया 73, 82
देवापि 190
देवसेन, विमलवाहन महापद्म 132
देवेन्द्रगणि 13, 120
देशिकाचारी, टी० 142
दृढ़वर्मा 38, 92
दृषद्वती 147
द्रविड 58, 59
द्रह्म 1
द्रोण, ब्राह्मण 79, 84
'द्वात्रिंशतपुतलिका 115
द्वारका 49
'द्वारका जातक' 50
धनञ्जय 45
धननन्द 128, 133, 134
धनिय, श्रेष्ठिपुत्र 230
धनुग्गतिस 103
'धम्मचेतियसुत' 29, 35
'धम्मपद अट्ठकथा' 25, 29, 37, 38, 63, 68, 83, 84, 93, 103
'धम्मपद टीका' 30, 31, 90
धम्मपाल 27, 48
धर्माशोक 147, 149
धवला 14
धुण्ढिराज 11, 123
'धूमकारि जातक' 45, 230
'धोणसख जातक' 40, 43
धौलपुर 47

नकली केलिस्थेनिज 182
नग्गजि 48
नदी काश्यप, साधु 97
नन्द वंश/राज्य 10, 11, 12, 13, 14, 15, 18, 21, 36, 91, 117, 119-140, 143, 144, 149, 156, 158, 180, 184, 198
नन्दक 64
नन्द-मौर्यकथाचक्र 10, 11
नन्द संवत् 134
नन्दा 77
नन्दि 117, 157
नन्दिवर्द्धन 27, 113, 116, 117, 120, 132, 157, 158
नन्दुपनन्द 77
नभोवाहन दे० नहपान
नर्मदा 24, 25, 44, 130, 149

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नवनन्द 121, 123, 133, 156, 158
नवमल्ल 63
नव लिच्छवि 63, 67
नहपान 152, 153, 155
नाक्श-ए-रुस्तम 9, 160
नाक्श-ए-रुस्तम-अभिलेख 171
नाग जाति/वंश 77, 78, 88
नागदर्शक 88
नागदासक 88, 112, 113, 114, 115
नागमुण्डा 31, 76
नागराज 6, 92
नागसेन 12
नान्देड़ 132, 144
नाभानेदिष्ठ 61
नारद 113, 238
नारायण, ए०के० 143, 191
नालक ग्राम 95
'नालकसुत्त' 76
नासत्यद्वय 162
नासात्तिय 162
निकाइया 200, 201
निकानोर 201, 203
निगण्ठ नाटपुत 64, 109, 154, दे० महावीर

निचक्षु 37, 45, 61
निच्छवि 54, 56, 59
निजामाबाद 132
'निज्जूति' की चुण्णि 13
निमरोद 185
निमि 61
'निमिजातक' 61
नियर्कस 15, 160, 167, 168, 173, 182, 196, 197, 200, 212, 213, 216, 218, 252, 255
'निशीथसूत्र' 12, 13
निसिबिस 56
नीख़ 226
नीको, मिस्र नरेश 250

नेण्ड्रम 119
'नेचुरल हिस्टरी' 168
नेपाल 12, 28, 44, 53, 54, 58, 60, 73, 75, 108, 129, 134
नेबुशद्रेज्ज़र 161
नेमिचन्द्र 152, 153
नेमिदत्त 13, 14
नैमिष्य 18
नैष्पघ 17
नोरा, नगर दे० ओरा
नौशेहरा 189
न्यस/न्यसा 188, 202, 203, 207

पंजकोर 187, 202, 203
पंजाब 18, 27, 50, 58, 130, 135, 136, 159, 160: 168, 172, 173, 174, 175, 180, 181, 186, 192, 195, 200
पंचनद 159
पंचपाण्डव मलै 144
पंचमक 117
पंचशाल 97
पंचाल, उत्तरी/दक्षिणी 17, 18, 19, 22, 28, 36, 45, 46, 47, 65, 129, 130, 135, 136, 145
पकुध कच्चायन 244, दे० ककुध कच्चायन
पक्तिएज 252

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पक्तियत 252
पख्त 163
पख्तून प्रदेश 174, 178
पच्छि 79
पटच्चर 17
पटना 86, 113, 117, 139
पट्टावली 13
पडरौना 82
पण्डित कुमार 64
पण्डुक 133
पण्डुगति 133
पतञ्जलि 50, 60, 138, 194, 195, 196
पद्मावती 38, 104, 112
'पपंचसूदनी' 46, 48, 54, 78, 93
पपउरगाँव 82
'पवज्जासुत' 30
पभोसा ग्राम 37
परन्तप 37
'परमत्थजोतिका' 57, 59, 62
परमार्थ 149
परशुराम 119, 148
परिनिर्वाणचैत्य 82
'परिशिष्टपर्वण' 13, 80, 93, 104, 112, 113, 121, 123, 126, 127, 128, 138, 139, 154
परीक्षित 10, 18, 87
परूपरेयसन्न 175
पर्डिक्कस 201, 204, 216, 223, 224
पर्थव 169
पर्शव 169
पर्सिका 166
पर्सिपालिस 9, 160, 185, 199
पर्सिपालिस-अभिलेख 171, 177, 179
'पवेणीपोत्थक' 67
पशुपतिनाथ-प्रशस्ति 57, 58
पश्तो 163, 187
पसेनदि दे० प्रसेनत्रित
पादथेगोरस 14, 248, 249
पाइरो 249
पाचाओ, डब्ल्यु 151, 152
पाटलिग्राम 111
पाटलिपुत्र 37, 60, 107, 113, 114, 115, 117, 120, 126, 127, 128, 130, 132, 136, 138, 144, 146, 185
'पाटलिपुत्र नगर कल्प' 13
'पाटलिसुत' 78
पाटलीन राज्य 197
पाठक, विशुद्धानन्द 35,43,73,74,83
पाठक, विश्वम्भरशरण 164
पाढ़ 20
पाणिनि 3, 7, 8, 9, 17, 21 22, 48, 50, 53 ,55, 65, 138, 140, 143 160, 184, 186,188, 191, 192, 193, 195, 197, 228, 235, 236, 239
पाण्ड्य 143
पाण्ड्व 26, 45, 49, 61, 90, 91, 143
पाण्डव पर्वत 86, 96, 144
पाण्डेय गोविन्दचन्द्र 228, 238, 240, 241, 242, 244, 246
पाण्डेय, राजवली 74, 75, 78, 80, 81
पानियत्थ पादियत्थ, जनपद 51
पानीपत 129
पामीर प्रदेश 49

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पायासि 30
पार्जिटर 18, 36, 42, 44, 87, 115, 121, 130
पार्थिया/पार्थियन 189
पार्मोनियन 201
पार्श्वनाथ 43, 64, 243, 244, 245
पार्स 169, 199
पालक 26, 27, 113, 116, 152, 153
पालि त्रिपिटक बौद्ध साहित्य 6, 7, 10, 12, 35, 36, 37, 42, 45, 47, 49, 55, 57, 69, 104, 112, 138, 152
पालि भाषा 12
पालिबोथ्रा 130
पावा 30, 61, 72, 80, 81, 82, 83, 154
पिंगल 138
पिग्मी 251
पिण्डोल भारद्वाज 39
पिपरहवा 80
पिम्प्रम 192
'पियजातिकसुतन्त' 30
पियदस्सन 149
पिल्लै, एल० डी० एस० 148
पीथोन 216, 218, 222, 224, 225
पुक्कुसाति 22, 26, 48, 111, 170
पुणिक, अमात्य 25
पुण्ड्र 17, 20
पुण्ड्रवर्द्धन 132
पुराण 5, 10, 16
पुरी, वैजनाथ 250, 254, 255
पुरु, जन 1
पुरु, कनीयस 130, 175, 190, 209, 210, 220
पुरु/पौरव/पोरस (ज्येष्ठ) राजा 90, 123, 124, 135, 182, 189, 190, 191, 201, 206, 207, 208, 209, 210, 212, 214, 215, 219, 220, 221, 222, 223, 224, 225
पुलिक 25, 87, 114
पुलिन्द 17
पुष्करसारी 26, 90
पुष्करिणी, नदी 66, 76, 84
पुष्कलावती नगर/राज्य 48, 174, 175, 182, 188, 189, 202, 204
पुष्यमित्र 25, 132, 152
पूंछ 49, 189
पूरण कस्सप 32, 33, 109, 144
पूर्णिमा जिला 42
पूर्वनन्द 120
पूसमित, दे० पुष्यमित्र
पृथु 2
पृथ्वीराज 102
पेक्टियका 172, 174, 176
पेडेएन्स 252
'पेतवत्थु' 49, 54, 97, 138
पेतणिक 68
पेरोपेनिसस 165
पेरोपेमिसदाई 175
पेशावर 48, 169, 188
पैल मुद्रा-निधि 141
पोक्खरवती 48, दे० पुष्कलावती
पोक्खरसादि, उकट्ठा-निवासी 33
पोटल 197
पोतन नगर 19, 48, 132
पोम्पियस ट्रोगस 119

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पोरस दे०पुरु (ज्येष्ठ)
पोर्टिकनोस् 196,
प्रकण्व, जनपद 17
प्रकाश, बुद्ध 11, 125, 126, 127, 130, 137, 182, 207, 212
'प्रज्ञापनासूत्र' 55
प्रतिष्ठान 25, 37, 48, 51
प्रत्यग्रथ, जनपद 17
प्रद्योत, महासेन चण्ड/प्रद्योत वंश 19, 22, 25-27, 37, 38, 40, 41, 47, 49, 87, 88, 90, 100, 109, 111, 113, 114, 115, 116, 130, 131
प्रधान, एस० एन० 112, 115, 116, 117, 153, 154
प्रभाचन्द्र 13, 14
प्रमगन्ध 86, 87
प्रयाग 37, 43
प्रवाहण जैवलि 243
प्रशा 145
प्रसेनजित 3, 28, 29-35, 36, 44, 47, 63, 76, 83, 90, 93, 96, 99, 100, 101, 102, 103 105, 111, 117, 129
प्रह्लाद 238
प्राच्य 130
प्रासाई 124, 130, 136
प्रियक 113
'प्रियदर्शिका' 2, 8, 39, 92
प्युक्लाओटिस राज्य 188; दे० पुष्कलावती
प्लिनी 160, 168, 254, 265
प्लुटार्क 15, 124, 127, 135, 136, 161, 189, 196, 200, 203, 207, 212, 214, 215, 223
फतहगढ़ 46
फथगढ़ 192
फर्नजथ्रिज 178
फर्रुखाबाद 46
फाजिलनगर 82
फा-शियेन/फाहियान 75, 95, 248
फारस, दे० ईरान
फिक 57, 229, 237
फिनीशिया/फिनीशियन जाति 172, 201
फिरदौसी 182
फिलिप, द्वितीय, सिकन्दर का पिता 199, 224
फिलिप तृतीय, फिलिप द्वितीय का जारज पुत्र 224
फिलिप, सेनापति-क्षत्रप, 204, 206, 210, 216, 222, 224, 225
फिलोस्ट्रैट्स 215, 250
फी-शे-ली 55
फु-लि-चिह् (वज्जि) 55
फुशे, एम० 174, 205, 251
फेई-चांग-फांग 151
फेगेलस 130, 192, 215
फोगल, जे० पी० एच० 73, 192
फोटियस 254
फ्युरर 73
फ्रांस 126
फ्लीट 150

बंग 20
बंगाल 6, 20, 92, 132
बड़ली पाषाण-अभिलेख 6
बख्त्रि 169
बजिरा स्थल 203
बज्जि 20, दे० वज्जि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बदायूं 64
बनर्जी आर० डी० 134
बनर्जी, जे० एन० 184
बनारस 57, 59, 85, 92, 115
बन्धुल, मल्ल 22, 29, 34, 35, 48, 63, 83, 84, 111
बम्बई 51, 79
बरुआ, बी० एम० 8, 64, 131, 133, 244
बरेली 46
बरो, टी० 8
बर्दिय 169
बर्बर जनपद 17
बलमित्र 152
बलिया 73, 84
ब्लूचिस्तान 49, 163, 165, 168, 169, 172
बल्कान 201
बल्ख 162, 169, दे० बैक्ट्रिया
बल्देव 13
बसाढ़ 54
बस्ती 80
बहराइच 75
बहावलपुर 195
बहुपुत्र, चैत्य 64
बांसगांव 78
बाख्त्रि 169
बागमती नदी 54
बाजौर 187, 202
बाण 117, 118, 125, 187
बान्दा 44
बारसेण्टिज 180
बारी दोआब 192, 216
बार्हद्रथ वंश 114
बार्हद्रथपुर 86
'बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' 194
बालिकाराम विहार 64, 117
बाल्टिक 149
बावेरु 149
'बावेरु जातक' 182
बाहिक/बहिय 50
बिज्जल 126
बिन्दुसार 12
बिम्बिसार 3, 22, 26, 27, 28, 29, 42, 43, 44,49, 50, 62, 63, 78, 86, 99, 100, 101, 102, 103, 104, 108, 111, 112, 114, 115, 126, 129, 135, 137, 145, 156, 158, 170, 233
बिम्बिसारपुरी 86
बिहार शरीफ 82
बीरकोट 204
बीर्स निमरोद 161
बील, सेमुएल 39, 55, 56
'बुक ऑव एज्रा' 176
बुकाफेला 207
बुखारा 201
बुद्ध, गौतम, लगभग सर्वत्र
'बुद्धचरित' 61, 75, 88
'बुद्धचर्या' 104
बुद्धघोष 54, 57, 59, 64, 65, 67, 68, 74, 77, 78, 99, 103, 108, 163
'बुद्धवंश' 79, 84
बुनेर 187
बुन्देलखण्ड 45, 91
बुमू जनपद 51

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुलन्दशहर 45
बुलि जनपद 73, 84
बूर्बो वंश 90
'बृहत्कथा (नेपाली)' 116
'बृहत्कथाकोष' 13
'बृहत्कथामञ्जरी' 120, 138
'बृहत्कल्पसूत्र' 12
बृहत्धर्म पुराण' 86
'बृहत्संहिता' 164, 190
'बृहदारण्यक उपनषिद्' 2, 243
बृहद्रथ 87
बेग्राम 182, 200
बेट्टिगो पर्वत 164
बेतवा 24
बेतिया 73
बेवन 175, 192, 195, 196, 200, 203, 222
बेसस 180, 181
बेहल्ल 100, 104
बेहिस्तुन-अभिलेख 160, 169, 171
बैक्ट्रिया 161, 162, 166, 199, 200, 201; दे०बल्ख
बैबिलोन 161, 164, 166, 171
बैबिलोनिया 161, 162, 165, 169
बैराट 47
बैशम, ए० एल० 54, 92, 103, 104, 105, 107, 108, 132, 139, 240, 244
बोधज कोई-अभिलेख 162
बोधन 132
बोधिराजकुमार 93
'बोधिराजकुमार सुतन्त' 40
बोधिवृक्ष 152
बोस, एस० एन० 229
बौद्ध संगीति, प्रथम 9, 110
बौद्ध संगीति, द्वितीय 6, 117
'बौधायन धर्मसूत्र' 10, 17, 87, 163, 172, 182, 238
ब्यास 173, 192
ब्युरी 62, 199
ब्युलर 6, 152, 183
ब्रजमण्डल 47
ब्रह्मदत्त 43, 46, 92
'ब्रह्मदत्त जातक' 43
ब्रह्माण्ड पुराण' 18
ब्राह्मणक, जनपद 17, 196, 197
ब्राह्मणाबाद 197
ब्राह्मी लिपि 3-8

भगल, एक राजा 192
'भगवती आराधना 14
'भगवती कथानकम्' 14
'भगवतीसूत्र' 10, 20, 93, 101, 105, 107, 108, 132, 139
भग्ग, जनपद 22, 40, 72, 73, 85, 99
भट्टिय, बिम्बसार का पिता 92
'भत पइण्णा' 14
भद्दसाल 127
'भद्दसाल जातक' 31, 43, 76, 100, 102
भद्दवतीय 38
भद्दिय, नगर 42
भद्दिय, लिच्छवि 64
भद्दिय, शाक्य 76
भद्रबाहु 12, 120, 154
भद्रबाहुकथानकम् 14
'भद्रबाहुचरित' 13

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भद्रसाल, दे० भद्दसाल
भद्रसेन 117
भद्राकुण्डकेशा 240
भद्रेश्वर 26, 40, 154
भद्रवती कस्बा 45
'भरण्डुसुत्त' 84
भरण्डुकालाम 84
भरत 37
भरतपुर 47
भरहुत 110
भरुकच्छ 25, 50
भागलपुर 42
'भागवतपुराण' 121
भागीरथ 75
भागीरथी 46
भाण्डारकर, डी० आर० 8, 73, 88, 94, 112, 114, 116, 117, 142, 184
भाति/भातिय 92
भानुमित्र 152
भारत-युद्ध 53
भारतीय-यूनानी 18
भारद्वाज 17, 97
'भारद्वाज सुत' 39
भारशिव 159
भार्गायण कुमार 85
भास 37, 40, 62
भीटा 95
'भुवनकोश' 10, 17, 18
भूतपाल 133
भूलिंग, जनपद 17
भेण्णकट 51
भेसकलावन मिगदाय 85
भोग 55, 61
भोगनगर 61
भौरिकि, जनपद 17

मंखलि गोसाल 32, 101, 108, 109, 132
मंगुर, एक नरेश 117
मंगोल 75
मंजीरा 132
मकदूनिया/मकदूनी 167, 199, 200, 201, 202, 205, 208
मक/मकरान 169, 175
मगध सर्वत्र
मगह 20
मचातुस 206, 222
मच्छ 18, 19, 45
मजूमदार, र० च० 6, 66, 69, 124, 164, 165, 167, 168, 169, 172, 173, 174, 175, 177, 178, 179, 180, 181, 200, 234, 251, 252, 253, 255
मज्झिम देश 24
'मज्झिम निकाय' 26, 28, 30, 32, 33, 40, 45, 47, 48, 77, 78, 103, 105, 109, 188, 231, 246
मणिप्रभ 26, 40, 116
मत्स्य देश 17, 18, 22, 44, 47, 90
'मत्स्य पुराण' 18, 25, 28, 115, 121, 134, 135, 156, 158, 164
मथुरा 19, 27, 47, 129
मदुरा 47, 142
मदुरै 141
मद्रक, मद्र, देश, जाति 17, 18, 50,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

99, 101, 190
मद्रकार 17
मद्रा 99, 100
मद्रास 142
मधुरा 47
मध्यदेश 3, 22, 23, 24, 43, 90
मनु 57, 58, 59, 63, 194, 209, 218
'मनुस्मृति, 2, 58
'मनोरथपूरणी' 54
मन्तिदत 103
मन्दसौर 88
मन्नई प्रदेश 162
मकैटहृद चैत्य 64
मललसेकर 32, 44
मलय 20, 125
मल्ल जाति जनपद 18, 19, 20, 21, 22, 28, 30, 49, 53, 54, 63, 65, 72, 73, 79, 80-83, 84, 102, 103, 105, 108, 136, 193
मल्लिका 31, 32, 33, 34, 63, 101, 103
मल्लिकारामविहार 33, 34
मल्लोई 193, 194, 209, 216, 217, 219, 221, 225
मशकावती नदी 187
मसार (महासार) 84
मसूरकर्ण 195
मस्सग 187, 188, 203, 204
मस्सागेटाय 167
मस्सानोई 195, 217
'महाउमग्ग जातक' 233
महाकच्छायन महाकात्यायन 27, 47
महाकस्सप 110
महाकान्तार 146
महाकोसल 29, 44
महाकोसला 29, 30, 115
महागोविन्द मन्त्री, 19, 24, 42
'महागोविन्दसुतन्त' 19, 24, 42, 47, 51, 95
महागोविन्द, स्थपति 95
'महाजनकजातक' 42
महादेव 11
महानदी 83
महानन्दा, नदी 54
महानन्दी 113, 117, 120, 124, 157, 158
महानाम, 'महावंस' का लेखक 12
महानाम लिच्छवि 55, 64
महानाम शाक्य 76, 77
महापद्मनन्द 18, 89, 118-140, 146, 147, 157, 158
महापद्मपुर 130
'महापरिनिब्बानसुत' 36, 55, 57, 61, 69, 72, 77, 80, 81, 82, 84, 99, 102, 103, 105, 106, 110, 231
महापरिनिब्बान स्तूप 82
महाप्रजापतिगौतमी 76, 77
'महाबोधिवंश' 12, 19, 80, 117, 121, 125, 133
'महाभारत' 3, 9, 10, 17, 18, 24, 28, 36, 37, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48, 49, 50, 52, 53, 61, 83, 85, 86, 87, 92, 130, 189, 190, 192, 194, 195, 196, 228, 230, 231,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

236, 239
'महाभाष्य' 187, 195
महामाया 62, 76
महामोग्गलान 85
महारट्ठ 51
महाराष्ट्र 51
महालि, लिच्छवि, 22, 29, 48, 63, 64, 68, 83, 111
महालिगम्, वी० टी० 143
'महालिसुत' 94
'महावंस' 10, 12, 75, 78, 80, 88, 89, 98, 110, 113, 114, 115, 116, 117, 120, 137, 143, 148, 150, 156, 157, 158, 200, 217
'महावंसटीका' 17, 80, 115, 125, 128, 157
'महावग्ग' 25, 43, 54, 63, 90, 93, 94, 95, 117, 230, 240
'महावस्तु' 10, 18, 19, 50, 57, 60, 66, 75, 77, 78
महावन, वैशाली का, 63, 64
महावीर 13, 16, 20, 26, 43, 56, 61, 64, 96, 97, 101, 108, 109, 116, 146, 148, 152, 153, 154, 155, 156, 157, 158, 236, 243, 244, 245
'महावीर चरित' 152
महाशाक्य 74
महाशिलाकण्टक 107, 108
महासम्मत, चेविराज 45
महासम्मत, यदु-नरेश 47
'महासीलव जातक' 43
'महासुदस्सनसुत' 36
'महासुतसोम जातक' 45
महासेन 114
महास्थानगढ-लेख 6
महिसक मण्डल 50, 51
महिन्द 151
मही (सदानीरा) 54
महेन्द्र 150
महेन्द्रपाल प्रतिहार 138
महेश्वर 25, 130
माइकिन 175
माक्वर्ट 174
मागधपुर 86, 88, 89
मागन्दिया 38, 39
मागी 164
माण्डिकुक्षी चैत्य 96
'मातंग जातक' 39
मातुल नगर 44
माथाकुंवरकोट 82
माथुर, अवन्तिपुत्र 26, 47
माद 169
'माधुरिय सुतन्त' 47
मानदेव प्रथम 57
मान्धाता 25, 45, 130
मामूलनार 127, 144
माया, शुद्धोदन की पत्नी 62
'मार्कण्डेय पुराण' 18, 24
मार्शल, जॉन 224
मालव जनपद/जाति 20, 190, 193, 194, 195, 198; दे०, मल्लोई
मालवक 20
मालवा 25, 130, 131, 133, 136
मालिनी 42
माहिष्मति जनपद/नगर 19, 24, 25, 116, 130, 131

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माहिस्सति, दे. माहिष्मती 19
मिकोई 178
मिगदाय 85
मिगारमातु प्रासाद 32, 34
मिठनकोट 159, 187, 195
मिता भिक्षुणी 77
मित्र 162
मिथिला 19, 43, 44, 60, 129
मिथ्र 162
मिनेण्डर 12
मियर, एडवर्ड 163, 165
मिर्जापुर 85
'मिलिन्द पञ्हो' 12, 38, 48, 120, 126
मिलेटस का हिकेटेयस 14, 48
मिश्र, रा० स्व० 52
मिश्र, योगेन्द्र 37, 40, 53, 55, 56, 59, 60, 61, 64, 66, 68, 93, 94, 99, 153, 155
मिस्र 169, 172, 189, 201
मिड/मीडिया 161, 164, 165, 167, 176
मीरजियारत 188
मुनेर 42
मुकर्जी, रा० क० 17, 49, 69, 77, 101, 114, 123, 133, 137, 138, 165, 180, 219, 226, 240
मुग़लकाल 183
मुचुकर्ण 195, 217, 218
मुज्जफरपुर 45, 53, 54, 73, 129
मुण्ड 113, 114, 117, 156
'मुण्डकोपनिषद्' 242
'मुद्राराक्षस' 11, 120, 123, 127, 138, 139, 140, 144, 150
मुद्राय 169
मुरा 123, 173
मुल्तान 174
मुल्ला, दर्रा 161
मुहम्मद तुग़लक 13
मूजवन्त 87, 163
मूतिब 17
मूलक 48, 51
मूलसर्वास्तिवादी 'विनय' 48, 99
मूष्षक, जाति 195
'मूषिक जातक' 99
मूसिकेनोस 160, 195, 196, 197, 217, 218
मैक्ड्नाल्ड 184
मेगास्थेनिज़ 5, 6, 25, 130, 147, 160, 162, 167, 173, 174, 185, 193, 212, 252, 253, 256
मेघ, कोषाध्यक्ष 35
मेघकुमार 100
'मेघदूत' 38
मेघवर्ण 149
मेज़रिन 126
मेण्डक, श्रेष्ठि 2, 230, 233
'मेतसुत' 78
मेथोरा 47
मेद 164
मेदलुम्प 33, 34, 76
मेरठ 45
मेरुतुंग 13, 152, 153, 155
मेरोस 188, 203, 209
मेलियनगर 208, 224
मेसोपोटामिया 167

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मैक्रिण्डल 66, 188, 194, 254, 256
मैनपुरी 46
मैसूर 132, 143, 144
मोगलिपुत तिस्स 151
मोग्गलान का 'महावंस' 12
मोतीचन्द्र 49, 77, 235
मोयरज 197
मोरिय जनपद/जाति 72, 79, 80
मोरियनगर 80
मोलि 20
मो-ह-सो-लो 84
मौखरी 121
मौर्यवंश 12, 16, 122, 159, 183, 184, 185
मौसर्नेओई 195
मृगदाव 44, 85
मृगधर 34
मृगावती 37, 40, 62
'मृच्छकटिक' 116

यकृल्लोम, जनपद 17
'यजुर्वेद' 87
यतिवृषभ 153
यदु, जन/वंश 1, 47
यमुना 24, 36, 37, 44, 85, 192
यवन 19, 111, 117, 169; दे० यूनानी
यश, काकण्डकपुत्त, 117
'यश्त' 162
यस, कुलपुत्त 117
यस, थेर 117
यस्सदत्त 48
याजदानी 143
यास्क 86
युए: ची 56
युगन्धर 17
युधिट्ठल. गोत्र 45
युधिष्ठिर, पाण्डव 45
युवान च्वांग 127, 157, 248, दे० शुआन च्वांग
युए रगेटाय 168
युएस्पल, नदी 187, 203
यूडमस 224, 225
यूनान/यूनानी 8, 14, 15, 50, 53, 62, 65, 66, 121, 122, 123, 126, 137, 160, 177, 178, 182, 188, 189, 190, 192, 193, 196,197, 198, 199, 200, 202, 203, 204, 205, 206, 207, 208
यूमीनिज़ 224, 225
यूसुफजई 187
योगनन्द 120
योन, जनपद 19, 49, 50, 188, 227

रंक 17
'रघुवंश' 81
रट्ठपाल, सेट्ठिपुत 46
'रट्ठपालसुत' 45
रणक 36
रथमूसल यन्त्र 107, 108
रत्नगर्भ 11
रत्ननन्दि 13
रत्नावली 38
रविनर्तक 11
रॉक्हिल 28, 32, 59, 77
'राक्षसपूर्वकथा' 11

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजकाराम विहार 33, 34
राजगीर, दे० राजगृह
राजगृह 26, 39, 41, 43, 44, 63, 69, 81, 86, 87, 89, 90, 91, 92, 93, 94, 95, 96, 105, 109, 110, 113, 114, 147
'राजतरंगिणी' 5, 174
राजपूताना/ राजस्थान 22, 50, 91, 192, 193
राजमहल, पहाड़ियां 42
राजशेखर 138
राजौरी 49
राढ, जनपद 20
राप्ती 28, 73, 75, 78
राम, काशिराज 77
रामकोला 82
रामगढ़ताल 78
रामगाम 30, 78, 83
रामचन्द्र, मुमुक्ष 14
राम, दाशरथि 28, 74, 78, 81
रामनगर 46
रामनाड 141
रामपुर-देवरिया 78
'रामायण' 46, 80, 81, 86, 87, 129, 239
राय, उ० ना० 233
रायचौधरी, हे० च० 8, 20, 25, 28, 29, 31, 42, 44, 46, 48, 49, 53, 54, 56, 57, 61, 62, 63, 84, 85, 86, 88, 89, 91, 98, 99, 100, 101, 104, 105, 112, 114, 115, 116, 120, 121, 123, 126, 131, 137, 145, 146, 147, 150, 153, 174, 178, 180, 186, 189, 191, 194, 195, 196, 224
राय, जयमल 236
रॉलिन्सन 161, 176
राव, वि. ब. 164, 238, 239
रावलपिण्डी 48, 169, 189
रावी 50, 159, 175, 186, 190, 192, 193, 194
राष्ट्रिक 68
रासमलान 197
राहुल, सांस्कृत्यायन 29, 50, 53, 61
राहूगण, गौतम 229
रिपुन्जय 87
रुखसाना 200, 223, 224
रुद्रदामा, प्रथम 34, 115
रुम्मिनदेई 75
रेग्मी 129
रेचना दोआब 190, 192
रेणु 19, 24, 42
रेवत 117, 120, 143, 184
रोम 62, 105
रोरुक 19, 50, 195
रोहिणी 75, 78, 79
रोहिलखण्ड 46

लंका 12, 150
लक्ष्मी 138
लम्बचूलक, जनपद 19
लरकाना 196
'ललित विस्तर' 19, 54, 65
लव 28
लाढ़ 20
लाहा, बी. सी. 11, 32, 44, 49, 56, 57, 58, 59, 80, 82, 89,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

139, 229
लाहौर 121, 192
लिच्छवि जाति/जनपद 3, 22, 28,29, 30, 31, 40, 52, 71, 80, 84, 95, 96, 102, 104, 105,106, 107, 107, 185, 193, 233, 240
लियोनाट्स, सेनापति 200
लीडिया 165, 166, 167, 169
'ली-ताई-सान-पाओ-ची' 151
लीबिया 172
लुई, तेरहवां 126
लुम्बिनी 75, 76
लूथर, मार्टिन 147
लेच्छई 54
लेच्छवि 54
लेविन, बोंगार्ड 120, 121, 122
लेवी, सि० 168, 190
लैसन 195
लोकेश 139
'लोहिच्चसुत्त' 30

वंकहार 51
वंक्षु 167
वंग 17, 50
वंस 18, 19, 28, 36, 45
'वंसत्थप्पकासिनी' 12, 120, 121, 128, 138, 139
वच्छ 20, 36
वजिरा 31, 101, 103, 112
वज्जि जाति/जनपद 17, 18, 19, 20, 21, 22, 28, 37, 40, 49, 52, 71, 72, 73, 80, 86, 88, 93, 94, 100, 101, 102, 103, 104, 105, 106, 107, 108, 129, 135, 136, 145
वट्टगामिणी 7
'वड्ढकीसूकर जातक' 'वद्धकी सूकर जातक' 29, 44, 100, 103
वत्स 10, 18, 20, 21, 22, 26, 36, 37, 41, 43, 44, 45, 49, 62, 73, 85, 89, 90, 92, 113, 145
वनसव्हव, नगर 25
वररुचि 138, 139
वराह, पहाड़ी 86
वराहमिहिर 164, 197
वरुण 162
वर्द्धन वंश 159
वर्द्धमान, दे० महावीर
वर्ष, एक विद्वान् 138
वर्षकार 69, 95, 106, 107, 108, 126, 147
वश, उशीनर 17
वशिष्ठ 7
वसाति 195, 217
वसु चैद्य-उपरिचर 87
वसुबन्धु 149
वसुमती 86
वसुमतीनगर 87
वस्सकार, दे० वर्षकार
वाइकेरेत प्रदेश 162
वाटर्स, टी 57.
वात्स्यायन 8
वॉर्म्स 147
'वायुपुराण' 18, 81, 113, 121, 130, 134, 156, 158
वारणावत, ग्राम 45

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाराणसी 19, 37, 43, 64, 75, 108, 115, 117, 129
वार्तेय, जन 197, 218
वाल्मीकि 81
वाल्श, इ० एच० सी० 141, 142
वासभखत्तिया 31, 32, 76
वासवदत्ता 25, 37, 38, 41, 115, 239
वासुदेव 13, 212
वासुलदत्ता 37, 38
वाहिलक जाति प्रदेश 163, 169
वाहीक, जनपद 50
विकलर 161
विक्रमसिंगे 150
विक्रमादित्य 152, 153
'विचारश्रेणी' 13, 152
विजगापट्टम 142
विजयेन्द्र सूरि 55, 185
विटंकपुर 42
विडूडभ 3, 22, 31, 32, 35, 36, 71, 76, 77, 80, 103, 105, 108, 129
विण्टरनित्ज़ 14, 244
विदिशा 25, 37
विदूरथ 36
विदेघ माथव 229
विदेह 2, 19, 54, 55, 60, 61, 62, 80, 94, 99, 100, 145
विद्याधर गच्छ 13
विद्याभूषण, सतीशचन्द्र 56
विद्यालंकार, जयचन्द्र 49, 192, 197
'विधुरपण्डित जातक' 42, 92
'विनयपिटक' 6, 27, 28, 42, 55, 85, 93, 94, 95, 98, 108, 109
विन्ध्य 85, 132
विन्ध्यवास 149
विमल कोडञ्ञ 64, 94, 100
'विमान वत्थु' 95
विराट नगर 47
'विविधकल्पतरु' 124
'विविधतीर्थ कल्प' 13, 86, 152
विल्सन, एच० एच० 121
विशाख 34
विशाखदत्त 120, 138
विशाखयूप 27, 116
'विश्व इतिहास', अल्माकिनकृत 207
विष्णु 7
'विष्णुपुराण' 11, 75, 87, 121
विसाख, पञ्चालसुत 46
विस्तास्प 169
वीतिहोत्र 18, 25, 87, 115, 129, 130, 131, 144
वू-ती 151
वृज्जि दे० वज्जि
वृषगण 149
वृषभ पहाड़ी 86
वृषभाचार्य 14
वेठदीप, स्थान 84
वेठदीपक, राजा 84
वेणुवन 96
वेत्रवती 24
वेदालंकार, हरिदत्त 239
वेदिसनगर (विदिशा) 25
वेबर 191, 194
वेभार पर्वत 86, 110
'वेसन्तर जातक' 44
वेसेक्स 145
वैभार पर्वत 110

State Museum Lucknow 6884

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैशाली 19, 28, 52-71, 82, 88, 89, 94, 99, 104, 105, 107, 108, 109, 115, 117, 136
वैशाली-वाणिज्यग्राम 64
वैहार पहाड़ी 86
व्यग्घपज्जा 74
व्याडि 138
व्यास 159
व्यास नदी 50, 130, दे० व्यास नदी

शक 34, 169, 176, 178, 180, 183
शकटार शकटाल 120, 139
शकद्वीप 185
शकराज 152, 153
शकस्थान 175
शतगु 163, 169, 171, 172, 175, 176, 177, 178, 179
'शतपथ ब्राह्मण' 2, 85, 229
शतानीक 37, 40, 43, 62, 92
शत्रुघ्न 47
शबर 17
शरकोट 192
शरदण्ड 17
शरभ 187
शरावती 81
शर्मा, जी० आर० 37
शर्मा, जे० पी० 54, 56, 58
शर्मा रामशरण 68
शलातुर 8, 184
शशिगुप्त 201, 204, 210, 212, 222
शाकद्वीप 164
शाकल 90, 91
शाकवन 74
शाक्य/जन राज्य 3, 22, 28, 30, 35, 36, 58, 72, 73, 74, 75, 77, 78, 230, 232
शार्पेण्टियर 148, 150, 153, 154
शाल्व 17
शास्त्री, गणपति 108
शास्त्री नीलकण्ठ (नीलकान्त) 123, 144, 174, 192, 204, 249, 252, 253, 254, 256
शाहजहां 97
शाहजी-की-ढेरी 48
'शाहनामा' 182
शाहपुर 190
शाहाबाद 73
शिबि जन/राज्य 192, 193, 194, 195
शिबोई 50
शिलुस्की, जीन 50, 164, 185
शिवकोटि 14
शिवपुर 50, 192
शिविपुर 192
शिशुनाग 27, 88, 114-18, 122, 125, 126, 129, 131, 148, 149, 157, 158
शीलुस्की दे० शिलुस्की
शुआन च्वांग 39, 49, 55, 57, 58, 75, 80, 85, 94, 95, 160
शुक्तिमती 44
शुद्धोदन 3, 31, 62, 75, 76
शूद्रक 36
शूरसेन 18, 47, 129, 130
शेंग-यु 159
शेहवान 173, 196
शैशुनाग वंश 36, 88, 114-18, 122,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

124, 125, 128, 129, 132, 134, 135
शैशुनागी-काकवर्णी 11, 118
शौद्रायण 164, 195, 217
शौद्रे/शौद्रै 217
श्रावस्ती 28, 30, 32, 33, 34, 35, 37, 44, 48, 75, 81, 92
श्रीचन्द्र 13, 14
श्रीभद्रा 99, 100
श्रीयक 139
श्रेणिक दे० बिम्बिसार
श्लमनेसर, तृतीय 161, 166
श्लमनेसर, चतुर्थ 161
श्वेतकेतु 4
श्वेत भारत 163
श्वेताम्बर मत/आगम 13, 14
'श्वेताश्वतर उपनिषद्' 242

संकल 192
संकस्स/संकिस्स 46, 47
संकाश्य 46
संगम युग/साहित्य 127, 132, 144
संगल 192
'संगामसुत' 100, 102, 103
'संगीति परियायसुत' 83
संग्योस 202
संघदासगणिक्षमाश्रमण 12
संघभद्र 149, 151, 152
संजय 46, 117
संजय वेलट्ठपुत्त 109
'संथार पइण्णा' 14
'संयुत्त निकाय' 30, 31, 32, 39, 68, 77, 78, 79, 99, 100, 102, 103, 106, 246
सई नदी 28
सक 175, 177
सक्कर 76, 195
सच्चक लिच्छवि 64
सज्जनेल ग्राम 78
सतगिड़े 163, 169, 174, 175, 176
सतलुज नदी 50, 159, 187
सतम्ब चैत्य 64
सदानीरा नदी 2, 83
सप्तपर्णि गुहा 110
सप्त सिन्धु 159
'समन्त पासादिका' 54
समुद्रगुप्त 89, 91, 103, 136, 137, 149
समुद्र विजय 87
'सम्भव जातक' 43
सम्मुत्तर जनपद 20
सम्मूत विजय 154
सरकार, दि० च०, 6, 115, 134, 169, 177, 232
सरकार, वी०के० 69
सरबञ्जह 117
सरयू 169
सरस्वती नदी 47, 138, 147, 169, 195
सरायकाला 189
सरैव 169
सर्पिका नदी 28
सर्वसेन 17
सर्वार्थसिद्धि 123
सलेम 142
सहजाति 45
सहदेव 87
सहनकोट स्थल 80

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहल्य 133
सहारनपुर 45
सहाली 117
'साइरोपीडिया' 166
सांगलवाला तीबा 192
सांस्कृत्यान, राहुल 83, दे०, राहुल, सांस्कृत्यायन
साकेत 81, 92
साखामनीषी वंश नरेश 8, 9, 14, 15, 22, 49, 111, 159, 198
सागरिका 38
सावग्राई 194
सापुग ग्राम 78
'सामफलसुत्त' 109, 243
सामगाम 76, 154
सामावती 38, 39
सायण 238
सारदन्द चैत्य 64
सारन जिला 53
सारनाथ 44
सारिपुत 95, 154
सारे, एक लेखक 176
सार्डिस 171
सालवती नगर 32
सालवती, नगरशोभिणी 63, 94
सालिन्दिय ग्राम 97
साल्व 17
साल्वावयव 17
साल्ह लिच्छवि 64
सावत्थी 30
सिंगावरम् 142
सिंहल सिंहली साहित्य 11, 12, 78, 114, 120, 143
सिकन्दर 9, 14, 15, 21, 22, 48, 91, 107, 117, 118, 121, 122, 124, 130, 134, 135, 136, 149, 151, 160, 161, 164, 167, 168, 170, 172, 173, 174, 177, 178, 180, 181, 182, 183, 186, 187, 188, 189, 190, 191, 193, 194, 195, 196, 197, 198, 199, 224, 250, 254, 255
सिकन्दरिया, ऐरेको शिया वाला 200
सिकन्दरिया, हिन्दुकुश वाला 200
सिग्गव 151
सिद्धपुत्र 120
सिद्धार्थ, गौतम 96
सिद्धार्थ, ज्ञातृक सरदार 62
सिनिपुर, राजकुमार 74
सिनेका 209
सिन्धु नदी/प्रदेश 17, 111, 165, 166, 167, 168, 171, 172, 173, 174, 175, 177, 178, 180, 181, 182, 185, 186, 187, 188, 189, 191, 193, 194, 195, 196, 197, 199, 202, 204, 205, 206
सिवि/सिबि/सिबोई जनपद 44, 50, 192, 193, 216
सियापोडिज जाति 251
सियालकोट 50
सिरिमण्ड, स्थविर, 85
सिरिवड्ढ 34
सिलावती 76
सिसिकोट्टोस 201, 222
सिसेरो 209
सिंह, लिच्छवि 64

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सीता 129
सीर दरिया 200
सीरिया 166
सीलवत 100
सीस्तान 163, 168, 175, 200
सीह, लिच्छवि 64
सीहपुर 44
सीहा, सीह की बहिन 64
सुंसुमारगिरि 22, 40, 72, 85
सुआस्तुस नदी 187
सुकरात 182, 249
सुकल्प 133
सुकुला 32
'सुखबोधा' 113, 120, 138
सुगुद 169
सुग्घ दे० सोग्डियाना
सुतसोम 45
'सुतनिपात' 30, 47, 54, 88, 89, 230, 231, 232
सुदर्शन झील 34
सुदर्शनपुर 25
सुनन्दा 123
सुनीथ 95, 107, 126
सुन्दरिका नदी 28
सुप्पावासा, कोलियधीता 78
सुप्पारक 25, 51
सुप्रभा 120
सुप्रवासा, कोलिय दुहिता 78
सुभद्रा 99, 240
सुभागसेन 122
सुभूत प्रदेश 191
'सुमंगल विलासिनी' 45, 75, 79, 81, 91, 95, 96, 97, 101, 102, 104, 107, 108, 110
सुमति 61
'सुमतितन्त्र' 129, 134
सुमना 33
सुमाल्य 157
सुमित्र, राजा 36
सुह्म जनपद 50, 86
सुम्होतर, जनपद 20
सुरथ, राजा 36
सुराष्ट्र 115
सूर्यकान्त 194
सुलेमान, पर्वत, 159, 163
सुल्तानपुर 141
सुवज 169
सुवर्णदण्ड, ब्राह्मण 93
सुवर्णभूमि 92
सुवारजम्य 169
सुवास्तु 187
सुसुनाग 114
सूडो-किलेस्थेनिज़ 209
'सूत्रकृतांग' 55
सूनापरान्त, जनपद 50
सूरमस 17
सूरसेन 18, 19, 22, 26, 36, 44, 45, 46, 47, 90
सूसा 171, 185
सूसा-अभिलेख 171
सेकियन 180
सेठ, एच० सी० 155, 190, 212
सेण्ड्रोकोट्टोस 5, 134
सेंत मार्तें, वी० द० 195
सेतव्या 28, 30, 32
सेनाजित् 81
सेनानिगाम 95
सेनार्ट 183

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सेनावर्तने,जाँन एम० 150
सेनिय दे०, बिम्बसार
सेबकोई 194
सेमिरामिस 161, 162, 167, 168
सेमेक्सस 206
सेम्नाइट 105
सेम्बोस 196, 220
सेम्बेस्टाई 194
'सेय्यजातक' 43
सेल्युकस 127, 167, 214, 225, 227
सेल्युसिया 161
सैन्धव सभ्यता 161
सोग्डियाना 164, 169, 180, 181, 200, 201
सोग्डोई 164
सोढ़ा राजपूत 195
'सोणदण्ड जातक' 43, 48
सोणदण्ड ब्राह्मण 93, 97
'सोणदण्ड सुत' 93
सोत्थिवती 44
सोन नदी 43, 85, 86, 113, 146
सोनक 151
सोनपुर 142, 143
सोना, बौद्ध 27
सोपारा 51
सोफाइटिज़ 191
सोफगसेनस 122
सोमदेव 11, 120
सोमा 32
सोरसोनोय 47
सोरेय्य 'सोरों' 46
सोहगौरा 6
सौद्रे 164, 195
'सौन्दरानन्द' 75
सौपिथीज 178, 190, 191, 192, 211
सौभूति, दे० सौपिथीज
सौवीर 17, 19, 50
सौराष्ट्र 17, 50
स्काइलैक्स 14, 160, 172, 173, 174, 182, 250, 254
स्कीथिया स्कीथियन 167, 168, 169, 180
स्टीन 174, 188, 189, 203
स्ट्रेबो 15, 160, 162, 167, 168, 175, 178, 181, 187, 189, 190, 191, 192, 193, 196, 215, 255
'स्थविरावलिचरित' 13, 154, 157
'स्थानांगसूत्र' 55
स्थूलभद्र 139
स्पार्टा 196, 197
स्पिटासिज़ 190, 191, 192
स्पूनर 185
स्मर्दिस 169
स्मिथ, वी० 56, 57, 75, 98, 114, 119, 120, 149, 173, 174, 175, 191, 194, 200, 201, 203, 205, 206, 207, 214, 216, 217, 219, 224, 226
स्मिथ, सिडनी 107
स्मृति साहित्य 142
स्पन्दिका नदी 28
'स्वप्नवासवदत्ता' 25, 37, 40, 46, 62, 112
स्वर्द 169
स्वात नदी/घाटी 48, 50, 187, 188, 201, 202, 203

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वेज-अभिलेख 171

हजारा जिला 49, 176, 189
हट्ठनिक, राजकुमार 74
हत्थिनीपुर 45
हत्थिपुर 44, 45
हफ्तहिन्दु 162
हमदान-अभिलेख 171
हरउवतिश 163
हरःवैति 162, 163
हरखौवतिश 169, 175, 177
हरिगुप्त 120
'हरितमात जातक' 29, 44, 100
हरिद्रवन 78
हरिद्वार 91
हरिभद्रसूरि 13, 104, 124
हरियाणा 45
'हरिवंश' 85, 88
'हरिवंश पुराण' 14, 152
हरिश्चन्द्र 238
हरिषेण 13
हरैव 169, 175, 177
हरोइव 162
हवर्युलिस 167, 204
हर्ज्फ़ल्ड 164, 165, 169, 171, 174, 175, 178
हर्नले दे० हार्नले
हर्यंक/हर्यंग वंश 88, 149
हर्ष 38, 39, 92
'हर्षचरित' 111, 117, 125
हल्ल 100, 104
हलिदूवन 78
हष्टनगर 189
हस्तिनापुर 8, 19, 45, 61
हस्ती 188, 202, 204
हाइड्रेकिज़ 167
हाथिगुम्फा-अभिलेख 120, 131, 132, 134, 139, 144
हामून झील 175
हार्डी 92
हार्नले 104, 152
हामेतेलिया 197
हाल्डिख दे० होल्डिख
हास्तिनायन, जाति 188
हिंगाल नदी 197
हिकैटियस 160, 174, 182, 250, 251
हिमालय प्रदेश 44, 58, 60, 74, 75, 91
'हिन्दु'/हिन्दु प्रदेश 162, 171, 172, 173, 174, 175, 177, 178, 179, 180
हिन्दुकुश 165, 175, 176, 186, 199, 200, 201
हिरण्यगुप्त 120
हिरण्यवती, नदी 82
हिरात 161, 162, 169, 175
'हिस्टरीज़' 160, 164, 172, 173, 179
हुंग-तु 151
हूण 248
हेकेटियस दे० हिकैटियस
हेक्टोम्पाइलोस 161
हैजिज़ 207
हेफाइस्शन 188, 200, 201, 202, 204, 205, 215, 223
हेमचन्द्र 13, 80, 93, 96, 123, 144, 155, 157, 158

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हेमाजित 89
हेराक्लिज़ 193, 204
हेरोडोरस 14, 160, 164, 165, 166, 172, 173, 174, 175, 176, 178, 179, 184, 250, 251, 252, 253, 254
हेलेनिस्टिक युग 167
हेलेस्पोण्ट 199
हेलमण्ड 175
हैक्टेयस, दे० हिकैटियस
हैदराबाद 48
हैप्सबर्ग वंश 90
हैमी, ए० एस० 141
हैहय 18, 25, 129, 130
होग्सन 56
होफमान 168
होल्डिख 176, 188, 200, 202
ह्वाइट 191
ह्वीलर 185
ह्वेन त्सांग 75, 82, 83, 84

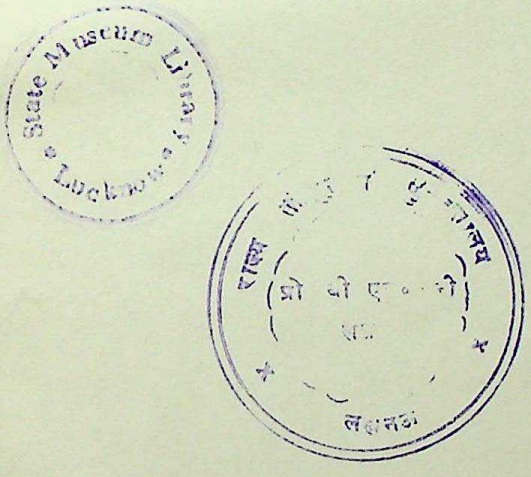

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh